मार्गशीर्ष खण्ड १, अंश २

"कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। मत-मतान्तर के आग्रह-रहित, अपने और पराये का पक्षपात-शून्य, प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ भी विदेशियों का राज्य पूर्ण सुख-दायक नहीं है।"

"मनुष्य उसी को कहना कि जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दुःख और हानि-लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे।"

"आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं। वे पक्षपात छोड़ कर सर्वतन्त्र-सिद्धान्त—अर्थात् जो-जो बातें सब के अनुकूल हैं, सब में सत्य हैं, उनका ग्रहण और जो एक-दूसरे से विरुद्ध हैं उनका त्याग कर—परस्पर प्रीति से बर्त्ते-बर्त्तावें, तो जगत् का पूर्ण हित होवे; क्योंकि विद्वानों के विरोध से अविद्वानों में विरोध बढ़ कर अनेकविध दुःख की वृद्धि और सुख की हानि होती है।"

—ऋषि दयानन्द

संपादक { श्री हरिभाऊ उपाध्याय
श्री क्षेमानन्द 'राहत'

वार्षिक मूल्य ४)
छः माही मूल्य २॥)

सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर, से प्रकाशित

एक संख्या का ।।)
विदेशों के लिए ५)

'त्यागभूमि' के नियम

ग्राहकों के लिए

'त्यागभूमि' का वार्षिक मूल्य डाकव्यय सहित ४), छः मास का २॥) और प्रति संख्या का ॥) है । ग्राहकों को मनीआर्डर से ही चंदा भेज देना चाहिए, क्योंकि, वी० पी० से मंगाने में =) रजिस्ट्री के अधिक देने पड़ेंगे । इसका वर्षारम्भ कार्तिक मास से होता है और हर मास की कृष्ण प्रतिपदा को अंक प्रकाशित होता है । लेकिन ग्राहक चाहे जिस संख्या से ग्राहक बन सकते हैं ।

अप्राप्य संख्या

यदि किसी मास की संख्या किसी ग्राहक को उस मास की सप्तमी तक न मिले तो उन्हें पहले अपने डाकघर से पूछना चाहिए और पता न लगे तो डाकख़ाने का उत्तर अमावास्या तक हमारे पास भेज देना चाहिए। तब हम वही संख्या उनके पास भेज देंगे । लेकिन उक्त तिथि के बाद सूचना मिलने से उसपर ध्यान न दिया जायगा और उस संख्या को ग्राहक ॥) के टिकट भेजने पर ही पा सकेंगे ।

पत्र-व्यवहार

उत्तर के लिए जवाबी कार्ड या टिकट आना ज़रूरी है । अन्यथा उत्तर नहीं दिया जायगा । ग्राहकों को अपना ग्राहक-नम्बर, नाम व पूरा पता स्पष्ट लिख कर भेजना चाहिए ।

पता

ग्राहक होते समय अपना नाम और पता बहुत साफ़ अक्षरों में लिखना चाहिए । दो एक महीने के लिए पता बदलवाना हो तो उसका प्रबन्ध डाकघर से ही कर लेना ठीक होगा । अधिक दिन के लिए बदलवाना हो तो संख्या निकलने के १५ दिन पेश्तर उसकी सूचना देना चाहिए ।

लेखकों के लिए

(१) लेख, कविता आदि साफ़ अक्षरों में, काग़ज़ की एक तरफ़ काफ़ी हाशिया संशोधन के लिए छोड़ कर लिखे जाना चाहिए । (२) लेखों में काट-छांट करने, उन्हें लौटाने या न लौटाने का सारा अधिकार संपादक को है । किसी लेख आदि के न छपने का कारण बताने के लिए संपादक बाध्य नहीं है । (३) क्रमशः प्रकाशित होने वाले लेख भी सम्पूर्ण आने चाहिएँ । (४) अपने लेखादि वापस चाहने वालों को डाकख़र्च टिकट के रूप में भेजना चाहिए । (५) यदि लेखक पुरस्कार लेना स्वीकार करते हैं तो उपयोगी और उत्तम लेखों पर पुरस्कार भी दिया जाता है । 'त्यागभूमि' में प्रकाशित पुरस्कृत लेखों और कविताओं को पुस्तकाकार या किसी संग्रह में निकालने का अधिकार 'सस्ता-मंडल' को रहेगा। अपुरस्कृत रचनाओं पर लेखकों और सस्ता-मंडल दोनों का अधिकार रहेगा । सचित्र लेखों के चित्रों का प्रबन्ध लेखक को करना चाहिए । यदि आवश्यक हुआ तो चित्र प्राप्त करने के लिए आवश्यक ख़र्च कार्यालय देगा ।

लेख, कविता, संवादपत्र, समालोचनार्थ पुस्तकें तथा बदले के पत्र

'सम्पादक "त्यागभूमि" अजमेर' और

ग्राहकों-सम्बन्धी पत्र-व्यवहार, रुपये भेजना आदि सब

व्यवस्थापक "त्यागभूमि", अजमेर

इस पते से भेजना चाहिए ।

'मालव-मयूर' के पिछले वर्ष की फ़ाइल

और फुटकर अंक हमारे पास शेष हैं । उनका मूल्य इस प्रकार है —

प्रथम वर्ष के बारह अंकों की खद्दर की जिल्द

बंधी हुई फ़ाइल — ३॥)

बढ़िया सुनहरी जिल्द — ४)

दूसरे वर्ष की फ़ाइल — ३॥)

फुटकर अङ्क — ।)

'गीता प्रेस' की सस्ती गीतायें

गीता—मूल पदच्छेद, अन्वय और साधारण भाषाटीका सहित, मोटा टाइप, मज़बूत काग़ज़, कई रंगीन चित्र, पृष्ठ ५७०, कपड़े की जिल्द — १।)

गीता—केवल भाषा, मोटा टाइप, सचित्र — ।)

गीता—भाषांटीका सहित, ३५२, पृष्ठ सचित्र, कठिन स्थानों पर टिप्पणियों सहित मूल्य — =)॥

सजिल्द — ≡)

गीता—मूल विष्णुसहस्रनामसहित सजिल्द — ‌)

स्त्रीधर्म प्रश्नोत्तरी — ‌)

यंगइंडिया

जेल जाते समय तक के महात्मा गांधीजी के समस्त लेखों का अनुवाद—तीन भाग, पृष्ठ २५०० से ऊपर, मूल्य केवल ४)

मिलने का पताः—

सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर

विषय-सूची

पृष्ठ

चित्र-सूची

निवेदन—यदि आप किसी कारण से मंडल के ग्राहक न बन सकें तो किसी एक को ज़रूर ग्राहक बना दें

१) में ५०० से ६०० पृष्ठों की उत्तम पुस्तकें

(सेठ जमनालालजी बजाज, सेठ घनश्यामदासजी बिडला, आदि सात सज्जनों द्वारा स्थापित, हिंदी का प्रचार करने के लिए, लागत मूल्य में पुस्तकें प्रकाशित करने वाली भारतवर्ष की एकमात्र सार्वजनिक संस्था)

सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर

(भारत सरकार के सन् १८६० के एक्ट नं० २१ द्वारा रजिस्टर्ड)

उद्देश्य—हिंदी भाषा भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा का स्थान पा चुकी है पर अभीतक इसमें विविध विषयों के उच्च कोटि के ग्रन्थों का बहुत अभाव है। इसके अलावा व्यापारिक दृष्टि से पुस्तकों का मूल्य भी अधिक रखे जाने के कारण सर्व साधारण इच्छा होते हुए भी पुस्तकें खरीदने में असमर्थ रहते हैं। अतएव ऐसी संस्था की परम आवश्यकता थी जो कि शुद्ध सेवा-भाव से, किसी प्रकार के लाभ की इच्छा न रखते हुए, उच्च साहित्य की पुस्तकें लागत-मात्र पर लोगों को दे सके। इसी उद्देश से इस संस्था का जन्म हुआ है। इस मंडल से विविध विषयों पर सर्व-साधारण और शिक्षित समुदाय स्त्री और बालक सब के लिए उपयोगी, अच्छी और सस्ती पुस्तकें प्रकाशित होंगी।

पुस्तकों का मूल्य—स्थायी ग्राहकों के लिए लागत मात्र रहेगा—अर्थात् बाजार में जिन पुस्तकों का मूल्य व्यापाराना ढंग से १) रखा जाता है उनका मूल्य हमारे यहां केवल ।-) या ।=) रहेगा। सचित्र पुस्तकों में खर्च अधिक पडने से कुछ कीमत अधिक रहेगी। जैसे जैसे स्थाई ग्राहकों की संख्या बढती जायगी वैसे वैसे मूल्य और भी कम रखा जा सकेगा।

गुजरात के 'सस्तुं-साहित्य-कार्यालय' की सफलता

इस समय इसके सात हज़ार ग्राहक हैं। गुजराती भाइयों ने इसकी सूचना पाते ही प्रथम वर्ष में ही चारहज़ार की संख्या में इसके स्थायी ग्राहक बन कर अपने कर्तव्य का पालन किया। उसीका फल आज यह है कि उस संस्था से सैंकडों उपयोगी ग्रंथ सस्ते मूल्य में प्रकाशित हो रहे हैं।

हिंदी-भाषा प्रेमियों से निवेदन

यदि आप चाहते हैं कि हिन्दी का यह "सस्ता-मंडल" भी फले फूले और सैंकडों उपयोगी ग्रंथ सस्ती कीमत में निकलें तो आपका कर्तव्य है कि "बूँद बूँद से घड़ा भर जाता है" इस कहावत के अनुसार

इस मंडल के स्वयं ग्राहक बनें, या कमसे कम एक ग्राहक बनाकर इस सस्ते साहित्यप्रचार में मदद करें, क्योंकि ग्राहक ही इस मंडल की सफलता की नींव है।

अभी मंडल बाल्यावस्था में है। इसके काम को आगे बढाने के लिए आपकी सहायता की हमें बडी आवश्यकता है। आशा है, आप हर प्रकार से इस सस्ते साहित्य के प्रचार में मंडल की मदद करेंगे।

स्थायी ग्राहक होने के नियम दूसरे पृष्ठ पर देखिए।

सस्ता-मंडल के ग्राहक होने के नियम

(१) हमारे यहाँ से "सस्ती-पुस्तकमाला" नाम की माला निकलती है जिसमें वर्ष भर में लगभग ३२०० पृष्ठों की कोई अठारह बीस पुस्तकें निकलती हैं और वार्षिक मूल्य पोस्ट खर्च सहित केवल ८) है। अर्थात ६) रुपये ३२०० पृष्ठों का मूल्य और २) डाकव्यय। इस (सस्ती-पुस्तक-माला) के दो विभाग हैं; एक साहित्य-माला और दूसरी प्रकीर्णमाला। दो विभाग इसलिये कर दिये हैं कि जो सज्जन वर्ष भर में आठ रुपये खर्च न कर सकें वे एक ही माला के ग्राहक बन जावें। प्रत्येक माला में १६०० पृष्ठों की पुस्तकें निकलती हैं और पोस्ट खर्च सहित ४) वार्षिक मूल्य है।

(२) **वार्षिक ग्राहकों को** उस वर्ष की—जिस वर्ष में वे ग्राहक बनें—सब पुस्तकें लेनी होती हैं। यदि उन्होंने उस वर्ष की कुछ पुस्तकें पहले से ले रक्खी हों, तो अगले वर्ष की ग्राहक-श्रेणी का पूरा रुपया यानि ४) या ८) भेज देने पर उस माला की पिछले वर्षों की पुस्तकें जिस के वे ग्राहक बनें दोनों मालाओं के ग्राहक बनें तो दोनों मालाओं की) जो वे चाहें एक एक कापी लागत कीमत पर मंगा सकते हैं।

(३) **वार्षिक ग्राहक बनने के लिए** शुरू में केवल एक बार प्रत्येक माला पीछे आठ आना प्रवेश फ़ीस यानि दोनों मालाओं का १) प्रवेश फीस जमा कराना होता है। यह प्रवेश फ़ीस वापिस नहीं लौटाई जाती। इस तरह शुरू शुरू में (केवल एक बार) ग्राहक होते समय प्रत्येक माला पीछे ॥) प्रवेश फ़ीस और ४) वार्षिक मूल्य अर्थात दोनों मालाओं के ग्राहक बनने के लिये ९) भेजने होते हैं। फिर आगे के सालों के लिए प्रत्येक माला पीछे केवल ४) या दोनों मालाओं का ८) भेजने होते हैं।

(४) **दोनों मालाओं का वर्ष**--जनवरी मास से शुरू होकर दिसम्बर मास में समाप्त होता है। मालाओं की पुस्तकें प्रायः हर तीसरे महीने इकट्ठी निकलती हैं और ग्राहकों के पास भेजदी जाती हैं। इस तरह वर्ष भर में कुल १६०० या ३२०० पृष्ठों की पुस्तकें ग्राहकों के पास पहुंचा दी जाती हैं। और तभी उनका वार्षिक मूल्य ४) या ८) समाप्त हो जाता है।

दोनों मालाओं में नीचे लिखी पुस्तकें प्रथम वर्ष में निकली हैं—

सस्ती-साहित्य-माला (प्रथम वर्ष)

(१) द० आफ्रिका का सत्याग्रह (महात्मा गाँधी लिखित) पृष्ठ २७२ मूल्य ।।।)
(२) शिवाजी की योग्यता पृ० १३२ मू० ।=)
(३) दिव्यजीवन पृष्ठ १३६ (चौथी बार) मू० ।=)
(४) भारतके स्त्री-रत्न-पृष्ठ ४१० (दू०बार) मू० १)
(५) व्यावहारिक सभ्यता-पृ० १०८ " मू० ।)।।
(६) आत्मोपदेश-पृष्ठ १०४ (दूसरी बार) मू० ।)
(७) क्या करें ? (टॉलस्टॉय) पृष्ठ-२६६ मू० ।।=)
(८) कलवार की करतूत (,,) पृष्ठ ४० मू० -)।।
(९) जीवन-साहित्य पृष्ठ २१८ (कालेलकर) मू० ।।)

सस्ती-प्रकीर्ण-माला (प्रथम वर्ष)

(१) कर्मयोग पृष्ठ १५२ मू० ।=)
(२) सीताजी की अग्नि-परीक्षा मू० ।-)
(३) कन्या-शिक्षा पृष्ठ ९४ मू० ।)
(४) यथार्थ आदर्श जीवन-पृष्ठ २६४ मू० ।।-)
(५) स्वाधीनता के सिद्धांत-पृष्ठ २०० मू० ।।)
(६) तरंगित हृदय (ले० गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य पं० देवशर्मा विद्यालंकार) पृ० १७५ मू० ।≡)
(७) गंगा गोविंदसिंह पृ० २८८ मू० ।।=)
(८) स्वामीजी का बलिदान और हमारा कर्तव्य (ले० पं० हरिभाऊ उपाध्याय) पृ० १५८ मू० ।-)
(९) यूरोपका इतिहास (प्र०भाग) पृ० ३६६ मू० ।।।=
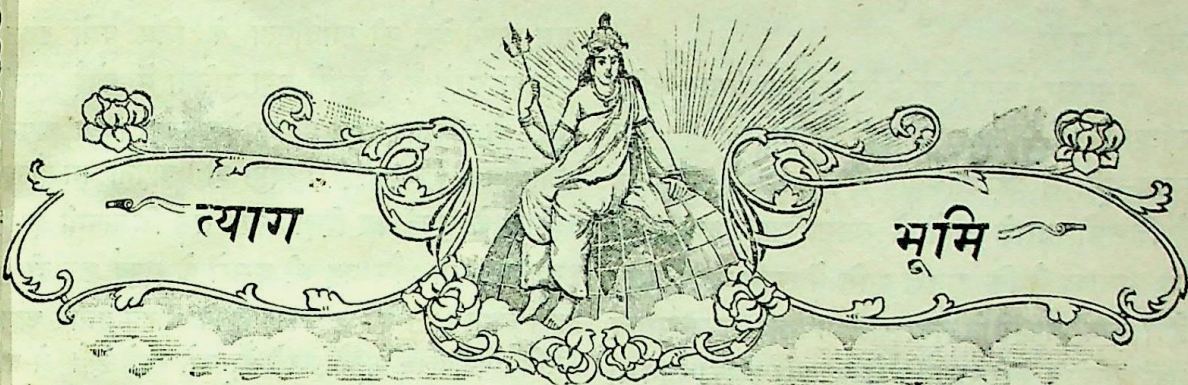
(जीवन, जागृति, बल और बलिदान की पत्रिका)

आत्म-समर्पण होत जहँ, जहां शुभ्र बलिदान ।
मर मिटबे की साध जहँ, तहँ हैं श्रीभगवान् ॥

खण्ड १
अंश २

सस्ता साहित्य मण्डल, अजमेर

मार्गशीर्ष
संवत् १९८४

पैदा कर

वतन की ग़मगुसारी के कोई सामान पैदा कर ।
जिगर में जोश, दिल में दर्द, तन में जान पैदा कर ॥

उड़ा ले जाये दम भर में जहाँ की यह खुराफ़ातें ।
बपा कर ऐसा महशर या कोई तूफ़ान पैदा कर ॥

हम अपनी शान की ख़ातिर खुशी से जान पर खेलें ।
कि हों हम आन पर क़ुरबान वह औसान पैदा कर ॥

क़दमबोसी को चलके सर के बल आयेगी आजादी ।
कि मर मिटने की ख़्वाहिश ऐ दिले नादान ! पैदा कर ॥

खुदी को नेस्त कर आयें, बजायें जङ्ग का डङ्का ।
कुछ ऐसे मनचले, दिलदार मर्द इन्सान पैदा कर ॥

न मर्गो-ज़ीरत को देखूँ, न देखूँ रन्जो राहत को ।
कि दिल में एक बेचैनी मेरे भगवान ! पैदा कर ॥

क्षेमानन्द 'राहत'

'त्यागभूमि' ?

प्यारे पंडितजी,

नमस्कार। आपने अपने पत्र का नाम 'त्याग-भूमि' रक्खा है। मेरी समझ में नहीं आया, क्यों? क्या त्याग-भूमि से यह अभिप्राय है कि हमारी भूमि वह है जिसको उसके पुत्रों ने त्याग दिया है, या इससे यह मन्तव्य है कि हमारी भूमि में त्याग-भाव प्रधान है? दोनों प्रकार से मुझे आपका यह नाम पसन्द नहीं आया। मेरी सम्मति में आपको इसका नाम या तो स्वर्ग-भूमि रखना चाहिए था या नरक-भूमि।

भारतवर्ष की भूमि वास्तव में स्वर्ग-भूमि थी, क्योंकि इसमें यज्ञ होते थे। नाना प्रकार के अपूर्व पदार्थ पैदा होते थे। मनुष्य भी इसके हर प्रकार से मान-योग्य थे। उनके शरीर अ-रोग होते थे, पुष्ट होते थे, बलवान होते थे। अन्दर भय नहीं था। वह निर्भय होकर संसार का काम करते थे और अपनी आरोग्यता के कारण संसार के पदार्थों से अपने जीवन को आनन्दमय रखते थे। उनके अन्दर यश, कीर्त्ति और परोपकार की इच्छा थी। वह सदैव "विजय" की कामना करते थे। वह इस जगत् को मिथ्या और त्याग करने के योग्य नहीं समझते थे। वह अपने लिए और मनुष्य-मात्र के लिए बल और विद्या की प्राप्ति और वृद्धि चाहते थे। उनकी स्त्रियां वीरवती होती थीं, वह उनको त्यागवती नहीं कहते थे। त्याग भी अच्छी चीज़ है, परन्तु अपने समय पर। नौजवानों और दुनियादारों के लिए त्याग करना अस्वाभाविक (Un-natural) है। परन्तु दुनिया में धर्म्म के रास्ते पर चलते हुए अपने कर्तव्य पालन करके किसी समय पर दुनिया को लात मार देनी, यह भी एक अच्छा गुण था। हमारी बदक़िस्मती से हमने "त्याग" "केवल त्याग" को इतनी पदवी दे दी कि हमसे हमारा देश भी छिन गया। अगर केवल "त्याग" ही हमारे जीवन का उद्देश्य है और त्याग ही हमारा लक्ष्य है, तो फिर हम अपने देश की स्वाधीनता के लिए क्यों इतना झगड़ा करते हैं? हमसे बड़ा दुनिया में कोई त्यागी नहीं हो सकता। हमने अपना देश त्याग दिया, अपनी स्वाधीनता (आज़ादी) त्याग दी। अपना धन-दौलत दूसरों के सुपुर्द कर दिया। यहाँ तक कि अपनी इज़्ज़त भी त्याग दी और वह भी दूसरों के सुपुर्द कर दी। इस त्याग-वृत्ति का यह फल है कि आज हमारे अनगनित देशवासी भूखों मरते हैं, नंगे रहते हैं। बे-घर व बे-सामान हैं। दुनिया में न उनका नाम है, न उनकी कीर्ति है। वह डंगरों की तरह अपना जीवन बिताते हैं। दूसरे लोग उनसे ख़िदमत लेते हैं, काम कराते हैं। उनको जिस तरह चाहें, अपने मतलब के लिए इस्तेमाल करते हैं। हम तो त्याग-मूर्ति बने हुए बैठे हैं। मेरी तो समझ में नहीं आता कि हम 'त्याग' का स्वर क्यों अलापते हैं! हम तो बहुत त्याग कर चुके। इस त्याग ने हमारा ख़ाना ख़राब कर दिया, हमको धूल में मिला दिया, और हमें घर का छोड़ा न घाट का। कृपा करके अपने पत्र का नाम बदल दीजिए और त्याग-प्रवृत्ति का प्रचार न कीजिए। इस समय तो हमें पुरुषार्थ का, साहस का, हौसले का, और आशा का प्रचार ज़रूरी है, न कि त्याग का। मैं चाहता हूँ कि आप मेरा यह पहला संदेश अपने पाठकों को पहुंचा दें।

आपका मित्र,

लाजपतराय

[नम्र निवेदन

'त्याग-भूमि' के लिए यह सौभाग्य और गौरव की बात है कि वह पूज्य लालाजी का यह सन्देश अपने पाठकों तक पहुँचा रही है। देश की मौजूदा हालत को देख कर पूज्य लालाजी को जो मर्म-वेदना

हो रही है वह हमारे और पाठकों के लिए एक सजीव स्फूर्ति का काम देगी। 'त्याग' और 'त्याग-भूमि' के सम्बन्ध में पूज्य लालाजी ने जो व्यथा और व्यंग भरे विचार प्रकट किये हैं उनके सम्बन्ध में मुझे अपना नम्र निवेदन उनकी सेवा में पेश करना ज़रूरी है। 'त्याग' और 'त्याग-भूमि' से हमारा अर्थ और उद्देश केवल यही है कि देश को पराधीनता की बेड़ियों से छुड़ाने के लिए भारत का बच्चा-बच्चा अपना सर्वस्व होम देने को तैयार होजाय। जबतक वह देश को आज़ाद नहीं देख लेता तबतक किसी दूसरी चीज़ में उसका मन न लगे। यह दर्द, यह कलक, यह बेचैनी और यह बलिदान का भाव पैदा करना ही 'त्याग-भूमि' के जीवन का लक्ष्य है। दुनिया को छोड़ कर जंगल में धूनी रमाना, इसे हम त्याग नहीं मानते। समाज, देश और धर्म की सेवा के लिए अपने को सब तरह अर्पित कर देना—खपा देना—यह अभिप्राय हमारा त्याग से है। भारत को बलिदान के ऐसे मतवाले वीरों की भूमि देखना 'त्याग-भूमि' की लालसा है। मैं पूज्य लालाजी को विश्वास दिलाता हूं कि, यदि 'पुरुषार्थ का, साहस का, हौसले का और आशा का प्रचार' 'त्याग-भूमि' के द्वारा न हुआ तो उसका जन्म निरर्थक समझना चाहिए। वीरता और उसके साथी गुण, साहस, निर्भयता, तेजस्विता, दृढ़ता, पराक्रम, आशा, उत्साह, हौसला, कर्मण्यता आदि 'त्याग-भूमि' के त्यागी का पहला लक्षण है। त्यागी से हमारा अभिप्राय केवल इतना ही है कि अपने अच्छे से अच्छे गुण, बड़ी से बड़ी शक्ति, श्रेष्ठ से श्रेष्ठ वैभव, सब कुछ देश, धर्म और समाज के काम आवे। हमारा जीवन कोरा व्यक्तिगत जीवन न रहे, वह देश की सम्पत्ति हो जाय और हमारे दीन-दुखी भाइयों की सेवा में लगे।

ह० उ०]

राजस्थान की समस्यायें

राजस्थान, जिसमें राजपूताना और मध्यभारत शामिल हैं, राजकीय दृष्टि से दो भागों में बँटा हुआ है—अंग्रेज़ी इलाक़ा और देशी रियासतें। अंग्रेज़ी इलाक़ा—अजमेर-मेरवाड़ा—बहुत छोटा और चारों ओर बड़ी-बड़ी देशी रियासतों से घिरा हुआ है। इस कारण, शासन के लिहाज़ से अलहदा होते हुए भी, वहां के लोगों की मामूली हालत में कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं दिखाई देता। असहयोग की चढ़ती के ज़माने में अजमेर-नगर और उसके कुछ आस-पास ज़रूर ज़बरदस्त राजनैतिक जोश पैदा हुआ था, पर उससे देशी राज्यों की प्रजा और ब्रिटिश इलाक़े की प्रजा की मनोदशा के बीच कोई भारी फ़र्क़ हुआ नहीं नज़र आता। फिर भी, शासन-प्रणाली और जनता के प्रति हाकिमों के रुख़ के ख़याल से, ब्रिटिश प्रजा ज़्यादा आज़ाद मालूम होती है। यों देखा जाय तो अंग्रेज़ हाकिमों की वह हमदर्दी स्वभावतः भारतीय जनता के साथ नहीं हो सकती जो कि देशी नरेशों की हो सकती है; परन्तु देशी नरेशों की पराधीनता, स्वेच्छाचार-पूर्ण शासन-प्रणाली, तथा व्यक्तिगत सदाचार की कमी ने देशी राज्यों को प्रायः ब्रिटिश इलाक़े से सब तरह गया-बीता बना रक्खा है और इससे प्रजाजन को कम कष्ट, कम हानि नहीं हो रही है; नरेशगण जो पतनमय जीवन बिता रहे हैं सो तो अलग ही।

ऐसी अवस्था में यों राजस्थान की सबसे बड़ी समस्या अगर कोई हो सकती है तो वह है वही सारे भारत की एकमात्र समस्या—स्वराज्य। उसके बिना इस देश का कोई दुःख कम नहीं हो सकता। इसके लिए भारतवर्ष अपनी तरफ़ से प्रयत्न कर ही रहा है। परन्तु इस महासमस्या के अंगभूत, तथा प्रयत्नों की विविधता के कारण, दूसरे प्रान्तों की तरह, राजस्थान के सामने भी इस समय कई समस्यायें खड़ी हैं—जिनपर हमें विचार करना ही होगा, यदि हम राजस्थान को आगे बढ़ाना चाहते हों।

राजनैतिक समस्या

राजस्थान की दो प्रकार की हैं—ब्रिटिश राजस्थान की समस्या तो यह है कि वह कम से कम दूसरे प्रान्तों की बराबरी का हो जाय। आज वह 'नानरेगुलेटेड'—अनिय-

मित—है। एक क़िस्म का स्वेच्छाचारपूर्ण शासन यहां है। चीफ़ कमिश्नर को ही यहां का बादशाह समझिए। सो, कम से कम, इसे धारा-सभा ही मिल जाय—कुछ तो लोगों का हाथ अपने शासन-विधान में हो।

देशी राज्यों की राजनैतिक समस्या दो प्रकार की है—स्वयं देशी नरेशों की और उनके प्रजाजन की। यदि देशी नरेश आदर्श नरपति होते, प्रजा में समरस होकर रहते, तो शायद उनकी और प्रजाजन की यह समस्या एक ही होती। पर, फिर, दुर्भाग्य का राज्य यहां कैसे रह सकता था? देशी नरेश एक ओर प्रजा पर के अपने अनियंत्रित प्रभुत्व को भी कम न होने देना चाहते हैं और दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार के भी टक्कर के बन जाना चाहते हैं! यह उनकी समस्या है। यह उनकी भूल है। यह असंभव है। रायल कमीशन को ध्यान में रख कर वे चाहे कितना आकाश-पाताल एक करें, दो में से एक बात होकर रहेगी। यदि वे प्रजा पर अपना प्रभुत्व रखना चाहते हैं, तो ब्रिटिश सरकार से दबकर रहना पड़ेगा। यदि वे ब्रिटिश सरकार की बराबरी का दावा करते हों, तो उन्हें प्रजाजन को अपनाना पड़ेगा—प्रजा को अपने प्रभुत्व का साझी करना पड़ेगा। प्रजा से उनका सम्बन्ध स्वाभाविक है—ब्रिटिश सरकार से अस्वाभाविक, परिस्थिति के दबाव का फल। अस्वाभाविक वस्तु सदा टिक नहीं सकती। उन्हें इच्छा से हो, अनिच्छा से हो, आज न सही कल, प्रजा से अपना स्वाभाविक सीधा सम्बन्ध जोड़ना पड़ेगा। तभी उनकी समस्या हल होगी; वरना न इधर के रहेंगे न उधर के। इसमें तिल-मात्र संशय नहीं।

प्रजा की समस्या है, जबतक स्वराज्य न हो तबतक, कम से कम सुराज्य तो हो। बेगार, रिश्वतख़ोरी, हाकिमों की अंधाधुंधी, नरेशों की मनमानी तो बन्द हो—जिनकी कथायें सुन-सुनकर कान बहरे हो रहे हैं। शासन में प्रजा का हाथ हो, राज्य में उसकी पूछ हो, उसका कुछ तो अस्तित्व कहीं हो। अब वह हाकिमों और नरेशों की भोग्य-वस्तु बने रहने के लिए क़तई तैयार नहीं है।

राष्ट्रीय समस्या

राष्ट्र उस जन-समाज को कहते हैं, जिसके जीवन का एक समान-ध्येय हो, समान-आदर्श हो, जिसके जीवन में एकता हो। इस अर्थ में राजस्थान अभी एक राष्ट्र नहीं है। लोगों को अभी अपने ध्येय और आदर्श का ही ज्ञान नहीं है, फिर उनका होना और उनके लिए जीवन में एकता का होना तो दूर की बात है। हर रियासत के लोग प्रायः अपने को एक-दूसरे से पृथक् मानते हैं। हर रियासत का तौर-तरीक़ प्रायः जुदा है। ऐसा कोई भाव उनके अन्दर नहीं दिखाई देता, जो सबको एक सूत्र में बाँधता हो। ऐसी दशा में सबसे पहली राष्ट्रीय समस्या यहां है लोगों में राष्ट्र के भावों का प्रचार करना, दूसरी समस्या है उसके लिए लोगों में परस्पर एकता के भाव पैदा करना। विविध धर्म-मतों, विविध पेशों, विविध जातियों के रहते हुए भी जब हम एक ध्येय और एक आदर्श के पुजारी होने लगेंगे, तभी कहा जा सकेगा कि राजस्थान की राष्ट्रीय समस्या हल होने लगी है। अपने पृथक् अस्तित्व को रखते हुए भी हमें समाज और समुदाय के अस्तित्व के सामने अपने को छोटा मानना होगा। तभी हम राष्ट्रीय जीवन का सुख और स्वाद पा सकेंगे।

सामाजिक समस्या

सामाजिक समस्यायें राजस्थान की प्रायः समान हैं। बाल-विवाह, परदा और अछूतपन सबसे पहले हमारा ध्यान खींचते हैं। उसके बाद ख़याल दौड़ता है वैवाहिक कुरीतियों, विधवाओं, अनाथों और शारीरिक ह्रास की ओर। आपस की फूट और कलह भी अपना वीभत्सरूप ले हमारे सामने खड़े हैं। राजपूताने में परदे की पराकाष्ठा उपहास की हद तक पहुँच गई है। स्त्रियाँ स्त्रियों का घूंघट निकालती हैं, यह अजीब हालत इसी उल्टी दुनिया में देखी जाती है। वैवाहिक कुरीतियां भी मारवाड़ी-समाज में जितनी अधिक और जितनी भयंकरता के साथ हैं उतनी शायद और कहीं न होंगी। बाल-विवाह तो मानों हमारे पापों का फल ही हमारे सत्यानाश के लिए ईश्वर ने भेजा है। विधवाओं के दुःख और दुर्दशा देख कर करुणा के आँसू क्रोध की लपट में जहां के तहीं जल जाते हैं। अनाथ तो बिचारे अनाथ ही ठहरे। समाज की यह बिनकमाई सम्पत्तियों ही बरबाद हो रही है। हम जड़ता के इतने पुजारी बने हुए हैं कि ईश्वर के इन सजीव

पुत्रों का मूल्य हमें नहीं दिखाई पड़ता। गुजरात और मद्रास में अछूतपन जितने डरावने और बीभत्सरूप में है, उतना तो राजस्थान में नहीं है; परन्तु इस पाप को धोने के लिए भी राजस्थान को अग्रसर होना पड़ेगा। अछूतपन हिन्दू जाति के दिमाग़ और जीवन की वह सड़न है जो यदि शीघ्र दूर न की गई तो हिन्दू जाति का एक अङ्ग सदा के लिए विषाक्त रह जायगा और उसके ज़हर से उसका जीवन भार-भूत हो जायगा। शारीरिक ह्रास, अल्पमृत्यु, अनेक गुप्त और भयंकर रोग हमारे जीवन-वट की जड़ों को कुतर-कुतर कर खोखला बना रहे हैं। गृह-कलह, आपस की फूट, अलग हमें चूर-चूर कर रही है। दुःखों और पाप के फलों की मानों बाढ़सी आरही है। हमारे जीवन के इस कृष्णपक्ष की ओर जब विचार दौड़ने लगते हैं तो शरीर जड़वत् होने लगता है। आस्तिकता, आशावाद और श्रद्धा ये तीन रसायन यदि ईश्वर ने उत्पन्न न की होतीं, तो मनुष्य-जाति दुःख, क्लेश, परिताप, अनुताप की आग में जल कर भस्म हो गई होती!

आर्थिक समस्या

और भी विकट और विषम है। यह ठीक है कि देश में जो कुछ धन है वह अधिकांश में मारवाड़ियों के यहां है, पर यह धन उन्हें राजस्थान से नहीं मिला और न राजस्थान में ही वह है भी। व्यापार तो दलाली-मात्र रह गया है। इंदौर, उज्जैन, ग्वालियर, ब्यावर में कुछ कपड़े की मिलें हैं, कुछ लखपतियों और करोड़पतियों के नाम भी लिये जाते हैं; पर राजस्थान की उन्नति, उसकी सेवा के लिए उस धन का कितना उपयोग होता है? फिर ये धनी लोग तो इने-गिने हैं। अधिकांश जनता तो निर्धन ही है। अशिक्षा, अज्ञान और हाकिमों की कृपा से किसानों के यहां तो सदा दरिद्रनारायण का ही निवास रहता है। कारकुन-पेशा लोग रिश्वत-ख़ोरी किये बिना अच्छी तरह पेट नहीं पाल सकते। ३०) ४०) रु० साल औसत आमदनी, बार-बार के क़हत, दुर्बल शरीर, नंगा बदन हड़हड़ा कर हमारी आर्थिक अवस्था पर जो टिप्पणी कर रहे हैं उससे अधिक लिखने का सामर्थ्य इस क्षुद्र लेखनी में नहीं।

नैतिक समस्या

मोटे तौर पर चार हैं—(१) व्यभिचार, (२) झूठ, (३) चोरी, और (४) छल-कपट। व्यभिचार देहात की अपेक्षा शहरों में अधिक, और ग़रीब तथा छोटे लोगों की अपेक्षा धनी-मानी एवं बड़े लोगों में अधिक है। विधवायें प्रायः इस दोष की शिकार होती रहती हैं। इन प्रान्तों में परदा अधिक है; राजे-रजवाड़े अधिक हैं, इसलिए भोग-विलास के भाव प्रबल हैं। कहते हैं, राजपूताने के एक शहर में तो ७५ फ़ी सदी स्त्री-पुरुषों का जीवन शुद्ध न मिलेगा। कुछ राजों-रजवाड़ों की तो ऐसी लीलायें सुनी जाती हैं कि ईश्वर ने ये कान न दिये होते तो अच्छा था, अथवा यदि दिये हैं तो उन पापों को दूर करने की शक्ति भी दे दी होती!

चोरी, झूठ, छल-कपट में चोरी तो क़ानूनन् अपराध ठहरा दिया गया है और समाज भी उसे बुरी दृष्टि से देखता है; पर झूठ और छल-कपट को लोग बुरा जानते हुए भी बुरा नहीं समझते। जहाँ गुलामी प्रबल हो, जहाँ ज़ुल्म-ज़्यादती बहुत होती हो, जहाँ निर्धनता हो, वहाँ झूठ फैले बिना नहीं रह सकता। देशी राज्यों के अनुभवी मित्रों ने मुझसे कहा है कि छल-कपट तो देशी रियासतों का स्वभाव बन जाता है; क्योंकि वहाँ षड्यन्त्र हुआ करते हैं। राजधानियों में यह बीमारी बहुत पाई जाती है। और सबसे ज़्यादा दुःख की बात तो यह है कि इसे अभी लोग बुरा भी नहीं समझने लगे। छल-कपट या कूटनीति को पढ़े-लिखे लोगों ने अभीतक जीवन में अच्छा स्थान दे रक्खा है।

साहित्यिक समस्या

तीन हैं—(१) प्रान्तीय भाषा और साहित्य का निर्माण, (२) जिन हिन्दी-भाषी राज्यों में उर्दू लिपि प्रचलित है वहां नागरी का प्रचार, और (३) प्राचीन ग्रन्थों की खोज, रक्षा और प्रकाशन। कुछ लोगों की राय है कि राजस्थान की एक प्रान्तीय भाषा हो और मराठी, गुजराती या पंजाबी की तरह उसमें साहित्य की रचना हो। बोलियाँ तो प्रान्तीय अपनी-अपनी रहेंगी ही, पर साहित्य-भाषा भिन्न बनाने की मुझे आवश्यकता नहीं मालूम होती। राजपूताना और मध्यभारत में प्रचलित हो सकने वाली लेख-भाषा या साहित्य-भाषा है भी कठिन। फिर राजस्थानी बोलियां हैं भी

तो हिन्दी का ही एक रूप। अतएव साहित्य-भाषा जुदी बनाने का ख़याल करना उचित नहीं। हां, हिन्दी-भाषा में प्रान्तीय साहित्य निर्माण करने और प्राचीन साहित्य की रक्षा करने की परम आवश्यकता है। ऐतिहासिक ग्रन्थों की शोध और संग्रह तो रायबहादुर ओझाजी कर ही रहे हैं। जयपुर के पुरोहित श्री हरनारायणजी ने संत और भक्त कवियों के साहित्य का बहुत अच्छा संग्रह कर रक्खा है। राजपूताना और मध्यभारत में कई जगह पुरानी पोथियाँ पड़ी हैं, जिन्हें दीमकें खा रही हैं; पर उनका उद्धारक अभी कोई उत्पन्न नहीं हुआ। जो प्रान्त अपनी सुन्दर बपौती तक की रक्षा करने में उत्साह नहीं दिखाता वह नई कमाई में कितना आगे क़दम बढ़ावेगा? श्री राहतजी इस दिशा में कुछ करना चाहते हैं। देखना चाहिए, क्या हो सकता है!

उपाय

इस प्रकार समस्यायें इस समय राजस्थान के सामने उपस्थित हैं। प्रश्न यह है कि इन्हें कैसे हल करें? सबसे पहले लोगों में इस ज्ञान के पैदा होने की ज़रूरत है कि हमारे सामने ये-ये समस्यायें हैं। फिर उनके अन्दर यह भाव पैदा होना चाहिए कि हमें इन्हें हल करना है और यह बेचैनी हो कि जितनी जल्दी हो हल करना है। इसके बाद कार्यक्रम बन सकता है। अभी तो हम लोग अपने व्यक्तिगत दुःखों, असुविधाओं, कठिनाइयों, अन्यायों, ज़्यादतियों को ही अधिक नहीं महसूस करने लगे हैं, फिर सार्वजनिक दुःखों और अत्याचारों का तो प्रश्न ही दूर है। पहले दुःखों को अनुभव करने की शक्ति हमारे अन्दर जागृत हो; वह जितनी ही अधिक जमेगी, हमारे अन्दर उतने ही उनके विरोध और प्रतीकार के भाव पैदा होंगे। जबतक हम किसी बात को अनुभव नहीं करते तबतक उसके लिए हमसे उद्योग भी नहीं होता। यह अनुभव दो प्रकार से हो सकता है—(१) हमारे दुःखों और कठिनाइयों को प्रकट करने वाला साहित्य प्रकाशित हो, लोग आपस में उनकी चर्चा करें, और (२) जो लोग इन्हें जान और समझ गये हैं वे इस प्रचार-में अपना जीवन लगा दें। उन्हींपर इसकी पहली और सबसे ज़्यादा ज़िम्मेवारी है। उनका एक मिनट सिवा इस काम के न जाय। इसके बिना उनका खाना-पीना, ऐश-आराम हराम होजाना चाहिए। जीवन का आनंद उन्हें इसीकी धुन में, इसीके लिए विपत्तियों पर विपत्तियां सहने में मिलना चाहिए। ऐसे सहृदय और बांके सपूतों की संख्या राजस्थान में जितनी बढ़ेगी उतने ही इसके सुदिन नज़दीक आयेंगे। जबतक राजस्थान के वीर पुत्र आलस्य, विलासिता और निकम्मेपन की ज़िंदगी बसर करते रहेंगे, उसीमें जीवन की सार्थकता मानते रहेंगे, तबतक यह पुण्यभूमि-वीरभूमि राजस्थान इसी प्रकार पृथिवी का नरक बना रहेगा। यदि उन्हें उद्धार की इच्छा है, ज़रूरत है, तो उठे बिना, कुछ किये बिना, कुछ दिये बिना, कुछ सहे बिना—नान्यः पन्था विद्यते। इसे वे पत्थर की लकीर समझें, ब्रह्मवाक्य समझें।

हरिभाऊ उपाध्याय

मध्यभारत का सार्वजनिक जीवन

मध्यभारत, जैसा कि नाम से ही प्रगट है, भारतवर्ष का मध्यवर्ती भू-भाग है, जो प्रधानतया देशी राज्यों में विभक्त है। देशी राज्य भी कैसे—जिनका न तो एक धर्म है, और न एक-समान दर्जा। कोई बड़ा है तो कोई छोटा। किसी का सम्बन्ध भारत-सरकार से है, तो कई ऐसे भी, जो आपस में ही किसी बड़े राज्य को खिराज देते हैं। धर्म और जाति-भेद का यह हाल कि हिन्दू-मुसलमान-भेद तो है ही, इसके अलावा राजपूत, मराठा, जाट इत्यादि जाति-भेदों का भी विभिन्न राज्यों के शासकों में कुछ कम भेदभाव नहीं। और जैसा भेदभाव उनकी जातियों में, वैसा ही अन्तर उनके पारस्परिक व्यवहार में मिलता है। जल-वायु भी, भिन्न-भिन्न भागों का, एक-दूसरे से भिन्न ही है। जैसे, रीवां और ग्वालियर की आब-हवा अधिक सख़्त है, जबकि मालवे का जल-वायु है समशीतोष्ण। ज़मीन कहीं कालीमा उवरी है, तो कहीं पथरीली, और कहीं बालुका-मय

मैदान। वर्षा कहीं तो पर्याप्त होती है और कहीं सूखा ही रहता है। भाषा आम तौर पर हिन्दी ही बोली जाती है–फिर भी उसके दो प्रकार हैं; एक तो बुन्देलखण्ड-मिश्रित हिन्दी प्रचलित है और दूसरी मालवे में बोली जाने वाली मालवी और मारवाड़ी मिली हुई हिन्दी है। इन सब भिन्नता वा भेदभावों ही का परिणाम है कि यहाँ के लोगों का जीवन भी एकसाँ नहीं है।

देश में जो आन्दोलन अथवा सुधार-कार्य होते हैं, उनका गहरा असर मध्यभारत पर स्वभावतः ही नहीं पड़ता। हाँ, असहयोग के ज़माने में खादी का प्रचार तो रेल्वे-स्टेशन से साठ-साठ मील दूर स्थानों पर भी हो गया और महात्मा गाँधी का नाम भी सबके मुखों से सुनाई देने लगा। पर उसके बाद स्थिति बदल कर, दुर्भाग्य-वश, आज हिन्दू-मुसलिम झगड़ों ने अपना बहुत कुछ असर जमा लिया है। फिर, देशी राज्यों की अनोखी परिस्थिति ने यहाँ की दशा वैसे ही बड़ी विचित्र बना रक्खी है। ब्रिटिश भारत में तो शासन के ख़िलाफ़ कटु और तीव्र बातें भी क़ानून के दायरे के अन्दर की जा सकती हैं, पर मध्यभारतीय देशी राज्यों की नीति के सञ्चालक तो हैं ब्रिटिश रेज़िडेण्ट साहब—उन्हींके इशारे पर यहाँ के छोटे-बड़े सब काम होते हैं। लेखन, भाषण और मुद्रण-स्वातंत्र्य का रञ्चमात्र नहीं है। शासकों की नीति पर टीका-टिप्पणी करना और उनके व्यक्तित्व पर आक्रमण करना, दोनों एक ही बात समझी जाती हैं–दोनों बातों में परस्पर कोई अन्तर नहीं माना जाता। किसी भी व्यक्ति को रियासत से निकाल देने के अधिकार का दुरुपयोग, चाहे जब और चाहे जिस बहाने, प्रायः होता रहता है। सच तो यह है कि देशी शासकों का स्वेच्छाचरण और अज्ञान तथा सिफ़ारशी अधिकारियों की स्वार्थपरायणता और चरित्रहीनता के कारण यहाँ की प्रजा की जैसी हीन दशा है उसे, एक नाटक में कथित विचारों के अनुसार, इस प्रकार भली भांति व्यक्त किया जा सकता है–"मुँह होते हुए बोलना नहीं, कान होने पर भी सुनना नहीं, और नेत्र मौजूद होने पर भी देखना नहीं।" कहीं-कहीं इसमें अपवाद भी हैं, एक-दो जगह लोकनिर्वाचित सदस्यों की सलाहकार संस्थायें क़ायम हुई हैं, पर उनकी दशा कठपुतली से बढ़कर नहीं है।

'राजा कालस्य कारणम्' इस न्याय-सिद्धान्त का सहारा लें, तो, उपर्युक्त परिस्थिति की सारी ज़िम्मेदारी देशी शासकों तथा राज्यकर्ताओं की नीति पर ही पड़ती है। और वस्तुस्थिति भी बहुत कुछ ऐसी ही है। परन्तु, इसके साथ ही, यह तत्व भी बिल्कुल निराधार नहीं कि जिस योग्य लोग होते हैं वैसी ही राज्यसत्ता उन्हें मिलती है। अतः, यद्यपि काल-वश उपर्युक्त परिस्थिति बदलना सम्भव है फिर भी, हमारे लिए यह आवश्यक है कि सर्व-साधारण में जागृति पैदा करें और विचारोपरान्त उन्हें बतावें कि उनके क्या-क्या हक़ हैं, वे कैसे प्राप्त हो सकते हैं, और उनकी बिगड़ी हुई दशा कैसे सुधर सकती है। रियासत से निकालने के अधिकार का जो दुरुपयोग होता है, उसे रोकने का प्रयत्न तो सर्वप्रथम होना ही चाहिए; साथ ही लेखन, भाषण और मुद्रण-स्वातंत्र्य को उत्तरोत्तर विकसित करने के लिए भी आन्दोलन होना आवश्यक है। अधिकारियों की नियुक्ति किन्हीं निश्चित तत्वों पर न होने की परम्परा मिटकर, उसके स्थान पर, इसके लिए कुछ निश्चित आम नियम बनने चाहिएं। इसी प्रकार अन्य सब बुराइयों का, स्वेच्छाचार और अन्याय का भी विरोध होना आवश्यक है।

पर यह सब हो कैसे ? इसके लिए, आवश्यकता इस बात की है कि जिस किसी भी सेवाभिलाषी कार्यकर्त्ता को इस परिस्थिति का ज्ञान हो जाय वह,

अपने-अपने स्थान पर, यथाशक्ति थोड़ा-बहुत कार्य इसके निवारणार्थ शुरू कर दें। शुद्ध-भाव से जन-सेवा करना ही उनका उद्देश हो—फिर उसका प्रत्यक्ष फल उन्हें मिले अथवा न मिले। जहाँ कहीं ऐसे कार्य-कर्त्ता हों, साधारण संस्था के रूप में, उन्हें अपना संगठन कर लेना चाहिए। यह ख़याल रहे कि ऐसे कार्य न तो राष्ट्रीय आकांक्षाओं को तिलाञ्जलि देकर हों, और न ऐसे ही कि हमारी राष्ट्रीयता के संवर्द्धन में उनसे किसी प्रकार का विघ्न पड़े। कालावधि हो तो पर्वाह नहीं, उद्देश न छूटना चाहिए। यह नीति अन्त में यशस्वी सिद्ध हुए बिना नहीं रह सकती। अतएव, हमारा यह कर्त्तव्य है कि, जगह-जगह संगठनात्मक कार्य की चेष्टा करें। उदाहरणार्थ, हमें चाहिए कि, स्थान-स्थान पर वाचनालय खोलें, व्यायामशालायें चलायें, सेवा-समितियां क़ायम करें, खादी का प्रचार करें। साथ ही इसके विभिन्न धार्मिक-सामाजिक उत्सवों व अन्य अवसरों पर सद्धर्म, सद्भावना एवं राष्ट्रीयता फैलाने वाले वाङ्मय का भी हमें प्रचार करना चाहिए। पर, जहाँ तक सम्भव हो, ये सब कार्य हों जाति और धर्म के भेदभाव को एक ओर रखकर ही। दृढ़ता और नम्रता के साथ सत्यमार्ग पर चलने वाले सुशील और चरित्रवान कार्यकर्त्ता, परिस्थिति की भली भांति जाँच करके, उसे समझ कर, यदि सन्तोष के साथ काम करते रहें, तो इस दिशा में बहुत कुछ कार्य कर सकते हैं। परस्पर विचार-विनिमय के लिए आवश्यक है कि समय-समय पर भिन्न-भिन्न रियासतों के कार्यकर्त्ता किसी एक स्थान पर एकत्र हुआ करें। ब्रिटिश भारत के जो कार्यकर्ता देशी राज्यों की परिस्थिति से भलीभांति परिचित हैं, अथवा उसमें दिलचस्पी लेते हैं, उनसे भी विचार-विनिमय करना चाहिए। फ़िलहाल, मध्यभारत के लिए, 'मध्य-भारत हितवर्द्धक सभा' इस दिशा में कुछ कार्य कर रही है; उसको दृढ़ और कार्यक्षम करने की चेष्टा सब रियासतों से होनी चाहिए। ब्रिटिश भारत के समाचारपत्रों का भरपूर सहयोग भी इस दिशा में आवश्यक है। परन्तु अन्ततोगत्वा इन सब कामों की अधिकतर ज़िम्मेदारी हम मध्यभारत-निवासियों पर ही है।

देशी राज्य हमारे हैं, हमारे जाति और देश-भाइयों द्वारा ही उनका शासन हो रहा है। हमें सुधार चाहिएँ, पर हमारे ऐतिहासिक घरानों की श्रेष्ठता क़ायम रखते हुए ही। क्या ही अच्छा हो, यदि हमारे देशी नरेश वर्त्तमान परिस्थिति को समझ जायँ और हमारे रियासती अधिकारीवर्ग स्वर्गीय न्यायमूर्त्ति रानाडे के ध्येय के अनुसार सार्वजनिक जीवन को बढ़ाना अपना कर्त्तव्य समझने लगें! तब तो हमारे मध्यभारत में भी मैसोर जैसे सुसङ्गठित, सुसम्पन्न और सुशिक्षित राज्य दिखाई देने में बहुत काल न लगेगा। अतः परमेश्वर से हमारी यही विनीत प्रार्थना है—"प्रभो! हमारे नरेशों, अधिकारी भाइयों और सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं को बुद्धि दो—ऐसी सुबुद्धि कि, जिसके फलस्वरूप, हम भी आधुनिक संसार में अपना गौरवस्थान ग्रहण कर सकें।"

त्र्यम्बक दामोदर पुस्तके

आश्चर्य

बार बार, उचक उचक, लहरों में सिंधु,
देखता किसे है बड़ी गहरी लगन से।
जाता है सवेरे प्रति दिवस कहाँ समीर,
राजकर लेकर सुरभि का सुमन से?
कौन है? कहाँ है वह? जिसकी उतारते हैं,
रवि शशि तारागण आरती गगन से।
दीप पाके बुद्धि का अँधेरे पथ में मनुष्य,
पूछता नहीं क्यों एक बार निज मन से?

रामनरेश त्रिपाठी

मुझसे सब अच्छे

मुझे सवेरे टहलने की आदत है। प्रातःकाल की शुद्ध हवा मनुष्यों को नया जीवन दे देती है। जब-जब मैं घर पर रहता हूँ, सवेरे का भ्रमण एक प्रकार का नियम-सा हो गया है। एक रोज़, सवेरे टहलने निकला तो वायु की परमार्थ-वृत्ति पर विचार करने लगा।

पश्चिमी हवा चल रही थी। मैंने सोचा, यह वायु कितने परिश्रम के बाद यहाँ पहुँची होगी! कहाँ से चली, कितना उपकार किया, इसका अन्दाज़ कौन लगावे? भारत का पश्चिमी सागर यहाँ से क़रीब ६०० मील की दूरी पर होगा, किन्तु उसके आगे अफ्रीका तक केवल निर्जन समुद्र ही समुद्र है। सम्भवतः उससे भी पश्चिम और पश्चिमतर के प्रदेशों से पहाड़ियों, नदियों, समुद्रों, मनुष्यों, जीव-जन्तुओं को जीवन देती हुई यह पवन यहाँ पहुँची होगी; और अब, यहाँ के लोगों को सुख देती हुई, अपने कर्त्तव्य-पालन के लिए, शांत-भावों से पूर्व-प्रदेशों की ओर अग्रसर होगी।

मैंने सोचा, यह हवा इतनी सेवा करती है, फिर भी अख़बारों में इसकी चर्चा क्यों नहीं आती? हवा से मैंने कहा—"हवा! तुम संसार का इतना उपकार करती हो, किन्तु तुम्हारी सेवा की ख़बर मैं अख़बारों में तो कभी नहीं पढ़ता? तुमको चाहिए कि जो थोड़ी सी बात करो उसको, बढ़ा-चढ़ा के; अख़बारों में छपा दिया करो।" हवा ने कहा—"कौनसा अख़बार अच्छा है?" मैंने कहा—हिन्दी-अँग्रेज़ी के बहुत से अख़बार हैं, सभी में तुम्हारी प्रशंसा छपाया करो।" हवा ने पूछा "क्या सूर्यलोक एवं चन्द्रलोक में भी तुम्हारे यहाँ के अख़बार जाते हैं?" मैंने कहा—"वहाँ तो नहीं जाते।"

हवा ने मेरी मूर्खता पर हँस दिया, और कहा—"तुम पक्के कूपमण्डूक हो, तुम्हारे लिए थोड़े से लोग ही ब्रह्माण्ड हैं; मैंने तो प्राणि-मात्र की सेवा का व्रत लिया हुआ है, और मेरा अख़बार है मेरे ईश्वर का हृदय। वहाँ सब ख़बरें आप से आप पहुँचती हैं, भली-बुरी सभी बातें वहाँ छपती रहती हैं। किसी बात का वहाँ पक्षपात नहीं। किसी के कहने से वहाँ कोई ख़बर नहीं छापी जाती है। सच्ची ख़बरें वहाँ स्वयं छप जाती हैं। मैं तुम्हारी तरह मूर्ख नहीं कि विज्ञापनबाज़ी के दलदल में फँस जाऊँ। निःस्वार्थ-भाव से चुपचाप प्राणि-मात्र की सेवा करना यही मेरा धर्म है, और मेरे स्वामी को भी यही प्रिय है; अच्छा हो कि तुम भी मेरा अनुकरण करो।"

हवा की यह स्पष्टोक्ति मुझे बड़ी बुरी लगी। मैं, और हवा जैसी जड़-वस्तु का अनुकरण करूँ!! मन में आया कि एक व्याख्यान ही झाड़ दूँ! अख़बारों में तो उसका अतिरंजित विवरण छप ही जायगा। किन्तु पवन को तो "लगन लगी प्रभु पावन की", उसे मेरा व्याख्यान सुनने की फ़ुरसत कहाँ? वह तो "कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्" गाती हुई शीघ्रता से चल निकली।

तब, मैंने अपना सारा क्रोध एक ऊँट पर ढाल दिया। बात यह हुई कि रास्ते में एक ऊँट महाशय अपनी थकान उतारने के लिए हाथ-पाँव पीट-पीट कर धूल उछाल रहे थे। मैंने गर्द से तंग आकर, क्रोध में, ऊँट से कहा—"तुम बड़े गँवार हो; पशु तो हो ही, किन्तु तुम्हें तमीज भी बिलकुल नहीं है। हम लोग जिन रास्तों से होकर निकलते हैं, उनमें ग़रीब मनुष्य भी किनारे खड़े होकर झुक के हमें प्रणाम किया करते हैं। हम जब-जब टहलने जाते हैं तब-तब हमारे लट्ठधारी नौकर रास्ते में चलनेवालों का नाकों-दम कर देते हैं। तुमने हमें झुक कर प्रणाम करना तो

दूर रहा उलटा धूल उछालना शुरू कर दिया; इसीसे मालूम होता है कि तुम गँवार भी हो और धृष्ट भी।"

इसपर ऊँट ने अपना व्यायाम तो बंद कर दिया, पर मेरी बात को सुनकर खिलखिला कर हँस पड़ा। वह बोला—"तुम मूर्ख तो हो ही, किन्तु अभिमानी भी हो। अभी तो तुम पवन को उपदेश देने की धृष्टता कर रहे थे। पवन तो आदर्श सेवक है, ईश्वर-भक्त है, उसने तुम्हें कुछ नहीं कहा; किंतु मुझे उपदेश देने की धृष्टता न करना। बस, यह समझ लो कि मुझसे तुम बहुत गये-बीते हो।" मैंने कहा—"ऊँट, तू पशु होकर मनुष्य को उपदेश देने चला है! मुझे तेरी बुद्धि पर तरस आता है।" ऊँट की मुखाकृति गंभीर हो उठी, आँखों में तेज चमकने लगा; अपने नथनों को फटकार कर उसने कहा—"क्या केवल मनुष्य-देह मिलने ही से मनुष्य अपने को मनुष्य कह देने का अधिकारी हो जाता है? क्या औरंगज़ेब, नादिरशाह, महमूद गज़नवी, हत्यारा अब्दुर्रशीद और ऐसे-ऐसे अनेक पापी अपने को मनुष्य कहने के अधिकारी हो सकते हैं? और उन्हें मनुष्य-देह मिल गई, इसी बित्ते पर क्या वे अपने को हम पशुओं से ऊँचा समझ सकते हैं? यदि तुम भी ऐसा मानते हो, तो तुम्हारी बुद्धि को शतवार धिक्कार है!"

मैं कुछ ठण्डा पड़ गया। मैंने कहा—"भाई ऊँट, उन पापी मनुष्यों की बात न करो। वे तो नर-राक्षस थे। किंतु, मैं तो ऐसा नहीं हूँ। मैं तो अपने लिए कह सकता हूँ कि, अपनी समझ में, मैं तुमसे कहीं अच्छा हूँ।" ऊँट फिर हँस पड़ा। कहने लगा—"अच्छा, ज़रा बता तो दो, तुममें मुझसे कौनसी अच्छी बात है?"

मैं सोचने लगा, क्या बताऊँ? आखिर धन के अलावा मुझमें और कौनसी अच्छी बात है, जिसका मैं गर्व कर सकूँ? अत्यंत साहस करके मैंने दबी ज़बान से कहा—"अच्छा तो देखो, तुम जानते हो, मैं त्याग से कितना प्रेम करता हूँ, सादगी से रहता हूँ, खादी पहनता हूँ; यह क्या कुछ कम है?" ऊँट ने गर्व के साथ कहा—"इसमें गर्व करने की क्या बात है? मुझे देखो, मैं तो कुछ भी नहीं पहनता!" मैंने कहा—"और सुनो; मैं भोजन भी सादा खाता हूँ, मिर्च-मसाले नहीं खाता।" ऊँटने कहा—"अच्छा त्याग किया; मुझे तो देखो कि केवल सूखी पत्तियाँ ही चबा कर रह जाता हूँ।" मैंने कहा—"मैंने तो गृहस्थाश्रम का भी त्याग कर दिया है।" ऊँट ने कहा-"क्यों इतना अभिमान करते हो? मैंने तो गृहस्थाश्रम में प्रवेश ही नहीं किया सो, मैं तो बाल-ब्रह्मचारी हूँ।" मैंने कहा—"मुझमें ईर्षा-द्वेष अधिक नहीं, झूठ बहुत कम बोलता हूँ—सो भी अनजान में, रोष भी कम आता है।" ऊँट ने कहा—"इसमें कौनसी बड़ाई की बात है? मुझमें न ईर्षा है, न द्वेष, और न क्रोध; झूठ तो जीवन में कभी बोला ही नहीं।"

मैंने कहा—"मुझमें सेवा-वृत्ति है।"

ऊँट ने कहा—"इसका नमूना तो हम रोज़ देखते हैं। कल एक पीला बछड़ा रो रहा था; क्योंकि उसकी माँ का दूध नित्य-प्रति तुम पी लेते हो। बछड़ा तृण खाकर जीवन-निर्वाह करता है। उस दिन, सुनते हैं तुमने एक घोड़े को भी दौड़ कराकर मार डाला! शहर के तमाम घोड़ों में इसी बात की चर्चा थी। उनकी एक विराट सभा हुई थी, उसमें मृतक के प्रति सहानु-भूति और तुम्हारे प्रति घृणासूचक प्रस्ताव भी पास किये गये थे। न मालूम इस प्रकार तुमने कितने ऊँटों, घोड़ों, और बैलों को कष्ट दिया है! कितने पशुओं को लङ्गड़ा किया है! कितनों को तुम्हारी मोटर के धक्के से गिराया है! अच्छा सेवा का दम भरने चले हो! मुझे देखो, न कपड़े पहनता हूँ और न जिह्वा-स्वाद से नाम-मात्र भी सम्बन्ध है! केवल सूखे तृण खाता हूँ

फिर भी बेंत, कोड़े और ठोकरें खाता हुआ नम्रता-पूर्वक तुम लोगों की सेवा करता हूँ। इसीको सेवा-व्रत कहते हैं। तुम लोगों से सेवा कैसे सम्भव है? पहनने के लिए तुम्हें क़ीमती वस्त्र चाहिएँ, खाने के लिए सुस्वादु भोजन, सेवा के लिए नौकर, रहने के लिए महल, टहलने के लिए अच्छे वाहन या मोटर; मुसाफ़री करते हो तो मनों सामान एवं सुख की सामग्रियां साथ में चलती हैं। तुम्हारे लिए और बोझा ढोना पड़ता है हमको। अकाल पड़ता है तो हम लोग भूखों मरते हैं, पीने को पानी नहीं मिलता, किंतु तुम्हारे बाग़ीचों की फुलवारी को सरसब्ज़ रखने में ही ग्राम के अनेक बैलों की शांति नष्ट हो जाती है। हम लोग प्रायः ब्रह्मचारी रहते हैं; किंतु, सुनते हैं, तुम्हारा मनुष्य-समाज इस विषय में बड़ा पतित है। शर्म की बात है कि इसपर भी तुम अपने को हमसे श्रेष्ठ समझो!"

ऊँट की बात मेरे हृदय में चुभ गई। मुझे ग्लानि होने लगी। अन्तरात्मा कहने लगा—"मूर्ख! तू ऊँट से भी गया-बीता है।" पास में खड़े हुए करीर के वृक्ष ने सिर हिला कर कहा—"ऊँट सच कहता है।" तब, मैंने कहा—"प्रभो! मुझे ऊँट जितना आत्म-बल तो दे दो।"

सहसा आकाश में बिजली चमकी। मेघ गर्जा। सुननेवालों ने सुना। कहनेवालों ने कहाः—

"मो सम कौन कुटिल खल कामी?
जेहि तन दियो ताहि बिसरायो,
ऐसो निमकहरामी।
मो सम कौन कुटिल खल कामी?"

किसी ने कहा, कहनेवाला और सुननेवाला दोनों एक हैं। किसी ने कहा, यह अंतर्नाद है। मैंने चिल्ला कर कहा—"मुझसे सब अच्छे हैं।"

घनश्यामदास बिड़ला

———

किस बात की कसर है?

देश की वर्त्तमान अवस्था से किसी को सन्तोष नहीं है। दस बरस पहले से आज जीवन और बल देश में बहुत बढ़-चढ़ गया है; पर वह ठीक उन कामों और बातों में नहीं लग रहा है, जिससे इसका दुर्दिन जल्दी दूर हो—स्वराज्य दौड़ता हुआ चला आवे। वह जीवन और बल आज, मेरी समझ के अनुसार, देश को ऊपर उठाने और आगे बढ़ाने में उतना नहीं काम आरहा है, जितना नीचे गिराने और पीछे हटाने में आरहा है। इसमें कोई शक नहीं कि यह जो कुछ हो रहा है भले के लिए हो रहा है, और एक न एक दिन हम उस भलाई को स्पष्ट रूप से देख भी लेंगे; पर एक बेचैन हृदय, जिसे पराधीनता काँटे की तरह चुभ रही है, जिसे स्वराज्य के बिना कुछ अच्छा नहीं लगता, इस स्थिति से संतोष कैसे पा सकता है? जब देश में कोई काम उत्साह, दृढ़ता, लगन और गम्भीरता के साथ होता हुआ नहीं दिखाई देता, जब मौक़ा देखकर रंग बदलने की नीति किसी काम को जड़ नहीं पकड़ने देती, जब कि भाइयों के अन्दर—घर में—ख़ून-ख़च्चर एक रोजमर्रा की बात होती जा रही हो, तब यह व्याकुल हृदय, अधीरता और आतुरता में, फट पड़ने लगे तो कौन आश्चर्य है?

इस तूफ़ान और अराजकता के युग में धन्य हैं वे लोग, जो देश की असली कमज़ोरियों को दूर करने में चुपचाप अपने को खपा रहे हैं। स्वराज्य-संग्राम में विजय प्राप्त करने की दृष्टि से जब हम अपने देश और समाज की दशा पर विचार करते हैं, तो हमें अनेक कमियां और ख़ामियां नज़र आती हैं। जबतक काफ़ी मात्रा में हम उन्हें दूर न कर सकेंगे, असली स्वरूप न समझ सकेंगे, तबतक हमारे बल का पूरा-पूरा उपयोग न होगा। हमारी धर्म-भावनायें

अभी सदोष हैं, हमारी समाज-व्यवस्था विशृंखल और सामाजिक जीवन छिन्न-भिन्न है, हमारी राजनैतिक कार्य-प्रणाली परमुखापेक्षी है—इनमें सुधार की भारी आवश्यकता हमारे सामने है। विधवायें अलग अपनी आहों से हमें शाप दे रही हैं, अछूत अलग अपनी सात करोड़ साँसों से दिन-रात हमें कोस रहे हैं, आलस्य और अकर्मण्यता अलग ही हमारे अनमोल समय को बरबाद कर रहे हैं—इनका इलाज होना जरूरी है। इन दिशाओं में देश के सामने अभी काम का हिमालय खड़ा हुआ है। लोगों की भ्रमपूर्ण धारणाओं और कुकल्पनाओं से लड़कर उन्हें सच्चे और ठोस काम की ओर प्रेरित करना है। सरकार से लड़ाई लड़ना रोक कर फ़िलहाल अपने ही समाज से–उसकी बुराइयों से–हमें लड़ लेने की आवश्यकता उत्पन्न होगई है।

पर इसके लिए कमी किस बात की है ? मेरी बुद्धि जहाँ तक दौड़ती है, इन ५-६ बरसों के सार्वजनिक जीवन का अनुभव जहाँ तक मुझे ले जाता है, मुझे तो यही मालूम पड़ता है कि यह काम धन के अभाव में उतना नहीं रुक रहा है जितना योग्य, प्रामाणिक, परिश्रमी और लगन वाले कार्यकर्त्ताओं की कमी से रुक रहा है। दूसरे शब्दों में यों कहें कि त्याग और तपोमय जीवन व्यतीत करने वाले, विद्या और तपस्या दोनों का मेल अपने जीवन में मिलाने वाले देश-सेवकों की कमी है। व्याख्यान देने वाले, सनसनी फैलाने वाले, मान और बड़प्पन चाहने वाले कार्यकर्त्ता जितने मिलते हैं उतने धीरज, दृढ़ता और लगन के साथ किसी एक काम में अपने को खपा देने का निश्चय करने वाले, साधु-चरित और सत्याचरणी कार्यकर्त्ता कम मिलते हैं। चाहे खादी और खादी के द्वारा जनता का संगठन हो, चाहे अछूतोद्धार हो, चाहे अनाथों और विधवाओं की समस्या हो, चाहे शारीरिक ह्रास का प्रश्न हो, चाहे स्त्री-सुधार और आत्म-रक्षा का विषय हो, जबतक ऐसे देश-सेवक देश में निर्माण नहीं होते जो त्यागी और तपस्वी हों, ज्ञानी और शूरवीर हों, विवेकवान् और मितव्ययी हों, छोटे से छोटे काम को बड़ी से बड़ी सेवा समझते हों, देश की परवशता पर जिनका हृदय दिन-रात आँसू बहाता हो, तबतक देश की दशा जल्दी न सुधर सकेगी। काम तभी अच्छा होता है, जब काम करने वाले अच्छे हों। अच्छे काम करने वालों को धन की कमी कभी नहीं रहती। देश को इस समय यदि सबसे अधिक किसी बात की आवश्यकता है तो वह है चुपचाप आत्मार्पण कर देने वाले त्यागी कार्यकर्त्ताओं की। इसकी बड़ी कमी इस समय देश में मुझे दिखाई दे रही है। लोग कहते हैं, पैसा कम है; मैं कहता हूँ, अच्छे कार्यकर्त्ता कम हैं। कितने ही नवयुवक काम और रोटी की तलाश में घर-घर घूमते हैं; पर वे अपने को देश–सेवा के योग्य नहीं बनाते। जिन्होंने सेवा का व्रत लिया है वे भी सच्चे सेवक की योग्यता बढ़ाने का उतना उद्योग नहीं करते, जितना सेवा के फल की ओर दृष्टि लगाये रहते हैं। योग्यता और गुण की क़द्र सब जगह होती है। अतएव कार्यकर्त्ताओं को चाहिए कि अपनी योग्यता और गुण बढ़ावें और नवयुवकों को चाहिए कि वे देश–सेवा के योग्य अपने को बनाने का दिन-रात यत्न करें। क्या अच्छा हो यदि 'त्याग-भूमि' ऐसे देश-सेवकों की वृद्धि में अपनी शक्ति लगावे !

जमनालाल बजाज

"पराजय क्या है ? सिर्फ़ शिक्षा, किसी उत्तमतर द[illegible] की ओर प्रथम पदार्पण-मात्र।" —डब्लू० फ़िलि[illegible]

"वीरत्व का वास्तविक अर्थ 'पुरुषार्थ' है, और इस[illegible] उन सब गुणों का समावेश है, जो मनुष्योचित हैं—जिन[illegible] कारण मनुष्य वास्तविक मनुष्य है।"—प्रो० बद्रीनाथ [illegible]

शहरों में दुधार पशु

भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। ७५ प्रतिशतक भारत-वासी खेती पर ही निर्वाह करते हैं। भारतवर्ष में जितना माल पैदा होता है, उसका ९ प्रतिशतक ज़मीन में से ही उपजता है। फिर भारतवर्ष केवल अपने पहनने-खाने लायक ही सामान पैदा नहीं करता, प्रत्युत अन्य उद्योग-धन्धों तथा बाहर भेजने के लिए भी बहुतसा कच्चा माल पैदा करता है।

कृषि के लिए पशु आधार-स्तंभ हैं; इसलिए, यदि खेती को उन्नत करना है तो, हमें पहले अपने पशुओं की नस्ल को उन्नत कर, उनकी कार्य-शक्ति को बढ़ाना चाहिए। पशुओं की उन्नति के बिना कृषि की उन्नति भी असंभव है। शायद कई सालों के बाद बड़े-बड़े वैज्ञानिक बैलों की जगह यन्त्रों से काम लेने लगें, हल के स्थान पर ट्रैक्टर का प्रयोग करने लगें, मोट का काम बड़े-बड़े पम्पों से होने लगे, और सामान लाने ले जाने (Transport) का कार्य मोटरों और रेलों से करने लगें; तो भी वे अमृतमय दूध पैदा करने वाली मशीनें कहाँ से लावेंगे ? दूध बच्चे से लेकर बूढ़े तक सबके लिए समान रूप से उपयोगी और अत्यन्त आवश्यक है। यदि कभी भारतवर्ष में उपर्युक्त वैज्ञानिक यन्त्रों का प्रचलन संभव भी हुआ, तो भी उसमें अभी सौ-दोसौ साल का समय अपेक्षित है। इस बीच, अभी तो खेती के लिए बैल और शाकाहारी हिन्दुओं के लिए गाय अत्यन्त आवश्यक हैं।

परन्तु, अफ़सोस, आज भारतवर्ष में गायों की अवस्था बड़ी ख़राब है। हमारा गोधन नष्टप्राय हो चुका है। हमारे यहाँ गायों की संख्या बहुत कम नहीं है, परन्तु वे इतनी कमज़ोर और इतना कम दूध देने वाली हैं कि उनसे हम अपनी आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर सकते। हमारे देश के पशुओं की नस्ल दिन-दिन ख़राब होती जा रही है और अच्छी नस्ल के मवेशी कम होते जाते हैं। कुछ सरकारी फ़ार्म तथा थोड़ी सी स्वतन्त्र संस्थाओं को छोड़कर मवेशियों की नस्ल को वैज्ञानिक रीति से सुधारने का प्रयत्न भारत में कहीं नहीं किया जा रहा है। इसके विरुद्ध दूध देने वाले उत्तम पशुओं का प्रतिवर्ष बहुत बड़ी संख्या में वध किया जाता है, और यही दूध देने वाले जानवरों के ह्रास का सबसे बड़ा कारण है। उदहारण के लिए, केवल बम्बई शहर में जितना वध होता है वह नीचे के कोष्टक में देखिए—

स्थान	१९२४–२५		१९२५–२६		
	गाय	भैंस	गाय	भैंस	
बांद्रा	३०६८५	१०४१६	३४५४६	११४२०	यह संख्या सिर्फ़ बड़े पशुओं की है। इसके अतिरिक्त २००००के लगभग छोटे बच्चे भोजन तथा पालन के अभाव में प्रतिवर्ष मर जाते हैं।
कुर्ला	......	११२४८	......	८४४२	
कुल	३०६८५	२१६६४	३४५४६	१९८६२	

इससे पाठक कुछ अनुमान कर सकेंगे कि हमारे देश में प्रति वर्ष कितने पशु मारे जाते होंगे। हिसार जैसे स्वास्थ्यप्रद स्थानों में पैदा हुए, वहाँ के किसानों द्वारा अपने बच्चों की तरह लाड़-प्यार से पाले गये जानवर जल्दी ही पूर्णावस्था को प्राप्त होकर मर जाते हैं। बड़े-बड़े शहरों के व्यापारी उन किसानों को कुछ रुपयों का लोभ देकर उनके प्राणप्रिय पशुओं को ले लेते हैं। बेचारे किसान क्या जानें कि उनके प्राणों से प्यारे उन पशुओं की गर्दनों पर कुछ ही दिनों में क्रूर कसाई की चमकती हुई छुरी रक्खी जावेगी ! वे खुली हवा में रहने वाले मालगाड़ी के बन्द डब्बों में भरे जाकर बम्बई जैसे बड़े दुर्गन्धपूर्ण वायु-मण्डल में लाये जाते हैं। व्यापारी अपने पशुओं का दूध अधिक दिखाने के लिए कितनी ही चालें चलता है। फिर वह जानवर शहर के ग्वाले के हाथ में जाता है। उसे सबसे पहले यही चिन्ता होती है कि वह किस तरह उन दुधमुँहे बच्चों को गायों से दूर करे, जिससे एक बूंद भी दूध बच्चे के पेट में न जावे। जो लोग इन असहाय, निर्बल बच्चों की हालत देखना चाहें, जिनपर हमारे राष्ट्र का भविष्य अवलम्बित है, वे किसी एक बड़े तबेले में जाकर उनकी अवस्था देखें। सिर्फ़ मरे हुए ही नहीं जीवित बच्चे भी कूड़ा-कर्कट के ढेर में फैंके हुए मिलेंगे; वे भी दो-चार दिन में घास-पानी न मिलने से मर जाते

हैं। इसमें कोई अत्युक्ति नहीं, यदि यह कहा जावे, कि बम्बई में आने वाले सब बच्चे शीघ्र ही मृत्यु के मुख में चले जाते हैं। तदनन्तर वह पशु एक बड़े तबेले में रक्खा जाता है, जहाँ पर न तो खुली हवा में घूमने और चरने का सुभीता है और न ही रहने को काफ़ी जगह होती है। वह जगह बहुत छोटी और गन्दी होती है। इन सब बातों का परिणाम यह होता है कि जानवर की तन्दुरुस्ती बहुत ही गिर जाती है और वह फिर समय पर बच्चा पैदा करने तथा दूध देने के योग्य नहीं रहता। जब तक पशु दूध देते रहते हैं, उन्हें कुछ अच्छा भोजन भी मिलता रहता है; परन्तु ज्यों ही उनका दूध निकलना बन्द हुआ, उनका वह थोड़ा-बहुत भोजन भी चला जाता है। क्रूर दुग्ध-व्यवसायी गाय का दूध निकालने के लिए भयंकर से भयंकर उपायों को भी काम में लाने से नहीं हिचकते। 'फूका' का नाम ही इन उपायों की निर्दयता बताने के लिए काफ़ी है। इसी तरह सांडों की कमी, गर्भावस्था में भोजन आदि की कुव्यवस्था आदि कारणों से गाय की प्रजनन शक्ति नष्ट हो जाती है; यदि किसी गाय के बच्चा हो भी, तो वह बहुत कमज़ोर और कृश होता है। यह अवस्था इतनी ख़राब हो गई है कि इस समय बम्बई में गर्भिणी गाय का मिलना तक कठिन है। इस तरह बम्बई जैसे बड़े शहरों में गाय दूसरी बार दूध देने तक नहीं पाती, वह एक बार ही दूध देकर निःशक्त हो जाती है, और उसके ऊपर दुःखों का पहाड़ टूट पड़ता है। उसका वही स्वामी, जिसे उसने अपना सारा दूध देकर इतने समय तक लाभ पहुँचाया, उसे भार-रूप मानने लगता है। वह उसे बेच कर दूसरा पशु लाने का निश्चय करता है। परन्तु उस निस्सार, दुर्बल तथा दूध देने में असमर्थ पशु को कसाई के सिवा कौन लेने लगा? दूसरा ग्राहक न मिलने के कारण उसीके हाथ पशु को बेचना पड़ता है। तब वह पशु बम्बई के प्रसिद्ध कसाईख़ाने बांद्रा या कुर्ला को भेज दिया जाता है। जिस पशु ने अबतक मनुष्य-जाति का भरसक उपकार किया, उन उपकारों का बदला हम सभ्य कहलाने वाले मनुष्य किस तरह देते हैं, यह लिखने की आवश्यकता नहीं और न ही मेरी लेखनी में इतना सामर्थ्य है कि उस क्रूर कृत्य का वर्णन कर सके!

ज़रा विचार करने से पता चलेगा कि इतनी अधिक संख्या में गोवध होने का कारण केवल यही है कि बम्बई-निवासियों को दूध चाहिए। दूध की अधिक माँग के कारण ही दुग्ध-व्यवसायी पशुओं से इतना क्रूर बर्ताव करते हैं, जिससे उनकी अवस्था बहुत बुरी होजाती है। इसलिए जब-तक दुग्धालयों की कमी पूरी न की जाय, तबतक दूसरे हज़ारों उपाय भी इस वध को रोकने में असफल होंगे।

बम्बई की दूध की सारी आवश्यकता शहर में अथवा शहर के आस-पास रक्खी हुई गायों तथा भैंसों से पूरी हो जाती है। यह पता चला है कि सिर्फ़ १७ फ़ीसदी के लगभग दूध बम्बई में बाहर से आता है। शहर के अन्दर लगभग २१००० दूध देने वाले पशु—१८००० भैंसें और ३००० गायें—हैं। गायों से भैंसों की संख्या छःगुनी है, अर्थात् दूध देने के विषय में भैंस गाय से बहुत अधिक फ़ायदेमन्द है। शहर में जो पशु रक्खे जाते हैं, वे या तो विशिष्ट व्यक्तियों के होते हैं, या दुग्ध-व्यवसायी ग्वालों के। अधिकतर पशु जो बम्बई में आते हैं, वे चुन-चुन कर अच्छे ही लाये जाते हैं। केवल वही पशु आते हैं, जो बहुत दूध देते हैं। बम्बई जैसे बड़े शहर में जहाँ पर पशु रखने में बहुत ख़र्च पड़ता है, ऐसे अधिक दूध देने वाले पशु ही पाले जा सकते हैं। जगह की बहुत तंगी होती है, भोजन भी कृत्रिम और महँगा होता है; इसलिए, दूध बन्द कर देने वाले पशुओं को रख कर उनको पालन करना कठिन ही नहीं असम्भव हो जाता है। सांड और छोटे-छोटे बच्चे जो ग्वाले को सीधा लाभ नहीं पहुँचा सकते, ग्वाला उन्हें रखने में असमर्थ होता है और उसका स्वाभाविक परिणाम होता है गौओं का ह्रास। ज़मीन न होने के कारण उन्हें ताज़ा चारा भी नहीं दिया जा सकता। पशुशाला भी बहुत तंग होने के कारण स्वास्थ्यप्रद नहीं होती। इसका स्पष्ट परिणाम यह होता है कि वे कमज़ोर, कृश और अस्वस्थ हो जाते हैं और जिसने दूध देना बन्द किया कि दूर किया गया। यही कारण है कि कसाईख़ानों में बच्चों की तादाद इस क़दर ज़्यादा है।

इस गोवध को दूर करने के लिए अबतक बहुत से उपाय निकाले और काम में लाये गये; परन्तु सन्तोषजनक परिणाम किसी भी उपाय से नहीं निकला। कई साल पहले

कुछ दयालु सज्जनों ने इस काम को अपने हाथ में लेकर कसाईख़ानों से पशुओं को ख़रीदना शुरू किया था। परिणाम यह हुआ कि कसाइयों ने पशुओं की क़ीमत बढ़ा दी। तब उन कार्य-कर्ताओं ने यह शिक्षा पाई कि पशुओं को कसाइयों की अपेक्षा ग्वालों से ही ख़रीदना अधिक अच्छा होगा।

अब उनके सामने यह सवाल पैदा हुआ कि इन पशुओं का क्या करना चाहिए। उन्हें बम्बई में रखने से ख़र्च अधिक होता और थोड़ासा काम करने में ही उनका सारा द्रव्य ख़र्च हो जाता। किसानों के हाथ बेचना भी कठिन था; क्योंकि बिना दूध के ख़रीदने को कौन तैयार हो? तब कुछ पशु किसानों के पास थोड़ा-सा मासिक व्यय देकर रक्खे गये। परन्तु किसानों की उपेक्षा और देख-भाल की कमी से इस कार्य में भी पूरी कामयाबी न हुई। अनुभव से यह सिद्ध हो चुका है कि यदि बम्बई के ग्वालों से चुन-चुन कर अच्छे-अच्छे जानवर ख़रीदे जावें और उन्हें स्वास्थ्यप्रद स्थानों में भेज दिया जाय, तो थोड़े ही ख़र्च से वे पुष्ट तथा दूध देने वाले किये जाकर फिर से बम्बई उन पशुओं की जगह भेजे जा सकते हैं, जो दूध देने में असमर्थ और कमज़ोर हो गये हों। इस तरह अच्छा दूध देने वाले पशुओं का वध किसी हद तक रोका जा सकता है।

यद्यपि यह तरीक़ा लाभदायक है, पर इसमें त्रुटियां बहुत हैं। पशु बहुत दिन तक निठल्ले रहते हैं, इसलिए उनके पालने का ख़र्च बढ़ जाता है। इसी तरह बड़े शहरों में खाद का, जिससे बहुत आय हो सकती है, उपयोग नहीं किया जाता। इन सब बातों का विचार करने से यही लाभदायक मालूम होता है कि पशुओं को देहात में रक्खा जावे। उन्हें वहाँ रखने से निम्न लाभ होंगे:—

१—वहाँ चारा थोड़े ख़र्च में तैयार किया जा सकता है; वे जंगल में स्वयं भी चरने के लिए जा सकते हैं।

२—वहाँ खुली हवा और शुद्ध जल से उनका स्वास्थ्य बढ़ाया जा सकता है, जिससे उनकी दूध देने की शक्ति बढ़ेगी।

३—उनके गोबर को खेती में लगाकर खेती से आय बढ़ाई जा सकती है।

४—रहने की जगह भी अधिक खुली और स्वास्थ्यप्रद होगी।

इसके अतिरिक्त हमें वहाँ कुछ और बातों पर भी ख़याल रखना चाहिए—(१) बीमारी फैलने के समय उसे रोकने का प्रयत्न किया जावे। (२) वैज्ञानिक रीति से उनकी नस्ल में सुधार किया जाय। (३) बच्चों की परवरिश करने की ओर विशेष ध्यान दिया जाय। इस तरह बहुत थोड़े ख़र्च में बड़े-बड़े दुग्धालय खोल कर जहाँ एक ओर हम नगर-निवासियों को उत्तम और स्वास्थ्यप्रद दूध दे सकेंगे, वहाँ दूसरी ओर इन उपयोगी जानवरों के वध को भी रोक सकेंगे। हाँ, जिन गाँवों में ऐसे दुग्धालय खोले जायँ, वे शहरों से बहुत दूर न हों और दूध के शहर में लाने का विशेष प्रबन्ध किया जावे।

यद्यपि यह तरीक़ा अच्छा है, तथापि आज इसे काम में लाना सहज नहीं है। बड़े-बड़े तबेलों को शहर के बाहर ले जाना, दूध को शहर में लाने का प्रबन्ध करना, तबेलों की गाँवों में सुव्यवस्था करना, पशुओं के लिए चारे का प्रबन्ध करना, आदि ऐसे काम नहीं हैं, जो कोई अकेला व्यक्ति कर सके। इन्हें तो पिञ्जरापोल प्रभृति संस्थायें ही कर सकती हैं, जिनके पास सारे साधन विद्यमान हों।

बहुत से आदमी प्रेम-वश अपने पशुओं को बेचना नहीं चाहते। परन्तु जब वे दूध देने में असमर्थ होजाते हैं, तब उन्हें रखना अपनी शक्ति से बाहर होने के कारण, लाचार होकर बेच देते हैं। अतः यदि कोई संस्था बड़े-बड़े चरागाहों तथा पशुओं के लिए अन्य आवश्यक वस्तुओं का प्रबन्ध कर ऐसे पशुओं को नियत फ़ीस लेकर रक्खे और जब वे फिर ब्याने के क़रीब हों तब उन्हें मालिकों के पास भेज दे, तो बहुत से पशुओं के प्राण बचाये जा सकते हैं। हमारा ख़याल है कि इस प्रबन्ध का लाभ उठाने वाले बहुत व्यक्ति मिलेंगे। बम्बई के आसपास ऐसे बहुत से चरागाह हैं भी, जिनके स्वामी पशुओं को मासिक फ़ीस पर रखना अधिक पसन्द करेंगे, बनिस्बत इसके कि वे घास काट-काट कर शहरों में लेजावें। ऐसे बहुत से अच्छे-अच्छे पशु ख़रीद कर चरागाहों में रक्खे जायें और जब वे दूसरी बार ब्याने लायक होजावें, तो उन्हें बाज़ार में लाकर बेच दिया जाय। इससे देहात से नये जानवरों का आना बहुत हद तक बन्द हो जायगा।

बड़े तबेलों के पास उक्त संस्था अच्छे-अच्छे सांड रक्खे और लोगों से कुछ फ़ीस लेकर उन्हें उनका उपयोग करने दे। इससे सांडों के अभाव के कारण होने वाली नस्ल की अवनति को रोका जा सकता है। बूढ़े और बीमार जानवर दूर देहात में भेज दिये जावें, जहाँ कि उनको पालने का ख़र्च बहुत ही थोड़ा होगा।

संस्था के लिए कार्यकर्त्ताओं का मिलना कठिन नहीं है। ऐसे बहुत से सुशिक्षित तरुण हैं, जो दूध का काम स्वयं करना चाहते हैं परन्तु द्रव्य व दूसरी सुविधायें न होने के कारण नहीं कर सकते। संस्थाओं को चाहिए कि वे देहात में तबेले, चरागाह तथा दूसरे आवश्यक कार्य रखकर इन युवकों को एकत्र कर सहकारी संस्थायें बनावें, जिनमें वे सारा काम करें और संस्था के आय-व्यय का हिसाब रक्खें। इससे ग़रीबों को सस्ता दूध और उत्साही युवकों को अच्छा काम मिलेगा।

यदि ऐसी बहुतसी संस्थायें बनाई जावें, तो कसाई-ख़ानों में जाने वाले पशुओं का जीवन बच जायगा और उनकी नस्ल में भी सुधार होगा। थोड़े ही समय में गोरक्षक कृष्ण भगवान् की भूमि भारतवर्ष में दूध बहुत सस्ता और पौष्टिक मिलने लगेगा और आज भूखों मरने वाले निर्धन भारतवासी तन्दुरुस्त और सुसम्पन्न होजावेंगे। कुछ सुशिक्षित और धनाढ्य लोगों के कठोर एवं निरन्तर परिश्रम से यह सुख-स्वप्न सहज ही सफल हो सकता है। और हमारा ख़याल है कि दयालु, भावनामय और गोभक्त लोगों से भरे हुए भारतवर्ष में ऐसे सज्जनों की कमी भी न होगी, जो भारत के गोधन को उन्नत करना अपना आवश्यक कर्म समझ कर भारत को फिर गो-पालन में अग्रगण्य करने में हाथ बढ़ावेंगे। भगवान हमारी आशा पूरी करें!

यशवन्त महादेव पारनेरकर

———

बंबई प्रांत-भर (बंबई व सिंध) के एक वर्ष (सन् १९१५-१६) के गाय-भैंसों के वध के अंक इस प्रकार हैं:—

गाय—२६५५०९३
भैंस—१३३५२५४
३९९०३४७

देशी व्यापारी और लिमिटेड कम्पनियां

हिन्दुस्थान में बहुत कम व्यापारी ऐसे हैं, जो समय के अनुसार अपनी व्यापारिक पद्धति में परिवर्त्तन करते हैं। इस प्रतिद्वंद्विता के ज़माने में छोटे-छोटे व्यापारी, बड़ी-बड़ी कम्पनियों के मुक़ाबले में, नहीं टिक सकते। नये-नये व्यापारों को हथियाना तो दूर की बात है; वे काम भी, जो उनके हाथ में पीढ़ियों से थे, अब निकलते जा रहे हैं। भारत में उत्पन्न कच्चा माल—ग़ल्ला, कपास आदि—ख़रीदने के लिए विदेशी व्यापारी छोटे-छोटे गाँवों तक में पहुँचने लगे हैं; विदेशी पक्का माल भी सीधे ग्राहकों के पास किस प्रकार पहुँचाया जाय, इसके लिए भी विदेशी व्यापारी उपाय सोचने लगे हैं। सम्भव है, धीरे-धीरे वे इस काम में भी सफलता प्राप्त कर लें। एक शहर से दूसरे शहर में रुपये भेजने का, हुण्डी-चिट्ठी का, काम जो देशी व्यापारियों द्वारा होता था, वह तो बैंकों ने ले ही लिया है। किसानों और कारीगरों को रुपया उधार देने के लिए कोआपरेटिव क्रेडिट बैंकें तथा लैण्ड मारगेज बैंकें जैसे-जैसे खुलती जायँगी, वैसे-वैसे व्याज की कमाई वाले देशी व्यापारियों को अपना कारोबार समेट लेना पड़ेगा। छोटे-छोटे दूकानदार जो साधारण ज़रूरियात की चीज़ें बेचने वाले तेजाळूणी करते हैं, उनकी आवश्यकता भी न रह जायगी, जब कि स्थान-स्थान पर कोआपरेटिव स्टोर खुलने लग जायँगे। देश की जनता को कम व्याज पर कोआपरेटिव बैंकों द्वारा रुपया मिल जाय, यह अच्छा ही है। पर, विचारणीय विषय यह है कि, ऐसा समय उपस्थित होने से छोटे-बड़े देशी व्यापारियों के सामने कैसी समस्या उपस्थित हो जायगी? ज़माने को देखते तो यही मालूम होता

है कि, यदि देशी व्यापारी अब भी नहीं चेतेंगे तो, जन-साधारण को उन सुधारों से लाभ होगा या नहीं, सो तो देखा जायगा; पर भारत के छोटे-मोटे सभी काम उनके हाथ से जरूर चले जायँगे।

भारतवर्ष के प्रायः सभी बड़े-बड़े व्यापार विदेशियों के हाथ में हैं। वे लोग मिल-जुल कर, लाखों ही नहीं करोड़ों-अरबों की पूँजी लगा कर, कम्पनियाँ बनाकर, व्यापार करते हैं। ऐसा करने से उन्हें जो सुविधा होती है वह एक व्यक्ति को, चाहे उसके पास कितनी ही पूँजी क्यों न हो, नहीं हो सकती। कुछ देशी व्यापारियों ने भी उनकी इस पद्धति का अनुकरण कर लाभ उठाया है। पर, देशी कम्पनियों की संख्या विदेशी कम्पनियों से बहुत कम है। देशी व्यापारी साहसी भी हैं, परिश्रमी भी हैं; पर, समयानुसार व्यापारिक पद्धति में परिवर्त्तन न करने से, विदेशी व्यापारियों के मुक़ाबले में टिक नहीं सकते। मिल-जुल कर व्यापार न करने से कई कठिनाइयां सामने आती हैं; किसी के पास पूँजी है तो काम करने की योग्यता अथवा शक्ति नहीं, कोई काम कर सकने वाला है तो उसके पास पूँजी नहीं, कुछ समय के लिए दोनों बातों का मेल भी होजाय तो वह उस विशाल संगठित रूप में नहीं। कम पूँजी वाले असंगठित व्यापारी बड़ी पूँजी वाली संगठित कम्पनियों की बराबरी नहीं कर सकते। कई मौक़े ऐसे देखे जाते हैं कि बड़ी कम्पनियां छोटे-छोटे व्यापारियों को दबाने के लिए, थोड़े समय के लिए, नुक़सान में भी उतर जाती हैं; फिर जब उन सबका अन्त हो जाता है, तो वे कम्पनियाँ पूरा लाभ उठाने लग जाती हैं।

देशी व्यापारियों में अधिकांश फ़र्म एक कुटुम्ब के ही होते हैं। कभी-कभी २-४ आदमी मिलकर भागीदारी भी करते हैं, पर प्रायः देखा जाता है कि उसका नतीजा अच्छा नहीं होता। एक भागीदार सट्टे के लालच में पड़ कर बाक़ी भागीदारों को भी दिवालिया बना सकता है। भागीदारों में से कोई ख़राब आदमी निकल आवे तो लड़ाई-झगड़े और मुक़दमेबाज़ी में फँसा कर आफ़त खड़ी कर देता है। इसीलिए बहुत से व्यापारी भागीदारी से दूर रहना ही पसंद करते हैं। उनका डर सच्चा है। पर भागीदारों को यदि लिमिटेड कम्पनी का रूप दे दिया जाय तो बहुत कुछ बचाव हो जाता है। जितने रुपये के शेयर खरीदे जायँ उनसे अधिक खोने का तो डर ही नहीं रहता, हिस्सेदारों के आपस में लड़ने-झगड़ने और भागीदारों को वंद कर देने की भी नौबत नहीं आती। जो मुख्य-मुख्य शेयर लेने वाले हों वे स्वयं डायरेक्टर बन सकते हैं। लिमिटेड कम्पनियों के संचालन का काम डायरेक्टरों के ही हाथ में रहता है।

लिमिटेड कम्पनियाँ दो प्रकार की होती हैं; प्राइवेट और पब्लिक। प्राइवेट में दो से कम और पचास से अधिक हिस्सेदार नहीं हो सकते। २-४ या १०-५ व्यापारी मिलकर कंपनी स्थापित करें, अधिक शेयरहोल्डर—भागीदार—बनाने की आवश्यकता न हो, तो प्राइवेट कंपनी बनाना ज्यादा सुभीते का काम है। पर शेयर अधिक संख्या में निकालने की आवश्यकता हो, तो कंपनी को पब्लिक बनाना चाहिए। इस संबंध में अधिक जानकारी के लिए कंपनियों के संबंध का सरकारी ऐक्ट पढ़ कर देख लेना चाहिए। बड़े-बड़े कारख़ाने तथा बैंक बिना लिमिटेड किये सुचारु रूप से चल ही नहीं सकते। क्योंकि, एक तो ऐसे धनी आदमी हमारे देश में कम हैं, जिनके पास करोड़ों की सम्पत्ति हो, दूसरे एक आदमी द्वारा संचालित काम प्रायः बहुत कम समय तक ही टिकते हैं। इसलिए लिमिटेड कंपनियाँ बनाना ही श्रेयस्कर है। जो पूंजी लगा सकते हों उनको पूंजी एकत्र कर, जो परिश्रम कर सकने हों उनसे वैसा सहयोग प्राप्त

कर, और जो श्रम और पूँजी दोनों लगा सकते हैं उन्हें भी मिलाकर बड़ी-बड़ी कंपनियाँ खड़ी की जानी चाहिएँ। मिल-जुलकर काम करने से ही भारत व्यापारिक संसार में ठहर सकेगा।

यह न समझ लेना चाहिए कि अपने व्यापार को लिमिटेड कंपनियों का रूप दे देने मात्र से ही सफलता प्राप्त हो जायगी। ऐसा कर देने के बाद डायरेक्टरों पर एक बड़ी भारी ज़िम्मेदारी आ जाती है। कई डायरेक्टर तो अपनी फ़ीस ले लेने के सिवाय अपना और कोई कर्त्तव्य ही नहीं समझते! यदि ऐसे डायरेक्टरों के पास निजी शेयर कम हुए तो कंपनी के नुक़सान-नफ़े की उन्हें तनिक सी भी चिंता नहीं होती। पर उनकी इस लापर्वाही का फल दूसरे हिस्सेदारों को भोगना पड़ता है। डायरेक्टरों अथवा मैनेजिंग एजेन्टों की लापर्वाही के कारण कई कंपनियाँ फ़ेल भी हो गई हैं और इसलिए कहीं-कहीं व्यापार का यह ढंग बदनाम भी हो गया है। पर दोष इस प्रणाली का नहीं, उनके संचालकों का है। लिमिटेड कंपनियों के संचालकों का ध्यान हम जापान की उस घटना की ओर आकर्षित करते हैं, जो कुछ ही महीनों पहले हुई है। एक बैंक को घाटा होजाने पर उसके एक डायरेक्टर ने अपनी सारी स्टेट, यहाँ तक कि रहने का मकान भी बेच कर पावनेदारों का रुपया चुका दिया। शेयरहोल्डर तथा डिपाज़िटर, डायरेक्टरों अथवा मैनेजिंग एजेन्टों की प्रतिष्ठा तथा ईमानदारी के भरोसे ही, अपना पैसा उन्हें सौंपते हैं। उन्हें किसी प्रकार का नुक़सान न हो, इसकी निगाह डायरेक्टरों को सदा रखनी चाहिए। उक्त जापानी सज्जन पर क़ानून से कोई ज़िम्मेदारी नहीं थी, पर देश के बैंकों तथा व्यापारियों के प्रति जनता का विश्वास बनाये रखने के लिए उसने ऐसा किया। हिन्दुस्थान के व्यापारी अन्य देशों के व्यापारियों से ईमानदारी और सचाई में कम नहीं होते। आशा है, देशी व्यापारी लिमिटेड कंपनियाँ बना कर, अपने आपको सुरक्षित समझ कर, स्वेच्छा तथा लापर्वाही से काम न करेंगे।

केशवदेव नेवटिया

जीवन-सुमन

प्रेम-गगन में साधु-भाव की ऊषा जब उदित हो।
सुखकर, दुखहर, चेतनता-मय नवजीवन जाग्रत हो॥
हृदय-देश के मन-मानस में शतदल सम पुष्पित हो।
करुणारुण, दीनानुराग से मधु पराग-पूरित हो॥
सौरभमय जीवन-प्रसून से सेवा-वन सुरभित हो।
मन-मोहक तेरे चरणों पर सरस सुमन अर्पित हो॥

श्रीगोपाल नेवटिया

आबू-दर्शन

यह चर्चा पहलेपहल बच्चों में शुरू हुई कि इस साल गरमी के दिनों में किसी ठण्डे स्थान पर जाना चाहिए। किसी ने महाबलेश्वर का नाम लिया तो किसी ने मसूरी का। हरएक व्यक्ति अपनी-अपनी रुचि के अनुसार नाम बताने लगा। अंत में सबकी राय से यही तय हुआ कि इस वर्ष माउण्ट आबू को ही चलना चाहिए।

यह पुण्यभूमि राजपूताने के इतिहास से परिपूर्ण है। प्रत्येक भारतवासी के हृदय में उच्च भावनायें उत्पन्न कर देती है। अरवलि पर्वत-श्रेणी के दर्शन हमें होंगे, प्रतापशाली राणा प्रताप की पद-रज से भूषित रजःकणों पर से हमें भी चलना होगा, इस तरह के एक-दो नहीं अनेकों विचार हमारे दिल में आते। कम से कम एक बार तो हम वह राजपूतों का पुण्यक्षेत्र और वीर-प्रसू माताओं की पावन-भूमि अपनी आँखों देख सकेंगे, जो गर्जना करती थी कि धर्म

सामने वैभव तुच्छ है और जिसने राजपूतों के कुल-गौरव की रक्षा की थी। इन सुखद कल्पनाओं के आनंद से हमारा हृदय भर जाता और उसके सामने कुछ सूझ न पड़ता था।

गत मई की पहली तारीख़ को शाम के चार बजे की ट्रेन से हम रवाना हुए। रेल चली और हमारा प्रवास शुरू हुआ। इस बात के लिए ज़रा चित्त में अस्वस्थता भी मालूम हो रही थी कि दो दिन बाद छत्रपति शिवाजी महाराज का त्रिशत सांवत्सरिक जन्म महोत्सव है और हम उसे छोड़कर जा रहे हैं। यह किस बात का फल है कि जिस महाराज शिवाजी का नामोच्चार मात्र राज-द्रोह कहलाता था, उसी विभूति की पूजा आज समस्त भारतवासी उत्साहपूर्वक कर रहे हैं? यह कौन कह सकता है कि यह उस एकनिष्ठ और दृढ़प्रतिज्ञ देशभक्त की उपासना का फल नहीं है? उनका शत्रु भी यह न कह सकेगा। इत्यादि विचार चलती हुई रेल में आने लगे। पर फिर हमने किसी तरह दिल को यह कह कर समझा लिया कि कल दोपहर को हमें महाराणा प्रताप के, जो शिवाजी से किसी प्रकार कम नहीं थे, अरवलि पर्वत के तेजस्वी शिखर का दर्शन प्राप्त होगा; क्या यह भी एक पवित्र पर्व नहीं है?

मार्ग में कोई तकलीफ़ नहीं हुई। लगभग साढ़े बारह बजे हमारी रेल आबू रोड पर आकर खड़ी हो गई। पहाड़ पर जाने के लिए मोटर तैयार थी। उसमें सवार हुए। पहाड़ पर चढ़ते समय बड़ा आनंद होता है। रास्ता साँप की तरह टेढ़ा-मेढ़ा है। आधी राह में एक साधु की दरगाह है। आकाश की ओर दृष्टि जाते ही गगनस्पर्शी शैल-शिखरों का दर्शन होता है। उन्हें देखते ही मुँह से अपने आप 'विधाता को धन्य है!' उद्गार निकल पड़ते हैं। मोटर का रास्ता अत्यंत व्यवस्थित रखा गया है। इसका श्रेय पर्वत पर रहने वाले अंग्रेज़ों को है।

आबू पहले सिरोही राज्य के अधीन था। परन्तु अंग्रेज़ों की नज़र उसपर पड़ी और उन्होंने उसे सौ साल के वादे पर ले लिया। अब कहीं वह लौटने को है? बरार के समान यह स्थान भी जल-वायु की दृष्टि से अंग्रेज़ों के लिए अनुकूल होगा और नूतन सभ्यता की सुविधाओं के कारण लोगों को भी यह दिन ब दिन प्रिय होता जायगा। यद्यपि आबू पर बंगले हैं तो बहुत से तथापि उनमें से आधे अंग्रेज़ों के हैं और आधे राजाओं के। इसलिए साधारण स्थिति का मनुष्य यदि वहाँ कम ख़र्चे में रहना चाहे तो यह सुविधा उसके लिए वहाँ नहीं है। हाँ, कुछ उदार और धनिक गुजराती भाइयों ने कुछ धर्मशालायें और मंदिर बनवा कर लोगों के लिए कुछ सुविधा ज़रूर कर दी है। सचमुच यह उनकी उदारता का चिन्ह है।

यहाँ पर साग-तरकारी, अनाज तथा अन्य सभी व्यवहारोपयोगी चीज़ें मिल जाती हैं। गाँव में एक छोटासा बाज़ार है। वहाँ पारसी लोगों की दूकानें बड़ी सुंदर हैं। कुछ दूकानें हिंदुओं की भी हैं। पानी की ज़रा असुविधा ही है। क्योंकि यहाँ नल तो नहीं हैं। कुएं किसी काम के नहीं। तथापि 'सोडा वॉटर' नामक एक कुए का पानी आम तौर पर पिया जाता है। परन्तु यह पानी तो ए० जी० जी० और केवल राजाओं को ही मिल सकता है। शायद इन बड़े लोगों का ख़याल होगा कि ग़रीबों के लिए हर तरह का पानी काम दे सकता है। मतलब यह कि यहाँ पर मारवाड़ के जलाभाव का प्रत्यक्ष रूप से अनुभव होता है। माथेरान की तरह यहाँ भी बैलों पर पखालों में पानी आता है। पानी लाने वालों और बैलों का कष्ट देखकर यह इच्छा होती है कि दो दिन स्नान न सही। यहाँ मच्छर बिलकुल नहीं हैं। यहाँ के लोगों का कथन है कि अरवलि पर्वत पर अनेक उत्तमोत्तम वनस्पतियां हैं, जिनमें से कुछ तो ऐसी हैं जिनको खाने पर दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह दिनतक आदमीको भूख ही नहीं लगती।

यहाँ पर एक छोटीसी पुस्तिका मिलती है, जिसमें आबू के प्रेक्षणीय स्थानों के दृश्य और वर्णन दिये हुए हैं। जनसाधारण की सुविधा के लिए ऐसी एक हिन्दी पुस्तिका की बड़ी ज़रूरत है। यहाँ पर कितने ही ऐसे स्थान हैं जो धार्मिक, आधुनिक महत्त्व और प्राकृतिक सौंदर्य की दृष्टि से घूम-घूम कर देखने योग्य हैं। दिलवाड़ा के जैन-मन्दिरों को देखकर मालूम होता है कि हमारी आँखें सफल हो गईं। मंदिर सिरोही राज्य के अधीन हैं। आश्चर्य है कि प्रत्येक मनुष्य से बिना सवा रुपया कर लिये वहाँ का सिपाही किसी को भीतर ही नहीं जाने देता। इससे अधिक दुर्दैव की बात और क्या हो सकती है कि हिन्दुओं को अपने पवित्र देवालयों में

जाने के लिए कर देना पड़े और सो भी एक ऐसे राजा के राज्य में जो 'हिन्दू' कहलाता है ! यह तो समय की महिमा है, इसके लिए और क्या कहा जाय ? जिस प्रकार शत्रुंजय पहाड़ी का प्रश्न इस समय जनता के सामने पेश हुआ है उसी प्रकार इस दिलवाड़ा के मन्दिरों के प्रश्न को भी जनता के सामने पेश करना चाहिए। यदि कर ही लेना हो तो भारतीय जनता की ग़रीबी का ख़याल करके थोड़ा-बहुत ले लिया जाय तो उतना नहीं अखरेगा । पर जब ये नरेश अपने पूर्वजों की शिल्पकला पर तथा धार्मिक संस्थाओं पर ही अपनी आजीविका चलाने लग जायँ तब इस पर क्या कहा जाय ? राजा कहला कर बनियों का सा काम करना कहीं उन्हें शोभा देता है ? फिर यूरोपियनों के लिए कर माफ़ क्यों है ? क्या यह पक्षपात नहीं है ?

दिलवाड़ा के मंदिर में घुसते ही सामने एक छोटासा दर्वाज़ा दिखाई देता है । यहीं सिपाही को कर दिया जाता है तब कहीं मंदिर में जाने की इजाज़त मिलती है । मंदिर में घुसते समय तो यही मालूम होता है कि यह तो एक हिन्दू-मंदिर है, यहां क्या अपूर्वता होगी ? परन्तु भीतर जाने पर वहाँ की शिल्पकला को देखकर आदमी दंग रह जाता है । भीतर से सारा मंदिर संगमर्मर का बना हुआ है । वहाँ की खुदाई इतनी अपूर्व और सुन्दर है कि यही आश्चर्य होता है कि ताजमहल का वर्णन तो अनेक लोग करते हैं और दिलवाड़ा के मंदिरों की बात कम से कम आधे भारतीयों को भी न मालूम हो ! इस मंदिर के मुख्य देवता आदिनाथ हैं । उनके आस-पास चौबीस तीर्थंकरों की सुन्दर और सुडौल मूर्त्तियां ध्यानस्थ अवस्था में रक्खी हुई हैं । मूर्त्तियों की आँखों में हीरे लगाये गये हैं। वेरूल की गुफाओं के समान यहां भी नक्काशी का काम बहुत ज़्यादा है । प्रत्येक स्थान से धार्मिकता और आध्यात्मिकता टपकी पड़ती है । उसका वर्णन करने के लिए शब्द नहीं मिलते । अकेले आदिनाथ के मंदिर में तिरेपन करोड़ और कुछ लाख रुपये लग गये हैं । हिन्दू राजाओं के वैभव और अभिरुचि का यह एक जीवित उदाहरण है। अरवलि के एकांत पर्वत-शिखर पर उनके वैभव और अभिरुचि के इस स्मारक को देखकर प्रत्येक प्रवासी अपनेको निश्चय ही कृतार्थ समझ लेता है ।

आगरे का ताजमहल तो सिर्फ़ लौकिक प्रेम को प्रक करता है। परन्तु दिलवाड़े का यह मंदिर इस बात का साक्ष देता है कि एक हिन्दू राजा किस तरह अपने राजवैभव से ऊंचा उठकर धर्म-प्रेम में मस्त होकर अपनी श्रद्धा को मूर्त्ति मान बनाने के लिए अपनी सम्पत्ति को धर्म के लिए ख़र्च कर सकता था । उन हिन्दू राजाओं और उनके कामों को भी धन्य है ! इस भारत-भूमि में अब भी अनेकों दिव्य औ अपूर्व वस्तुयें हैं । हाँ, उनकी क़द्र करने वाले दुर्लभ हो गये हैं । इस संगमर्मर के मंदिर में सिर्फ़ श्वेत पत्थर का ही उपयोग किया गया है। ताजमहल के समान रंग-बिरंगे पत्थ रों का उपयोग नहीं किया गया है । परन्तु परिश्रम और शिल्प-कौशल की दृष्टि से निःसन्देह यह मंदिर भारत में एक ही चीज़ है । इस मंदिर के दर्शन करने भर से प्रेक्षक के चित्त में उच्च और पवित्र भाव जागृत हो जाते हैं । यह मंदिर देखने पर तो यही मालूम होता है कि यदि आबू के गंभीर प्राकृतिक सौंदर्य, नीरोग हवा और नूतन स्थल-दर्शन आदि बातों को भुला दिया जाय तो भी यहाँ आने पर मनुष को कम से कम इस मंदिर को बिना देखे कभी लौटना चाहिए ।

परन्तु यह भी सत्य है कि देवताओं के दर्शन पर कर लें का ज़ुल्मी रिवाज रियासतों में ही टिक सकता है । पर को यह न समझ ले कि सिरोही-दरबार इस कर का उपयोग इ मंदिर के सौंदर्य को बढ़ाने या सुरक्षित रखने के लिए क रहे हैं । कहा जाता है कि इस मंदिर के कर से जो पचीस या तीस हज़ार रुपये की आय होती है, वह राजा साहब ख़ानगी कामों में ही ख़र्च हो जाती है । लोग इसका हिसा नहीं जान सकते । प्रजा को मुँह से शब्द निकालने का अधिकार नहीं है। नरेशों का यही क्षुद्र ख़याल है कि उनक किया कोई भी कार्य कभी अनुचित नहीं होता । भले लोग अख़बारों में भी चिल्लाहट मचाते रहें । पढ़ता कौन है यहाँ तो पूरी मनमानी है । इस अवस्था में यदि बाहर प्रेक्षकों का यह ख़याल हो जाय कि रियासतों की प्रजा संग और नियमशीलता को जानती ही नहीं तो कोई अनुचि बात नहीं होगी । ख़ास कर राजस्थान के नरेश तो अ कर्तव्य की परिसमाप्ति इसीमें समझ लेते हैं कि हम
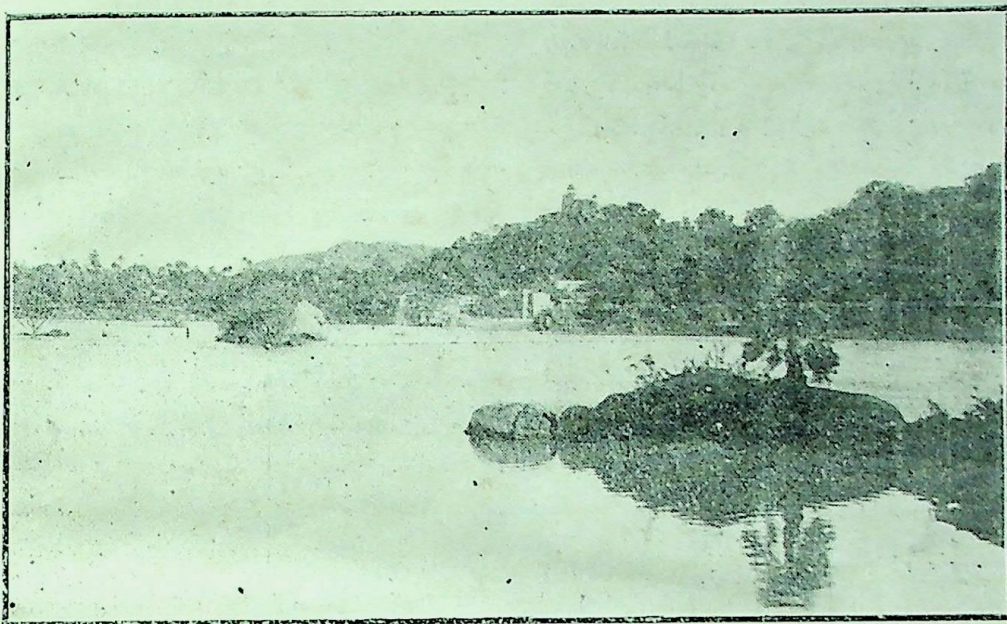
नक्की तालाब
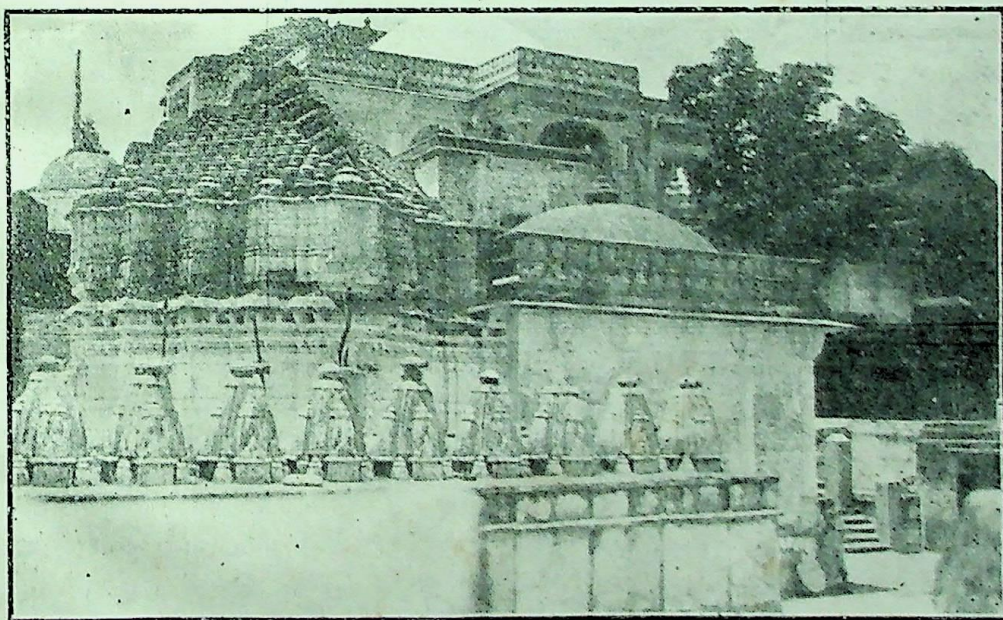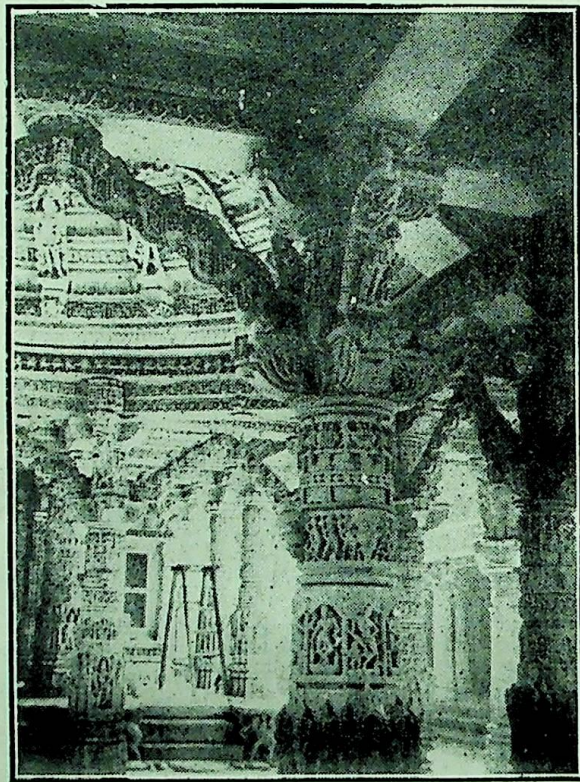
अचलगढ़

दीलवारा का मन्दिर (भीतरी दृश्य)

तरह सुखोपभोग करते रहें और मा-बाप सरकार द्वारा नियुक्त किये गये ए० जी० जी० को खुश बनाये रक्खें। प्रजा निरक्षर है। इसलिए यह स्पष्ट है कि इनके दिमाग़ में सुधार के ख़याल आने में अभी बड़ी देरी है। प्रतिकार की लहर तो समय पाकर ही उठेगी।

अधरदेवी का मंदिर भी सिरोही-दरबार की अधीनता में ही है। यही उपर्युक्त हाल इस मंदिर का भी है। परन्तु दर्शनोत्सुक भक्तों के सुदैव से सुबह सात बजे से लेकर नौ बजे तक यहाँ उनसे कर नहीं लिया जाता। शाम को चार बजे यदि कहीं दर्शनों के लिए चले गये तो दरवाज़ा बन्द! वहाँ पर एक कारकुन और एक सिपाही रहता है। वे ही कर भी वसूल करते हैं। कर मिल जाता है तो कपाट खुल जाते हैं, न मिला तो नहीं। दिलवाड़े के मंदिर में तो यह रियायत भी नहीं। उसे तो हमेशा कर और इजाज़त पर ही निर्भर रहना पड़ता है। यह सब लिखने में मेरा हेतु यही है कि ये चार-छः वाक्य जिन स्वतंत्र लोगों तक पहुँचेंगे वे इस विषय में कुछ आन्दोलन करें।

अर्बुदादेवी उर्फ़ अधरदेवी का मंदिर एक विशाल पर्वत-शिखर के पास है। ऊपर चढ़ते समय एक तरफ़ तो पत्थर की सीढ़ियां हैं और दूसरी तरफ़ झाड़ी। ऊपर चढ़ने के लिए ऊँचा और चौड़ा रास्ता है। मनुष्य ऊपर चढ़ते-चढ़ते खूब थक जाता है। देवी के मंदिर के पास से आबू की बस्ती का तथा अंग्रेज़ों और नरेशों के शैल-निवासों का दृश्य बड़ा ही रमणीय दिखाई देता है। कहा जाता है कि देवीजी पर्वत के अन्दर से प्रकट हुई हैं। देवी का मंदिर एक विशाल शिला का बना हुआ है। शिला को ही कोर कर मंदिर बना लिया है। मंदिर का गर्भ बहुत ठंडा है। देवी के पीछे एक तहख़ाना है। एक आदमी मुश्किल से नीचे उतर सके, इतना बड़ा रास्ता ऊपर दिखाई देता है। हट्टा-कट्टा आदमी तो कदापि नहीं जा सकता। देवी का सिंहासन चांदी का बना हुआ है। कहा जाता है कि अलवर के महाराजा ने उसे देवी को भेंट किया है। देवी की मूर्ति उग्र किन्तु गम्भीर दिखाई देती है। इसमें शक नहीं कि वहाँ जाते ही दिल में एक नवीन भावना उत्पन्न हो जाती है। परन्तु देवी के दर्शन के लिए लोग थक-थक कर बड़ी मुश्किल से ऊपर जाते हैं और जब उन्हें कहा जाता है कि 'कर दो, तब दर्शन होंगे; नहीं तो लौट जाओ' तब तो मनुष्य को बड़ा रोष आता है। यदि किसी को कर की बात मालूम नहीं होती और वह ऊपर चला जाता है, तो बेचारे को निराश होकर लौटना पड़ता है। पुजारी और सिपाही को उसकी निराशा का क्या ख़याल हो सकता है? आख़िर वे भी तो उसी अत्याचारी मशीन के कल-पुर्ज़े हैं। मनुष्यता के लिए जिन गुणों की आवश्यकता होती है उन्हें अपने अन्दर से निकाल कर ही वे इस रियासती नौकरी में प्रवेश करते हैं। फिर यदि उनका बर्ताव भी वैसा ही हो तो इसमें कौन आश्चर्य की बात है? तीन-चार सौ फ़ीट ऊपर चढ़ते-चढ़ते आदमी थक कर चकनाचूर हो जाता है; तिसपर इन रियासती लोगों का हृदयहीन व्यवहार! बस, निराशा और अन्धकार है!

इसके अतिरिक्त गुरुमुख (यह स्थान सर्वोच्च है), वसिष्ठ-आश्रम, अचलगढ़ (यह इतना गहरा है कि मानों पाताल में है) इत्यादि धार्मिक और पवित्र स्थल हैं। आबू की ठण्डी हवा, पवित्र साधु तथा उनकी गुफायें आदि अरवलि पर्वत में स्थान-स्थान पर देखकर श्री हरिनारायण आपटे के प्रसिद्ध उपन्यास 'रूपनगर की राजकन्या' में लिखा हुआ वर्णन याद हो आता है। हूबहू मानों वही सब है। अरवलि पर्वत का इतिहास; राजपूतों का पराक्रम और उनकी आजकल की लापर्वाही भरी शासन-पद्धति की याद आते ही दिल तड़प उठता है।

यहाँपर राजपूताना होटल, माउण्ट आबू होटल और एक हिन्दू होटल, ये तीन नवीन सभ्यता वाले मुसाफ़िरों के लिए उपयोगी तथा सुविधाजनक स्थान हैं। यहाँपर रिक्शा (मनुष्यों द्वारा खींची जाने वाली) गाड़ियां तो हैं; परन्तु माथेरान के समान यहां इतना लम्बा रास्ता ही नहीं, जो इस पॉइण्ट से उस पॉइण्ट तक मनुष्य रिक्शा में बैठकर जा सके। यहां सच्ची घुमाई तो पैदल ही होती है। यहां के ए० जी० जी० और कुछ नरेशों को ही कुछ रास्तों से मोटरें ले जाने क इजाज़त है।

आबू में ख़ास कर अंग्रेज़ी अधिकारी और राजपूताना तथा गुजरात के राजा और अमीर लोग ही दिखाई देते हैं। इनको छोड़कर दूसरे लोग, सारे पर्वत पर, प्रायः कम ही हैं। ब्रिटिश भारत के अमीर लोग यहां बहुत कम आते हैं। रियासतों की प्रजा में तो मनुष्यता ही नहीं है। इसलिए उनके

आने जाने का कोई हिसाब ही नहीं है। माथेरान के समान यहाँ समानता और एक प्रकार की बौद्धिक प्रगति नहीं दिखाई देती। राजपूताना के नरेश पैदल घूमने के लिए निकलते हैं तब आठ-आठ दस-दस आदमी उनके साथ तलवार-बंदूकें लेकर चलते हैं। यह एक वैभव का चिन्ह ज़रूर है; परन्तु जहाँ इस वैभव के साथ-साथ पराक्रम और कर्तृत्वशक्ति नहीं है, वहाँ पूर्व पुरुषों के ज़माने के वैभव के चिन्ह-स्वरूप फ़ौजों को लिये-लिये घूमना एक प्रकार की मूर्खता ही है। क्योंकि इन लोगों अर्थात् नरेशों में न शिक्षा है, न शासन-पद्धति का ज्ञान है, और न इतनी योग्यता या बुद्धि ही है कि भले आदमियों से मिलकर उनसे सलाह-मशवरा कर सकें। ऐसे गुणवान राजाओं को देखकर ग़रीब प्रजा अथवा बुद्धिमान दर्शकों के चित्त में उनके लिए आदर कैसे हो? फिर राजपूताना और काठियावाड़ में भी परदे की कुप्रथा बड़ी बुरी तरह फैली हुई है। इसलिए दक्षिणी स्त्रियों को आबू पर घूमते हुए ज़रा संकोच ही होता है। इसीलिए, यद्यपि वे इस कुप्रथा से बची हुई हों तथा राजपूत नरेशों के नौकरों में कुछ सभ्यता हो तो भी, उन्हें इन दक्षिणी स्त्रियों को बिना घूंघट के घूमते हुए देखकर बड़ा आश्चर्य होता है।

राजपूताना-क्लब अंग्रेज़ों और देशी नरेशों के लिए ही है। अर्थात् जहां-तहां स्वाधीनता की डींग हांकने वाले अंग्रेज़ यहां पर नरेशों के साथ घर-मालिक कासा गर्वपूर्ण व्यवहार करते हैं और राजा लोग तो रात-दिन ही अपने वैभव में मस्त रहते हैं। मध्यम वर्ग की आबू में कहीं पूछ ही नहीं होती। और न उन्हें कोई नागरिकता के हक़ ही हैं। इसलिए उनके लिए तो सिवा अतीत इतिहास को याद करते हुए विषण्ण अन्तःकरण से वापिस लौटने के और कोई मार्ग ही नहीं है। यहां पर हिन्दी-भाषियों के लिए भी पठनालय नहीं है। न कोई सभा-संस्था ही है। बस, नीचे से, जो अख़बार व्यक्तिशः वे डाक द्वारा मँगा सकते हैं वही उन्हें मिलते हैं। मकान-किराया तो बेहद है। क्योंकि आधे मकानात सरकार के और शेष नरेशों तथा उनके अधिकारियों के निवासस्थान होते हैं। शेष बंगले मनमाने किराये पर दिये जाते हैं। माथेरान में जितने बड़े बंगले का किराया पाँच या छः सौ रुपये होता है उतने बड़े बंगले का किराया यहां हज़ार-बारहसौ रुपये से कम नहीं होता। फिर पानी की कठिनाई तो यहां भी वैसी ही बनी रहती है। नक्की तालाब, टॉवर टॉल, सनसेट पॉइण्ट, वेलीज बॉक, पालनपुर पॉइण्ट इत्यादि स्थान प्राकृतिक शोभा में अप्रतिम हैं। यहां पर बिजली की रोशनी नहीं है। परन्तु राजपूताना-होटल ने एक स्वतन्त्र मशीन रखकर बिजली की रोशनी का प्रबन्ध कर लिया है। आस-पास के कुछ बंगलों में भी उसने बिजली दे दी है। जयपुर, बीकानेर, आदि नरेशों ने भी अपने निवासों के लिए स्वतन्त्र रूप से बिजली का प्रबन्ध कर लिया है।

पर्वत का दृश्य ज़रा भयानक और नग्न है। झाड़ी हैं, लेकिन इतनी नहीं कि जितनी माथेरान में हैं। एक-एक पत्थर इतना-इतना बड़ा है कि जिस पर साठ-सत्तर आदमी आसानी से बैठ सकें। पांचसौ से लेकर आठसौ आदमी बैठ सकें इतने-इतने बड़े समथल मैदान भी कहीं-कहीं देखने में आते हैं। पत्थरों में खड्डे वग़ैरा नहीं होते, वर्षा-ऋतु के बाद स्वभावतः पर्वतीय शोभा अधिक रमणीय होती है। तब पगडण्डियां जल-मार्ग बन जाती हैं। वह दृश्य एक बार देख लेने पर आंखों के सामने से हट नहीं सकता।

यह लेख लिखते समय समाचारपत्रों से मुझे मालूम हुआ कि श्री घनश्यामदास बिड़ला ने क्षय-रोगियों के लिए यहां एक स्थान दिया है। हमारे महाराष्ट्र भाइयों को भी इधर ध्यान देना चाहिए। क्योंकि इस निमित्त से राजकीय और सामाजिक दृष्टि से वे राजपूताने का निरीक्षण भी कर सकेंगे। देशी रियासतों की जनता के स्वराज्य के लिए समाचार भेजने का भी यह एक साधन हो जायगा। इस तरह भारतीयों को चाहिए कि वे धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक हेतु से भी अरवलि पर्वत-श्रेणी का दर्शन करें।

सौ० कमलाबाई किबे

'त्यागभूमि' में

इस पुनीत धरणी पर तूने लिखा प्रताप-चरित्र।
और चढ़ाया 'हल्दी' पर क्या रङ्ग सजीव पवित्र॥
एक बार उन चित्रों पर थी वही वीरता-बाढ़।
'त्यागभूमि' में प्रकृति-चितेरी! फिर वैसी छबि काढ़॥

सूर्यनारायण व्यास

सुधारने का ढंग !

[स्थान—बम्बई की एक चाल में दूसरी मंज़िल का एक कमरा। समय—सायंकाल लगभग ६ बजे। छः-सात छोटी कन्याओं—विमला, कमला, अम्बा, रोहिणी, चमेली, गोमती आदि—का प्रवेश।]

रोहिणी—विमला, चलो आंख-मिचौनी खेलें !

चमेली—नहीं री विमला, आंख-मिचौनी नहीं। कोई चीज़ टूटी-फूटी, तो जीजी मुझे मारेगी।

रो०—जीजी मारे तो अम्माँ से कहना, फिर वह उसकी खासी ख़बर लेंगी।

च०—तो भी मैं तो नहीं आऊँगी। बाबू (पिता) के आने का समय होगया है और……

विमला—हाँ भई, आँख-मिचौनी तो सचमुच नहीं खेलनी। अड़ौसी-पड़ौसी हैं, उन्हें तकलीफ़ होती है। और फिर, वे नाराज़ होते हैं। परसों जब हम खेल रही थीं कि इतने में, उस नल के पास वाली वह राधा काकी जो हैं न, वह हम पर कितनी बिगड़ी थीं…

कमला—बिगड़ीं तो क्या कर लिया ! हमारी अम्माँ ने तो हमारा ही पक्ष लिया न? अम्माँ बोलीं कि 'लड़कियों के खेलने में इतना नाराज़ होने की कौन बात है ?

रो०—हमारी अम्माँ भी नाराज़ नहीं होंगी, खुद उसने मुझसे कहा है कि 'जा बाहर कुछ खेल।'

क०—पर पास के कमरे में तो तेरे बाबा बीमार हैं न? क्या उन्हें कष्ट न होगा ?

रो०—कोई कष्ट नहीं होगा। बाबा को तो इस वक्त ख़ूब नींद आ रही है। भला उन्हें हमारे खेलने से क्या कष्ट होगा ?

वि०—अरी, वह सो रहे हैं इसीलिए, उन्हें कष्ट होगा। हमारी धमाचौकड़ी से उनकी नींद टूटेगी तब तेरी अम्माँ हम पर नाराज़ होंगी और……

क०—अरी, पर हम धूम ही न मचायेंगी तो उसकी अम्माँ क्या करेंगी ? बिल्कुल गुप-चुप खेलें। चलो, मैं दाँव दूंगी।

अम्बा—नहीं, मैं दूंगी। हमेशा तू ही अंधी बनती है, मुझे तो कभी बनने ही नहीं देती।

वि०—तुम दोनों मत बनो। मैं सबमें बड़ी हूँ, बड़े ही अन्धे बना करते हैं।

अ०—बड़े तो बड़े अक़्लमन्द होते हैं। वे भी कहीं अन्धे हो सकते हैं ?

रो०—वाह ! बड़े ही तो अंधे होते हैं, हमारी किताब में भी यही लिखा है।

वि०—किस किताब में लिखा है री ?

रो०—महाभारत की सरल कहानियों में। क्या धृतराष्ट्र बड़ा नहीं था, और क्या वह अन्धा नहीं था ? और क्या यह नहीं लिखा है कि दुर्वासा ऋषि क्रोध से अन्धे होगये थे ?

क०—हाँ, लिखा है कि, शकुन्तला मनोविकारों से अन्धी हुई थी। शकुन्तला क्या छोटी थी ?

वि०—पागल हो तुम तो, तुम कुछ समझती नहीं।

रो०—पागल हूँ इसीलिए तो मैं अन्धी बनती हूँ।

वि०—अन्धी हो या लंगड़ी। मैं तो तुम्हारे साथ बिल्कुल खेलूँगी ही नहीं।

च०—मैं भी नहीं खेलूँगी। प्याले-व्याले और बोतल-वोतल कहीं टूटी-फूटीं तो हम नहीं जानें रे बाबा ! चल री विमला, अपने तो चलें, और अम्माँ से कहें कि ये छोकरियां आँख-मिचौनी खेलती हैं और ऊधम मचा रही हैं। अम्माँ मारेंगी तब खेल-वेल सब भूल जायेंगी। ज़रा प्याले-व्याले फूटने दे तब तुझे दिखा दूँगी कि खेल कैसा होता है। अम्माँ तो जब मारेंगी तब मारेंगी, पहले तो मैं ही तेरी ख़बर लूँगी।

रो०— देखें कैसे ख़बर लेती है। अम्माँ फिर तेरी ही खबर न लेंगी ? क्या उस दिन की बात भूल गई ? कैसी मार खाई थी—याद नहीं है ?

च०—याद है तभी तो मैं नहीं खेलती और तुझे भी खेलने को मना कर रही हूँ।

रो०—तो जा, हम तो खेलें ही गी !

च०— जा तो हम भी जाती ही हैं।

(चमेली और विमला का प्रस्थान)

रो०—अरी अम्बा, इधर आ: बीच में यह जो स्टूल रक्खा है इसे उठा कर इस तरफ़ रख दें, जिससे बोतलें न फूटें।

अ०—उधर नहीं, आओ इधर, इस कोने में रक्खें।

रो०—अच्छा, उस कोने में तो उसीमें सही।

(कोने में स्टूल रखती हैं)

रो०—चल ले अब यह कपड़ा और बाँध मेरी आँखों पर।

(अम्बा कपड़ा लेकर बाँधती है)

क० (कपड़ा छीन कर दूर फेंक देती है)—अरी हट, यह क्या, इससे भी कहीं आंखें बांधी जाती हैं ? धृतराष्ट्र की स्त्री गान्धारी थी न ? उसकी आँखें जैसे कपड़े से बँधी थीं वैसे ही अपने इस हरे रुमाल से मैं तेरी आँखें बाँधती हूँ, ले।

अ०—तुझे कैसे मालूम हुआ कि गांधारी की आँखें ऐसे कपड़े से बँधी थीं ?

क०—अरी, महाभारत की सरल कहानियों में लिखा है न ? (हरा रुमाल बांधती है) हां, चलो अम्बा! गोमती, सम्हल कर रहना। अच्छा ले आ रोहिणी!

(जैसे ही खेल शुरू हुआ कि स्टूल पर की बोतल गिर कर फूटती है)

अ०—बाप रे बाप! अब क्या करें ? बोतल तो फूट गई। अब तो रोहिणी पिटेगी। हमने तो नहीं फोड़ी रे बाबा ! रोहिणी ने फोड़ी है। चमेली जीजी तो सुनते ही मारते-मारते गाल सुजा देगी।

क०—पर चमेली जीजी से हम कहें ही क्यों ? चल री रोहिणी, भाग चलें।

रो०—अरी पर पहले मेरी आँखें तो खोलो।

(आँखें खोलना और भागना, इतने में चमेली मिल जाती है)

च०—(डपट कर) कैसी धूमामस्ती मच रही है री ? कहाँ भागी जा रही हो ? ज़रूर कुछ न कुछ तोड़ा-फोड़ा है। हां, यही बात है। बताओ।

अ०—मैंने तो कुछ नहीं फोड़ा। तुम्हारी इस रोहिणी ने ही बोतल फोड़ी है।

च०—(फूटी हुई बोतल और कमरे आदि को देखकर) ठहर तो ज़रा, इधर आ, तेरी मरम्मत कर देती हूँ। मना करने पर भी खेल से बाज़ नहीं आती। यह भी कोई बात है ? सचमुच तेरी मरम्मत करनी पड़ेगी तभी तू बाज़ आयगी।

(मारना, रोहिणी का गिरना और पाँव में चोट लगकर खून निकलना, रोहिणी का रोना)

रो०—मरी री अम्माँ, ओ अम्माँ! मैं तो मर गई!

उमा—क्या हुआ री रोहिणी तुझे ?

(अम्बा तथा अन्य कन्यायें सारा हाल सुनाती हैं)

क०—रोहिणी ने बोतल फोड़ी इसपर चमेली जीजी ने उसकी अक्ल दुरुस्त की है।

उ०—हां! चमेली, नसीहत ऐसे दी जाती है ? क्या छोटी बच्ची को ऐसे मारा जाता है ? यह भी कहीं मारना हुआ ? ठहर, बड़ी हुई इसीसे तो कहीं इतनी मस्ती नहीं आ गई है! आ, इधर आ, तैंने उसका पांव तोड़ा है, तो मैं अभी तेरे दाँत तोड़ती हूँ और तुझे भी अभी लँगड़ी करके छोड़ती हूँ! इस आज की ज़रासी छोकरी में ज़रा भी तो ढंग नहीं रहा। इस वक्त गम खाने से काम नहीं चलेगा। अगर रोहिणी ने बोतल फोड़ डाली तो उसे ज़रा समझा दिया होता। क्या तू मर जाती ? छोटी बहन है तो क्या उसे इतना मारना चाहिए ?

च०—खेलने को मना करने पर भी वह क्यों तो खेली और क्यों उसने बोतल फोड़ी ? ऐसी ढीठ लड़की को तो ऐसे ही मारना चाहिए।

उ०—पर तू कौन मारने वाली? तू क्या उसकी अम्मा है ? उसकी मा तो मैं ज़िंदा मौजूद हूँ न, फिर उसे तूने क्यों मारा ?

च०—तू उसे नहीं मारती इसीसे तो वह ऐसी सिर-चढ़ी है।

उ०—और मैं तुझे नहीं मारती इसलिए तू भी ऐसी सिर चढ़ गई ? देखो तो कैसी चटर-चटर बोलती है! बिना मारे तुझे नसीहत नहीं मिलेगी। इधर आ, तेरे हाथ-पाँव अच्छी तरह तोड़ डालूँ!

(चमेली को मारना। धक्का खाकर उसका गिर पड़ना और हाथ-पाँव में लगना। कन्याओं का रोने लगना। इतने में पड़ौस की एक कन्या का प्रवेश)

कुसुम—उमा काकी, उमा काकी! उस कमरे में तुम्हारे ससुर बीमार हैं न, वह तुम्हें आवाज़ दे रहे हैं। वह पूछते हैं कि यह कैसा हल्ला-गुल्ला मचा रक्खा है।

उ०—कह दे कि मुआ मसान को रोता है और क्या!

(राधा काकी का प्रवेश)

रा०—उमा काकी, यह क्या हो रहा है ?

उमा—हो रहा है मेरा सिर! तुम्हें क्या मतलब!

रा०—मुझे तो कुछ नहीं; पर तुम्हारे ही ससुर दवा के लिए चिल्ला रहे हैं, उन्हें दवा भी दोगी या नहीं ?

(नेपथ्य से कराहने की आवाज़ —'अरे, कोई सुनता है या नहीं ? राम-राम ! कोई आकर मुझे दवा तो दे जाओ !')

हाँ-हाँ, सुना-सुना, दवा के बिना क्या बिल्कुल प्राण ही निकले जा रहे हैं ? छोकरियों ने धूम मचा रक्खी है; उन्हें ज़रा नसीहत दे दूं, फिर आती हूं उधर दवा देने ! ज़रा धीरज रक्खो तो कोई जान नहीं निकल जायगी अभी की अभी ।

रा०—उमा काकी, यह क्या मनहूस बात बोल रही हो ? सांझ का समय है और तुम ऐसी अशुभ बात बोल रही हो !

उ०—अमङ्गल न बोलूँ तो क्या करूँ ? यह छोकरी ऐसी निकलीं, इन्हें क्या ढंग पर न लाऊँ ?

रा०—यह भी कोई ढंग पर लाने का ढंग है ? ससुरजी का तो उधर चिल्लाते-चिल्लाते गला बैठ गया और तुम इधर···

उ०—पर तुम्हें हमसे मतलब ही क्या ?

रा०—मुझे क्या मतलब ? तुम्हारे ससुरजी मरें तो कोई मुझे सूतक थोड़े ही लगेगा। मेरा कहना तो यही है कि इस साँझ के वक्त ऐसी अशुभ बातें नहीं बोलनी चाहिएं। यह भी कोई बोलने का ढंग है ? पर तुम्हारी तो आदत ही यह हो गई है। जब देखो तब वही बात ! बेचारे पास-पड़ौसी तुम्हारे इतने शोर-गुल से बिल्कुल तंग आ गये हैं। सुधार का भला यह क्या ढङ्ग ? क्या धीरे से—शांतिपूर्वक-मीठे शब्दों में नहीं समझाया-बुझाया जा सकता ? तुम्हारे ससुरजी दवा के लिए चिल्लाते-चिल्लाते मर भी जायें तो इससे क्या मुझे थोड़े ही सूतक लगेगा ? पर कहावत है न, कि बुढ़िया के मरने का दुःख नहीं पर काल घर देखता है ।

उ०—देखे काल भले ही घर को, पर तुम्हें बोलने की क्या ज़रूरत ?

रा०—क्या ज़रूरत का मतलब ? मैं पड़ौसिन हूं और तुम्हारी इस चिल्लाहट से मुझे कष्ट होता है । कैसी अजीब औरत है ? कहती है, तुम्हें क्या ज़रूरत ! यह भी कोई बोलने का ढङ्ग है ?

(एक बालिका भागती हुई आती है)

सुमन (राधाकाकी से)—अम्माँ, अम्माँ ! बाबू आगये । उनके साथ कोई मिहमान भी आये हैं । कर्वे साहब उनका नाम है ।

उ०—आने दे आये हैं तो ! मुझे क्या करना है ? चन्दा मांगने आये होंगे और क्या ? इन मुए चँदों ने तो नाकों-दम कर दिया है । जो आया सो चला भीख माँगने । ढङ्ग तो मानों कुछ रहा ही नहीं । ये लड़कियां बिगड़ी जा रही हैं, सो कुछ यों ही नहीं ।

(घर की मालकिन रमा काकी का प्रवेश)

रा०—उमा काकी, उमा काकी ! यह क्या धमाचौकड़ी मचा रक्खी है ?

उ०—अरे, धमाचौकड़ी कैसी ? मैं तो छोकरियों को ढङ्ग पर ला रही हूँ ।

र०—उमाकाकी, अब मैं तुमसे साफ़ कहे देती हूँ कि तुम हमारे घर से निकल जाओ । तुम्हारा ऐसा रहना नहीं चाहिए । एक तो तुम्हारे ससुर रात-दिन चिल्लाते-पुकारते हैं, फिर वह चुप हुए कि तुम्हारा शोर-गुल शुरू होता है । आदमी को कैसे रहना और कैसे बोलना चाहिए, इसका भी तो कुछ विचार करना चाहिए न । भला तुम्हारा यह क्या ढङ्ग है ?

उ०—और तुम्हारा भी तो यह क्या ढङ्ग ?

र०—मुझे ऐसा बोल नहीं सुहाता भला ! कल पहली तारीख़ है, कल ही तुम यहाँ से अपना डेरा-डण्डा उठा लो । चलो, फन्दा कटा उस दमेवाले बूढ़े और इस बक्कू औरत की कटकट का ! इस औरत को कितनी बार समझाया और अब भी समझा रही हूँ कि आदमी को शान्ति से बोलना चाहिए, शान्ति से सब काम हो जाते हैं, पर इस औरत की ज़बान बस में रहे तब न ! और राधाबाई, तुम भी कुछ कम नहीं । तुम्हारी ज़बान भी कुछ वैसी ही रक्खी है ।

रा०—इसमें क्या ? जैसी तुम्हारी ज़बान, वैसी ही हमारी भी !

र०—अरे, तुम तो मालकिन को जवाब पर जवाब देती जा रही हो ! ठहरो, चार नौकरनियों को लाती हूँ, और तुम दोनों को अभी हाथ पकड़ कर घर से निकाले देती हूँ ।

(झल्ला कर भुनभुनाती हुई चली जाती है)

उ०—और हमारे हाथों में कहीं लड्डू नहीं हैं। मुझसे पार नहीं पाओगी। याद रखना, मुझे घर से निकाला नहीं कि मैं दौड़ कर जाऊँगी और तैल का डब्बा लाकर इस घर ही को आग लगा दूँगी। याद रखना, ज़रा नहीं मानूंगी। फिर झींकती बैठियो।

रा०—घर में आग तो लगाओगी, पर तुम्हारे ससुरजी जो हैं, और ये जो बाल-बच्चे हैं, इनका क्या ? अरे सचमुच ही, आगई वह तो चार मजूरों को लेकर !

र०—पकड़ लो इन दोनों को ! पहले उसे—उमाकाकी को पकड़ो।

(उमा का भागना)

उ०—मैं तुमसे भी ज़्यादा उस्ताद हूँ। मुझे पकड़ना तो बहुत चाहो, पर मैं पकड़ में आऊँ जब न ? मुझे घर में नहीं रहने देतीं ? अच्छा ठहरो, तुम्हारे घर में ही आग लगाये देती हूँ। फिर देखें कौन किसे घर से निकालता है। तब मालूम पड़ेगा।

(वहाँ से भागते हुए जाना–रोहिणी विह्वल होकर बड़बड़ाती है)

रो०—आँख-मिचौनी ''बोतल ''पांव ''चमेली जीजी ''लंगड़ी''''''

पार्वती—अरे इसे तो हवा लग गई मालूम होती है। इसकी तरफ़ इतनी देर से किसी ने देखा ही नहीं। लाओ, कोई पानी तो लाओ ''रुई और पट्टी भी लाना। (ज़रा बदली हुई आवाज़ में) एक बोतल क्या फूटी और यह भयंकर कांड क्या मचा दिया। और वह लुगाई घर में आग लगा देने के लिए गई है ! बाल-बच्चे, ससुर आदि सब मर जायें तो भी इस लुगाई को कुछ नहीं ! आग तो लगावे ही गी, यह मानने वाली नहीं। यह तो सुधारने चली है। ऐसे अहम्मन्य और अविचारी व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों को सुधारने लगें तब ही तो वह दृश्य आँखों के सामने खड़ा हो जाता है कि मानों गधा सुअर को सफ़ाई की शिक्षा दे रहा हो ! पर, ओह ! संसार में ऐसे ही दृश्यों का तो बाहुल्य है, सच तो यह है कि संसार मानों इन दृश्यों से ही बना है ! किन्तु संसार को भी दोष क्यों दें ? औरों पर ऐसी नुक्ताचीनी करके हम यह समझें कि हम उन्हें सुधार रहे हैं तो यह तो वही गधे और सुअर वाली मिसाल होगी। न नहीं, यह ठीक नहीं, यह तो अति विचार हुआ ! आत्म-दर्शन हर्गिज़ नहीं होता। बहुत विचार करने की अपेक्षा अच्छा तो यह है कि, उस-उस समय, अपने कर्त्तव्य पालन किया जाय। वह देखो, छोकरियां पानी आदि ले आ गई।

(कुछ कन्यायें पानी, रुई आदि लेकर आती हैं)

[पार्वती बाई घाव धोने लगती है। कोई चमेली उठाती है। इतने में आस-पास धुआं उठकर आग का शोर का और 'आग-आग' का शब्द होता है। कन्यायें हावड़-धूप भागती हैं। सिर्फ़ पार्वती काकी रह जाती हैं और रोहिणी को कन्धे पर लेकर उस गड़बड़ में से " इसको नीचे पहुँचा कर मैं अभी आती हूँ और चमेली को भी ले जाती हूँ; घबरा मत" यह कहती हुई नीचे जाने लगती हैं''''''

वामन मल्हार जोशी

तरुण अवस्था

तरुण अवस्था मनुष्य-जीवन की वह महत्वपूर्ण अवस्था है जो कौमार्य के बाद और यौवन से पहले होती है। जैसा कि बहुतों का ख़याल है, यह युवावस्था का पर्यायवाची नहीं है; युवावस्था और इसमें काफ़ी अंतर है। ललित शब्दों में, 'युवावस्था का उपःकाल' इसे कह सकते हैं, क्योंकि युवावस्था तो वह अवस्था है कि जिसमें व्यक्ति प्रजोत्पादन-शक्ति से पूर्ण-रूपेण सम्पन्न हो जाता है—यहाँ तक कि उसके शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक आदि सभी अंग भी किसी न किसी रूप में प्रजनन–शक्ति के ही अनुकूल होते हैं। इसके विपरीत तरुणावस्था, कौमार्य को समाप्त करके यौवन की—दूसरे शब्दों में कहें तो प्रजोत्पादन-शक्ति की—तैयारी करती है। इसीलिए, प्रजोत्पादन के योग्य बनने के लिए, इस अवस्था में मनुष्य-शरीर में जितने शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक परिवर्तन होते हैं, उतने और किसी अवस्था में नहीं होते। सच तो यह है कि भविष्य में, बड़ा होने पर, मनुष्य जैसा भी भला

स्वस्थ-अस्वस्थ, सबल-निर्बल इत्यादि बनता है उसका सूत्र-पात और पर्याप्त प्रारम्भ इसी अवस्था में होता है । फिर फेरफार जो होते हैं वे भी ऐसे त्वरित और क्रान्तिकारी कि सुप्रसिद्ध दार्शनिक रूसो ने तो इसे मनुष्य के पुनर्जन्म का ही नाम दे डाला है । तरुणों को किसी न किसी रूप में द्विजत्व प्राप्त कराने की जो विधि प्राच्य प्रजाओं में प्रचलित हैं, उसका भी शायद यही कारण है ।

तरुणावस्था का समय बिल्कुल निश्चित तो नहीं है । कितने ही बालक १० वर्ष की वय में ही तारुण्य को प्राप्त हो जाते हैं और कई १८ वर्ष के हो जाने पर भी मुश्किल से ही उसे पहुँच पाते हैं । फिर भी साधारणतः इसकी अवधि कन्याओं में १२-१३ से १६-१७ वर्ष तक और कुमारों में १३-१४ से १८-१९ वर्ष तक है । इसके बाहर जो हों उन्हें अपवाद मानना चाहिए ।

इस अवस्था के स्वास्थ्य का तो कहना ही क्या ? जो अवस्था शरीर के सम्पूर्ण विकास की है उसमें रोगों से लोहा लेने की शक्ति भी अधिक होना स्वाभाविक ही है । कुछ कन्यायें इस अवस्था में प्रायः बीमार रहती बताई जाती हैं । पर सब के लिए ऐसा नहीं कहा जा सकता । अंकों से तो यही सिद्ध होता है कि इस अवस्था में मृत्यु-संख्या, और अवस्थाओं की अपेक्षा, बहुत कम होती है । इसीलिए, आरोग्य की दृष्टि से, १६-१७ वां वर्ष मनुष्य-जीवन का सर्वश्रेष्ठ वर्ष माना जाता है ।

यह तो हुआ तरुण अवस्था का साधारण परिचय । अब इसके फेरफारों पर नज़र डालिए, जिन्हें हम सामान्यतः शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक इन चार भागों में विभक्त कर सकते हैं ।

सबसे पहले शारीरिक फेरफारों को लीजिए । शरीर के भिन्न-भिन्न सभी अङ्गों का तरुणावस्था में विकास होता है । पर न तो यह सब एकसाथ होता है, और न सब फेरफारों में बिल्कुल बराबर समय ही लगता है । शरीर की ऊँचाई और उसके वज़न के फेरफार सबसे पहले ध्यान आकर्षित करते हैं । कुमारावस्था में तो कन्याओं की बनिस्बत कुमार अधिक ऊँचे और भारी होते हैं; पर तरुणावस्था के प्राथमिक एक-दो वर्षों में, ऊँचाई और वज़न दोनों में, कन्यायें कुमारों से बढ़ जाती हैं । इसके बाद पुनः कुमार बढ़ने लगते हैं और फिर सदा, दोनों बातों में, कन्याओं से बढ़े हुए ही रहते हैं । हड्डियां, जिनका कि स्थूल शरीर में पहला नम्बर है, इस अवस्था में अधिक लम्बी और उसी प्रमाण से मोटी व कठोर हो जाती हैं । हड्डियों की इस वृद्धि के कारण कई बार जोड़ों में दर्द भी होने लगता है और, उस वृद्धि को सम्हालने के लिए, चूने और चूनेवाली ख़ूराक की इस अवस्था में शरीर को ख़ास आवश्यकता होती है । यही हाल स्नायुओं का है । वे भी एक ही तरह तो नहीं बढ़ते, पर इस अवस्था में उन सब का वज़न ख़ास तौर पर बढ़ जाता है । संख्या और आकार में हृदय के स्नायु बहुत बढ़ते हैं । और इस फेरफार के कारण, रक्त की गति में भी बड़ा परिवर्त्तन होता है । इससे पहले शरीर के जितने स्थान में रक्त-प्रवाह होता था, उसके बढ़ने और शरीर के विकसित होने से, शरीर की वृद्धि के लिए नवीन सत्वों को अधिक परिमाण में सोखने और अनुपयोगी सत्वों को बाहर निकाल डालने में, ख़ून को स्वभावतः ही बहुत सा नया काम करना पड़ता है । इसीसे, इस अवस्था में अनेक बार रक्त की गति बड़ी अनियमित रहती है और उसके फल-स्वरूप कभी-कभी सिर-दर्द आदि हो जाते हैं । फिर, शरीर के बढ़ते हुए विकास के साथ, यदि फेफड़े भी अधिक शक्ति से काम न करें तो कैसे काम चले ? अतएव इस अवस्था में उनमें भी अधिक प्राणवायु खींचने की शक्ति आनी चाहिए—और आती भी है । रहा मस्तिष्क । उसका भी वज़न बढ़ता हो, ऐसा तो नहीं मालूम पड़ता; तथापि मनुष्य के मन, उसकी भावनाओं, उसके आदर्शों और उसके ध्येय में जो विचित्र फेरफार इस अवस्था में होते हैं उनपर से सहज ही यह अनुमान किया जा सकता है कि उसके मस्तिष्क में भी तदनुरूप परिवर्त्तन अवश्य होते होंगे ।

यह तो हुआ शारीरिक परिवर्त्तनों का वर्णन । अब मानसिक परिवर्त्तनों को लीजिए। बालक का मन बहुत करके स्वलक्षी होता है । उसका भय, उसकी भावनायें, उसकी लड़ाइयां, कौन जाने कि सब अपनी रक्षा के लिए ही नहीं होते ! पर तरुण तो प्रजापति के मार्ग पर होता है । फिर आत्म रक्षण-मात्र से भला उसे कैसे सन्तोष हो ? इसीलिए,

इस नये कार्य के लिए, जैसे उसका शरीर तैयार होता है वैसे ही उसका मन भी सजने लगता है। नई-नई उमंगें, नई-नई रुचियां और नई-नई प्रवृत्तियां प्रकट होती हैं। शृंगारादि के द्वारा शरीर को सजाने की वृत्ति, परोपकार की उदार भावनायें, संगीत आदि की ओर आकर्षण एवं स्वच्छन्द घूमने-फिरने की प्रवृत्ति—ये सब एक तरह से इस अवस्था के आविर्भाव-रूप हैं; और, इन सब के मूल में नवोद्भूत प्रजनन-शक्ति का ही प्रभाव होता है। स्त्रियां, इस अवस्था में, अपना शरीर अधिक सुन्दर दिखाने के लोभ में न्हाने-धोने और सुगन्धित तैल-फुलेल लगाने में ख़ूब चुस्त होती हैं। मुँह पर मुँहासे व झाई आदि होते हैं। दुःख सहकर भी वे शरीर के भिन्न-भिन्न भागों को गुदवाती हैं; यही नहीं, जंगली जातियों में तो तरह-तरह की मिट्टी से शरीर को रंगा भी जाता है। फिर हाथ, मुँह आदि अंगों को भिन्न-भिन्न प्रकार कपड़ों से ढकने की प्रवृत्ति भी इस अवस्था में ज़ोरों से दिखाई देने लगती है। चमड़ी अधिक स्निग्ध होती और पसीना निकालने वाले रोम-रन्ध्र अधिक वेग से काम करने लगते हैं। इन्द्रियों के अनुभवों में विचित्र फेरफार होते हैं, जिन्हें आज तो उनके स्थूल रूप के बजाय मूल में उनके नियन्ता मन के ही फेरफार मानना अधिक उचित प्रतीत होता है। स्पर्श, गन्ध, खाने-पीने आदि सभी बातों में उनका प्राधान्य दीखता है। तरह-तरह के ख़ुशबूदार साबुनों, पाउडरों, इत्र-तैल आदि की ओर प्रवृत्ति होती है; यही नहीं किन्तु कई जगह तो एक दूसरे के शरीर की गंध पर मित्रता होने व टूटने के उदाहरण भी देखे गये हैं। आँख, नाक, कान आदि की ख़ूबसूरती-बदसूरती पर तो कौन नहीं जानता कि न जाने कितने सम्बन्ध टूटते और बनते हैं! स्वाद को देखिए तो चाय, काफ़ी, मिर्च-मसाले, खटाई-मिठाई का शौक़ ख़ूब बढ़ता है; कभी-कभी तो किसी ख़ास क़िस्म की चीज़ों पर ही अड़ जाते हैं। सङ्गीत का प्रेम भी इसी अवस्था में उमड़ता है। ये सब इन्द्रियानुभव परोक्ष-रूप से मन के ही खेल और अवान्तर-रूप से प्रजनन-शक्ति के उद्भव के ही चिन्ह हैं। इसीलिए इस अवस्था में समान वय के कुमारों को देख कर कन्याओं में एक ख़ास लज्जा-भाव प्रकट होता है, विजातीय व्यक्ति के प्रति एक अजीब आकर्षण होता है, और सुन्दर-सुडौल दीखने की प्रवृत्ति तो ख़ास बा[त] ही ठहरी। यही सब वे मानसिक फेरफार हैं जिनसे प[ता] लगता है कि तरुणों में प्रजजन-शक्ति के आगमन की तैया[री] हो रही है।

सामाजिक फेरफारों में, परार्थ-भावना का उद्भव प्रधा[न] है। प्राणिमात्र में जब काम वासना जागृत होती है तो व[ह] दूसरों का सहवास ख़ास तौर पर चाहने लगता है। यूथचा[री] वृत्ति, दूसरों को खुश करने की प्रवृत्ति, और दूसरे के उपयो[गी] होने की वृत्ति—इस अवस्था के मुख्य लक्षण हैं। यह स[ब] सिर्फ़ इसी अवस्था में पाये जाते हों, सो तो नहीं, पर इन[का] उग्र-रूप इसी अवस्था में प्रकट होता है। कुमारावस्था [में] मनुष्य जहाँ स्वलक्षी होता है तहाँ तरुणावस्था में वह परल[क्षी] बनता है। उसका दृष्टि-कोण विस्तृत होता है, और अपने [को] वह समाज का ही एक अंग समझने लगता है। इस अवस[्था] में वह दूसरों के भावों को समझ कर उनके प्रति सद्भाव औ[र] सहानुभूति प्रकट करने योग्य हो जाता है। कुमारावस्था [में] जहाँ वह दूसरों का विचार बहुत कम अथवा बिल्कुल न[हीं] करता तहाँ तरुणावस्था में वह दूसरों के दुःख में दुःखी हो[ने] लगता है। अलावा इसके, एक भावना का उदय तरुणाव[स्था] में और होता है। इस अवस्था में वह समाज के अभिप्र[ाय] को महत्व देने और खाने-पीने, रहन-सहन, विचार-व्यव[हार] में तदनुरूप बनने की दिशा में प्रवृत्त होने लगता है। इ[स से] भी आगे बढ़ें तो तरुण स्वयं दुःख उठा कर भी दूसरों [की] सेवा करने को तत्पर बनता है। इसके लिए बालचर-द[ल], खेल-कूद के क्लब, विवाद-मण्डल आदि के रूप में अ[पने] पृथक् संगठन कर समाज-सेवा करने के उनके दृष्टान्त [आज] भी देखे जा सकते हैं। यही नहीं, दुनिया-भर के परोप[कार] और समाज-सुधार के इतिहास को छान डालिए, सब ज[गह] तरुणों की इस प्रवृत्ति का ही आधिक्य दृष्टिगोचर होगा।

रहे आध्यात्मिक फेरफार। सो कइयों के मतानु[सार] १५-१६-१७ वर्ष की अवस्था में ही धार्मिकता की सब[से] गहरी छाप पड़ती है। धार्मिकता का अर्थ यदि स्वार्थत्य[ाग] है, दूसरे के सुख के लिए अपनी इच्छा का त्याग करना यदि धार्मिकता है, तो इसमें सन्देह नहीं कि उसका प[ाया] इसी अवस्था में जमता है। क्योंकि, जैसा कि पहले बता[या]

जा चुका है, इसी अवस्था में तो मनुष्य स्व-लक्षी से पर-लक्षी अथवा स्वार्थी से परार्थी बनता है। हाँ, कइयों का कहना यह भी है कि इस अवस्था में मनुष्य धार्मिक के बजाय उलटा नास्तिक ही हो जाता है। धर्म और उसकी रूढ़ियों के सम्बंध में तरह-तरह की शंकायें उठाना, इस बात का सबूत बताया जाता है। पर, हमारी समझ में, यह नास्तिकता नहीं है। असल बात यह है कि जैसे-जैसे उसमें समझ आती जाती है वह, अपनी बुद्धि और ज्ञान के अनुसार, किसी बात को महज़ किसी के कहने से मान लेने के बजाय तर्क और ज्ञान की कसौटी पर कसने लगता है। इसे कोई नास्तिकता भले ही समझें, पर वस्तुतः तो धार्मिकता की दिशा में सच्चा पदार्पण यही न है? इसके अलावा अभी तक, कुमारावस्था में, जहां उसके सम्मुख अपने कुटुम्बियों अथवा पास-पड़ौस वालों का आदर्श होता है और धन, प्रतिष्ठा, सौन्दर्य आदि की चाह रहती है वहाँ तरुणावस्था में ऐतिहासिक महापुरुषों, सार्वजनिक नेताओं, साहित्य-मर्मज्ञों आदि पर उसका आदर्श केन्द्रित होजाता है और धन, प्रतिष्ठादि के बजाय बौद्धिक, कलात्मक, नैतिक एवं आध्यात्मिक आकर्षण पैदा होता है। इस समय वातावरण और संसर्ग भी यदि ऐसा ही मिल जाय तब तो क्या बात! अन्यथा, इसका विपरीत परिणाम पड़ सकता है—और पड़ता भी है।

इस प्रकार तरुण अवस्था कितनी परिवर्त्तनशील, क्रान्तिकारी और इसलिए महत्वपूर्ण है, यह भलीभाँति प्रकट है। सच पूछो तो मनुष्य का भविष्य बहुत कुछ इसी अवस्था में बनता-बिगड़ता है। अतः क्या यह आवश्यक नहीं कि, बनाव-बिगाड़ की इस महत्वपूर्ण अवस्था में, इस बात पर ख़ास ध्यान रक्खा जाय कि मनुष्य भविष्य में वास्तविक मनुष्य ही बने—मनुष्य-शरीर-धारी होकर भी 'मनुष्य' नाम को बदनाम करने वाला मात्र नहीं? तरुणों के अभिभावकों, संरक्षकों और शिक्षकों को इस बात पर ख़ास ध्यान देना चाहिए; क्योंकि, अंततोगत्वा, इसकी ज़िम्मेदारी उन्हीं पर न है? *

मुकुटबिहारी वर्मा

---

* एक गुजराती लेख के आधार पर

हृदय के टुकड़े

१

फूल बीनते-बीनते ही न जाने कितनी देर होगई! समय आया और चुपके से मेरे पीछे से होकर निकल गया।

मैं अल्हड़ नौसिखिया माली, भला क्या जानूँ माला गूँथना? झिझकते-झिझकते आखिर मैंने एक माला तैयार कर ही तो ली!

सुबह का समय तो गुजर गया; अब तो, दोपहर होने को आया था। वहाँ जाना बिलकुल व्यर्थ था! पर, न जाने क्यों, मंत्र-मुग्ध की नाई मैं चल ही तो दिया।

अरे, यह क्या? तुम अभी तक मेरी प्रतीक्षा में बैठे हो ऐ मेरे राज-राजेश्वर! लज्जा, प्रेम और आल्हाद से मैं तो एकदम ही विमूढ़ सा होगया।

अपने हाथों मैं तुम्हें माला पहनाऊँ, यह तो भला होता ही कैसे? मुझसे तो आँख उठाकर तुम्हारी ओर देखा तक न गया। हाँ, समस्त संसार का सौन्दर्य चुरा ले आने वाले तुम, मेरे मन में कुछ-कुछ हँस अवश्य रहे थे।

तुम्हारे चरणों को लक्ष्य करके काँपते हुए हाथों से मैंने वह हार जमीन पर रख दिया और घुटनों के बल बैठकर गर्दन झुका कर एक बार उस पावन भूमि की रज को चूम लिया!

लोग मुझपर क्षुब्ध थे मेरी अशिष्टता के लिए और मैं अपने पर क्षुब्ध था अपनी मूर्खता के लिए! फूल चुनने और हार बनाने में समय नष्ट न करके मैंने खुद अपने ही को हार क्यों न बनाया?

क्षेमानन्द 'राहत'

श्रम-धर्म

प्रकृति का नियम है कि जो श्रम करता है वही नीरोग, शक्तिशाली और स्वतंत्र होता है। हमारे दोनों हाथों में से एक, जिससे हम अधिक काम लेते हैं, अधिक शक्तिवान्, श्रम-सहिष्णु और कार्य-कुशल होता है। अधिकांश लोग दाहिने हाथ और दाहिने पाँव से अधिक काम लेते हैं। फलतः दाहिना हाथ और दाहिना पाँव बायें हाथ और बायें पाँव की अपेक्षा अधिक मजबूत और कार्य-कुशल होता है। हम दाहिने हाथ से अच्छी तरह लिख सकते हैं, तस्वीर बना सकते हैं, तथा अन्य कई काम ले सकते हैं। उसी प्रकार दाहिने पाँव से हम फूटबाल को, बनिस्बत बायें पाँव के, अधिक अच्छी तरह 'किक' लगा सकते हैं। शरीर के लिए दोनों अंग समान हैं। परन्तु जो अधिक काम करता है उसे शरीर अधिक पोषण देता है और इसलिए वह अधिक सुदृढ़ भी होता है।

भारत सुजला, सुफला और शस्य-श्यामला धरित्री है। यहां का जीवन उतना संकट-मय नहीं, जितना कितने ही अन्य देशों का है। अतः लोग भी स्वभावतः शान्त, कम महत्वाकांक्षी और अधिक सुखप्रिय हैं। सुखप्रिय तो सारा संसार ही है, परन्तु यहां सुख-सामग्री अनायास उपलब्ध होने के कारण उनकी प्रयत्न-शक्ति के विकास के लिए बहुत कम अवकाश मिलता है। जीवन आम तौर पर निर्विघ्न होने के कारण लोगों में 'होउ कोउ नृपति हमें का हानि' वाली वृत्ति जड़ पकड़ गई है।

वास्तव में मनुष्य या राष्ट्र के जीवन में जितना ही अधिक संघर्ष होता है, जितनी ही अधिक रुकावटें आती हैं, उसे संसार का अनुभव उतना ही अधिक होता है, उसकी भिन्न-भिन्न शक्तियां उतना ही अधिक विकास करती हैं। इंग्लैण्ड, जर्मनी, बेल्जियम, जापान, संयुक्त राज्य अमेरिका हॉलैण्ड, डेनमार्क आदि राष्ट्रों के उत्कर्ष में उनके जटिल जीवन-संघर्ष का बहुत भारी हिस्सा है। जिनका प्रदेश छोटा है, चारों ओर से समुद्र लहरा रहा है, देश के निवासियों का जीवन सजीव ज्वालामुखियों के कारण सर्वदा संकटापन्न है, जो चारों ओर से बलिष्ठ राष्ट्रों से घिरे हुए हैं, जिन राष्ट्रों में अपने निवासियों की अत्यंत प्राथमिक आवश्यकताओं को पूरा करने की सामग्री ही तैयार नहीं होती, वे साहसी, उद्यमी, कष्ट-सहिष्णु, श्रमशील न होंगे तो कल ही काल-कवलित हो जावेंगे। उन्हें अपने जीवन के लिए सदा उद्यमी बने रहना पड़ता है और हम देखते हैं कि ये राष्ट्र आकार और जन-संख्या में छोटे होने पर भी संसार के प्रबल, पुरुषार्थी राष्ट्रों में उनकी गणना की जाती है। इसका कारण क्या है? उनकी श्रमशीलता।

भारत में भी कई ऐसे प्रान्त हैं। पंजाब और सीमान्त प्रदेश के हिन्दुओं को अपनी रक्षा के लिए हमेशा आक्रमणकारी मुसलमानों का सामना करना पड़ता है। फलतः उनकी प्रतिकार-शक्ति भी देश के अन्य हिस्सों में रहने वाले हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक खिली हुई है। बंगाल, मद्रास और बम्बई प्रान्त के निवासियों को सब से पहले बुद्धिमान विदेशियों का सामना करना पड़ा। और हम देखते हैं कि पश्चिमी विद्या के विकास में उन्होंने भारत के अन्य प्रान्तों की अपेक्षा अधिक कामयाबी हासिल की है। सह्याद्रि के 'मावला', अरवलि के भील और राजपूत, पंजाब के सिक्ख और हिमालय के गोरखे युद्ध-कला में देश के अन्य निवासियों की अपेक्षा अधिक बढ़े चढ़े हैं। इसका कारण भी है अभ्यास तथा उनका संग्रामम‍य जीवन। पुरुषार्थ का पौधा परिश्रम की उर्वरा भूमि में ही फूल-फल सकता है।

यों तो सारा संसार कर्म-मय है। यदि कुबेर भी अकर्मण्य हो जाय तो उसे शीघ्र ही राह का भिखारी होना पड़ेगा। परन्तु कितनी ही भूमियां स्वभावतःकर्म के अनुकूल होती हैं और कितनी ही भोग के अनुकूल।

भारतवर्ष के निवासी कहीं अपने देश की विपुलता का दुरुपयोग कर, अकर्मण्य बनकर, अपने पुरुषार्थ को न खो दें इसीलिए धर्माचार्यों ने परिश्रम के गौरव पर बार-बार ज़ोर दिया है।

> कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिताः जनकादयः।
> लोक संग्रहमेवापि संपश्यन् कर्तुमर्हसि ॥

यह कोई कारण नहीं कि यदि हमें अपनी आजीविका के लिए काम न करना पड़े तो हम और कोई काम भी न करें। अकर्मण्यता नाशकारी है, यदि मनुष्य उससे बचा न रहेगा तो उसका पतन और नाश निश्चित है।

> न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
> नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥
> यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
> मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥
> उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्मचेदहं।
> संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥

यदि परिश्रम अथवा कर्म ही जीवन का आधार है, तो प्रत्येक राष्ट्र को उसका पालन करना आवश्यक है। कई राष्ट्रों की भौगोलिक परिस्थिति ही ऐसी होती है कि उन्हें कर्म करना ही होता है। पर जिनकी परिस्थिति ऐसी नहीं, उन्हें अपने लिए कर्म पैदा करना चाहिए—क्योंकि कर्म ही तो जीवन का नियम है। जबसे भारत के ऊंचे वर्ग के लोगों ने कर्मयोग की

> 'उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्मचेदहम्'

वाली शिक्षा को भुला दिया उसी क्षण से उसकी पराधीनता का सूत्रपात हो गया।

कई बार हम परिश्रम से इतने विमुख हो जाते हैं कि घर में यहां का लोटा वहां रखना भी पसंद नहीं करते। छोटे से छोटे काम के लिए नौकर और महरिया की जरूरत होती है और शाम को व्यायाम के लिए तीन-तीन चार-चार मील बाहर घूमने के लिए जाते हैं! यह कैसी बुद्धिमत्ता है कि घर का काम छोड़ कर हम निकम्मा व्यायाम करने बैठें? हमारी इस आर्थिक दुर्दशा के जमाने में यह फ़ायदेमन्द भी होता है? उपयोगी परिश्रम ही सर्वोत्कृष्ट व्यायाम है। यही श्रम-धर्म है।

श्रम-धर्म समयानुसार भिन्न-भिन्न रूप धारण करता रहता है। वही श्रम-धर्म सर्वोत्कृष्ट है, जो स्वदेशी-धर्म का पोषक हो।

भारत की वर्तमान परिस्थिति में कई उद्यमों के पुनरुज्जीवन की जरूरत है। यदि हम अपने देश की आवश्यकता को समझ कर श्रम-धर्म का पालन करने लगें तो व्यक्ति, परिवार और देश का उत्कर्ष निश्चित है।

वैजनाथ महोदय

चर्खा

(कुण्डलियां)

चर्खा! तू संसार में, है अपूर्व हो यन्त्र।
दीन-हीन इस देश का, तू है मोहन-मन्त्र ॥
तू है मोहन-मन्त्र और परतन्त्र-विनाशी।
तेरे गुण हैं अद्वितीय स्वाधीन विकासी ॥
तुझसे होगी सुख-स्वराज्य की निश्चय वर्षा।
नमस्कार शतबार तुझे है प्यारा चर्खा ॥

जगन्नारायण देव शर्मा 'कवि पुष्कर'

हृदय की फुलझड़ी

प्रेम

प्रेम वह स्वर्गीय रसायन है जो दो आत्माओं को पिघला कर एक में ढाल देता है।

यह संसार प्रेम के बल पर ही टिका हुआ है, वैज्ञानिक जिसे आकर्षण कहते हैं, वह प्रेम की शक्ति की एक झाँकी है।

प्रेम आत्मा का गुण है। तब क्या उससे शरीर का भी कोई सम्बन्ध है ? संसार भर में विचरण करने वाला पक्षी पहले किसी घोंसले में ही तो सेया गया था।

सौरभ फूल की पङ्खड़ियों को पङ्ख बनाकर ही तो उड़ता है; अशरीरी किशोर प्रेम भी किसी सुन्दर शरीर के पालने में झूलता है।

यह विश्व किसी महान् प्रेमी का गहरा विश्वास है। इसमें व्यथित आनन्द है, मधुर अधीरता है, निराश आशा है और सचेत विमूढ़ता है।

सूरज समुद्र की तरङ्गों में हजारों रूपों में प्रतिफलित हो उठता है ? तब क्या मेरा यह प्रेम किसी महान् प्रेम के प्रकाश का प्रतिविम्ब है, किसी की प्रेरणा का प्रतिफल है, किसी के सोजभरे गले से निकले हुए प्रणय-मन की एक छोटीसी प्रतिध्वनि है ?

प्रेम में जो अलौकिक आनन्द है वही तो आत्मा का सार है; और उसमें जो जलन है वह शारीरिकता की तलछट है !

प्रेम की मदिरा का स्वाद कुछ पीने वालों ही से पूछो; उसमें गजब की मधुरता है और है गजब की कटुता !

इश्के मजाजी इश्के हक़ीक़ी का वाहन है। ऐ किसी पर मरने वाले, तू जी-जान से, तन-मन से प्रेम कर !

इस संसार का स्वामी सचमुच कोई लजीला प्रेमी है। हाय; कैसी सुस्निग्ध तल्लीनता से वह सेवा करता है, पर सामने आने से झिझकता है।

प्रेमी बोले या न बोले, सामने आये या न आये, पर उसके हृदय का भाव छिपा नहीं रह सकता; मैं देखता हूँ, लाख छिपने पर भी पत्ते-पत्ते से उसके हृदय का प्रेमल सौन्दर्य फूटा पड़ता है।

तुम बड़े हो तो क्या हुआ ? इतने बड़े होने पर भी तुम्हारे हृदय से ईर्ष्या तो न गई ! क्षण भर के लिए भी तुमसे विमुख होकर यदि मैं तुम्हारी सखी माया की ओर ध्यान देता हूँ तो तुम तुरन्त ही बिगड़ कर गाल फुला कर चल देते हो।

स्नेह-मय हृदय-दीप को जलाकर जब मैं तुम्हारी पूजा के लिए आता हूँ तब ऐ निष्ठुर ! तुम पत्थर-पाहनी पत्थर बन जाते हो; पर, जब मैं विरक्त होकर चल देता हूँ तब तुम मेरी खुशामद करते फिरते हो।

प्रेमी हृदय भी बड़ा मर्मज्ञ होता है। आँखें कहती हैं, तू नहीं है; कान कहते हैं, तू सुनाई नहीं देता; और हाथों ने तुझे कभी स्पर्श नहीं किया; पर न जाने क्यों मेरे हृदय की धड़कन कहती है, तू है, अवश्य है।

प्रेम का सौदा कैसा मजेदार है। मैं अत्यन्त क्षुद्र पापी हूँ, मेरे पास देने को था ही क्या ? पर जो कुछ मेरे पास था वह मैंने तुम्हें दे डाला और बदले में इतने बड़े 'तुम' मुझे मिल गए।

सौभाग्य-सुख में भूले हुए लोग भी क्या प्रेमी होने का दावा करते हैं ? प्रेम की पीड़ा में जो सुख-स्वास्थ्य है वह तो कुछ अभागों ही की सम्पत्ति है।

हृदय को शुद्ध करने के लिए क्या प्रेम से बढ़कर भी कोई कीमिया है ? जो प्रेम के लिए रोया उसने शुभ मुहूर्त में गङ्गा-स्नान किया !

ऐ तपस्वी ! तू तपस्या छोड़कर प्रेम कर ! प्रेम की परीक्षा में जो पास हुआ उसके लिए संसार की तपस्यायें बच्चों का खेल हैं।

क्षेमानन्द 'राहत'

ज्ञानाञ्जन

महान् पुरुषों का कार्य

श्री घनश्यामदासजी बिड़ला ने विलायत से महात्माजी और मालवीयजी के अस्वास्थ्य पर चिंता प्रकट करते हुए दोनों के स्वास्थ्य की सम्हाल रखने के संबंध में महात्माजी को लिखा था। उत्तर में महात्माजी ने उन्हें जो सुन्दर संदेश भेजा वह देश की वर्त्तमान अधीर और चिंतातुर अवस्था में परम उपयोगी है—

प्रत्येक मनुष्य की बुद्धि कर्मानुसारिणी रहती है। ऐसी बातों में पुरुषार्थ के लिए बहुत ही कम जगह है। प्रयत्न करना कर्त्तव्य है ही और करना चाहिए; परन्तु प्रत्येक मनुष्य के लिए एक समय तो आता ही है जब सब प्रयत्न व्यर्थ बनता है और सद्भाग्य से पुरुषार्थ की रक्षा के कारण ईश्वर ने इस आखरी समय का पता किसी को नहीं दिया है। तब इस अनिवार्य होनहार के लिए हम क्यों चिंता करें? राष्ट्र का कारोबार न मालवीयजी पर निर्भर है, न लालाजी पर, न मुझ पर। सब निमित्त-मात्र रहते हैं और मेरा तो यह भी विश्वास है कि सत्पुरुष के कार्य का सच्चा आरम्भ उसके देहांत के बाद ही होता है। शेक्सपीयर का यह कथन कि मनुष्य का भला कार्य प्रायः उसी के साथ चला जाता है और बुरा कार्य उसके पश्चात् रह जाता है, ठीक नहीं है। बुराई की कभी इतनी आयु नहीं रहती है। राम ज़िन्दा है और उसके नाम से हम पवित्र होते हैं। रावण चला गया और अपनी बुराइयों को अपने साथ ले गया। कोई दुष्ट मनुष्य भी रावण नाम का स्मरण नहीं करते हैं। राम के युग में न जाने राम कैसा था। कवि ने इतना तो बता दिया है कि अपने युग में राम पर भी आक्षेप रहा करते थे। परन्तु आज राम की सब अपूर्णता राम के शरीर के साथ भस्म हो गई, और उसको अवतारी समझ कर हम पूजते हैं और राम का राज्य आज जितना व्यापक है उतना हर्गिज़ राम के शरीरस्थ रहते हुए नहीं था। यह बात मैं बड़ी तत्वज्ञान की नहीं लिख रहा हूं, न हमारे लिए शांति रखने के कारण। परन्तु मैं यह दृढ़ता से कहना ही चाहता हूं कि जिनको हम सन्त पुरुष मानते हैं उनके देहांत का कुछ दुःख नहीं मानना चाहिए। और इतना दृढ़ विश्वास रखना चाहिए कि सन्त पुरुष के कार्य का सच्चा आरम्भ, या कहो सच्चा फल, उसके देहांत के बाद ही होता है। अपने युग में जो उसके बड़े-बड़े कार्य माने जाते हैं वे भविष्य में होने के परिणाम के साथ केवल यत्किञ्चित् है। हाँ; हमारा इतना कर्त्तव्य है सही कि हम हमारे ही युग में जिनको सन्त पुरुष मानें उनकी सब साधुता का यथाशक्ति अनुकरण करें।

राष्ट्र-धर्म

राष्ट्र-धर्म ही आधुनिक युग का सर्व-प्रधान धर्म है। वैसे तो सभी देशों के लिए यह आवश्यक है, पर पर-शासित राष्ट्रों के लिए तो इसकी आवश्यकता और भी अधिक है। इसीलिए कई वर्ष पूर्व श्री अरविन्द घोष ने इस संबंध में जो बहुमूल्य विचार प्रकट किये थे उनके मुख्य-मुख्य अंशों को, अंग्रेजी-दैनिक 'फ़ारवर्ड' के एक विशेषांक से अनूदित कर, पाठकों के विचारार्थ प्रस्तुत किया जाता है—

राष्ट्र-धर्म क्या है ? राष्ट्र-धर्म सिर्फ़ एक राजनैतिक कार्यक्रम ही नहीं है। राष्ट्र-धर्म तो वह धर्म है जो ईश्वरीय प्रेरणा से दुनिया में आया है। राष्ट्र-धर्म वह ध्येय है जिसमें आपको रहना होगा। जो आदमी केवल किसी प्रकार के बौद्धिक अभिमान के कारण अपने को राष्ट्रवादी कहता हो, यह समझ कर कि जो अपनेको ऐसा नहीं कहते उनकी

बनिस्बत मैं अधिक ऊँचा और देशभक्त हूं, उसे अपनेको राष्ट्रवादी कहने का साहस न करना चाहिए। अगर आप सचमुच राष्ट्रवादी होना चाहते हैं, इस राष्ट्रीयता के धर्म की उँचाई तक पहुँचना चाहते हैं, तो आपको यह काम धार्मिकभाव से ही करना चाहिए। आपको यह याद रखना होगा कि आप सब परमेश्वर के हाथ के औज़ार हैं।

जो कुछ हो रहा है, वह सब परमेश्वर ही कर रहा है; हम कुछ भी नहीं कर रहे हैं। जब वह हमसे कष्ट-सहन कराता है, तब हम कष्ट-सहन करते हैं; इसलिए कि दूसरों को शक्ति प्रदान करने के लिए कष्ट-सहन आवश्यक है। इसी प्रकार जब हमारी विशेष ज़रूरत नहीं रहती तब वह हमें दूर कर देता है। हालत और ख़राब हो तो हमें न केवल जेल जाना पड़ता है वरन् अपने जीवन भी अर्पण कर देने होते हैं, और जो अग्रगण्य अथवा अत्यावश्यक प्रतीत होते हैं उन्हें जब अपने शरीर समर्पण करने पड़ते हैं तब उनके लिए भी वह आवश्यक ही होता है और हमें मालूम पड़ता है कि यह भी परमेश्वर का ही एक आदेश है और उनके स्थान पर परमेश्वर अन्य अनेकों को पैदा करेगा। क्योंकि, वह स्वयं हमारे पीछे है: स्वयं वह ही कार्य और उसका करने वाला है।

यही वह धर्म है कि जिसके पालन करने का हम प्रयत्न कर रहे हैं। जिस धर्म के द्वारा राष्ट्र में, अपने साथी देशवासियों के बीच, हम परमेश्वर का साक्षात्कार करने का प्रयत्न कर रहे हैं वह भी यही है। तीस करोड़ देशवासियों के बीच हम उसका साक्षात्कार करने का प्रयत्न कर रहे हैं। अपने निज् स्वार्थों के लिए नहीं किन्तु दूसरोंके हितार्थ काम करने और प्राणार्पण करने के लिए हम प्रयत्नशील हैं—अलबत्ता इनमें से कुछ जान-बूझ कर काम कर रहे हैं और कुछ अनजान में।

जब आप परमेश्वर में विश्वास करें, जब आप समझते हों कि परमेश्वर आपको रास्ता बता रहा है, तब आप यह भी विश्वास करें कि परमेश्वर ही सब कुछ कर रहा है और आप कुछ भी नहीं कर रहे हैं:—तब, इसमें डरने की क्या बात? अपने को, अपने धन, अपने शरीर, अपने जीवन और जो कुछ भी अपने पास हो उस सब को दूसरों के लिए समर्पित कर देना ही जब आपका धर्म और ध्येय है तब आप डर ही कैसे सकते हैं? आपके डरने की बात ही क्या है? डरने की तो कोई बात नहीं है। इस संसार के न्यायालयों के सामने आपको जाना पड़े तब भी आप साहस के साथ उनका सामना कर सकते हैं। आपके इस धर्म का अभिप्राय ही यह है कि आपमें साहस है। क्योंकि आप कुछ नहीं, आपके अन्दर की कोई चीज़ ही सब कुछ है। आपके अन्दर जो विराजमान् है उस अमर, अनादि और अनन्त आत्मा को न तो तलवार काट सकती है और न पानी डुबा सकता है; तब ये सारे न्यायालय और संसार की सारी शक्तियां उसका क्या बिगाड़ सकती हैं? उसे न तो जेलख़ाना रोक सकता है, और न फांसी ही उसका ख़ात्मा कर सकती है। और अपने अन्दर रहने वाले परमेश्वर का आपको ज्ञान हो जाय, तब संसार में रह ही क्या जाता है कि जिससे आप डरें?

व्यक्तिगत सम्पत्ति

मुझे सारा मनुष्य-समाज उस पशु-समूह के समान दिखाई पड़ा जिसमें बैल, गाय और बछड़े सभी हैं, और जो एक ऐसे बाड़े के भीतर बन्द है कि जिसके चारों तरफ़ मज़बूत तारों का जंगला लगा हुआ है। उस बाडे के बाहर हरी हरी घास का सुन्दर चरागाह है और खाने-पीने की बहुतसी चीज़ें लगी हुई हैं; पर अन्दर उन पशुओं के खाने-भर के भी काफ़ी घास नहीं है—और इस कारण, जो कुछ भी घास उसके अन्दर है उसको पाने के लिए वे पशु अपने नुकीले तेज़ सींगों से एक-दूसरे को बड़ी निर्दयता से मार रहे और एक-दूसरे को अपने पैरों-तले कुचल रहे हैं। मैंने देखा कि उन पशुओं का स्वामी, जो एक अच्छे स्वभाव और समझ का आदमी था, उनके पास आया। उनकी दशा देख कर वह दुःखी हुआ और सोचने लगा कि इनकी दशा सुधारने के लिए कौन से उपाय काम में लाये जायँ? उसने ख़ूब हवादार और नालीदार सुन्दर गोशालायें बनवा दीं, जिससे कि गर्मी में रहने के लिए पशुओं को सुभीता हो जाय। सींगों के सिरे मढ़वा दिये, जिससे अपनी जीवन-रक्षा के प्रयत्न में वे एक दूसरे को इतनी निर्दयता के साथ न मार सकें। बाड़े का एक हिस्सा बूढ़े बैलों और गायों के लिए अलग कर दिया जिससे अपने जीवन की अन्तिम अवस्था में अपनी जीवि

के लिए उन्हें अधिक परिश्रम न करना पड़े और पेट भरने को काफ़ी घास मिल जाय। बछड़े दूसरे पशुओं का शिकार हो रहे थे, कुछ भूख के मारे तड़प-तड़प कर मर रहे थे, और इस क़ाबिल नहीं थे कि बढ़कर कुछ काम दे सकें; इसलिए उसने यह प्रबन्ध किया कि उन्हें रोज़ सवेरे पीने को थोड़ा-सा दूध मिल जाया करे। उन पशुओं के स्वामी ने, जो कुछ भी वह कर सकता था, उनकी दशा सुधारने के लिए किया। परन्तु जब मैंने उससे पूछा, 'आप एक सीधीसी बात यह क्यों नहीं करते कि इस जंगले को ही हटा दें, जिससे वे स्वतंत्र होकर विचर सकें और अपनी इच्छानुसार मनमाना चारा खा सकें?' तब उसने उत्तर दिया—'वाह! यदि मैं ऐसा करता तो उनका दूध जो कभी नहीं दुह पाता।' *

महात्मा टाल्स्टाय

लक्ष्य कैसा हो?

किसी महान् वस्तु को अपना लक्ष्य बनाओ—ऐसी चीज़ों को अपना लक्ष्य बनाओ जो मुश्किल हों (और दुनिया में ऐसी कोई चीज़ महान् नहीं है जो मुश्किल न हो)। यदि तुमने किसी उच्च और उदात्त वस्तु को अपना लक्ष्य बनाया और उसमें तुमने सफलता भी प्राप्त की, तो तुम आम तौर पर देखोगे कि तुमने उस अकेली बात में ही सफलता नहीं प्राप्त की है। उसके साथ ही अनजान में तुम्हें सैकड़ों ऐसी चीज़ें मिली दिखाई देंगी जिनका ख़याल तुमने स्वप्न में भी न किया होगा।

यद्यपि अच्छे काम के लिए किये गये हमारे शुभ प्रयत्न हमें व्यर्थ जाते हुए दिखाई दें—उसके द्वारा मानव-जाति का कुछ भी प्रत्यक्ष हित होता हुआ हम न दिखा सकें और यद्यपि सौ में निन्यानवें बार ऐसा दिखाई दे, तथापि सौवीं बार उसका परिणाम ऐसा महान् हो सकता है कि जिसकी हमने कभी आशा भी न की हो और जिस शख़्स ने उसका भविष्य पहले से कह रक्खा हो उसे हमने शांति-पूर्वक विचार करने वालों की सीमा से परे अति-उमंगी मान लिया हो। †

जान स्टुअर्ट मिल

* टॉल्स्टाय की एक पुस्तक से

† विलियम लाइड गैरिसन के चरित्र की शिक्षा से।

अस्पन्द तीर्थ

नदी में एक बहुत गहरा और चौड़ा स्रोत था। राजा ने सोचा कि चलो शरद्-ऋतु में स्वच्छ पवित्र पानी को रोक लें। मंत्री-पुरोहितों ने "उदारः कल्पः, उदारः कल्पः" कह कर राजा के विचार का स्वागत किया। कारीगर मज़दूर इकट्ठे हुए; और स्रोत के चारों ओर सुन्दर, निर्दोष और मज़बूत दीवार खड़ी कर दी गई। पानी तक पहुँचने के लिए, प्रत्येक वर्ण के लिए, जुदे-जुदे घाट बँधवा दिये गये। काम अच्छी तरह से पूरा हुआ। लेकिन ··· ··· ··· ···

लेकिन अब बाहर का नया पानी अन्दर नहीं आ सकता और पुराना पानी बाहर नहीं जा सकता था। लोग कहने लगे, "यही तो इससे भारी लाभ है! दूसरी ऋतु का अपवित्र पानी अन्दर नहीं जा सकेगा और पवित्र पानी का एक बूंद भी व्यर्थ नहीं जा रहा है। सारा का सारा पवित्र पानी हमीं को मिलता है।" यह कहने की तो ज़रूरत ही नहीं कि अन्त्यज इस पानी तक नहीं पहुँच सकते थे। कुछ दयावान लोग ज़रूर सरोवर में से एक-आध लोटा उन्हें दे देते थे। लेकिन ज़्यादातर अन्त्यजों को नदी पर ही जाना पड़ता था।

ब्राह्मणों ने अस्पन्द-सरोवर का माहात्म्य लिखा। हरेक रोग पर उसका पानी औषधि माना जाने लगा—रोग दूर न हो तो वह दोष रोगी का! भला पवित्र पानी को दोष कैसे लगाया जा सकता है? ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये त्यों-त्यों पानी अधिकाधिक पवित्र गिना जाने लगा। अस्पन्द-सरोवर अस्पन्द तीर्थ हुआ और सचमुच अस्पन्द तीर्थ का पान करने वाले भावुक लोग अस्पन्द होने लगे। कितनों ही को तो अर्धाङ्ग हो गया।

कुछ समय बाद अस्पन्द तीर्थ में कमल उगे। धन्य! धन्य!! नदी में तो कभी कमल दिखाई ही नहीं दिये थे। दीवारें खड़ी कीं, घाट बँधवाये, पानी को रोका और प्रबल प्रवाह बंद किया तभी तो यह शुभ परिणाम दिखाई दिया। पवित्र जल में से पवित्र कमल उगे। पानी की पवित्रता सिद्ध हो गई। नास्तिकों के मुँह बंद हुए। जय! अस्पन्द-तीर्थ की जय!!

पानी सूखने लगा। असंख्य उच्चवर्णी लोगों के नहाने-धोने से पानी में मैल बढ़ने लगा। बदबू फैलने लगी। पर उसे बदबू कहे कौन? इतनी अधार्मिकता किसमें थी? हाँ, लड़के उससे घृणा करते और नदी पर जाना पसन्द करते। पर यह तो उनकी दुर्विनीतता! बात बहुत लम्बी है, संक्षेप में इतना ही कहें कि अस्पन्द-तीर्थ का माहात्म्य नहीं बल्कि काल-माहात्म्य अधिक प्रबल सिद्ध हुआ। दीवारों के पत्थर ढीले हो गये थे। तीर्थ के पानी का सेवन करने वालों के हाथ-पैर सन्धिवात से बेहद अकड़ गये थे। दीवारों की मरम्मत कौन करे? और पवित्र दीवारों के पत्थर को छुए भी कौन? हटावे कौन? बाप-दादाओं ने जिस प्रकार पत्थरों को जमाया था, बड़ी ही चतुरता-पूर्वक जमाया था; उसमें तो फेरफार हो ही नहीं सकता था। अन्त में एक साल खूब बारिश हुई, नदी में बहुत बड़ी बाढ़ आई, और दीवार की वही गति हुई जो होने वाली थी। *

काका कालेलकर

सत्याग्रही का मार्ग

जब नागपुर-सत्याग्रह के साथ महात्माजी ने अपनेको शामिल नहीं किया, तब उनके विचारों और आदर्शों तथा सत्याग्रह के वास्तविक भावों को न समझने वाले भाइयों ने बड़ा कोलाहल मचाया था। अब महात्माजी ने नील-सत्याग्रह का समर्थन किया है, त्रावणकोर आदि में अछूतों के लिए सत्याग्रह की विधि का विवेचन कर रहे हैं और इस सिलसिले में उन्होंने सत्याग्रहियों को उनका कर्तव्य-पथ बड़ी अच्छी तरह बताया है। क्या वे भाई उस पर ध्यान देंगे? उन्होंने कहा—

सत्याग्रही यदि सचाई के सीधे और सकड़े पथ पर अटल न रहेगा तो वह खुद अपनेको और अपने प्रिय काम को, दोनों को, धक्का पहुँचावेगा। सत्याग्रह के रूप में मैंने सुधारकों के हाथ में एक अनमोल और रामबाण शस्त्र दे दिया है। परन्तु सफल सत्याग्रह की शर्तें टेढ़ी हैं। यदि सत्याग्रही का विश्वास अपने पर, अपने काम पर और ईश्वर पर होगा तो वह कदापि हिंसा का अवलंबन न करेगा, अपने खूँखार प्रतिपक्षी के प्रति भी नहीं जिसे कि वह अन्याय, अज्ञान और यहाँ तक कि हिंसा-काण्ड का भी अपराधी समझता होगा। मैं बिना खण्डन की आशंका के यह कहता हूँ कि सत्य की रक्षा हिंसा-काण्ड के द्वारा आजतक किसी ने नहीं की है। इसलिए सत्याग्रही अपने प्रतिपक्षी या शत्रु कहलाने वालों को भय और दबाव के बल से नहीं, बल्कि प्रेम के बल से, उसके विचारों को बदल कर जीतने की आकांक्षा रखता है। उसके तरीक़े हमेशा विनयपूर्ण और सज्जनोचित होंगे। वह कभी अत्युक्ति न करेगा। और चूंकि अहिंसा का दूसरा नाम है प्रेम, इसलिए उसके पास स्वयं कष्ट-सहन के अतिरिक्त दूसरा शस्त्र नहीं है। फिर अस्पृश्यता-निवारण जैसे धार्मिक और आत्मशुद्धि की हलचल में तो घृणा, जल्दबाज़ी, अविचार और अत्युक्ति के लिए बिल्कुल जगह नहीं है। चूंकि सत्याग्रह सीधे वार का सबसे ज़बरदस्त तरीक़ा है, सत्याग्रही तभी उसका अवलंबन करता है, जब उसके और सब रास्ते बंद हो जाते हैं। इसलिए उसका काम है कि वह योग्य अधिकारियों से कोशिश करे, लोकमत को जगावे, शान्ति और धीरज के साथ अपनी बात लोगों के सामने रक्खे और उसी हालत में सत्याग्रह का अवलंबन करे जब कि ये सब उपाय निष्फल हो जायें। पर जहाँ एक बार उसने, अपनी अन्तरात्मा की पुकार के अनुसार, सत्याग्रह छेड़ दिया, तो फिर उसे क़दम पीछे रखने के लिए गुंजाइश नहीं।

"कार्य-क्षेत्र की अच्छी तरह जाँच किये बिना लड़ाई छेड़ो और न कोई काम शुरू करो। दुश्मन को छोटा समझो।"

"यदि समुचित स्थान को चुन लें और होशियारी के साथ युद्ध करें, तो दुर्बल भी अपनी रक्षा करके शक्तिशाली को जीत सकते हैं।"

ऋषि तिरुवल्लुवर

* सत्याग्रह-आश्रम के हस्तलिखित द्वैमासिक 'मधपूडो' से
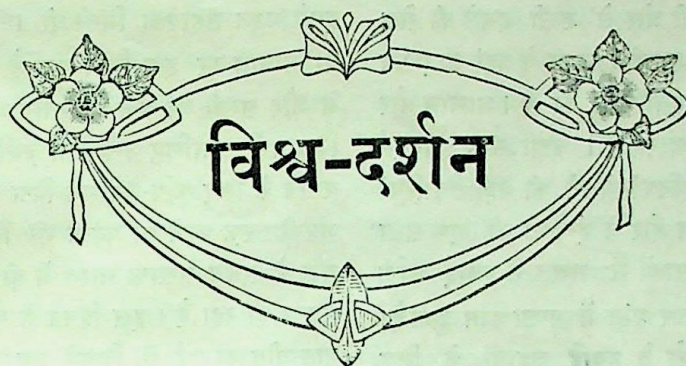
भारत में युद्ध की तय्यारियां

ब्रिटिश साम्राज्य की शक्ति और केन्द्र भारतवर्ष है। अंग्रेज़ों को शेष सम्पूर्ण साम्राज्य के छिन्न-भिन्न हो जाने की उतनी पर्वाह नहीं है, जितनी कि भारतवर्ष के हाथ से निकल जाने की है। भारतवर्ष ही ब्रिटिश साम्राज्य का प्राण है। इसलिए इंग्लैण्ड का सब से बड़ा प्रयत्न यह रहता है कि भारतवर्ष उसके हाथ से कभी न निकल सके। भारतवर्ष पर अपना अधिकार स्थिर करने के लिए ही उसे जिब्राल्टर, माल्टा, साइप्रस, स्वेज़, अदन आदि महत्वशाली स्थानों पर अपना अधिकार करना आवश्यक हुआ है। इसी की रक्षा के लिए अंग्रेज़ पास के एशियाई प्रदेशों को अपने अधिकार में रखना चाहते हैं। यही कारण है कि वे अन्य एशियाई प्रदेशों की राष्ट्रीय जागृति को भी सहन नहीं कर सकते। उन्हें भय है कि भारत के पड़ोसी देशों की स्वातन्त्र्य-संग्राम में सफलता भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन पर अपना विशेष प्रभाव डाले बिना न रहेगी। इसके लिए सरकार सदा इस प्रयत्न में रहती है कि भारत का अन्य देशों से सम्पर्क ही न होने दिया जाय, जिससे उनमें पारस्परिक सहानुभूति, सहृदयता आदि के भाव पैदा न हो सकें। अभी अधिक समय नहीं हुआ कि श्रीयुत तुलसीचरण गोस्वामी की अध्यक्षता में भारतीय चिकित्सकों का एक स्वयंसेवक-दल चीन में आहत चीनियों की सहायतार्थ जाने लगा था, परन्तु सरकार ने इस पवित्र और राजनीति-रहित कार्य के लिए भी उन्हें जाने की आज्ञा न दी। हाल में रूस की सोवियट सरकार ने अपनी १० वीं वर्षगाँठ पर सम्मिलित होने के लिए कुछ भारतीयों को भी निमन्त्रित किया था, परन्तु भारत-सरकार ने जाने की आज्ञा न दी।

'त्यागभूमि' के गतांक में हमने ब्रिटेन और रूस के पारस्परिक सम्बन्ध पर लिखते हुए किसी भावी युद्ध की तैयारी का निर्देश किया था। इसमें संदेह नहीं कि उस भावी युद्ध का सब से अधिक सम्बन्ध भारतवर्ष से ही है। रूस के बढ़ते हुए प्रभाव तथा उसकी अफ़ग़ानिस्तान के साथ की संधि ने इंग्लैण्ड के शासकों को बहुत ही चिन्ता में डाल दिया है। अफ़ग़ानिस्तान के अमीर अभी, कमालपाशा से मिलने के लिए, टर्की जाने वाले थे। यह भी किसी रहस्य से ख़ाली नहीं है, यह निश्चित है। शंघाई में सेनायें भेजने के समय से ही भारतीय सीमाओं को सुरक्षित करने की चिंता बहुत बढ़ गई है। रूस चीन और अफ़ग़ानिस्तान की पूर्ण रूप से सहायता कर रहा है, इसलिए उसके संभावित आक्रमणों से रक्षा करने के लिए इंग्लैण्ड भारत में युद्ध की बड़ी-बड़ी तैयारियां करने लग गया है। भारतवर्ष में सैनिक छावनियों के स्थापित करने का सरकार ने निश्चय कर लिया है। अभी पिछले साल ब्रिटेन के वायुयान-विभाग के मंत्री सैमुअल होर भारत के पश्चिमोत्तर प्रांत का निरीक्षण करने आये थे और अब वहां के सेना-सचिव भारत में घूमने आ रहे हैं। यह बातें मतलब से ख़ाली नहीं। पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त में जो ख़ैबर दर्रे के पास अफ़ग़ानिस्तान तक ग़रीब भारत का करोड़ों रुपया व्यय कर रेल बनाई गई है, उसका व्यापारिक दृष्टि से कोई विशेष उपयोग नहीं—वह विशुद्ध सैनिक दृष्टि से ही खोली गई है। पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त की तरह अब सरकार का ध्यान पूर्वोत्तर सीमा पर भी गया है। बंगाल और ब्रह्मा को रेल द्वारा जोड़ कर स्याम तक रेल संबन्ध स्थापित कर दिया

गया है, ताकि दक्षिण चीन की ओर से रूसी हमले की रोक की जा सके। ब्रह्मा के गवर्नर हारकोर्ट बटलर ने वहां की ग़रीब जातियों पर विशेष कृपा दिखानी शुरू की है। आसाम और रंगून में सैनिक अड्डे बनाये जा रहे हैं। इसी तरह सम्पूर्ण भारत में हवाई सेना की छावनियां खोलने की बड़ी तैयारियां हो रही हैं। वायुसेना-सचिव होर ने इंग्लैण्ड की एक सभा में कहा था कि पिछले चार सालों में भारत में हवाई शक्ति दुगुनी होगई है और पश्चिमोत्तर प्रांत में अच्छा काम हुआ है। शाही वायु-सेना के कर्नल टर्नर ने हवाई जहाज़ों के लिए बमरौली (ज़िला इलाहाबाद) का स्थान पसन्द किया है। इसी तरह के स्टेशन देश भर में जगह-जगह बनाये जायँगे। प्रयाग से कलकत्ता जाने वाले हवाई जहाज़ का मार्ग काशी, गया, आसनसोल और दमदम होकर होगा। लखनऊ और कानपुर में भी स्टेशन बनेंगे। शाही भारतीय जलसेना के निर्माण के लिए भी हिन्दुस्थान का करोड़ों रुपया ख़र्च किया जा रहा है। यह निश्चित है कि इसमें प्रायः अंग्रेज़ ही सैनिक होंगे, परन्तु उन पर व्यय होगा ग़रीब भारत के किसानों और मज़दूरों की गाढ़ी कमाई से। इसी तरह इंग्लैण्ड के जङ्गी बेड़े को पूर्वीय भूमध्यसागर—कालासागर में लाने का प्रयत्न हो रहा है, ताकि आवश्यकता पड़ने पर भारत में एकदम सेना भेजी जा सके। यहीं तक बस नहीं, ब्रिटिश आक्रमण-कारी सेनाओं को भी भारत में लाने का विचार किया जा रहा है। पहले यह सेनायें यूरोप के लिए थीं। अभी चीन में अंग्रेज़ों की २५००० सेना गई थी। श्रीयुत् हैल्डेन ने उस दिन एक सभा में कहा कि अब इन सेनाओं को भारत में ले जाना चाहिए; क्योंकि अब वहीं ख़तरा है, और वहाँ से चीन में जल्दी और कम ख़र्च में सेनायें भेजी जा सकती हैं। सब देशी रियासतों को भी अपनी-अपनी सेना बढ़ाने का आदेश दे दिया गया है। परन्तु उसे डर है कि कहीं भारतीय जनता उस समय उसका साथ न दे, और यह भी बहुत सम्भव है कि किसी रेल के कर्मचारी उस समय हड़ताल न कर दें। तब उसको स्थल-सेना ले जाने में बहुत बाधा पड़ेगी। इस सम्भावित चिन्ता को दूर करने के लिए उसने करांची और पेशावर में "मोटरलारी-सर्विस" स्थापित की है, जो आवश्यकता पर सेनायें ले जा सके। पिछले यूरोप के युद्ध में इनसे बहुत सहायता मिली थी। इसीलिए मोटरलारि पर आयात-कर हटा दिया गया है, जिससे वे अधिक सं में और सस्ती आ सकें। भारतीय असहयोग की जान वस्तु किसान हैं, इसलिए उन्हें तथा ज़मींदारों को अपना प्रीतिपा बनाने के लिए कृषि-कमीशन बिठा कर उन्हें आश्वासन दे अपनी तरफ़ करने का प्रयत्न भी किया जा रहा है। भा युद्ध के समय शस्त्रास्त्र भारत में ही तैयार हों, इसका प्रबन्ध हो रहा है। इस विषय में एक भारतीय कारख़ाने बात-चीत की गई थी, जिसके उत्तर में उसने कहा कि तोप, गोले आदि सब सामान तैयार कर सकता है त ५००० हवाई बम्ब प्रतिमास तैयार कर दे सकता है। य सब भावी युद्ध की तय्यारियां नहीं तो क्या है?

इसमें सन्देह नहीं कि यह भावी युद्ध केवल इंग्लैण्ड हित के लिए किया जायगा, परन्तु इसमें भारतवर्ष असीम सैन्य तथा धन व्यय होगा। यदि भारत ने गत यु में जिस अदूरदर्शिता का परिचय दिया था वही अब देकर अंग्रेज़ी सरकार की सहायता की, तो यह उसके लि बड़ी भारी भूल होगी। यदि इंग्लैण्ड भावी युद्ध में परा न हुआ, तो भारत की परतन्त्रता और बढ़ेगी ही, अ एशियाई देश भी कुचले जायँगे। इसलिए इस समय भारती नेताओं का कर्त्तव्य है, कि जनता को सावधान करें कि किसी भी रूप में सरकार की सहायता कर अपने और दू देशों की परतन्त्रता बढ़ाने के पाप में सम्मिलित न हों।

जापान की वर्त्तमान नीति

एशियाई देशों में जापान ही ऐसा देश है, जो आज सभ्य देशों में गिना जाता है। संसार की महाशक्तियों उसकी भी गणना है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में उसने यह स्थि अपने बाहुबल से प्राप्त की है। उसने इन बीस-पचीस सा में इतनी आश्चर्यकारक उन्नति की है कि उसे देखकर संसा दङ्ग रह गया। उसने अपनी उन्नति करते हुए यूरोप राजनैतिक और सामाजिक नीति का ही पालन किया है महायुद्ध से पूर्व जापान भी अन्य यूरोपीय देशों की त साम्राज्यवादी था। उसने भी चीन और कोरिया में अ साम्राज्य विस्तार के लिए वही अत्याचार किये, जो यूरोप

साम्राज्यवादी देश अपने अधीनस्थ देशों पर किया करते हैं। उसने गत महायुद्ध में इंग्लैण्ड की सहायता करते हुए चीन में जर्मनी को परास्त कर अपना प्रभाव बढ़ा लिया। उस समय तक इंग्लैण्ड को जापान से मित्रता की आवश्यकता थी; उसने उसे मित्र बनाये रक्खा। युद्ध के बाद उसने देखा कि एशिया में प्रभुत्व बढ़ाता हुआ जापान उसे पूर्व में बढ़ने नहीं देगा, इसलिए उसने जापान की प्रगति को रोकना अपने लिए अत्यन्त आवश्यक समझा। अमेरिका भी चीन पर आँख लगाये बैठा था। उसने भी जापान को अपने कार्य में बाधक समझा। बस, दोनों ने मिलकर जापान को नष्ट करने का प्रयत्न किया और वाशिंगटन की प्रसिद्ध परिषद् में चीन पर प्रभुत्व करने वाली जापान की चीन के साथ की संधियों को रद्द कर दिया! उसने उस समय तो अपने को अकेला पा कर संधियों को स्वीकार कर लिया, परन्तु वह समझ गया कि यूरोपीय शक्तियों से उसे कोई आशा नहीं करनी चाहिए। फलतः यूरोपीय शक्तियों से उसका मन-मुटाव होगया। दो-तीन साल हुए कि अमेरिका और जापान के अख़बारों में परस्पर बहुत चख़-चख़ हुई थी। अमेरिका में जापानियों की नागरिकता के अधिकार न देने का आन्दोलन वहां के अख़बारों ने किया था और जापान में भी अमेरिकन पदार्थों के बहिष्कार का आन्दोलन चला था। इंग्लैण्ड भी जापान की इस प्रगति से कम सतर्क नहीं था, उसने करोड़ों पौण्ड लगा कर सिंगापुर का सैनिक अड्डा स्थापित कर जापान के लिए एक बड़ी समस्या उपस्थित कर दी। यह सब देखकर जापान ने अपनी नीति बदली और एशियाई देशों को मित्र बनाने में ही अपना लाभ समझा। तबसे उसका व्यवहार पूर्वीय देशों विशेषतः चीन के साथ बिलकुल बदल गया है। अब वह यूरोपीय शक्तियों से चीन की रक्षा करने को उद्यत दीखता है। सन् १९२४ में जब चीनी डाकू रेलगाड़ी से कुछ विदेशी यात्री पकड़ ले गये थे, तब यूरोपीय शक्तियों ने चीन की रेलों को अन्तर्राष्ट्रीय अधिकार में करने का प्रयत्न किया था; परन्तु जापान तैयार नहीं हुआ। अतएव पाश्चात्य देश अपने मनोरथ को पूरा न कर सके थे। इसी प्रकार सन् १९२५ में उसने पेकिंग की अन्तर्राष्ट्रीय सभा में चीन की आर्थिक स्वतंत्रता के सम्बंध में चीन का ही पक्ष लिया था। अभी अधिक समय नहीं हुआ कि इंग्लैण्ड ने चीन पर आक्रमण किया था। उस समय इंग्लैण्ड ने जापान को भी सहायता देने के लिए कहा, परन्तु जापान ने स्पष्ट इन्कार कर दिया था। जापान केवल चीन को सन्तुष्ट कर ही नहीं रह गया, उसने फ़ारिस, टर्की और स्याम देश से भी सन्धियां कर ली हैं। इसके अतिरिक्त उसने रूस की सोवियट सरकार को स्वीकार कर उससे भी मित्रता पैदा कर ली है। अभी कुछ ही समय हुआ उसने जर्मनी से भी व्यापारिक और नौसेना सम्बन्धी सन्धि की है। इन सब बातों को देखकर स्पष्ट मालूम होता है कि वह इस समय इंग्लैण्ड और अमेरिका का भावी मुक़ाबला करने की तय्यारी कर रहा है। इसके अतिरिक्त एशियाई देशों से उसकी इन सन्धियों से यह भी स्पष्ट है कि वह इस समय एक ऐसा एशियाई संघ बनाने के लिए अत्यन्त उत्सुक है, जो यूरोपीय देशों का मुक़ाबला कर सके। गत वर्ष ही उसने एशियाई संघ के आन्दोलन के लिए एक विशेष सम्मेलन का आयोजन किया था, जिसमें भारतीय प्रतिनिधियों को भी निमन्त्रित किया गया था। इस समय भारतीय राजनीतिज्ञों को इस महत्वपूर्ण प्रश्न की उपेक्षा न कर एशियाई देशों से अपनी मित्रता का सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करना चाहिए।

बालकन में अशान्ति

आज अशान्ति के साम्राज में हर समय यह संभावना रहती है कि न जाने कब कहीं से कोई छोटा सा अंगारा आकर एक बड़े भारी युद्ध की नींव डाल दे। अभी मैसिडोनियन विद्रोहियों ने बलगेरिया से आकर इशटिप स्थान में एक यूगोस्लैव अफ़सर की हत्या कर दी। इस पर सर्बिया बलगेरिया से बहुत बिगड़ा है और अन्तर्राष्ट्रीय रेलों के अलावा बलगेरिया के सब रास्ते बन्द कर दिये हैं। बलगेरिया गत महायुद्ध के बाद हुई वर्सेल्स की संधि के अनुसार बहुत थोड़ी सेना रखता है। इसकी शिकायत करते हुए उसने कहा है कि उतने थोड़े से सैन्य से विद्रोही नहीं दबाये जा सकते। अभी कुछ कहा नहीं जा सकता कि यह घटना कब उग्ररूप धारण करेगी। अभी तो इसके बढ़ने की कोई संभावना नहीं है, क्योंकि इंग्लैण्ड के परराष्ट्र-सचिव सर आस्टिन चैम्बरलेन इस प्रश्न का निपटारा राष्ट्र-संघ में कराने का प्रयत्न कर रहे हैं।

———

कृष्ण

नीर-क्षीर-विवेक

[समालोचनार्थ पुस्तकों की दो-दो प्रतियाँ आनी चाहिएँ । प्राप्ति-स्वीकार तो उनका उसी अंक में हो जाया करेगा—समालोचना बाद में सुविधानुसार होगी ।]

मदर इंडिया

मिस मेयो की 'मदर इण्डिया' नामक पुस्तक ने भारत के शिक्षित समाज में बड़ी गहरी हलचल पैदा कर दी है। पत्रों में इसकी तीव्र आलोचनायें हुई हैं, और जगह-जगह सभा-मञ्चों से इस पुस्तक में व्यक्त किये गये भावों का रोष-पूर्ण भाषा में घोर प्रतिवाद किया गया है । स्वयं महात्मा गांधी ने अपने साप्ताहिक पत्र 'यंग इण्डिया' में 'नालियों के इन्स्पेक्टर की रिपोर्ट' शीर्षक एक लम्बा लेख इस पुस्तक की आलोचना में लिखा है। शांति-निकेतन के गुरुदेव संसार-प्रसिद्ध रवीन्द्र बाबू को, श्री सी० एफ़० एण्ड्र्यूज़ और लाला लाजपतराय तक को इसकी आलोचना में प्रवृत्त होने के लिए बाध्य होना पड़ा। कुछ कौंसिलों में भी इसकी चर्चा हुई। ग़र्जेकि इस पुस्तक ने मिस मेयो को आशातीत प्रसिद्धि कहिए अथवा कुप्रसिद्धि प्रदान की है।

हमारे पास जो प्रति आई है उसपर अङ्कित है, तृतीय आवृत्ति। इतने थोड़े से समय में ही इसके तीन संस्करण हो गये और उनकी खपत अधिकांश में हुई है भारत के बाहर। इससे प्रकट होता है कि विदेशों में इस पुस्तक का बड़ा ज़बरदस्त प्रचार हो रहा है अथवा किया जा रहा है। पार्लमेण्ट के मेम्बरों को यह मुफ़्त बांटी जा रही है, पर भारतीय पत्रों के सम्पादकों के पास समालोचनार्थ भी बहुत कम भेजी गई। इससे मालूम होता है कि यह पुस्तक भारतीयों के लिए नहीं लिखी गई है। यद्यपि इस पुस्तक का नाम इतना सुन्दर, इतना आकर्षक और स्नेहपूर्ण है; पर पढ़ने से मालूम होता है कि लेखिका के हृदय में सहानुभूति का रंच-मात्र भी नहीं है, केवल उपहास करने के लिए यह ना[illegible] दिया है। भारत के मर्म-स्थल को बेंधने वाले विषैले व्यं[illegible] वाणों का यह एक तूणीर है जो मिस मेयो ने अपने अमेरिक[illegible] नाम की साख के बल पर भारत की स्वतन्त्रता के विरोधि[illegible] के नृशंस हाथों के लिए तैयार किया है। मिस मेयो [illegible] इण्डिया आफ़िस से सहायता मांगना, भारत-सरकार [illegible] सहयोग और पुस्तकों का मुफ़्त बँटना, ये बाहरी बातें इस बात की गवाही देती हैं कि यह पुस्तक क्यों लिखी [illegible] होगी।

मिस मेयो की क़लम में ज़ोर है, भाषा है फुदकती [illegible] चुहचुहाती हुई, अपने मतलब के योग्य चीज़ों का चु[illegible] करने की भी उसमें लियाक़त है और सब से बड़ी बात [illegible] है कि वह अवसर को पहचानती और समय से लाभ उ[illegible] जानती है। अमेरिकन सरकार जब फ़िलिपाइन्स को अ[illegible] कार देने के विषय में सहानुभूतिपूर्ण विचार कर रही [illegible] तब इस देवी ने Isles of Fear 'भय के द्वी[illegible]' नामक ग्रन्थ की रचना करके उन्हें लोगों की नज़रों में गि[illegible] का उद्योग किया था और लोगों का ख़याल है कि कु[illegible] मेयो ने जो इस नई पुस्तक की माता बनने का कष्ट स्वी[illegible] किया है, वह भी अवसर की प्रेरणा का ही प्रतिफल है। [illegible] मेयो ने लिखा तो यह है कि निष्पक्षभाव से भारत [illegible] स्थिति का अध्ययन करके भारत के सम्बन्ध में लोगों [illegible] सच्चा ज्ञान देने की इच्छा से ही वह इस कार्य में प्रवृत्त [illegible] थी; किन्तु उसकी लिखी हुई सारी पुस्तक इस वाक्य [illegible] झूठा सिद्ध करने के लिए ज़ोरों से चिल्ला रही है।

लण्डन के 'टाइम्स पत्र ने इस पुस्तक की ख़ूब प्रशंसा[illegible]

है और लिखा है कि इधर पचास वर्षों में भारत के सम्बन्ध में इससे अच्छी पुस्तक नहीं लिखी गई। इसमें जो कुछ लिखा गया है वह अङ्कों और घटनाओं के आधार पर लिखा गया है। इसमें सन्देह नहीं कि इस ग्रन्थ में प्रमाणों की कमी नहीं है, पर उन प्रमाणों का प्रयोग इस प्रकार किया गया है कि जिससे पाठक भयंकर भ्रम में पड़े बिना नहीं रह सकता। कोई पर्यटक किसी देश का पर्यटन करने जाता है और वह एक जगह सुनता है कि किसी ने किसी की हत्या कर डाली, दूसरी जगह चोरी और तीसरी जगह व्यभिचार का हाल सुनता है। फिर जब वह लिखने बैठता है तब इन घटनाओं का इस प्रकार अतिरंजित वर्णन करता है कि पाठक के मन पर यह छाप पड़ती है कि लेखक जो कुछ लिख रहा है वह घटना-विशेष का वर्णन नहीं है, जैसा कि किसी भी देश और किसी भी काल में होना सम्भव है, बल्कि वह तो उस देश में आये दिन होने वाली बातें हैं और उस देश के सभी लोग हत्यारे, चोर और व्यभिचारी हैं। बस, यही हाल मिस मेयो के हाथों अङ्कों और घटनाओं का हुआ है। 'मदर इंडिया' को पढ़कर बाहर के लोगों पर यही असर होगा कि भारत के लोग—विशेषतः हिन्दू, क्योंकि चतुर मेयो ने और उसके चतुरतर पृष्ठ-पोषकों ने हिन्दू-धर्म और हिन्दू-सभ्यता को ही अधिकतर अपना निशाना बनाया है—महानीच, जङ्गली और कापुरुष हैं।

ख़ैर, ग्रन्थ-कर्त्री और उसके अभिभावुकों का उद्देश कुछ रहा हो, हमें देखना यह चाहिए कि क्या इस पुस्तक से भारतीय लोग कुछ लाभ उठा सकते हैं। मेरा ख़याल है बाहर के लोगों को इस ग्रन्थ से बड़ी हानि पहुँचेगी, बूढ़े और गौरवशाली भारत की संस्कृति और सभ्यता प्रति बेचारे भोले-भाले जन-समूह का मन विषाक्त हो जागा, वे उसे अत्यन्त हेय, तुच्छ और घृणित समझेंगे। अब तक जो वे भारत को थोड़ा-बहुत समझ पाये हैं, उसके नज़दीक आने की कोशिश कर रहे थे उसमें कुछ समय के लिए बाधा पड़ जायगी। किन्तु अन्ततः इससे भी लाभ ही होगा। मिस मेयो की पुस्तक भारत के प्रति लोगों का ध्यान खींचेगी और फिर वे सभी बातें भी जान लेंगे। किन्तु यह तो दूरस्थित अप्रत्यक्ष लाभ है। हमें इस से सच्चा लाभ उठाने की आवश्यकता है। और जहाँ मर्दों की तरह भारत के विरोधी षड्यंत्रकारियों का मुँहतोड़ मुक़ाबला करें वहाँ हमें और भी अधिक सच्चे मर्दों की तरह अपने घर में फैली हुई विषैली बुराइयों को—भारत को जर्जरित और मरणासन्न बना देने वाली कुरीतियों को दूर कर देने के लिए व्याकुल हो उठना चाहिए।

भारत के विभिन्न प्रान्तों और समाजों की बुराइयों का एक जगह पर ऐसा ढेर का ढेर संग्रह मैंने कभी नहीं देखा। मधु-मक्खी जिस तरह से नाना प्रकार के फूलों से रस का संचय करती है उसी तरह मिस मेयो ने भारत भर की बुराइयों को खोज खोज कर अपनी इस पुस्तक को भारत के दोषों का छत्ता बना दिया है। भारतीयों का सब से बड़ा दोष जो मिस मेयो को दिखाई पड़ा है वह है उनकी असंयमशीलता—विषय-लिप्सा। भारत अन्य देशों की अपेक्षा सदाचार में अधिक गिरा हुआ है, यह इस अत्यन्त पतित युग में भी नहीं कहा जा सकता। भारतीय सदाचार का आदर्श तो अब भी इतना ऊँचा है कि दूसरे देश और दूसरी सभ्यता के लोग उसे समझ भी मुश्किल से पाते हैं और व्यवहार में भी सदाचार का पालन जितना भारत में होता है उतना और कहीं मुश्किल से ही पायेंगे। मगर फिर भी यह मानना पड़ेगा कि भारत अपने ही बनाये हुए ऊँचे आदर्श से नीचे, बहुत नीचे, बहुत-बहुत नीचे गिर गया है और गिरता जा रहा है। पर उसके गिरने का कारण उसकी विषय-लिप्सा नहीं, उसकी अस्वाभाविक, अप्राकृतिक कुरीतियां हैं कि जो समय पाकर इसके विशाल ऐतिहासिक शरीर में घुस गई हैं।

मिस मेयो ने बाल-विवाह पर कटाक्ष किये हैं। उसने यह सिद्ध करना चाहा है कि आजकल के अंग्रेज़ी शिक्षित और विलायत का भ्रमण किये हुए बड़ी-बड़ी पदवियों वाले लोग भी बाल-विवाह के समर्थक हैं। स्वयं रवीन्द्र बाबू को इसी सम्बन्ध में लांछित करने का प्रयास किया है, जिसका उत्तर उन्होंने पत्रों में प्रकाशित कराया है। लेजिस्लेटिव असेम्बली के सदस्यों के उद्धरण भी यह दिखाने के लिए दिये गये हैं कि उनमें से अनेक विद्वान् और दिग्गज बाल-विवाह के विरुद्ध क़ानून बना कर उसे दूर करने के लिए तैयार नहीं हैं। इसमें सन्देह नहीं कि बाल-विवाह भारत का सब से बड़ा और सब से भयंकर शत्रु है। आज जो भारत की दुर्दशा हम देख रहे हैं, भारत के युवकों में जो तेज-हीनता है; बल,

वीर्य, उत्साह और उमङ्ग की कमी है; देश और धर्म के लिए आगे बढ़कर हँस-हँस कर मर मिटने के उत्साह का अभाव है और अपने बाहुबल और आत्म-शक्ति के भरोसे निर्भय-निर्द्वन्द्व होकर संसार की बड़ी से बड़ी आपत्ति को ललकार कर उससे लड़ने की, उसे पराजित और पराभूत करने की मानवोचित पौरुष-सूचक उत्कण्ठा का जो अत्यन्त अभाव सा दिखाई दे रहा है उसका कारण यही हमारा बाल-विवाह है। मैं तो कहूँगा कि हमारे सदाचार के ह्रास का कारण यही बाल-विवाह है। यही बाल-विवाह हमारी दुर्बलता का जनक है, यही बाल-विवाह बाल-विधवाओं का जनक है, यही बाल-विवाह हमारी सदाचार-हीनता का जनक है। इस राक्षस को दूर किये बिना हम लोग कभी पनप न सकेंगे; उस समय तक हृष्ट-पुष्ट और सम्पूर्णरूपेण सन्तुष्ट स्त्री-पुरुषों का समूह भारत में दिखाई न देगा जब तक हमारे पौरुष को चूसने वाला, हमें निकम्मा और निर्वीर्य बना देने वाला यह भयंकर रोग दूर न होगा।

लोग कहते हैं कि बाल-विवाह तो भारत में बहुत दिनों से प्रचलित है, पर इससे पहले तो भारत के लोग इतने दुर्बलेन्द्रिय और अशक्त न थे। इसका जो उत्तर मिस मेयो ने दिया है, वह मननीय है। उसका कहना है कि लोग बाल-विवाह के कारण पीढ़ी-दर-पीढ़ी अधिकाधिक दुर्बल होते चले आये हैं और आज इस दशा पर पहुँचे हैं। बाल-विवाह जब शुरू हुआ होगा तब लोग ख़ूब हृष्ट-पुष्ट और सशक्त थे, खाने-पीने की कमी न थी और विवाह हो जाने पर भी पति-पत्नी को वर्षों तक मिलने न दिया जाता था। इससे उनको अधिक हानि न पहुँच सकी। किन्तु धीरे-धीरे अवस्थायें बदलती गईं। एक पीढ़ी के बाद जो दूसरी पीढ़ी आई वह अपेक्षाकृत अधिक दुर्बल होती गई और अब वह पतन की पराकाष्ठा को पहुँच गई है। यह ठीक है कि हमारी आजकल की दुर्बलता और कापुरुषता का कारण कुछ अंशों तक हमारी पराधीनता भी है, पर हमारी पराधीनता का कारण तो यही दुर्बलता है न ? यदि हम अपनी शक्तियों को नष्ट न करके अपने को सशक्त बना लें तो फिर संसार में ऐसी कौनसी शक्ति है, ऐसा कौनसा माई का लाल है, कि जिसकी इतनी मजाल हो कि वह हमें पराधीन रखना तो एक ओर हमारी ओर आँख उठा कर देख भी सके ?

मिस मेयो ने लिखा है कि भारत की कन्यायें इस[...] सिवा और कुछ नहीं जानतीं कि वे शीघ्र से शीघ्र विवा[...] करके बच्चे पैदा करें और सात-आठ वर्ष की अवस्था से [...] वे माता बनने की कामना करने लग जाती हैं। मद्रास [...] एक डाक्टर महोदय ने अंकों से इस बात को ग़लत सा[...] करने की कोशिश की है और यह बताया है कि प्रायः १[...] १७ अथवा १९ वर्ष की उम्र में प्रथम संतान पैदा होती [...] और कम से कम १२ वर्ष की अवस्था में सन्तान पैदा [...] है जो अपवाद-स्वरूप है। पर मिस मेयो का आक्षेप [...] भी गम्भीर है। उसका कहना है कि हिन्दू-समाज विषय[...] लुपता के वातावरण से ही घिरा हुआ है। बचपन से [...] बालकों के विचार दूषित हो जाते हैं और उनके आ[...] भी बिगड़ जाते हैं। और इसका माता-पिता को दुःख [...] नहीं होता बल्कि, ग्रन्थकर्त्री तो यहाँ तक कहने की [...] करती है कि, इससे उल्टा वे संतोष मानते हैं। शि[...] प्रतिमा, वैष्णव-त्रिपुण्ड्र, मन्दिरों, महलों और रथों [...] रास्ते की दीवारों की मूर्त्तियों तथा चित्रों में प्रजनन-[...] तथा सभी प्रकार के कल्पनीय कामासनों का निदर्शन [...] है। लोकप्रिय हिन्दू-धर्म में किसी भी प्रकार के संयम [...] संकेत नहीं है और स्त्री-पुरुष-सम्बंधी संयम का तो बहु[...] कम ज़िक्र है—यह मिस मेयो की ३४ वें पृष्ठ पर [...] है और इसीके समर्थन में वह लिखती है—

एक प्रतिष्ठित हिन्दू बेरिस्टर ने, जो अपने प्रांत के [...] श्रेष्ठ मनुष्यों में हैं, मुझसे कहा—मेरे पिता ने बड़ी बुद्धि[...] की कि बचपन में ही मुझे यह सिखा दिया कि संक्रामक [...] से कैसे बचा जाता है।

मैंने पूछा—क्या यह बेहतर न होता कि वह आपको [...] इन्द्रिय-निग्रह करना सिखाते ?

'अपने प्रांत के सर्व-श्रेष्ठ पुरुषों के प्रतिनिधि-स्वरूप' [...] महाशय का उत्तर है—ओह, यह तो हम जानते हैं कि अ[...]

"एक प्रसिद्ध हिन्दू योगी ने, जो हज़ारों म[...] पूजनीय गुरु हैं," मिस साहब को समझाया कि [...] ही माया है; वे भी सब काम करते हैं सही, पर केवल [...] स्त्री पर दया करके। वे स्वयं निर्लिप्त रहते हैं।

यह है भारत का एक चित्र, जो मिस मेयो [...] तथा अपने दादाओं के देशवासियों के लिए खींचा [...]

कथन झूठा है, यह कहना तो झूठ होगा; पर यह झूठे से भी ज़्यादा झूठा है, इसमें सन्देह नहीं। ऐसे लोग भारत में नहीं हैं, यह कहना झूठ होगा; पर भारत के अधिकांश लोग ऐसे हैं, यह बहुत बड़ा और अक्षम्य झूठ है। सभी देशों में इस प्रकार की Abnormalities (विचित्रतायें) होती हैं, पर वे विचित्रतायें देश-सामान्यतायें नहीं कही जा सकतीं। फिर भी मिस मेयो के इस चित्र से हमें लाभ उठाना चाहिए। बाल्यकाल से ही बच्चों के अन्दर काम-लिप्सा का भाव जागृत न हो, इसके लिए हमें विशेष रूप से सचेष्ट रहना चाहिए। माता-पिता, बड़े-बूढ़े, इष्ट-बन्धु, दास-दासी सभी को इस विषय में अनवरत रूप से सचेत रहना चाहिए कि बच्चों के सामने न तो इस प्रकार का हँसी-मज़ाक़ करें और न अपरिपक्व अवस्था में उनसे विवाह की चर्चा करें। हमारा आर्य आदर्श केवल सङ्केत ही नहीं करता, हमें आज्ञा देता है कि कम से कम २५ वर्ष का ब्रह्मचर्य प्रत्येक बालक के लिए अनिवार्य होना चाहिए। विवाह का संक्रामक विष भारत की नस-नस में ऐसा प्रविष्ट हो गया है कि अब हम उसकी अनिवार्यता पर अधिक ज़ोर न देकर भारत के दिमाग़ को ऐसा बनाने का यत्न करें कि ब्रह्मचर्य ही सच्चा आदर्श जीवन है, तो शायद यह देश, काल और परिस्थिति की खराई हुई भूख के अधिक अनुकूल होगा। अच्छा हो यदि हिंदी और गुजराती पत्रिकाओं के सम्पादकों का भी ध्यान इधर आकर्षित हो और वे यह समझें कि आत्मा और मन को शिक्षित बना कर जीवन की बीभत्स कठोरताओं का मुक़ाबला करने के बहुत कुछ अयोग्य बना देने पर लालित्य और माधुर्य्य की अतिशय और असामयिक मात्रा से सरस साहित्य हमारे इस दुःखित और दलित देश को ऊँचा उठाने में किसी तरह सहायक न हो सकेगा। (अपूर्ण)

'राहत'

सभा-विज्ञान और वक्तृता

लेखक और प्रकाशक—श्री देवकीनंदन शर्मा एम० ए०, अध्यापक गवर्नमेण्ट कालेज, अजमेर। आकार २० X ३० सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या १५०। मूल्य १।) रु०।

संकल्प-शक्ति

लेखक—उदयभानुजी भैया। प्रकाशक—महेश पुस्तकालय, अजमेर। आकार २० X ३० सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या ९०। मूल्य ।=) आ०।

प्राप्ति-स्वीकार

राजपूताने का इतिहास (दूसरा खण्ड)

ग्रन्थकर्त्ता और प्रकाशक—रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा, अजमेर। आकार रायल अठपेजी, पृष्ठ-संख्या ३३६। मूल्य स्थायी ग्राहकों से ६) रु०।

कविता-कौमुदी (१, २, ३, ४ भाग)

सम्पादक और प्रकाशक—पं० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी-मन्दिर, प्रयाग। आकार २० X ३० सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या प्रत्येक भाग की लगभग ६००—७००। सजिल्द। मूल्य प्रत्येक भाग का ३) रु०।

बाल-कथा-कहानी (१, २ भाग)

लेखक और प्रकाशक वही। आकार क्वार्टर फ़ुल्सकेप, पृष्ठ-संख्या लगभग ८०-८०। सचित्र। मूल्य प्रत्येक भाग का ।=) आ०।

पथिक (खण्ड-काव्य)

रचयिता और प्रकाशक वही। आकार। २० X ३० सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या ८१। मूल्य ॥) आ०, राजसंस्करण का १) रु०।

मानसी

उक्त त्रिपाठीजी की कुछ कविताओं का संग्रह। संग्रह-कर्त्ता—श्री श्रीगोपाल नेवटिया। प्रकाशक, आकार, पृष्ठ-संख्या तथा मूल्य वही।

मेवाड़-दिग्दर्शन

लेखक—श्री बलवन्तसिंह महता। प्रकाशक—श्री रतनलाल महता, श्री उत्तम जैन साहित्य प्रकाशक मण्डल, उदयपुर। आकार २० X ३० सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या ८५। मूल्य ।=), नक़शे सहित ॥) आ०।

वीरवर कल्ला (ऐतिहासिक उपन्यास)

लेखक व प्रकाशक—कुँ० लक्ष्मणसिंहजी, बड़ी रूपाहेली, मेवाड़। आकार डिमाई अठपेजी, पृष्ठ-संख्या १०२। मूल्य लिखा नहीं।

पत्रों के विशेषांक

'बालक', लहरियासराय। 'भारतवीर', भरतपुर। 'स्वतंत्र', कलकत्ता। 'विश्वमित्र', कलकत्ता। 'अनाथ-रक्षक', अजमेर। 'आर्यमित्र', आगरा। 'वीणा', इन्दौर।

पहला सुख

तमाम साल तन्दुरुस्त रहो

अगर आप पूरे वर्ष स्वस्थ रहना चाहते हैं तो, 'ओरिएण्टल वाचमेन एण्ड हेरल्ड आफ़ हेल्थ' के मतानुसार, "आपको ज़रूरत सिर्फ़ इस बात की है कि एक दिन किसी समय आप इसे प्राप्त कर लें और जैसी तन्दुरुस्ती की आपको ज़रूरत हो उसके लिए कोई दिन निश्चित करके उस दिन अपने जीवन-क्रम का विस्तार से निरीक्षण किया करें। क्योंकि, हम जो कुछ करते-धरते हैं वही तो हमारी तन्दुरुस्ती या बीमारी का कारण होता है। आदतों का जैसा ज़बरदस्त असर बुराई के लिए होता है वैसा ही अच्छाई के लिए भी, और बुरी की अपेक्षा अच्छी आदतें डालना कुछ बहुत मुश्किल भी नहीं। अतः अपना दैनिक क्रम कुछ ऐसा बनाओ कि जो कुछ भी तुम करो वह सब स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद ही हो। आराम, व्यायाम और पौष्टिकता की अपनी आवश्यकता का विचार कर इनमें से प्रत्येक की जितनी ज़रूरत मालूम पड़े, उसे प्राप्त करने पर ध्यान दो। हर सुबह सुन्दर मनःस्थिति और आध्यात्मिक चिंतन के साथ अपनी दिनचर्या का श्रीगणेश करो। क्योंकि, धार्मिक अध्ययन के लिए, सर्वोत्तम समय बिल्कुल तड़के का ही है। तड़के उठना है भी बड़ा अच्छा—पर, रात को, आप सोवें भी काफ़ी जल्दी।"

"अस्पतालों और चिकित्सकों का बढ़ना सच्ची सभ्यता का चिह्न नहीं है। हम शरीर की अपेक्षा आत्मा का घाव भरना चाहते हैं। यद्यपि मैं अपने डाक्टर मित्रों से अपना इलाज कराता हूँ फिर भी मैं यह बात दुहराता हूँ कि हम लोग शरीर के सम्बंध में जितना ही संयम से काम लें उतनी ही हमारी और देश की भलाई होगी।"

—महात्मा गांधी

बीच का रास्ता

समय-समय पर फूलों से बातें करना मुझे प्रिय है। एक दिन, उद्यान में, एक फूल से मैंने पूछा-'तू तो बड़ा सुन्दर लगता है रे! भला बता तो, तेरी इस सुन्दरता का रहस्य क्या है? और मुझे ऐसा मालूम पड़ा, मानों फूलों ने कहा—"हमारी सुन्दरता का कारण है सूर्य की किरणों द्वारा हमारा बिंधना; सूर्य की किरणें हमारे अन्दर प्रवेश करती हैं इसीसे हम इतने सुन्दर हो जाते हैं।" तब मैंने, अपने से कहा—"फूल तपस्या करता है! किरणों से वह अपने को बिंधने देता है और तब वह सुन्दर बन जाता है।"

गीता और उपनिषदों में वारंवार इस 'तपस' शब्द का व्यवहार किया गया है। बुद्ध ने भी इसके तत्व को स्वीकार किया है। पर इसके सिद्धान्त के कई रूप हैं। आइए, उन में से, एक की ओर आज मैं आपका ध्यान आकर्षित करूँ।

प्राचीन पुस्तकों में लिखा है कि एक बार बुद्ध भगवान काशी पहुँचे। एक दिन, एक सुन्दर बाग़ में, वह अपना प्रचार-कार्य कर रहे थे। उस समय जिन थोड़े से शब्दों में अपने सन्देश का सार उन्होंने उपस्थितजनों के सामने रक्खा, वह इस प्रकार है—"मैं तो आपको बीच के रास्ते ले जाता हूँ।" उनका यह कथन, मेरी समझ में, तप के सच्चे तत्वज्ञान को प्रदर्शित करता है। आम लोग आज शरीर और इन्द्रियों के कठोरतम और अप्राकृतिक निग्रह को ही तप मानते हैं सही; पर, मेरी नम्र सम्मति में, कठोर इन्द्रिय-निग्रह की यह भावना जीवन की अन्तःस्फूर्ति और विकास-योजना को हानि पहुँचाती है। मेरा तो विश्वास है कि कठोर और अप्राकृतिक इन्द्रिय-निग्रह की इस भावना ने भारत को हानि ही पहुँचाई है। क्योंकि, जिस दिन उसने अपने शारीरिक सुधार के प्रति उपेक्षा-भाव इख़्तियार किया उसी दिन से वह दुःख उठा रहा है। अतः, तप का अर्थ

और अप्राकृत इन्द्रिय-निग्रह नहीं है। जैसा कि हमारे ग्रन्थों में लिखा है, बुद्ध को तभी सच्चा ज्ञान प्राप्त हुआ कि जब इन शब्दों पर ध्यानारूढ़ होकर उन्होंने मनन किया—"सितार के तारों को न तो बहुत ज़ोर से कसो और न एकदम ढीलाही रक्खो।" क्या तुम सितार बजाना चाहते हो? यदि उसके तारों को बहुत ज़ोर से कसोगे तो वह टूट जायगा और अगर बहुत ढीले रक्खोगे तो संगीत का कुछ आनन्द ही न आयगा। उसके लिए तो यह ज़रूरी है कि तारों को न तो बहुत ज़्यादा खींचा जाय और न बहुत कम। पर कठोर इन्द्रिय-निग्रह तो उसे बहुत ऊँचा तानना है। शरीर अपने आत्म-सङ्गीत को बाहर निकालना चाहता है। इसके लिए सर्वोत्तम रास्ता बीच का ही है। 'अति' से बचो; न तो शरीर में मस्त ही होजाओ और न उसकी बिलकुल उपेक्षा ही करो। न तो इंद्रियों का कठोर और अप्राकृत निग्रह करो और न उन्हें एकदम खुला ही छोड़ दो। आध्यात्मिक विकास में शरीर का भी अपना स्थान है। आत्मा के लिए, शरीर को भी कुछ काम करना ही पड़ता है।

तप के तत्वज्ञान को समझने के लिए यह आवश्यक है कि पहले हम शरीर और 'आत्मा' के तत्व को भली भांति समझ लें। इस सम्बन्ध को मैं इस प्रकार चित्रित करूँ? शरीर तो एक प्रकार का बाजा है और आत्मा उसका बजाने वाला। आत्मा को मदद करने के लिए उसके बाजे को सावधानी से बजाओ—यह ध्यान रक्खो कि यन्त्र कहीं बिगड़ न जाय। बाजे के तार को तोड़ो मत। 'स्थूल शरीर' के आध्यात्मिक महत्व को पहचानो। और, शरीर की सार-सम्हाल रखते हुए, यह याद रक्खो कि शरीर भी आत्मा का ही एक रूप है। शरीर वाद्य-यन्त्र है और आत्मा उसका वाद्य-कार। अगर हमने बाजे की सार-सम्हाल न रक्खी, तो उसका बजाने वाला ख़ामोश हो जायगा। इसलिए 'अति' से बचो और बीच के रास्ते पर चलो—उसी को गृहण करो।

इस प्रकार, आध्यात्मिक दृष्टि से भी, स्वास्थ्य का बड़ा महत्व है। स्वस्थ राष्ट्र ही अधिक समय तक क़ायम रहते हैं—मेरे ख़याल में, इतिहास का यह एक सामान्य नियम ही है। मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है कि स्वास्थ्य भी किसी राष्ट्र की प्रगति या उन्नति का एक अङ्ग-विशेष ही है। क्योंकि, राष्ट्रीय कार्य-कुशलता के लिए राष्ट्रीय स्वास्थ्य आवश्यक है। सुशासन के लिए, स्वास्थ्य-सचिव भी उतने ही ज़रूरी हैं जितने कि शिक्षा-सचिव।

अब मैं कुछ मामूली बातें आपके सामने रखता हूँ जो, मेरा ख़याल है, अपने शरीर रूपी यन्त्र को अच्छी हालत में रखने में सहायक होंगी:—(१) भोजन—सादा हो। पश्चिम में मनुष्यों का जीवन बड़ा गुम्फित होता जाता है। हमारे भारत में भी शिक्षितों का जीवन दिनोंदिन सादगी से शून्य होता जा रहा है। अतएव, खाना सादा खाओ। क्योंकि, ऐश-आराम का जीवन अल्पायु वाला जीवन है, और सादा जीवन शक्ति का जीवन है। (२) पेय—पानी पियो और ख़ूब पियो। हमारे प्राचीन आश्रमों में विद्यार्थियों के लिए एक हिदायत यह भी थी—"घूँट-घूँट करके पानी पियो और अपना कर्त्तव्य पालन करो।" पर क्या आप ऐसा करते हैं? मुझे तो शक है कि शायद ही कभी आप घूँट-घूँट करके पानी पीते हों, आप तो ग़ट-ग़ट करके उड़ा जाते हैं। उचित तो यह है कि घूँट-घूँट करके दिन भर में १०-१२ ग्लास पानी पिया जाय; क्योंकि पानी की अधिकता से अंदर की आँतों की सफ़ाई होती है। (३) व्यायाम—खेलो-कूदो; इससे न केवल शरीर ही सुधरेगा बल्कि पुरुषार्थ भी बढ़ेगा। (४) ब्रह्मचर्य—आत्म-संयमी बनो। हरएक के अन्दर एक उत्पादक शक्ति है—उसे सम्हालो और उसकी देख-भाल रक्खो, उसे बर्बाद मत करो। सच्ची शिक्षा का यही रहस्य है। (५) प्रार्थना—इससे स्वास्थ्य बनता है। स्वास्थ्य पर इसका अच्छा असर होता है। अंदर के कुछ चक्र इससे खुल जाते हैं, जिनमें से कुछ का वर्णन हमारी योग की प्राचीन पुस्तकों में मिलता है। पर आज मैं उनकी चर्चा न करूँगा। आज तो मेरा कहना यही है कि प्रार्थना अथवा चित्त का एकीकरण वह शक्ति है जिससे कि स्वास्थ्य बनता है। फिर प्रार्थना के साथ ब्रह्मचर्य का भी संयोग हो जाय, तब तो कहना ही क्या? तब तो राष्ट्र और समाज की सेवा के कार्य करने की शक्ति अपने आप ही प्राप्त हो जायगी! *

टी० एल० वास्वानी

---

* अंग्रेज़ी से

सफ़ाई

सफ़ाई दो प्रकार की होती है—आंतरिक और बाह्य।

आंतरिक तो वह, जिसका सम्बन्ध मनुष्य के अन्तःकरण से है; अर्थात्, हृदय की सफ़ाई। मनुष्य का हृदय जितना साफ़—निर्मल होगा, वैसे ही उसके विचार होंगे, और तदनुसार ही उसके कार्य। हृदय की शुद्धता पर ही उसका आनन्द निर्भर है, और मन की प्रसन्नता ही स्वास्थ्य का मूल है। स्वास्थ्य-विज्ञान देखिए या मनोविज्ञान अथवा दर्शन-शास्त्र, सभी जगह यही तत्व अन्तर्हित मिलेगा।

बाह्य सफ़ाई वह, जिसका सम्बन्ध प्रत्यक्ष संसार से है। शरीर की सफ़ाई, मकान की सफ़ाई, खाने-पीने की सफ़ाई, रहने-सहने की सफ़ाई, और सड़क-जलाशय तथा अन्य विभिन्न चीज़-बस्तों की सफ़ाई इसके अन्तर्गत है। रात-दिन के व्यवहार में हमें जिससे काम पड़ता रहता है वह यही सफ़ाई है। आंतरिक स्वच्छता का सम्बन्ध तो पहुँचे हुए लोगों, ख़ास कर योगियों से है, और उसका महत्व और उपयोग भलीभांति वही समझ सकते हैं; पर बाह्य स्वच्छता का सम्बन्ध विशेषतः सर्वसाधारण से है और वह उनके नित्य उपयोग की चीज़ है। इसका फलाफल भी तुरन्त और प्रत्यक्ष सामने आता है।

नहाने-धोने के द्वारा शरीर को साफ़-सुथरा न रखिए तो मैल-जूँ और विविध बीमारियां मौजूद हैं। पानी साफ़ न हो तो पीने को ही जी न चाहेगा। गन्दा भोजन कौन खा सकेगा? गंदी रहन-सहन किसे सुहायेगी? मकान, नालियां, सड़क आदि साफ़ न होंगे तो कितनी बीमारियां न फैल जायेंगी?

सच तो यह है कि जहाँ सफ़ाई वहीं सुरुचि है। जहाँ सुरुचि है तहाँ सुमति और मन की प्रसन्नता। जहाँ मन की प्रसन्नता वहीं सु-स्वास्थ्य और सुस्वास्थ्य ही सब भौतिक, आधिभौतिक एवं दैवी सम्पदाओं की प्राप्ति का मूल साधन है। इसके विपरीत, जहाँ गंदगी है वहीं कुरुचि, जहाँ कुरुचि तहाँ कुमति और मन की मलीनता, कुमति अनेक बुराइयों-ऐबों की उत्पादक है और मन की मलीनता अनेक रोगों और अस्वास्थ्य की। और यही हैं मनुष्य को सब सुकार्यों के अयोग्य बना उसे रसातल को ले जाने के मूल साधन।

इस प्रकार सफ़ाई का बड़ा महत्व है। सफ़ाई स्वास्थ्य का मूल, उल्लास का कारण और मोक्ष का साधन है। इसी लिए सब धर्मों में सफ़ाई का प्राधान्य है। सभ्य शासनों में इसे राज्य-शकट का जो एक स्वतंत्र और महत्वपूर्ण विभाग बनाया गया, वह भी इसी कारण।

परन्तु इतने पर भी, ख़ास कर हमारे यहाँ, आज इसके प्रति जो लापर्वाही दरसाई जा रही है, वह कौन नहीं जानता? ज़रा सोचिए तो सही कि क्या वह वाञ्छनीय है?

मक्खियों से बचो

मक्खियों को कौन नहीं जानता? पर वे कितनी हानि करती हैं, यह बहुत कम ही जानते होंगे। घर में जिधर देखो उधर ही मक्खियां दिखाई देती हैं। दिन में तो वे हमारे खाने-पीने की चीज़ों पर बैठती फिरती तथा हमारे मुँह-हाथ आदि शारीरिक अवयवों पर बैठ कर हमें तङ्ग किया करती हैं, रात को दीवार व रस्सी आदि पर डेरा जमा उन्हें काला और गन्दा किया करती हैं। अधिकांश घरों और खाने-पीने की दूकानों पर यही क्रम दृष्टि-गोचर होता है। हम इसके आदी भी ऐसे हो गये हैं कि शायद ही कभी उन्हें हटाने की गम्भीरता से विचार करते हों। यहां तक कि अधिकांश लोग तो खाने की चीज़ में गिर पड़ने पर भी उसे निकाल कर फेंक देना ही बस समझते हैं।

पर स्वास्थ्य पर इसका बड़ा बुरा असर होता है। इसकी भिनभिनाहट तो तङ्ग करने वाली होती ही है, साथ ही यह गन्दी भी बहुत है। आदमी और जानवरों के मैले तथा गली-सड़ी चीज़ों पर यह ख़ूब भिनकती दीखती हैं और वहाँ से सीधी हमारे खाने-पीने के पदार्थों पर भी पहुँच जाती हैं। न तो सफ़ाई का ख़याल, न और ही कोई ख़याल, वैसे ही कूदती-फाँदती हमारे हाथ-पैर आदि पर भी पहुँचती हैं। फिर इनके पाँव कुछ ऐसे ढङ्ग के और छोटे-छोटे बालों से युक्त होते हैं कि कीचड़ और रोग के कीड़े बड़ी आसानी से उनमें लगकर इधर-उधर फैल जाते हैं। और भी कुछ कम संख्या में नहीं। अनुमान लगाया गया है कि प्रत्येक मक्खी अपने साथ लगभग ढाई लाख कीटाणु लिये फिरती है और जहां बैठती है वहीं उन्हें छोड़ती जाती है।

'आरोग्यता के शत्रु' पुस्तक के लेखानुसार तो 'एक मक्खी दूध के प्याले में गिर कर अनगिनती कीटाणु छोड़ सकती है। यह जाना गया है कि एक मक्खी साठ लाख कीटाणु ले जा सकती है।' पाँच हज़ार कीटाणु तो उसके उड़ने पर जो काला-काला धब्बा रह जाता है उस एक-एक धब्बे में ही पाये जाते हैं।

फिर ये कीटाणु भी कैसे? साधारण नहीं बल्कि महा-भयङ्कर! हाल की खोजों ने तो निस्सन्दिग्ध रूप से यह सिद्ध कर दिया है कि मोतीझरा, क्षय, हैज़ा, अतिसार आदि अनेक रोगों के कीटाणु मक्खियों के द्वारा ही एक-दूसरे में बहुतायत से फैलते हैं। 'साधारण घरेलू मक्खी कीड़ों को भोजन तक ले जाती है और उसके साथ कीड़े शरीर में प्रवेश करते हैं।' मक्खियों के कारण आमतौर पर जो बीमारियां फैलती हैं वे 'आरोग्यता के शत्रु' पुस्तक के अनुसार ये हैं—वायुनली की सूजन, संग्रहणी, अतिसार, मस्तिष्क की झिल्ली की सूजन, निमोनिया, आंतरिक ज्वर (मोतीझरा), नेत्र-पीड़ा, हैज़ा, डिपथेरिया, कण्ठ की सूजन, क्षय, फरिंगिटीज़, (Pharyngitis) आतशक और चेचक। अतः यह बहुत ज़रूरी है कि इन रोगों से बचने के लिए सर्व-प्रथम इनको उत्पन्न करने वाली मक्खियों से ही बचने की कुछ व्यवस्था की जाय।

इसके लिए कई उपाय निकले हैं। 'फ़्लाइ पेपर' और कई विषैले रस इसके लिए इस्तैमाल किये जाते हैं। पर उनसे एक ओर जहाँ कुछ लाभ होता है वहाँ दूसरी ओर कभी-कभी बड़ा धोखा भी हो जाता है। हाँ, चारों तरफ़ जाली लगाने और घर की खूब सफ़ाई रखने का नुसखा व्यवहार्य है। उक्त पुस्तक के अनुसार 'सब तरह के गन्देपन को दूर करने से मक्खियाँ भी दूर हो जायेंगी। अपने घर को स्वच्छ और हवादार रक्खो। जूठे बर्तन और कूड़े की टोकरियां ढ़की रखनी चाहिएँ, जिससे मक्खियां अन्दर न जा सकें। अपना रसोईघर स्वच्छ रक्खो और कोई खाने का पदार्थ खुला न रक्खो। पर्देदार दरवाज़े और खिड़कियां मक्खियों के विषैले प्रभाव से बचने के लिए अच्छे उपाय हैं।'

सुस्वास्थ्य के नियम

'संजीवन' ने सुस्वास्थ्य के लिए अनेटे केलरमेन के निम्न दस नियम दिये हैं:—

१. विचार उज्ज्वल रक्खो। मस्तिष्क स्वस्थ होगा तो सारा शरीर स्वस्थ रहेगा।

२. ठीक विधि से स्नान करो और कभी-कभी करो। चमड़ी के छिद्रों को स्वच्छ रक्खो।

३. प्रत्येक रात को कम से कम ८ घण्टे सोओ।

४. प्रत्येक दिन १५ मिनट तक व्यायाम करो।

५. कमसे कम एक घण्टा स्वच्छ और खुली हवा में घूमो।

६. भोजन को ख़ूब अच्छी तरह चबा कर खाओ। पाचन-शक्ति पर ध्यान रक्खो। सोकर उठो तब और सोने को जाओ तब दो प्याला गरम जल पियो।

७. प्राणायाम का अभ्यास करो। भोजन से पहले तीन बार साँस खींच कर व्यायाम करो।

८. ऐसा वस्त्र मत पहनो जो काम करने में बाधा डालता हो।

९. अपनी इच्छाओं को वश में रक्खो। अपने चित्त का शरीर पर अधिकार करो।

१०. याद रक्खो कि अच्छा रहना, स्वस्थ व्यायाम और प्रबल इच्छा ही तुम्हारे स्वास्थ्य की जड़ है। स्वास्थ्य से ही प्रसन्नता है और प्रसन्नता ही सच्चा जीवन है।

इधर-उधर से

(१) अजीर्ण के रोगियों के अलावा और किसी को, सिवाय गरमी के, दिन में न सोना चाहिए। दिन में सोने से कफ़ बढ़ता है और रात में जागने से वायु कुपित होता है; अतः दिन का सोना और रात्रि का जागरण निषिद्ध है। (२) शाम के वक्त पाँच कार्य न करने चाहिएँ—भोजन, मैथुन, निद्रा, पढ़ना और रास्ता चलना। (६) ताम्बा, मिट्टी, काच या कांसी के बर्त्तन में पानी पीना विशेष हितकर है। (७) भूख से ज़्यादा खाना और रोग को निमंत्रण देना, दोनों एक ही बात हैं।

मुकुट

उद्बोधन

"निरुत्साह शक्ति को क्षीण करता है । और, शक्ति को जो क्षीण करता है, वह आध्यात्मिक नहीं है। आध्यात्मिकता तो शक्ति है। शङ्कायें ? अविश्वास ? इनसे चिन्तित न होना चाहिए । आध्यात्मिक जीवन के विकास में इनका भी अपना स्थान है । प्रार्थना तो भूख के मानिन्द है । भूख लगे जब खाओ । इसी प्रकार, जरूरत हो तब प्रार्थना करो । गढ़ी-गढ़ाई कृत्रिम प्रार्थनाओं का कुछ मूल्य नहीं, तुम्हारी आत्मा ही परमात्मा की खोज है ।"

"नामों की पर्वाह मत करो। पर, सत्य की पूजा करने में तो निश्चय ही तुम्हें कोई आपत्ति न होगी । जिसे सत्य कहा जाता है उसे ही मैं परमेश्वर कहता हूँ । विज्ञान जिसे विकास कहता है मैं उसे परमेश्वर कहता हूँ । सौन्दर्य के रूप में जिनकी मानता की जाती है मैं उन्हें परमेश्वर के रूप में पूजता हूँ । सौन्दर्य,सत्य और प्रेम का सम्मिश्रण ही परमेश्वर है। और प्रार्थना उन शब्दों से कहीं ज्यादा है, जिनका कि हम उच्चारण करते हैं । प्रार्थना तो आकांक्षा है; और प्रार्थना ही कार्य है ।"

"आध्यात्मिक जीवन के मार्ग को जो गृहण करना चाहे उस हरएक के सामने मैं तो यही आदर्शवाक्य रक्खूँगा—चिन्ता मत करो ।"

—साधु वास्वानी

चीनी बालकों का आदर्श

चीन अपनी सुषुप्तावस्था से जागृत हो आज क्रान्ति के पथ पर अग्रसर है । बाल्य-संसार के लिए यह गौरव की बात है कि चीनी बालक भी उसमें संपूर्ण-रूपेण योगदान कर रहे हैं । चीनी क्रांति में अपने योग्य सहायता पहुँचाने के लिए, उन्होंने अपने 'बाल्यदलों' का सङ्गठन किया है। यह संगठन बहुत-कुछ है तो 'बालचरों' के ही ढंग का, पर इसे आधुनिक रूसी 'पायनियरों' के ढाँचे पर ढाला गया है।

६ से लेकर १८ वर्ष तक की उम्रों के १५ हज़ार बालक आज वहाँ (राष्ट्रीय चीन में) इस संगठन में सम्मिलित हैं। ख़ाकी रंग की उनकी वर्दी है, गले के आस-पास लाल रुमाल बँधा रहता है, और हाथ में मज़बूत डंडा रखते हैं । इसी पोशाक में, हर जगह, अपनी ड्यूटी पर, वे आपको मुस्तैद मिलेंगे । अलस्सुबह देखिए तो झुण्ड-के-झुण्ड हाथों में यह झण्डे लिए कारख़ानों की ओर जाते दिखाई देंगेः—"हम चाहते हैं कि मजूरी का समय घटाया जाय—दिन भर में आठ घण्टे, इसके लिए, काफ़ी हैं ।" आधी-पिछली रात को देखिए तो सड़कों पर होने वाली क्रान्तिकारी-सभाओं में शान्ति और व्यवस्था रखते हुए दिखाई पड़ेंगे। और स्त्रियों को प्रचलित कुरीतियों से मुक्त करने—ख़ासकर पाँवों को जकड़ने के भद्दे रिवाज को छोड़ने के लिए समझाना-बुझाना तो, वहाँ की एक सरकारी रिपोर्ट ही के अनुसार, उनका एक ख़ास और चमत्कारपूर्ण कार्य है ।

काम करते भी किस उत्तमता के साथ हैं । हाल में २००००० की संख्या में एक समारोह वहाँ हुआ था, जिसका प्रबन्ध इन्हीं बाल्यदलों के ज़िम्मे था । दैवयोग से विदेशियों का एक समूह, उसके भीड़-भड़क्के में, भटक पड़ा । उस समय उसे इस दलवालों से कैसी मदद मिली, यह उसी समूह

में भटकी हुई एक अमेरिकन बालिका की ज़बानी सुनिए—'भीड़ इतनी ज़बरदस्त थी कि उसमें पैर बढ़ाना निश्चित रूप से मौत का सामना करना था। फिर मेरे पैरों से जूते भी फिसल पड़े। भगदड़ में कोई आगे बढ़ने लगा और कोई पीछे। दिशा-ज्ञान किसी को न रहा। पर ऐसे समय भी मैं डरी बिल्कुल नहीं। क्योंकि भीड़-भड़क्के में भी कहीं न कहीं बाल्यदल के सदस्य हमेशा ही मिलते रहे, जो नम्रता के साथ अपने डंडों से संकेत करके गड़बड़ी में लोगों को ठीक रास्ता बता रहे थे। यहाँ तक कि अन्त में इस काम में उन्हें पूर्ण सफलता भी मिल गई—सब भीड़, बिना किसी दुर्घटना के, ठीक-ठिकाने पहुँच गई।'

ऐसा हो भी क्यों न, जबकि उनके ध्येय के अनुसार, बालकों को आवश्यक है कि अपने अफ़सरों के आज्ञाकारी हों, श्रमजीवियों के हितों की रक्षा करें, परस्पर मित्रता रक्खें; और शराबख़ोरी, धूम्रपान, जूएबाज़ी तथा भद्दे विचारों से बचे रहें। 'साम्राज्यवाद तथा सैनिकवाद का उन्मूलन' उनकी गूँज है। और उनका सिद्धांत है कि एक दिन उन्हें संसार का मालिक बनना ही होगा।

उपर्युक्त आदर्शों की द्योतक उनकी एक पताका भी है। वह ५॥ फ़ीट लम्बी और ३। फ़ीट चौड़ी है। आपस में, एक दूसरे से, मिलने पर उन्हें सलाम-बंदगी करना आवश्यक है। जहाँ कहीं भी वे जायें, डँडा साथ रहता है। सुबह-शाम, ६ से ९ बजे तक, उन्हें शिक्षा दी जाती है।

अपने देशोद्धार के शुभ प्रयत्न में सहायक होते हुए इस प्रकार वे न केवल अपने जीवन का सदुपयोग ही कर रहे हैं; बल्कि, सच पूछो तो संसार-भर के बालकों के सम्मुख देश-सेवा का सुन्दर उदाहरण रख रहे हैं। भारत सरीखे परतन्त्र देशों के लिए तो वह और भी उपयोगी अतएव अनुकरणीय है। निश्चय ही भारत का वह सुप्रभात होगा, जब यहाँ के बालक भी स्वदेश के प्रति अपने कर्त्तव्य को पहचान कर उपर्युक्त प्रकार से योग-दान में दत्तचित्त हो जायेंगे। भगवान् उन्हें ऐसी प्रेरणा दें!

—— मुकुट

"इसी प्रकार यदि भारत के युवक भी जागृत होकर अपने कर्तव्य-पालन में जुट पड़ें, तो अपनी मातृभूमि को स्वतन्त्र बनाने में क्या देर लग सकती है? क्या वे उठेंगे?" —वास्वानी

उच्छृङ्खलता

यह शीघ्रता के नशे का युग है। शीघ्र लिखा जाय, शीघ्र चला जाय, शीघ्र समाचार भेजा जाय, शीघ्र प्राणान्त किया जाय। जो धीरे चले, जो धीरे करे, वह इस युग में जीने योग्य नहीं! समझ में नहीं आता, यह शीघ्रता करने वाले कहाँ पहुँचेंगे। परन्तु धुन भी तो कोई चीज़ है।

❁ ❁ ❁

मिल में कई हज़ार मज़दूर काम करते हैं। उन्होंने अपना घर-बार छोड़ दिया है। खेती का काम भी छोड़ दिया है—उनके खेत उजड़े पड़े हैं। शहर में रहने लगे हैं। देखने को बहुत सा रुपया कमाते हैं, शराब पीते हैं, व्यभिचार में प्रवृत्त होते हैं, थियेटर-सिनेमा का शौक़ लगा हुआ है—रुपया कमाया जाता है और उड़ाया जाता है। इन मनुष्यों के परिश्रम से मालिक सेठजी की सम्पत्ति बढ़ती है। उस सम्पत्ति में से सेठजी ने एक लाख रुपया पाठशाला के लिए दान दे दिया। सोचने की बात है कि सेठजी को पाप अधिक हुआ या पुण्य?

❁ ❁ ❁

कुआ चल रहा है। चार, छः या आठ बैल काम करते हैं। कम से कम चार-पाँच मनुष्य काम करते हैं। बैल कुए का पानी धीरे-धीरे निकाल सकते हैं—दिन भर लगा देते हैं—और उन पर ख़र्चा बहुत बैठता है। आप एञ्जिन लगा लीजिए—ख़र्चा कम होगा, पानी अधिक निकलेगा और थोड़े समय में। आपकी क्या हानि है? परन्तु, यह सोचिए, वे बैल और आदमी जायँगे कहाँ?

❁ ❁ ❁

थोड़े से थोड़े ख़र्च में अधिक से अधिक सम्पत्ति किस प्रकार उत्पन्न हो—यह चिन्ता है। परन्तु साथ में यह चिन्ता क्यों नहीं है कि आपके देश के समान दूसरे देश भी समर्थ हो जायँगे तो आपकी सम्पत्ति खपेगी कहाँ?

❁ ❁ ❁

बचपन में हाथ-गाड़ी में बैठ कर सैर करने को जाइए। कुछ बड़े होने पर साइकिल की सवारी कीजिए। फिर मोटर की सवारी कीजिए। जहां मोटर की पहुँच न हो, वहाँ के लिए रेल का टिकट लीजिए। शहर में कम पैसों में घूमना हो, ट्राम की शरण लीजिए। बहुत लम्बी यात्रा करनी हो, जहाज़ों द्वारा कीजिए। मकान की छत पर लिफ़्ट पर खड़े होकर पहुँच जाइए। टाइप से

छाप लीजिए। टेलीफ़ोन से बात कर लीजिए । बिजली के अनुपम प्रकाश में बिना श्रम के पढ़ लीजिए। होटल में भोजन कर लीजिए। रेस्टोरेण्ट में टिफ़न कर लीजिए । बालक को रखने और दूध पिलाने को नर्स रख लीजिए। स्त्री से नहीं बनती है तो तिलाक का प्रबन्ध कर दीजिए । अस्वस्थ हैं, डॉक्टर का बिल अदा कर दीजिए। शक्ति कम हो, इश्तिहार देख कर टानिक मँगवा कर सेवन कर लीजिए अथवा बिजली की शरण में पहुँचिए। काफ़ी, चाय, सिगरेट आदि का अवश्य सेवन कीजिए। शक्कर की टिकिया का और जमे हुए दूध का प्रयोग कीजिए। सच्चा-झूठा कैसा भी मुक़दमा चलाना हो, वकील कर लीजिए। किसी को अच्छा या बुरा सिद्ध करना हो, अख़बार में वैसे ही समाचार छपवा दीजिए। कोई दिक़ करता हो, सी० आई० डी० में ख़बर कर दीजिए। अपने पड़ौसियों को समझा-बुझा कर म्युनिसिपैलिटी या कौन्सिल के मेम्बर हो जाइए । थियेटर देखिए, सिनेमा देखिए, घोड़ों की रेस देखिए। व्याख्यान दीजिए, व्याख्यान सुनिए। घर में कुछ हो या न हो पर आप तो "टीप-टाप" रखिए। वेल-पालिश्ड जूते पहनिए। अप-टू-डेट कट का सूट बनवाइए। ख़ुद की बाँधी हुई टाई अटकाइए। हजामत ख़ुद बना डालिए। हेअर-कटिङ्ग सैलून में बाल कटवा लीजिए। धोबी से कपड़े धुलाइए। हाथ में छड़ी रखिए। जेब में घड़ी रखिए। आँखों पर ऐनक लगाइए। हम कुछ भूले हों, आप देख लीजिए। इतने पर भी सुखी न होवें, तो...... 'सुइसाइड' (आत्महत्या) कर लीजिए ! !

"उच्छृंखल"

कमल

कमल का रूप मोहक तो है ही, लेकिन उसमें इससे ज़्यादा महत्व की चीज़ तो और ही है। उसका स्वभाव हिन्दू आदर्शों का द्योतक है। कमल कीचड़ में से पैदा होता है, इससे उसको पंकज कहते हैं। पर कीचड़ में से अपनी ख़ुराक लेते हुए भी वह स्वयं अत्यन्त स्वच्छ रहता है । चौबीसों घंटे वह पानी में रहता है, लेकिन उसका पत्ता पानी के बिन्दु से एकदम अलिप्त रहता है। उसकी उत्पत्ति पानी के अदर से है, लेकिन वह अपनी दृष्टि हमेशा सूर्य की तरफ़ हो रखता है।*

काका कालेलकर

* गुजराती से

विद्यार्थियों के प्रति

"यह सच है कि सामाजिक मामलों में तुममें से बहुतों के सामने रुकावटें हैं—इस मामले में ज़रा-सी भी स्वतंत्रता मुश्किल से ही किन्हीं युवकों को प्राप्त होती है; इस सम्बन्धी सारी ज़िम्मेदारी माता-पिता आदि अभिभावुकों अथवा संरक्षकों पर ही है; और इसलिए तुम्हारी ऐसी स्थिति नहीं कि समाज-सुधार की जो योजनायें तुम्हारे दिल व दिमाग़ पर असर डालें, उन्हें कार्यान्वित कर सको। साथ ही यदि तुम प्रायः ही अपने गुरुजनों से विरुद्ध रहो—उनके और तुम्हारे विचार न मिलें, तो वह दशा भी बड़ी असह्य होगी, यह भी मैं मानता हूँ। लेकिन तारुण्य ही तो सदाचारयुक्त उत्तेजना और उदारता-पूर्ण उत्साह की अवस्था है। इनमें से किन्हीं बुरा- इयों ने इसी अवस्था में तुम्हें न दहलाया, तो फिर इस बात की कम ही सम्भावना है कि अपने जीवन में फिर कभी कोई ज़बरदस्त भावना इस दिशा में तुमपर असर कर सके।"

—अध्यापक शेषाद्रि अय्यर

"ऐ नौजवानो, मैं चाहता हूँ कि तुममें कुछ वीरता हो। अगर तुममें वह है, तो मुझे बहुत बड़ी सूचना करनी है। आशा करता हूँ कि तुममें से अधिकांश अब तक अविवा- हित हो, और बहुत से ब्रह्मचारी भी हो। ... मैं चाहता हूँ कि तुम यह पवित्र प्रतिज्ञा लो कि तुम बाल-विधवा लड़की से ही विवाह करोगे और अगर कोई बाल-विधवा मिली तो विवाह ही नहीं करोगे।...तुम अपनी विषयेच्छा का इतना संयम तो ज़रूर कर लो कि १६ साल से कम उम्र की लड़की से विवाह ही न करो। ... कुछ ब्राह्मण विद्यार्थी मुझसे कहते हैं कि हम इस उसूल के अनुसार नहीं चल सकते, ... उन ब्राह्मणों से मेरा कहना है कि, अगर तुम संयम नहीं कर सकते तो, ब्राह्मण कहलाना छोड़ दो। अपने लिए तुम १६ साल की लड़की ढूँढ लो, जो बच- पन में ही विधवा हो गई हो; अगर तुम्हें इस उम्र की ब्राह्मण बालिका न मिले, तो ऐसी किसी भी लड़की से विवाह कर लो। मैं तुम्हें कहता हूँ कि हिन्दुओं का परमात्मा उस लड़के को ज़रूर ही क्षमा करेगा, जो बारह साल की लड़की पर बलात्कार करने के बदले अपनी जाति के बाहर शादी कर लेता है।"

—महात्मा गांधी

जनता का स्वराज्य

महात्माजी का दौरा

महात्माजी ने पिछले दिनों खादी-प्रचार और खादी-संगठन के निमित्त तामिल नाड में यात्रा की। जहाँ-जहाँ आप जाते हैं, खादी के प्रति लोगों के उत्साह की लहर ऊँची उठ जाती है। ९ सितम्बर से १२ अक्तूबर तक एक मास में महात्माजी को १,०१,९६६।-)॥ खादी-संगठन के लिए मिले। यह रक़म अधिकांश में मध्यम श्रेणी के लोगों, विद्यार्थियों और स्त्रियों से प्राप्त हुई। अछूत भाइयों ने भी इसमें हाथ बँटाया है। यह सफलता हुई है मद्रास-सरकार के उस हुक्म के होते हुए, जिसके द्वारा उन्होंने सरकारी नौकरों को खादी-आन्दोलन में चन्दा देने से मना किया है। इससे यह अच्छी तरह मालूम होता है कि खादी का सन्देश वहाँ किस प्रकार लोगों में फैल रहा है।

चर्खा-संघ के सदस्य

गत १३ अक्तूबर तक अ० भा० चर्खा-संघ के कुल सदस्यों की संख्या २८२५ थी, जिसमें से २१९५ 'अ' वर्ग के, ३४० 'ब' वर्ग के, २६ 'क' वर्ग के और २६४ युवक वर्ग के सदस्य हैं।

खादी की उत्पत्ति-बिक्री

जुलाई मास १९२७ ई० में सारे भारत में चर्खा-संघ के द्वारा २,०९,४४५) की खादी बनी और २,०६,६४९) की बिक्री। फिर भी ये अंक पूरे नहीं हैं। पिछले साल इसी मास में १,७९,५९१) की उत्पत्ति और २,२८,४४१) की बिक्री हुई थी।

मैसोर-राज्य की ओर से खादी-संगठन

मैसोर-सरकार ने अपने राज्य के एक ज़िले में राज्य की ओर से खादी-सङ्गठन के प्रयोग का आयोजन किया है। खादी का एक अलग विभाग वहाँ खुल गया है और आगे के काम के लिए अ० भा० च० सङ्घ के मंत्री से उसका पत्र-व्यवहार हो रहा है।

खादी का बल

प्रयाग के प्रसिद्ध एडवोकेट डाक्टर कैलासनाथ कुटजू ने अपने एक पत्र में महात्माजी को लिखा है—"खादी में मेरा विश्वास दिन-दिन बढ़ रहा है...... । मैं मानता हूँ कि खादी उच्चवर्ग तथा जनता के बीच एक प्रेम-बंधन है और इस सम्बन्ध में आप जो कुछ कहते हैं उसका एक-एक शब्द मेरे दिल और दिमाग़ में घर कर रहा है। परमात्मा इस शुभ कार्य में आपको हर तरह सफलता दे।......आपके सामने मेरा खादी की सुन्दरता, और सादगी पर तथा उससे अपने आप मिलने वाले पोषण पर, जिसका कि खादी प्रतीक है, कुछ लिखना मेरी धृष्टता होगी। खादी तमाम जातियों और धर्मों को एकता के सूत्र में बाँध सकती है; क्योंकि कम्बख़्त दरिद्रता हिन्दू और मुसलमान में कोई भेद नहीं रखती। मुझे इस बात में कोई सन्देह नहीं कि खादी के सन्देश को सुने और माने बिना लोग रह न सकेंगे।......चाहे कितना ही कार्य-व्यग्र मनुष्य हो, आध घण्टा रोज़ कातने का समय तो वह हर हालत में निकाल सकता है।"

भागलपुर (बिहार) की खादी-प्रदर्शिनी को खोलते समय श्री गोडबोले, आई. सी. एस., ने कहा—"खादी की हलचल पर, प्रसिद्ध अर्थ-शास्त्रियों ने भी स्वीकृति की मुहर लगा दी है। यदि प्रारम्भ ही से, खादी की हलचल का, लड़ने वाली राजनीति से सम्बन्ध न हो गया होता, तो आज तक यह हलचल खूब ही बढ़ी होती। किंतु प्रतिकूल परिस्थितियों में भी, खादी की हलचल ने जो सफलता प्राप्त कर ली है, वह भुला देने की चीज़ नहीं। महाराष्ट्र में तो, सार्वजनिक काका के नाम से प्रसिद्ध श्री० गणेश वासुदेव जोशी

ज़माने से, महाराष्ट्रीयों में खादी के प्रति प्रेम है। चूंकि मिल वालों को फ़ी सदी २५ के लाभ से सन्तोष नहीं होता, और फ़ी सदी ५-६ से उनका काम नहीं चलता, अतः वे देश की ज़रूरत को पूरा करने योग्य मिल का कपड़ा नहीं फैला सकेंगे। और ग़रीब स्त्रियों, विधवाओं और बूढ़ियों को तो फ़ी सदी १) के लाभ में भी सन्तोष हो जायगा। अतः दीखता है कि अन्त को देश में खादी का कार्यक्रम ही सफल होगा।"

खादी की आध्यात्मिकता

मद्रास में महात्माजी ने खादी के संदेश को आध्यात्मिक भी बताया। आपने कहा—कोई किताबें पढ़ लेने, बातें बना लेने या व्याख्यान दे लेने से मनुष्य आध्यात्मिक नहीं हो जाता। जब तक वृत्ति आध्यात्मिक नहीं बनती—आध्यात्मिक विचारों के अनुसार आध्यात्मिक काम नहीं होता, तब तक कोई आध्यात्मिक नहीं बन सकता। अपने स्वार्थ को छोड़ना और दूसरे के हित में लगना, इससे बढ़ कर अध्यात्म का मंत्र क्या हो सकता है? शराबख़ोरी मिटाने से, और अछूतोद्धार से, तो परिमित संख्या की ही सेवा हो सकती है। पर खादी से तो भारत के ३० करोड़ लोगों का हित होगा। अतएव खादी मेरा आध्यात्मिक सन्देश है।

खादी का आदर्श

एण्ड्रयूज़ साहब ने दक्षिण आफ्रिका में खादी के आदर्श पर एक सुन्दर भाषण दिया था—"खादी-आदर्श कहता है कि यन्त्र-युग मानव-जाति को ग़लत रास्ते पर ले जा रहा है और अपने साथ प्राचीन नैतिक आचारों को नष्ट-भ्रष्ट करता आ रहा है। वह सीधा विनाश की ओर ले जा रहा है। खादी आदर्श ज़ोर देकर बताता है कि सादी ग्रामीण सभ्यता सर्वोपरि है। महात्मा गांधी सादगी के-प्राकृतिक जीवन के आदर्श को हमारी आधुनिक नागरिक सभ्यता और कल-कारख़ानों के बनावटी जीवन के आदर्श से कहीं ऊँचा मानते हैं। ...चीन का एक विद्वान् घड़े घड़े-पानी खींच कर पौधों को पिलाता था। किसी ने कहा—भाई, मैं तुम्हें एक यन्त्र ला देता हूँ, जिससे तुम्हें बड़ी सहूलियत हो जायगी। उसने जवाब दिया-नहीं; यन्त्र के निरन्तर प्रयोग से मेरी मानसिक वृत्ति यान्त्रिक बन जायगी। फिर मुझे प्रकृति के तादात्म्य का यह आनन्द न मिलेगा। खादी-आदर्श इसी सत्य को प्रकट करता है। ··· यंत्र के प्रयोग से थोड़े आदमी काम में लगते हैं और बहुतेरे बेकार हो जाते हैं। महात्मा गांधी ने देखा कि मिलों से गांव उजड़ रहे हैं और शहर बस रहे हैं। उन्होंने गाँव के गुणों को मिटते और शहर के दुर्गुणों को बढ़ते देखा। उन्होंने गाँवों की तरफ़ से पुकार मचाई और खादी-आदर्श को देश के सामने रक्खा।"

खादी से राजनैतिक जागृति

अभी दिल्ली की एक छोटीसी सभा में महात्माजी ने बातचीत के सिलसिले में कहा—

"खादी की फेरी करना भी तो एक महान् राजनैतिक आन्दोलन है। उससे भी राजनैतिक जागृति होती है। किसी व्यक्ति के पास जाइये और छः आने गज़ की खादी लेने के लिए उससे कहिए। वह कहेगा, "मुझे तो अपना सब कपड़ा दो आने गज़ में मिल जाता है।" तब आप दलीलें देकर उसे यह समझाइए कि क्यों उसे महँगी खादी ही पहननी चाहिए। यहीं राजनैतिक जागृति की शुरुआत होती है। अगर हममें इतनी बुद्धि होती कि दो आने गज़ के विदेशी मिलों के कपड़े को छोड़ कर छः आने गज़ की खादी ही पहनें तो हमारे बाज़ार में विदेशी कपड़ा कभी नहीं घुस पाता। इस बात को लोगों के चित्त पर अंकित कर देने की सबसे भारी ज़रूरत है।"

राजस्थान चर्खा-संघ, अजमेर

अब तक ५ उत्पत्तिकेन्द्र—अमरसर, बांसा, मनोहरपुर, गोविंदगढ़, बोरावड़—और ५ बिक्री-भण्डार—जयपुर, अजमेर, सीकर, इन्दौर, उज्जैन—खुल चुके हैं। मासिक उत्पत्ति बिक्री ८-९ हज़ार तक जा पहुँची है। बिजोलियां। ४२००० की बस्ती में, आधे लोग अपनी कती खादी पहनने लगे हैं। अमरसर की तरफ़ बिजोलिया के ढंग का काम करने का विचार हो रहा है। श्री जमनालालजी केन्द्रों का दौरा करने वाले हैं। अमरसर में खादी की विविध क्रियाओं और नमूनों की प्रदर्शिनी शीघ्र ही होने वाली है।

विविध

विदेशी सूत पर आयात-कर और सरकार

पिछले कुछ सालों से बम्बई के कपड़े के कारख़ानों में बड़ी हलचल मची हुई है। बम्बई का बना हुआ कपड़ा जापानी कपड़े की प्रतिस्पर्धा में खड़ा नहीं हो सकता, क्योंकि जापान में मज़दूरों से बहुत अधिक समय तक काम लिया जाता है और यहाँ संसार की मज़दूर-परिषद् द्वारा स्वीकृत समय के अनुसार ही। इसलिए बंबई के कपड़ों के कारख़ानों की बहुत बुरी दशा हो गई है। गत दो वर्षों में कई कारख़ाने बन्द हो गये और कई बन्द होने वाले हैं; जो चल रहे हैं, उनकी भी कोई अच्छी दशा नहीं। बम्बई के मिल-मालिकों के आग्रह पर भारत-सरकार ने इस अवस्था की जाँच करने के लिए एक 'टैरिफ़ बोर्ड' नियुक्त किया था। इस बोर्ड में श्रीयुत् नायसी (सभापति), पंडित हरकिशन कौल और अध्यापक सुब्बाराव यह तीन सदस्य थे। इनमें प्रथम व्यक्ति यूरोपियन और शेष दो भारतीय हैं। इस बोर्ड ने १९२६ के जून से अपना कार्य आरंभ किया। जैसा कि सब कमीशनों और बोर्डों में होता आया है, कि यूरोपियनों और भारतीयों का परस्पर मतभेद हो, इसकी रिपोर्ट में भी वैसा ही हुआ।

बम्बई और भारतवर्ष के अधिकांश कारख़ाने ३०, ३२ अंक तक मोटा सूत निकालते हैं। कोई-कोई कारख़ाने ४० अंक तक भी मोटा सूत निकालते हैं। इससे महीन कपड़े के लिए वे विदेशी, विशेषतः अंग्रेज़ी कारख़ानों का सूत ख़रीदते हैं। इसलिए भारत की प्रतिस्पर्धा केवल जापान से है। जापान के कपड़े के सस्ता होने में वहाँ अधिक काम करने के अतिरिक्त कुछ और भी कारण हैं। येन (जापानी सिक्का) की दर गिर जाने से वहाँ का कपड़ा सस्ता हो गया है। और इधर भारत-सरकार की घातक विनिमय-नीति—१८ पेंस दर करने के कारण भारतीय कपड़ा महँगा हो गया है। बम्बई के मिल-मालिकों का कहना था कि जबतक जापान मज़दूर-परिषद् के प्रस्तावों के अनुसार समय को नियत नहीं करता तबतक जापानी कपड़े पर आयात-कर लगा कर बम्बई के कारख़ानों को सहायता देनी चाहिए। बोर्ड ने इसे एकमत होकर स्वीकार कर लिया कि बम्बई के कारख़ानों की अवस्था ख़राब है इसलिए उनकी रक्षार्थ भारत-सरकार का कर्त्तव्य है कि वह कारख़ानों को सहायता दे। परन्तु यह सहायता किस प्रकार की हो, इस विषय में मतभेद था। सभापति नायसी ने, जो यूरोपियन हैं, सम्मति दी कि केवल जापान के कपड़े पर चार वर्ष तक चार रुपया प्रति सैकड़ा आयात-कर बढ़ा दिया जाय। लेकिन, बोर्ड के अन्य भारतीय सदस्यों का विचार था कि भारतीय कारख़ानों में ३२ से ४० अंक तक का सूत तैयार होता है, उस सूत पर सरकार सहायता दे और यह रक़म सम्पूर्ण विदेशी कपड़े पर चार प्रति सैकड़ा कर बढ़ा कर वसूल कर ली जाय। इसका मतलब यह कि आयात-कर ११ प्र० सैकड़ा से १५ प्र० सै० कर दिया जाय। इसके अतिरिक्त बोर्ड ने कारख़ानों के उपयोग में आने वाली कलों और स्टोर पर लगने वाले कर को हटाने की भी सलाह दी है। बोर्ड का मत है कि बम्बई के कारख़ानों के सङ्घ को प्रति वर्ष २५०००) रु० भी सरकार को देने चाहिएँ।

सरकार बोर्ड के इस मत को कब मानने लगी थी? इससे तो लंकाशायर के माल पर भी ४ प्र० सै० कर बढ़ जायगा। बाक़ी रही जापानी माल पर कर लगाने की बात। इसमें प्रतिस्पर्धी जापान के पिछड़ जाने से इंग्लैण्ड को लाभ ही लाभ है। परन्तु इसमें एक अड़चन है और वह यह कि इंग्लैण्ड जापान को नाराज़ नहीं करना चाहता, क्योंकि उसे डर है कि ऐसा करने से जापान चीन से मिल जायगा और इंग्लैण्ड को नुक़सान पहुँचावेगा। इसके अतिरिक्त १९०५ की संधि भी, जिसमें एक दूसरे के माल पर अधिक कर न लगाने का निश्चय हुआ था, इसमें एक अड़चन है। इसलिए भारत-सरकार ने इस पर अपना यह मन्तव्य

प्रकट कर रिपोर्ट को प्रकाशित किया कि भारतीय कारखाने अच्छे हैं, उनकी नींव भी अच्छी है; अतः उन्हें सहायता देना ज़रूरी नहीं; विदेशी कपड़े पर ४ प्र० सै० कर लगाने से ग़रीब प्रजा के लिए कपड़ा महँगा हो जायगा। सरकार ने केवल एक बात स्वीकृत की कि कारख़ानों की कलों और स्टोर पर से कर उठा दिया जाय। पर यह भारत के हित की दृष्टि से किया गया हो, सो बात नहीं। इसमें भी इंग्लैण्ड का स्वार्थ है। कारख़ानों की कलों और स्टोर के समान पर कर न लगाने से वे चीज़ें सस्ती हो जावेंगी और इंग्लैण्ड से वे अधिक मात्रा में आवेंगी।

शिमला में होने वाले असेम्बली के गत अधिवेशन में इस प्रश्न पर विचार करने के लिए सिलेक्ट कमिटी नियुक्त की गई थी। उसने यह निश्चय किया कि विदेशी सूत पर डेढ़ आना प्रति पौण्ड के हिसाब से आयात-कर लगाया जाय। असेम्बली में स्वराष्ट्र-सचिव सर जार्ज रेनी ने इस प्रस्ताव को उपस्थित किया जो कि बहुसम्मति से पास हो गया। यद्यपि इससे बम्बई के कारख़ानों को कुछ लाभ ज़रूर होगा, परन्तु भारतवर्ष के हाथ से बुने जाने वाले करघों को बड़ा नुक़सान होगा। क्योंकि जिस सूत पर कर लगाया गया है, वही अधिकतर जुलाहे लेकर करघों पर कपड़े बुनते हैं। इन करघों की संख्या भारत में अनुपेक्षणीय भी नहीं है। भारतवर्ष में कुल जितना कपड़ा खपता है, उसका २६ प्रतिशतक करघे ही पूरा करते हैं। ऐसे जुलाहों की संख्या ६० लाख के क़रीब है। सूत पर आयात-कर लगाने से इन करघों को बहुत नुक़सान पहुँचेगा। इसीको लक्ष्य में रख कर कई सदस्यों ने असेम्बली में इसका विरोध भी किया था। एक बात और। महीन सूत पर कर नहीं लगाया गया, कर लगाया गया है ३० से ४० नम्बर तक के सूत पर। इस नम्बर का सूत अधिकतर चीन और जापान से आता है, इसलिए इस कर का असर भी उन्हीं देशों पर होगा। कुछ भारतीय अर्थशास्त्रज्ञों की सम्मति में इससे जापान और चीन का सम्बन्ध भारतवर्ष से ख़राब हो जावेगा और वे भारत से भी सामान मँगवाना बन्द कर देंगे। हमारी सम्मति में उनका यह कथन युक्तियुक्त नहीं है।

खड्गपुर की हड़ताल

बङ्गाल-नागपुर-रेल्वे के खड्गपुर की हड़ताल ने ... रूप धारण कर लिया है। इसका कारण यह है कि कम्पनी ने आर्थिक स्थिति का बहाना कर १२५० म... को नौकरी से अलग कर दिया था, परन्तु वस्तुत... कारण था नहीं। इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि ... मज़दूर अलग किये गये हैं, उनमें से ९९॥ प्रति... वे हैं जिन्होंने पिछली हड़ताल में भाग लिया था।

खड्गपुर के मजूर-सङ्घ के प्रधान ने इस हड़ताल के ... एक वक्तव्य प्रकाशित कराया है, जिससे कई बातों ... प्रकाश पड़ता है। रैवन कमिटी की रिपोर्ट में, जिस... सरकार ने विश्वास किया है, कहीं भी इस प्रकार म... को अलग कर देने का उल्लेख तक नहीं है। यदि ... आर्थिक स्थिति ख़राब ही थी, तो रेल्वे अधिकारि... इस ओर पहले क्यों नहीं ध्यान दिया? आज से ... पूर्व खड्गपुर के प्रधान इञ्जिनियर ने यह शिकायत ... कि मज़दूरों की संख्या आवश्यकता से अधिक है, इसे ... शनैः प्रतिवर्ष कम करना चाहिए; परन्तु हुआ ठीक ... विपरीत। १९२५ के प्रारम्भ में मज़दूरों की कुल ... १०४८८, १९२६ के प्रारम्भ में १०८०९ और १९... अप्रैल में ११९०० थी। इस प्रकार आर्थिक स्थि... ख़राब होने पर भी घटाने के बजाय प्रतिवर्ष मज़दू... सँख्या बढ़ती ही गई। इतना ही नहीं, जो स्थान ... हो गये, उनकी भी पूर्त्ति करने का प्रयत्न होता रहा। ... वर्ष अप्रैल से लेकर अगस्त तक चार मास में ४५२ ... की जगह ख़ाली हुई। इसका मतलब यह कि प्र... १०० के क़रीब जगहें ख़ाली हो गईं। यदि रेल्वे के ... इनकी स्थान-पूर्त्ति न करते तो वर्ष में १२०० जगहें ... यास ही ख़ाली हो जातीं और उन्हें इतना अ... अनुचित कार्य न करना पड़ता। यहीं तक नहीं ... अधिकारियों ने ३५३ नये मज़दूरों को वैगन-वि... भर्ती किया है। यदि खड्गपुर के कारख़ाने की दूसरे ... ख़ानों से तुलना की जाय तो ख़र्च कम करने की आवश्यकता ... भी नहीं थी। बङ्गाल नागपुर-रेल्वे में नार्थ-वैस्टर्न ... अपेक्षा एञ्जिन की प्रति मील गति, मरम्मत आदि ...

नी कम होते हैं। इन सब बातों से स्पष्ट है कि रेल्वे-अधिकारियों का आर्थिक स्थिति के कारण मज़दूरों को अलग करना एक बहाना मात्र है। कारण वस्तुतः वही है, जो हम ऊपर बता चुके हैं।

इस समय खड्गपुर की हड़ताल की अवस्था बहुत भयङ्कर हो चुकी है। यदि सरकार अथवा रेल्वे एजेण्ट ने हड़ताली मजूरों पर कोई ध्यान न दिया, तो बहुत सम्भव है कि एक देशव्यापी हड़ताल हो जाय। और तब सरकार के लिए स्थिति को सम्हालना बहुत कठिन हो जायगा।

पंजाब में कृषि-प्रचार

कुछ वर्ष पूर्व पञ्जाब-सरकार ने एक आयोजन किया था कि वर्नाक्युलर मिडल स्कूलों में देशी भाषा के द्वारा विद्यार्थियों को क्रियात्मक ज्ञान दिया जाय। इस योजना के अनुसार ऐसे कुछ स्कूलों में छोटे-छोटे खेत बनाये जाकर उनके द्वारा इस विषय की शिक्षा भी दी गयी। पिछले पाँच वर्षों के अनुभव से यह योजना सफल सिद्ध हुई है और उसका परिणाम यह निकला है कि सौ स्कूलों के साथ जो खेतों के अतिरिक्त बहुत से बाग़ भी लग चुके हैं। अब कई हाईस्कूलों में भी बहुत से खेत बनाये जा चुके हैं। इस सफलता को देख कर पञ्जाब के शिक्षा-सचिव ने इस योजना को अधिक उन्नत करने का निश्चय किया है और इसके लिए एक कमिटी भी नियत की है, जो शीघ्र ही विस्तृत क्षेत्र में कार्य करने के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करेगी।

हमारे विचार में यह आयोजना बहुत सुन्दर है। इससे नीचे लिखे तीन लाभ तो स्पष्ट हैं—

(१) विद्यार्थियों को एक उपयोगी विद्या का ज्ञान हो जाने के कारण उनका पेट भरने का प्रश्न हल हो जायगा और व्यर्थ की उच्च शिक्षा में अपना समय नष्ट न करेंगे।

(२) शिक्षितों में बेकारी घट जायगी।

(३) कृषि की उन्नति होगी।

साथ ही इसमें यदि वस्त्र-निर्माण की शिक्षा भी जोड़ दी जाय तो भारत की दरिद्रता का बहुत बड़ा प्रश्न हल हो सकता है। पर, देखें सरकार कहाँ तक भारत का भला चाहती है।

कृष्ण

त्रावणकोर की समृद्धि

त्रावणकोर राज्य दक्षिण भारत में, मद्रास प्रान्त के अन्तर्गत, स्थित है। सबसे बड़े देशी राज्यों में इसकी गिनती है। ७६२४.८४ वर्गमील इसका क्षेत्रफल है, ४००६०६२ जन-संख्या, और दो करोड़ रुपये से ऊपर इसकी वार्षिक आय है। महाराज अभी नाबालिग़ हैं, उनकी नाबालिग़ी में रीजेण्ट द्वारा शासन-कार्य होता है, और वह शासक हैं स्वयं महाराज की चाची श्रीमती महारानी सेतु लक्ष्मीबाई—जिनकी सादगी और शासन-पटुता की तारीफ़ स्वयं महात्मा गाँधी भी, वहाँ के अपने दौरे के समय, 'यङ्ग-इण्डिया' में कर चुके हैं। शासन-व्यवस्था के लिए लोक-निर्वाचित प्रतिनिधियों के बहुमत की परिषद तो है ही, उसमें भी यह एक विशेषता है कि सदस्यता आदि में महिलाओं को भी बिल्कुल पुरुषों के समान ही अधिकार और सुविधायें प्राप्त हैं—जैसा कि और रियासतों में तो क्या भारत के ब्रिटिश प्रान्तों में भी कहीं नहीं है।

राज्य के गत (१९२७ के अगस्त में समाप्त होने वाले) वर्षीय आय-व्यय का संक्षिप्त ब्योरा हाल में प्रकाशित हुआ है। उसके अनुसार इस वर्ष में २३७ लाख रुपये तो आय हुई और लगभग २०१॥ लाख व्यय हुआ। इस प्रकार कुल ख़र्च निकाल कर कोई ३६ लाख रुपये की बचत रही। बड़े-बड़े विदेशी अर्थशास्त्रज्ञों के दिमाग़ खप कर भी जब भारत सरकार को हर साल कुछ न कुछ घाटा बना ही रहता है, उस हालत में, एक भारतीय महारानी के शासन-काल में त्रावणकोर राज्य को इस प्रकार समृद्ध होते देख किस भारत-सन्तान को प्रसन्नता न होगी? उक्त महारानी के लिए तो निस्सन्देह यह गौरव की बात है।

प्रजा की उन्नति पर कितना ध्यान दिया जाता है, यह इसीसे प्रकट है कि, वैसे कुछ न कुछ व्यय-वृद्धि तो सभी विभागों में हुई है फिर भी, जितनी अधिक शिक्षा और व्यापार-व्यवसाय के उत्तेजक विषयों को सहायता दी गई उतनी अन्य विभागों को नहीं। यही कारण है कि एक से तो प्रजा का अज्ञान कम हुआ और दूसरे की बढ़ती से राज्य की आय भी काफ़ी बढ़ गई। यह सब तो ठीक। पर एक प्रसङ्ग दुःखद भी है। राज्य को सब से ज़्यादा (लगभग

१ करोड़ रुपये) आय जिस सीग़े से हुई उसके लिए हम उसे बधाई नहीं दे सकते । आबकारी की एक करोड़ आमदनी से तो, हमारी नम्र-सम्मति में, यह भी अच्छा था कि राज्य कुछ घाटा उठा लेता । इससे राज्य का कुछ आर्थिक अड़चन तो अवश्य पड़ती, पर उसके बदले उसके प्रजाजनों का नैतिक जीवन उतना ही अधिक विशुद्ध भी तो बन जाता !

परन्तु आज सभी राज्यों ने इसे आय का प्रधान ज़रिया बना रक्खा है—इस दृष्टि से विचार करने पर तो वह फिर भी अन्य राज्यों और ख़ास कर हमारे राजस्थानीय नरेशों से कहीं आगे है । अतः 'अबला' कही जाने वाली 'माता' (महारानी लक्ष्मी बाई) के इस सुशासन से 'पुरुष' और 'क्षत्रिय' नामधारी हमारे नरेश क्या कुछ शिक्षा गृहण करेंगे ?

मुकुट

अजमेर-प्रदर्शिनी

गत मास में अजमेर-मेरवाड़ा शिक्षा-विभाग के सहायक निरीक्षक श्रीयुत् प्रेमवल्लभजी जोशी के सतत उत्साह और परिश्रम से अजमेर में एक प्रदर्शिनी की गई । इसका उद्देश्य था अजमेर-मेरवाड़ा प्रांत की शिक्षा, व्यवसाय और कृषि की जांच, उन्हें उन्नत करने के साधनों पर विचार तथा उनको जनता के सामने रखना । इनके अतिरिक्त इसके आयोजकों का यह ख़याल भी था कि यदि अजमेर में एक शिल्प-विद्यालय खोला जाय तो उसमें कौन कौन से शिल्प सिखाने का प्रबंध किया जा सकता है। प्रदर्शिनी में अजमेर-मेरवाड़ा में प्रचलित प्रायः सभी व्यवसायों के दिखाने का प्रबंध था ।

गोटा और रंगरेज़ी इस प्रांत के मुख्य व्यवसाय हैं । कपड़ा भी अच्छा और मज़बूत बुना जाता है । खद्दर का व्यवसाय भी यहां कम महत्व नहीं रखता, राजस्थान चर्खा-संघ ने थोड़े ही समय में आश्चर्यकारक उन्नति की है। कपड़े की सफ़ाई, अच्छाई और मज़बूती के साथ सस्तापन भी बढ़ गया है । संघ की ओर से प्रदर्शिनी में रुई धुनने, सूत कातने और कपड़ा बुनने का काम भी दिखाने का प्रबंध किया गया था । ६०० अंक का सूत और ८ गज़ अर्ज़ की खादी लोगों को भारत के वस्त्र-व्यवसाय के पुनरुज्जीवन का विश्वास दिला रहे थे । संगीत-कला के उपकरणों में सिर्फ़ एक हारमोनियम का बाजा ही देखा गया । चित्रकला में अजन्ता, प्राचीन राजपूती, नाथद्वारा तथा रवि वर्मा की चित्रकला के नमूने रक्खे गये थे । भारतीय चित्रकला में नवयुग उपस्थित कर देने वाले बंगाली चित्र[kar] अवनीन्द्रनाथ टागोर, नन्दलाल बोस आदि की कृतियों [के] भी कुछ नमूने थे । श्री सौभाग्यमलजी मेहता का प्रा[चीन] चित्र-संग्रह राजपूती तथा मुग़ल चित्रकला के वैभव की सा[क्षी] दे रहा था । क़ैदियों के बनाये ग़लीचे, दरियां इत्यादि उ[नकी] कारीगरी को प्रमाणित करते थे ।

कृषि विभाग में भिन्न भिन्न तरह के बीज, कपास [और] अन्य धान्य रक्खे हुए थे । एक तरफ़ बड़े बड़े विदेशी [हलों] का प्रयोग भी दिखाया जा रहा था । यह हल उपयोगि[ता] में सादे हलों से अधिक अवश्य हैं, परन्तु यदि बिगड़ ज[ायं] तो पुर्ज़ा आने तक राह देखिए और उनको खींचने के लि[ए] चार-चार बैल चाहिएँ । हां, "रामचंद्र कोश" नामक च[रस] सुंदर था, जो केवल एक भैंसे से चल सकता है । थोड़ा समय मिलने पर भी प्रदर्शिनी अच्छी सजा दी गई थी । प्रतिदिन रात्रि को शिक्षापूर्ण सिनेमा का कार्यक्रम भी [था ।] ब्रॉडकास्टिंग—बेतार से सैकड़ों मील दूर दूर के व्याख्[यान] या गायन सुनाने का भी प्रबन्ध था ।

प्रदर्शिनी से पहले प्रांत के पाठकों का भी एक सम्मे[लन] हुआ था, जिसमें अध्यापन-शैली पर विचार किया गया। पाठशाला में पढ़ने वाले विद्यार्थियों और लड़कियों की द[स्तकारी] के नमूने भी रक्खे गये थे। इसमें बच्चों की कलाभि[रुचि] प्रकट होती थी, पर अभी सुधार और तालीम की बहुत ज़[रू]रत है । अनाथालयों का और ख़ास कर मुस्लिम अनाथा[लय] का काम बहुत प्रशंसनीय था, जो औद्योगिक शिक्षा की आव[श्]यकता और महत्व को स्पष्टतया प्रकट करता था ।

इस प्रदर्शिनी से यह अवश्य पता लगता था कि अ[जमेर] में एक शिल्प-विद्यालय बड़े रूप में शुरू किया जा सकता [है,] उसके लिए यहां पर्याप्त क्षेत्र हैं । यहां के शिल्प-विद्यालय [में] गोटे का काम, मोज़े, खद्दर, दरियां, कम्बल, पीतल, [ल]सीमेंट लोहे आदि का काम, रंगरेज़ी, चित्रकला आदि सिखाई जा सकती हैं। यदि ये काम उत्तम व्यवस्था के [साथ] शुरू किये जायें तो बहुत लाभ होने की संभावना है। प्रारम्भ[में] तो कुछ ख़र्च बाहर से लेना पड़ेगा, परन्तु कुछ ही [समय] में वह अपना ख़र्च निकालने में स्वयं समर्थ हो जायगा।

कृष्णा

सम्पादकीय

देश का हाल

देश की वर्त्तमान अवस्था का चित्र यदि एक ही वाक्य में खींचना चाहें तो, यों कह सकते हैं कि, घर के बुज़ुर्ग के न रहने से किसी घर की जो तितर-बितर हालत हो जाती है वही इस समय भारतवर्ष की हो रही है। जो देश के नेतृत्व के सब तरह योग्य हैं, जिन्हें देश नेतृत्व के लिए बार-बार बुला रहा है, वे अपने नेतृत्व के योग्य परिस्थिति और लोगों की मनःस्थिति नहीं पाते हैं; और जो नेता बनने का हौंसला कर रहे हैं उन्हें सारा देश, सब अर्थ में, नेता स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। इससे देश में चारों ओर मनमानी-घरजानी हो रही है। पागल मुसलमान हिन्दुओं को सता कर, ख़ञ्जर और पिस्तौल के बल पर, सारे हिंदुस्थान को अफ़ग़ानिस्तान बना देने का स्वप्न देख रहे हैं और दब्बू हिंदू चिन्तातुर होकर, कहीं ग़ुस्से में आकर, मक्का-मदीना तो ठीक, ठेठ पंचमजार्ज के महलों पर ॐ का झण्डा फहराने के गीत गाते फिरते हैं। दोनों को इस बात की कम चिन्ता है कि पहले हम ख़ुद तो इस्लाम और हिंदू-धर्म के नमूने बनें, जिनके कि दुनिया भर में फैलाने के लिए हम अपने को ईश्वर की तरफ़ से ठेकेदार समझ रहे हैं। स्वतंत्र टर्की जब कि इस्लाम को तलाक दे रहा है तब भारत के गुलाम मुसलमानों की यह उछल-कूद न केवल हास्यास्पद है; बल्कि उनकी अदूरदर्शिता, नासमझी और मनोदौर्बल्य का स्पष्ट प्रमाण है। इसी अरह ग़ुलाम हिन्दुओं के लिए स्वाधीन होने के उद्योग को छोड़ कर मुसलमानों के पीछे पड़ना जलते हुए सिर को छोड़ कर पैर में गड़े काँटे को सड़े काँटे से निकालने की चेष्टा करना है। जो हो; पर यह स्पष्ट है, इन दिनों और सब समस्याओं से बढ़ कर यह हिन्दू-मुस्लिम-समस्या देश को अस्त-व्यस्त बना रही है और स्वराज्य को कालकोठरी में बंद कर रही है।

राष्ट्रीय महासभा के अन्दर भी यही तितर-बितर-पन देश का दम बन्द कर रहा है। सब अपनी-अपनी हांकते हैं—सब अपने को बादशाह समझते हैं, कोई किसी के सामने झुकने को तैयार नहीं, अपनी शान और मान के आगे भारत-माता के दुखमय आँसू भी किसी के दिल पर असर नहीं करते। दक्षिण में ब्राह्मण अलग एक-दूसरे को दबा कर स्वर्ग का वैभव प्राप्त करने की धुन में हैं; पर असल में नरक के—गुलामी के वैभव की गति को बढ़ा रहे हैं। सब को अपनी-अपनी पड़ी है—देश बेचारा एक कोने में तिरस्कृत खड़ा सिर पीट रहा है; फिर तुर्रा यह कि यह सब हो रहा है राष्ट्रीयता की वृद्धि के लिए, स्वराज्य के स्वागत के लिए! देश की बात उपहास की वस्तु हो रही है और अपनी-अपनी नहीं बल्कि एक-दूसरे की सोचना तो इतना भलापन माना जा रहा है कि हम 'कृण्वन्तो विश्व मार्यम्' का झण्डा उड़ाने वाले हिन्दू भी उससे घबराते हैं—इसे वे अपने लिए नई चीज़ समझ कर अपने अस्तित्व के लिए ख़तरनाक मान रहे हैं!

यह तो हुआ कृष्ण-पक्ष, जो वास्तव में कृष्ण है और उन लोगों को शंकित और भयभीत करता रहता है जो कि स्वराज्य के लिए आतुर और अधीर हो रहे हैं। अब उस उज्ज्वल-पक्ष को भी देखिए जो कि इस कृष्ण-पक्ष के घनघोर अन्धकार में अपना शुभ्र प्रकाश फैलाये जा रहा है और जिसे देख-देख कर स्वराज्य के सैनिक उत्सुकता-पूर्वक अपने दिन की राह देख रहे हैं। उज्ज्वल-पक्ष का ख़याल आते ही इतनी संस्थाओं और हलचलों की ओर दृष्टि दौड़ जाती है—

(१) अखिल भारत चर्खा-संघ और गांधी सेवा-संघ
(२) हिन्दू-महासभा
(३) आर्य-समाज
(४) नागपुर का और नील-सत्याग्रह
(५) व्यापारियों और मजूरों के आन्दोलन
(६) अग्रवाल महासभा
(७) मुस्लिम लीग और मुसलमानों की हलचलें

सुयोग्य और सर्वश्रेष्ठ नेतृत्व, शान्त, श्रम और कष्ट-सहिष्णु, त्यागी, विनीत और सेवा-परायण, ठोस काम की लगन, दृढ़ता और क्षमता रखने वाले, बुद्धि और हृदय के गुणों में पीछे न रहने वाले, स्वराज्य और स्वाधीनता के मतवाले कार्यकर्ताओं का संग्रह,—इस दृष्टि से चर्खा-संघ और गांधी सेवा-संघ का नम्बर सबसे पहला आता है। आज कम से कम ५०० कार्यकर्ता, १०—१२ लाख के लग-भग अर्थ-सम्पत्ति, दोनों संघ के पास है। कम से कम ५ हज़ार गाँवों में उनका काम फैला हुआ है, ५० हज़ार स्त्री-पुरुषों में ७ लाख रुपये पहुँचते हैं और दो लाख मासिक खादी की उत्पत्ति-बिक्री उनके मारफ़त होती है। यदि महात्माजी की प्रेरणा से काम करने वाले कार्यकर्त्ताओं और चलने वाली संस्थाओं को भी इसमें शामिल कर लें तो देश की अन्य तमाम संस्थायें और हलचलें एक तरफ़ और अकेले महात्माजी की हलचलें और कार्य एक तरफ़—यह कहें तो अत्युक्ति न होगी।

हिन्दू-महासभा को पू० मालवीयजी और पू० लालाजी का नेतृत्व प्राप्त है। राष्ट्रीय महासभा से भी हिन्दू-महासभा का प्रभाव आज हिन्दुओं पर अधिक है। कार्यकर्त्ता भी उसके पास काफ़ी हैं और धन की कमी से उसका कोई काम रुक नहीं रहा है। फिर भी हिन्दू-संगठन का विधायक और ठोस काम उसके द्वारा कम हो रहा है। उसके उद्योग से हिन्दुओं को एकत्र होने की प्रेरणा मिली है और मिल रही है। यदि मुसलमानों के मुक़ाबलों में उसकी शक्ति अधिक ख़र्च न हो और हिन्दुओं की भीतरी बुराइयों को मिटाने में वह जुट पड़े, तो उसके द्वारा हिन्दुओं की अमिट सेवा हो।

आर्य-समाज—हिन्दुओं की पुरानी और प्रतिष्ठित संस्था है। इसके पास धन-बल और जन-बल दोनों अच्छा है। पर इस समय समुचित नेतृत्व का अभावसा मालूम होता है। इसने हिन्दू-समाज में अपूर्व जागृति की। आज भी हिन्दुओं में इसीको सजीव संस्था कह सकते हैं। इसने हिन्दू-समाज में ठोस काम भी किया है। क्षात्र-तेज के साथ ही ब्रह्म-तेज की वृद्धि की ओर इसका विशेष ध्यान यदि जाय, तो यह भारत की भारी सेवा कर सकता है। इसे अपना दृष्टि-बिंदु व्यापक और उदार तथा स्वभाव अधिक सहिष्णु और नम्र बनाने की आवश्यकता है।

नागपुर का और नील-सत्याग्रह देश का ध्यान आकर्षित कर रहे हैं। नील-सत्याग्रह को सत्याग्रह के आचार्य महात्मा की पुष्टि प्राप्त हो चुकी है। ये सत्याग्रह इस बात को सूचित कर रहे हैं कि देश में असहयोग के बीज फल-फूल रहे हैं। कौन्सिलों की ओर से भी लोगों को फिर विरक्ति सी हो जा रही है। एक ओर हिन्दू-मुसलमान लड़ कर स्वराज्य दूर भगा रहे हैं और दूसरी ओर सत्याग्रह की किरणें उसे नज़दीक आते रहने का सन्देश ला रही हैं।

व्यापारियों और मज़दूरों के आन्दोलन अपने-अपने स्थान से अच्छे हैं। अभी दोनों को अपनी-अपनी सूझ रही है। दोनों को, एक दूसरे की समस्याओं पर भी सहानुभूति और आत्मीयता के साथ विचार करना चाहिए। हर दल अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए चाहे एक-दूसरे से प्रेम-भाव से लड़े पर सबका यह अन्तिम लक्ष्य और दृढ़ व्रत होना चाहिए कि सब मिल कर पराधीनता की बेड़ियों को पहले तोड़ेंगे।

अग्रवाल और माहेश्वरी महासभा मारवाड़ी वैश्य समुदाय की जागृति और जीवन का प्रमाण हैं। सुधार में अग्रवाल आगे बढ़ गये हैं—माहेश्वरी अभी बाप के कुएं का खारा पानी पीने का मोह नहीं छोड़ पाये हैं।

मुसलमानों के जातीय आन्दोलन अधिक सदोष हैं, फिर भी वे उनकी जागृति का लक्षण तो हुई हैं। आज चाहे उनके विवेक पर परदा पड़ गया हो, धर्मान्धता ने उन्हें मदमस्त बना दिया हो, पर जागृति की लहर उनकी आँखें खोले बिना और उन्हें सीधे रास्ते पर लाये बिना न रहेगी।

इन सब संस्थाओं के कार्यों पर जब ध्यान जाता है तो हृदय उठे बिना नहीं रहता। इनके कार्यों में और कार्य-पद्धतियों में चाहे बुराइयां हों, उनसे हानि भी होती हो, पर सब कुछ न कुछ काम कर रही हैं—जड़ता के पुजारी हो रहे इस भारत के लिए यह भी आशा का सन्देश हो सकता है। देश की सारी हलचलों की बुराइयों और भलाइयों का हिसाब फैलावें तो, मेरा निश्चित मत है कि, अच्छाई अधिक पाई जायगी और यही स्वभाविक एवं प्रकृति-सिद्ध है। जब तक मनुष्य स्वयं अधूरा और कच्चा है तब तक उसके कामों में दोष, कमी और ख़ामी रहना अनिवार्य है। हम तो यह देखें कि अच्छाई किसमें अधिक है; और उसीमें शक्ति लगा दें। स्वयं अच्छा बनने का संकल्प करें, अच्छा

अपनाते रहें—यह अपनी और समाज की सेवा का सर्वश्रेष्ठ राज-मार्ग है । देश की वर्तमान अवस्था में यही हमारा तरणोपाय है ।

क्या यह इस्लाम की सेवा है ?

मुसलमानों की धर्मान्धता से जहाँ तक संबन्ध है, यह मास हिन्दुओं के ख़ून, ख़ञ्जर भोंकना और ख़ून की धमकियाँ देने का मास कहा जा सकता है । प्रश्न उठता है कि क्या ऐसी हरकतों से मुसलमान दुनिया में आगे बढ़ सकते हैं, इस्लाम की सेवा करना तो दूर रहा ? 'त्याग-भूमि' के पाठकों में मुसलमान बहुत कम होंगे; और सम्पादकों के हिन्दू होने के कारण उचित तो यही है कि इसमें हिन्दू-समाज को ही ध्यान में रख कर अधिक लिखा जाय; क्योंकि अपनी उन्नति और समाज की सेवा दोनों दृष्टियों से मनुष्य के लिए यह सुवर्ण-नियम है कि वह दूसरों के गुणों को और अपने दोषों को अधिक देखे एवं दूसरे के गुणों की ही चर्चा दुनिया के सामने करता रहे । अपने अवगुण भले ही हम आप होकर समाज के सामने रक्खें; पर दूसरे के अवगुण उसे अकेले में ही बताने चाहिएं । इस नियम के अनुसार मैंने अबतक हिंदू-मुस्लिम-समस्या के सम्बन्ध में हिंदुओं को ही, उनकी छोटी-छोटी सी त्रुटियों के भी लिए, समय-समय पर कोसा है; क्योंकि मैं हिंदू हूँ और चाहता हूँ कि मेरा समाज सब प्रकार त्रुटि-हीन, निर्दोष और शुद्ध-बुद्ध बने । मुसलमानों की बुराई १२ आने और हिंदुओं की ४ आने भी यदि मेरे सामने आती है तो मेरा माथा ठनक उठता है और हिंदुओं की कमज़ोरी पर दुःख होने लगता है, उन्हें उलहना देने को जी चाहने लगता है । पर इसपर मित्र लोग यह सवाल उठाते हैं कि सम्पादक तो न हिंदू होता है, न मुसलमान, न ईसाई, वह तो हिंदुस्थानी और उससे भी आगे बढ़ कर एक मनुष्य होता है और उसे सब के गुण-दोषों पर समान-रूप से प्रकाश डालना चाहिए । तत्वतः इस युक्ति में बल अवश्य है; पर व्यवहारतः और परिणामतः, ख़ास कर ऐसी हालत में जब कि ग़लतफ़हमी, सत्य की तोड़-मरोड़ और भ्रम फैलाने का बाज़ार बहुत गर्म है, यह दलील बहुत दूर तक काम नहीं दे सकती । परन्तु स्वामी श्रद्धानन्दजी की हत्या और पिछले मास की घटनाओं ने मेरे दिल और दिमाग़ पर इतना असर किया है, इसमें मुसलमानों की और इस्लाम की मुझे इतनी हानि दिखाई पड़ती है कि, कोई सुने या न सुने, उन्हें चेता देना अपना कर्त्तव्य मालूम होता है ।

कुछ इने-गिने मुसलमानों को छोड़ कर, यह स्पष्ट है कि, हिन्दुस्थान के अधिकांश मुसलमान या तो इन ख़ून-ख़च्चर और धमकियों की करतूतों से नावाकिफ़ हैं, या उन्हें पसंद करते हैं और उनके साथ हमदर्दी रखते हैं, या उनमें शामिल हैं और खुद उन्हें बढ़ावा देते हैं । यह तो और भी साफ़ है कि इन हरकतों को वे अपने लिए इतना बुरा और ख़तरनाक नहीं समझते कि सब काम छोड़कर इसका विरोध करने में जुट पड़ें । यदि यह बात सचमुच ठीक है और जैसा कि उनकी धारणा बताई जाती है कि इस ज़ोरो-जुल्म से ही इस्लाम तरक़्क़ी कर सकता है और मुसलमान आगे बढ़ सकते हैं, तो मैं कहता हूँ, ज़ोरों के साथ कहता हूँ कि इस्लाम दुनिया में कहीं फल-फूल नहीं सकता । मेरा तो अनुमान है कि मुसलमानों की इन हलचलों का परिणाम यह होने वाला है कि इस्लाम में कोई ज़बरदस्त सुधारक पैदा हो; पर यदि यह धारणा ग़लत निकली, तो भी दुनिया के मौजूदा प्रकाश और प्रगति के इस युग में इस्लाम ख़ूंरेज़ी और तलवार-बहादुरी के जंगली और सड़े-गले औज़ारों से अपनी हस्ती क़ायम नहीं रख सकता । मुसलमानों के लिए यह गहरे आत्म-संशोधन का समय है और यदि उन्होंने इसे गवां दिया तो पछताने के सिवा कुछ हाथ न आयेगा ।

परन्तु मुसलमानों की इस दुःस्थिति को यदि हिन्दू उनकी मर्दानगी समझें, तो यह उनकी भूल है; और यदि इस पर खुश हों, तो यह क्षुद्रता है । जो हो; इसमें सन्देह नहीं कि इस समय हर मुसलमान अल्लाह को याद करके संजीदगी के साथ यह सोचे कि क्या यह इस्लाम की सेवा हो रही है ?

राजस्थान की हलचलें

राजस्थान की हलचलों का ख़याल आते ही बिजोलिया, जयपुर, बीकानेर, भरतपुर, ग्वालियर और इन्दौर—राजस्थान की प्रायः सब बड़ी रियासतें सामने आ जाती हैं । इनमें से कहीं प्रजा के हित की बातें हो रही हैं, कहीं उसके हित पर लीपापोती करने की चेष्टा की जा रही है और कहीं देशी-नरेश

पर संकट आ रहा है। बिजोलिया और जयपुर पर टिप्पणियाँ अलहदा लिखी गई हैं।

बीकानेर में श्वेतांबर जैन-परिषद् ने जैन-जगत् में कुछ जागृति की है। एक स्थायी आश्रम खुलने की ख़बर है, जिसमें खादी-संगठन के लिए भी उद्योग किया जायगा।

भरतपुर देशी नरेश और ब्रिटिश सरकार की खींचा-तानी का क्षेत्र बन रहा है। एक ओर से कहा जाता है, राजा किशन का बुरा प्रभाव श्रीमान् भरतपुर नरेश और उनके राज्य-कार्य पर पड़ रहा है; और दूसरी ओर राजा किशन ब्रिटिश अधिकारियों की भरतपुर को निगल जाने की चालों का भण्डाफोड़ कर रहे हैं। श्रीमान् भरतपुर-नरेश मालूम तो उत्साही, साहसी और जानदार होते हैं; पर इतने ही से कोई आदर्श नरेश कैसे हो सकता है? और जब तक राज्य में सुव्यवस्था और सुनीति न हो एवं प्रजाबल का ज़ोर न हो, तब तक किसी भय की आँख को कोई कैसे बचा सकता है?

ग्वालियर के उज्जैन में हालही वकील-सम्मेलन हुआ, जिसमें दो बातें ख़ास तौर पर हमारा ध्यान खींचती हैं—एक तो यह कि वकील लोग लोकहित की ओर अधिक ध्यान दें और दूसरे यह कि अपना संगठन बनावें। यह शुभ चिह्न है। वकीलों के संगठन का परिणाम यह होना चाहिए कि वकील अधिक सत्य-भक्त बनें, अदालतों में न्याय का वायु-मण्डल फैले, उनमें मामलों-मुक़दमों की संख्या घटे और वकीलों की फ़ीस भी कम हो। इधर लश्कर में हिन्दी और मराठी-सम्मेलन नवंबर के आरंभ में होने वाले थे। राष्ट्र-भाषा और महाराष्ट्र-भाषा दोनों के सम्मेलनों का यह सम्मेलन, इंदौर की तरह, बल्कि उससे भी अधिक सफल हो, प्रत्येक राष्ट्रहितैषी की यही कामना हो सकती है। इन सम्मेलनों का एक परिणाम यह भी होना चाहिए कि मराठी और हिन्दी-भाषा एक दूसरे के अधिक नज़दीक आवें, प्रान्तीय सङ्कुचितता दूर हो और एक-राष्ट्र-भाव की वृद्धि हो।

इंदौर अभी बलवन्तसिंह के मामले का फ़ैसला कर ही नहीं पाया था कि बलवन्ता का ख़ून उसके सिर पर सवार हो गया! लोग कहते हैं, बलवन्ता ने कई मुसलमान अपराधियों की शिनाख़्त की थी, इसलिए, मुसलमानों ने उसे मरवा डाला। टेलर साहब फ़रमाते हैं—'इस मामले को हि-मुसलमान-वैमनस्य का जितना रूप दिया जा रहा है उत ठीक नहीं। बलवन्ता बज़ात ख़ास कोई अच्छा आदमी न था। उसका चलन ठीक न था।' सचाई तो आजकल अप मतलब साधने का हथियार भर रह गई है। देखें, अदा किस सचाई को हमारे सामने पेश करती है।

इन सब हलचलों की छानबीन हमें तीन परिणामों पहुँचाती है—(१) राजस्थान में प्रजा दिन-दिन जग है, (२) सत्ताधीश उसे उठाने के बजाय दबाने में, अ स्वार्थ-हानि के भय से, कहीं ऊपरी दबाव से, अपनी श ख़र्च कर रहे हैं, और (३) ब्रिटिश नौकरशाही बिल्ली तरह सदा घात में बैठी रहती है और मौक़ा ताकते ही अ शिकार पर टूट पड़ती है। इसका एक ही उपाय है, रा और प्रजा के स्वार्थों का एक हो जाना। देखें, परमात्मा सुदिन कब लाता है!

बिजोलिया में सत्याग्रह

बिजोलिया में किसानों ने कई महीनों से फिर सत्या-ग्रह ठान रक्खा है। कहते हैं, पिछले सत्याग्रह के बाद समझौता उनके और ठिकाने के बीच हुआ था, उसकी शर्तें, नये बन्दोबस्त के कारण, टूट जाती हैं और इस सि-सिले में अधिकारियों और किसानों में तनातनी यहाँ बढ़ी कि किसानों ने अपनी माल की ज़मीन का इस्तीफ़ा दिया और उधर, सुनते हैं, अधिकारियों की तरफ़ से और पुलिस उनपर आतङ्क जमा रही है। यहाँ पर यह स्वभावतः ही मन में उठता है कि यदि किसान सचमुच के अन्नदाता और राज्य के जीवनदाता हैं और राजा-प्रजा बीच पिता-पुत्र का सम्बन्ध होना एक सुन्दर और आदर्श है तो फिर इस आदर्श से अनुप्राणित होते मेवाड़ में किसान और राज्य का यह संघर्ष कहाँ तक और वाञ्छनीय है? मामूली और मोटी बुद्धि के आदमी जो बुराइयाँ और हानि इसमें देख पड़ती हैं क्या इन्हें के बुद्धिमान् अधिकारी और समझदार किसान नहीं देख हैं? नहीं, यह मानने को जी नहीं चाहता। यह अस्वा-विक है कि राजा और प्रजा, जिनके वास्तविक हित-सम्बन्ध एक हैं, इस तरह लड़ने वाले दलों में बँट जायँ और उन

पहले दोनों आपस में निपटारा कर लेने की कोशिश न करें। यदि कोशिश न हुई हो तो मेरी राय में दोनों दल दोष से नहीं बच सकते और यदि हुई हो तो फिर असफलता का क्या कारण है ? मेरी राय में वह दोनों का, अथवा किसी एक दल का दुराग्रह ही ऐसा कारण हो सकता है। यदि दोनों पक्ष सचाई पर आमादा हों, एक दूसरे को नुक़सान न पहुँचाने की नीयत दोनों की हो, तो फिर, एक तो, लड़ाई हो नहीं सकती, और अगर हुई तो समझौते की सूरत जल्दी निकल आ सकती है और उसमें कामयाबी भी मिल जाती है।

तो प्रश्न उठता है कि इसमें कठिनाइयाँ क्या हैं और वे कैसे दूर की जा सकती हैं ? पहली कठिनाई तो मुझे राज्य-संचालकों के कुछ पुराने संस्कार मालूम होते हैं। राजा-प्रजा का आर्य आदर्श चाहे पिता-पुत्र का अर्थात् प्रेम और कुटुम्ब-भाव-मूलक हो, पर व्यवहार में बरसों से वह शासक-शासित का या स्वामी-सेवक का अर्थात् भय और सत्ता-मूलक रह गया है। ऐसी अवस्था में यदि प्रजा-जन कभी किसी कारण से राजा या राज्याधिकारियों के मुक़ाबले में खड़े होकर अपने दुःखों को दूर कराने की योजना करते हैं तो यह विधि राज्य-संचालकों को स्वभावतः ही उनकी प्रतिष्ठा, मर्यादा और प्रचलित प्रणाली के विरुद्ध मालूम होती है और उसको सहन करना उनके लिए कठिन हो जाता है। मैं उनकी इस मनोदशा को समझ तो सकता हूँ, उनके साथ सहानुभूति भी रख सकता हूँ; पर, खेद है, उसका क़ायल नहीं हो सकता। संसार में राजा और प्रजा का सम्बन्ध अब बहुत परिष्कृत और स्वाभाविक होता जा रहा है और मेवाड़ भी इसके प्रभाव से वञ्चित नहीं रह सकता। पर यह भी सच है कि जब तक पुराने संस्कार क़ायम हैं तब-तक उनके बल की उपेक्षा कर के इस समस्या को हल कर लेने का विचार रखना उतना सस्ता नहीं है जितना कि, शायद, सोचा जा सकता हो।

उनकी दूसरी कठिनाई शायद बिजोलिया की पंचायतों का संगठन और संगठन-कर्त्ता हों। पंचायत का सङ्गठन जिन तत्वों के आधार पर किया गया है वे चाहे समाज की आदर्श अवस्था के कितने ही अनुकूल हों, पर वर्तमान राज्य-व्यवस्था का और उनका मेल मिलना ज़रा है टेढ़ा काम। उन आदर्शों और तत्वों के बौद्धिक ज्ञान के बिना, अथवा उसके पहले, उनके अनुसार सङ्गठन करना कहाँतक उपयोगी और स्थायी होगा, यह भी विचारणीय है। फिर, मेरा ख़याल है, केवल मध्यम, धनी, उच्च और अधिकारी वर्ग को छोड़कर केवल जनता को सङ्गठित करने से तबतक कठिनाई दूर न होगी, अथवा इच्छित सुधार न होगा, जबतक सारे समाज को ध्यान में न रक्खा जायगा। जबतक मध्यम, धनी, उच्च और अधिकारी वर्ग के संस्कारों को बदलने की, उनके विचारों के संशोधन की ओर ध्यान न दिया जायगा, तबतक सारे समाज का संगठन उतना आसान न होगा जितना कि चाहा जाता है। साथ ही पूर्वोक्त वर्ग भी अधिक समय तक इन आदर्शों और सिद्धांतों की उपेक्षा या अनादर न कर सकेंगे, यह भी मुझे स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

ये दोनों कठिनाइयाँ हल हो सकती हैं, यदि एक ओर राज्य-संचालक किसानों के हित और उनके साथियों के हेतु को, आत्मभाव से या अलिप्त भाव से, देखने की कोशिश करें और दूसरी ओर किसान तथा उनके साथी राज्य-सञ्चालकों के मनोभावों, परम्परागत संस्कारों का, सौजन्य और सहानुभूति के साथ, विचार करें।

अब रही सङ्गठन-कर्ताओं की बात। यह स्पष्ट है कि मेवाड़ के अधिकारी बिजोलिया के आन्दोलन के नेताओं और कार्यकर्ताओं से ख़ुश नहीं हैं। राजस्थान के देशी-राज्यों की मौजूदा मनःस्थिति में यह अस्वाभाविक भी नहीं है। राजा भी प्रजा के हित के लिए जीते हैं। फिर भी क्या यह आश्चर्य और दुःख की बात नहीं है, यदि राजा और नेता दोनों एक दूसरे को 'अपना' न समझें ? इसका कारण यह है कि दोनों का प्रजा-हित और उसके साधन जुदा-जुदा हैं। राजा अपनी सत्ता को अक्षुण्ण रखते हुए प्रजा-हित चाहता है; उसकी सत्ता और प्रजाहित में विरोध उत्पन्न होने पर अपनी सत्ता की रक्षा की ओर उसका विशेष ध्यान जाता है। नेता के पास तो सत्ता का सवाल ही नहीं होता। हाँ, यदि नेता का प्रभाव भी धीरे-धीरे सत्ता का रूप धारण करने लगे, तब तो राजा की और उसकी मनःप्रवृत्ति में कोई अन्तर नहीं रह गया। श्री पथिकजी की राजनीति और कार्य-नीति से कोई कितना ही मत-भेद रखता हो, यह तो उनके विरोधी और प्रतिपक्षी तक मानते हैं कि वे एक साहसी, बुद्धिमान् और प्रभावशाली व्यक्ति हैं। क्या यह किसी तरह संभव नहीं है

कि उनकी शक्तियाँ विध्वंसक और विरोधक कामों से हटा कर विधायक कामों में लगाई जा सकें ? यह तो कैसे मान सकते हैं कि मेवाड़ के दूरन्देश राज्यकर्त्ताओं ने इस पर कुछ विचार ही न किया हो, अथवा कोशिश ही न की हो ? पर यदि किसानों का हित ही दोनों को अभीष्ट है तो फिर, समझ में नहीं आता, लड़ाई अब तक क्यों जारी है ?

किसानों की कठिनाई तो सिवा इसके क्या हो सकती है कि जो शर्तें टूट रही हैं वे न टूटने पावें। यदि राज्य पुराने फ़ैसले को बरक़रार रक्खे अथवा उन्हें विश्वास करा दे कि नये बन्दोबस्त में वह बरक़रार ही है, किसान लोग उसका ग़लत अर्थ लगा रहे हैं तो, मैं समझता हूँ, किसानों का कोई झगड़ा राज्य या ठिकाने के साथ नहीं है।

इस सिलसिले में क्या मैं दोनों पक्षवालों के सम्मुख एक सूचना पेश करूँ ? यदि दोनों पक्षों के विश्वास-पात्र लोगों का एक कमीशन इस बात की जाँच के लिए नियत कर दिया जाय कि नये बन्दोबस्त के सम्बन्ध में किसानों की शिकायतें उचित हैं या नहीं और उसके फ़ैसले को दोनों मान लें तो क्या बुराई है ? किसान जब कि इतने दृढ़ हैं तो ज़रूर उनकी हानि और दुःख की मात्रा भी बढ़ी हुई होगी; क्योंकि किसान केवल भावावेश में बरबाद होजाने को तैयार नहीं हो जाते, जबतक कि उनके गहरे हानि-लाभ और सुख-दुःख की समस्या सामने न हो। अतएव लोगों की सहानुभूति उनकी ओर होना स्वाभाविक है। इधर राज्य-संचालकों के सामने, जहाँतक मेरी बुद्धि की पहुँच है, प्रतिष्ठा का प्रश्न मुख्य है। अतएव उनके साथ सिर्फ़ उन्हीं लोगों की सहानुभूति हो सकती है जिन्हें उनकी विषम स्थिति का यथार्थ ज्ञान है। इस मामले में मेरी न्याय-वृत्ति और सेवा-भाव किसानों की ओर दौड़ता है और सहानुभूति अधिकारियों की विषम स्थिति की ओर जाना चाहती है। जिसके सामने 'सर्वोदय' का आदर्श है, वह इस खींचातानी से कैसे बच सकता है ? यह खींचातानी उसे शुद्ध सेवा का मार्ग दिखाती है। हाँ, मुझे यह तो साफ़ दिखाई देता है कि यदि दोनों एक दूसरे की कठिनाइयों का विचार न करेंगे तो दोनों को दुःख और पछतावे के सिवा दूसरा परिणाम हाथ न आवेगा।

हड़ताल के बाद जयपुर

हड़ताल का अन्त हो चुका और ऐसा प्रतीत होता है उसके साथ-साथ प्रजाजन के उत्साह का भी। इससे परिणाम निकालना कि "लोगों ने किन्हीं गुण्डे-बदमाशों के बहकाने के प्रभाव में आकर हड़ताल कर दी थी, उन्हें कोई शिकायत नहीं थी" जितना ग़लत है, उतना ही ग़लत होगा यह परिणाम निकालना कि "लोगों को जो शिकायतें थीं, वे अब मिटा दी गईं"। सच बात यह है कि जयपुर की प्रजा को बड़ी-बड़ी शिकायतें वास्तव में हैं—परन्तु, किसी प्रकार का संगठन न होने के कारण, लोग (चाहे अपने घर पर बैठे-बैठे शिकायतों की कितनी ही चर्चा करते हों) अपने असन्तोष को सार्वजनिक रूप में प्रकट करने का साहस नहीं रखते। जितने भी जयपुर के पढ़े-लिखे, कार्य-कुशल और प्रभावशाली हित-चिन्तक हैं वे राज्य की नौकरी के बन्धन में बंधे हुए हैं। प्रजा में प्रभाववान् और स्थिर आन्दोलन करने योग्य संगठन के अभाव से रीजेंसी-राज्य लाभ उठाना चाहता है और यह उद्घोषित करता है कि पिछले चार वर्षों में जयपुर की प्रजा के कल्याण के लिए राज्य ने कुछ उठा नहीं रक्खा। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, रीजेंसी राज्य के पहले भी प्रजाजन को कुछ शिकायतें अवश्य थीं परन्तु सहानुभूति रखने वाले प्रजा के प्रेमी महाराज की छत्रच्छाया में प्रजा अब से सन्तुष्ट थी।

विश्वसनीय सूत्रों से निरन्तर यही समाचार मिलता रहता है कि रीजेंसी-राज्य ने सभी पुरानी बातों को बुरा समझा और साथ में ख़ास जयपुरियों को भी अयोग्य और अविश्वासपात्र समझा। इसका फल यह हुआ कि रीजेंसी राज्य को "सुधार" की धुन चढ़ी हुई रही है और बाहर के साधारण योग्यता के मनुष्य बड़ी-बड़ी तनख़्वाहों पर बुला कर लाद दिये गये हैं। अपनी धुन में वस्तु-स्थिति को समझने की कोई चेष्टा नहीं की, और किस-किस महकमे में आज तक क्या-क्या दोष आ गये हैं, इसकी कुछ भी छानबीन किये बिना और केवल दोषों का निराकरण करने के बजाय रीजेंसी ने रियासत के प्रायः सभी महकमों को कायापलट का सुधार मारा। इसके अलावा जयपुर के विश्वसनीय हित-चिन्तकों को यह भी बड़ी भारी शिकायत है कि रीजेंसी

ने जान-बूझ कर, कूटनीति का प्रयोग करके, रियासत की प्राचीन और कई प्रकार से उपयोगी संस्थाओं को निर्दय होकर तोड़-मरोड़ डाला। इस विषय में किसी आगामी अङ्क में तफ़सीलवार विचार किया जायगा।

सुना है, कमीशन का कार्य समाप्त हो चुका है। कमीशन की कारंवाई परदे के पीछे हुई है; इसलिए नहीं कहा जा सकता कि कमीशन की रिपोर्ट क्या होगी। परन्तु अनुभव यही है कि प्रजा के पक्ष में शायद रिपोर्ट न हो। कारण यह है कि इतना विप्लव होने पर भी रीजेंसी-राज्य ने पुलिस को और ख़ास कर यूरोपियन इन्सपेक्टर-जनरल को बड़े साधुवाद दिये हैं। पुलिस के सिटी-सुपरिण्टेण्डेण्ट को मुअत्तिल करने का हुक्म होने पर भी, सुना है कि, उनको पूरा वेतन मिल रहा है, कैफ़ियतें उनके नाम जारी होती हैं और अनेक प्रकार से उनके साथ जो व्यवहार होता है उससे उनकी वास्तविक मुअत्तिली का कुछ भी प्रमाण नहीं मिलता। अपराधियों को बचाने की और लीपापोती करने की यह चिंता साबित करती है कि हड़ताल का कितना प्रभाव सत्ताधीशों पर पड़ा हुआ है। जयपुर के जीवन पर इस हड़ताल का जो असर हुआ है उसे पोंछ डालना मनुष्य की शक्ति के बाहर है। ऐसी स्थिति में प्रजाजन के लिए यदि कोई उपाय हो सकता है तो वह है संगठन करना। सङ्गठन निःस्वार्थ, कार्य-कुशल, विश्वसनीय और अनुभवी नेताओं के बिना नहीं हो सकता। मैं कह सकता हूँ कि ऐसे सज्जनों का जयपुर में अभाव नहीं है। परन्तु क्या यह आशा की जाय कि उनमें से एक-दो माई के लाल सेवा के क्षेत्र में उतरेंगे?

जयपुर की एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट

समाचार मिला है कि माइनरिटी एडमिनिष्ट्रेशन ने १९२२-२३, १९२३-२४, १९२४-२५, १९२५-२६ की रिपोर्ट छपाई है। परन्तु रिपोर्ट के ऊपर "कानफ़िडेन्शियल" छपा है और केवल ५० प्रतियाँ मुद्रित होकर राज्य के बड़े-बड़े हाकिमों के पास ही एक-एक प्रति भेजी गई है। इस विषय में टीका-टिप्पणी करना अनावश्यक है।

हिसाब का दिन

इस 'अंश' के पाठकों के हाथों में पहुँचने तक दिवाली हो चुकी होगी। दिवाली चाहे राम की रावण पर विजय का स्मारक हो, चाहे वर्षारम्भ अथवा ऋतु-परिवर्तन का उत्सव हो, चाहे आधुनिक काल में, ऋषि दयानन्द की पुण्य-तिथि हो, मेरे नज़दीक, आज, उसका मूल्य इसलिए सब से अधिक है कि वह 'हिसाब का दिन' है। प्रायः सारे भारतवर्ष में आज व्यापारी अपने नफ़े-टोटे का हिसाब लगा कर अगले साल के लिए अपना मार्ग और कार्यक्रम निश्चित करता है। व्यापारी तो सिर्फ़ आर्थिक हानि-लाभ का हिसाब रखता है और उसी में अपने जीवन-मरण की परिसमाप्ति समझता है। पर इससे व्यापक अर्थ में प्रत्येक मनुष्य व्यापारी है—मनुष्यता का, मनुष्योचित गुणों और शक्तियों का व्यापारी है—और उसे इसका पूरा पूरा हिसाब आज के दिन भुगताना चाहिए। मनुष्य सब से पहले मनुष्य है, उसके बाद हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, ब्राह्मण, वैश्य, शिक्षक, व्यापारी, कारकुन, मालिक, मज़दूर आदि है। मनुष्यता की रक्षा, मनुष्यता का विस्तार, उसका सब से पहला काम है। मनुष्यता क्या वस्तु है? मेरी समझ में तमाम सात्विक गुणों, सात्विक शक्तियों और सात्विक आचारों के समुच्चय का नाम है मनुष्यता। दूसरे शब्दों में तेज, धैर्य, साहस, दृढ़ता, निर्भयता, क्षमा, विनय, परोपकार, प्रेम, सहिष्णुता, उदारता, इनके समूह को हम मनुष्यता कह सकते हैं। इस कसौटी पर यदि आज हम दुनिया के मनुष्यों को कसें तो किस नतीजे पर पहुँचेंगे? बात यह है कि हमें दुनियादारी की, नोन-तेल-लकड़ी की, बातों से इतनी फ़ुरसत ही नहीं मिलती कि इन गहरी और वास्तविक बातों का विचार करें। दाल-रोटी की फ़िकर में हम सच्ची मनुष्यता से मुंह मोड़ लेते हैं। फलतः न मनुष्यता हमारे हाथ आती है, न दाल-रोटी ही। जिसने मनुष्यता को पा लिया है, दाल-रोटी तो ठीक, बड़े-बड़े धनी और सत्ताधारी उसके चरण चूमने को तत्पर रहते हैं। ऐसे उदाहरण हमारे सामने हैं; फिर भी, शायद पिछले पापों से, हमारी आँखें नहीं खुलतीं। यदि हम मनुष्योचित गुणों और शक्तियों को बढ़ाने का ही ध्यान रक्खेंगे, अपनी शारीरिक, बौद्धिक और आत्मिक उन्नति का वही विचार करेंगे, तो दाल-रोटी के लिए न तो हमें अलग यत्न करना होगा, न समय बरबाद करना होगा। इसका अर्थ यह नहीं कि दाल-रोटी पैदा करने की ज़िम्मेवारी से हम बरी हो गये; बल्कि इसका अर्थ यह है कि उस ज़िम्मेवारी

को भली भाँति और सुगमता के साथ पूरा करने का रास्ता दिन-रात रुपये की माला जपना, मिन्नत और खुशामद करते हुए दर-दर जूतियां चटखाना, ज़लील होना, बेईमानी और धोखेबाज़ी करना, ग़रीबों और भोले-भाले लोगों को चूसना नहीं बल्कि अपने गुणों और शक्तियों को बढ़ा कर अपनी और उनकी सेवा करने योग्य अपने को बनाना है।

तो प्रश्न यह उठता है कि यह मनुष्यता हम कैसे प्राप्त करें ? धन और विद्या प्राप्त करने का जो मार्ग है, वही मनुष्यता प्राप्त करने का है। किसी काम में जुट पड़ना, विघ्नों और कठिनाइयों को ठोकर मारते हुए आगे बढते जाना, भूलों और ग़लतियों पर ध्यान देकर उनके सुधार का सतत उद्योग करना, इससे बढ़कर उस काम में सफलता पाने का रास्ता शायद ही हो। यदि हमें मनुष्यता से प्यार है, मनुष्यता का गर्व है, तो उसके लिए हम तन मन से जुट पड़े। व्यापारी जैसे हानि-लाभ का हिसाब रखता है, हम भी अपनी उन्नति-अवनति का हिसाब रक्खा करें। अपने मन की प्रवृत्तियों को जाँचा करें और वर्ष के अन्त में देखें कि हम कहाँ थे और अब कहाँ हैं ? जब तक हम उद्योग-पूर्वक, निष्ठा-पूर्वक ऐसा न करेंगे, उसी व्यापारी की तरह किसी दिन दिवाला निकालना पड़ेगा, जो हानि-लाभ पर दृष्टि नहीं रखता और जिसे अपने घर का और व्यापार का कुछ पता नहीं रहता। भारत की वर्तमान अवस्था में जब कि ज़्यादा माद्दा और कूवत रखने वाले, निश्चयी और त्यागी, तेजस्वी और नम्र सुपूतों की भारी ज़रूरत है, दिवाली का दिन, अपनी मनुष्यता की प्रगति के हिसाब का दिन होना चाहिए। मनुष्य जितना ही अधिक योग्य और कार्यक्षम होगा उतना ही अधिक अच्छा उसका कार्य भी होगा। अतएव अपनी उन्नति तथा लोक-सेवा दोनों दृष्टियों से इस बात की परम आवश्यकता है कि हम अपने को हर तरह से, हर अर्थ में, योग्य मनुष्य बनावें और दिवाली जैसे स्फूर्तिदायक अवसर पर पिछला हिसाब चुकता करके नये हिसाब, नये जीवन का प्रारंभ करें।

एकता का राज-मार्ग

कलकत्ते में महासमिति ने हिन्दू-मुस्लिम-समस्या को निपटाने का उद्योग किया है। धार्मिक स्वतन्त्रता के सिद्धान्त की बुनियाद पर उसने यह फ़ैसला किया है कि हिंदू मसजिद के सामने बाजा बजाने में और मुसलमान गोवध करने में स्वतंत्र हैं। हिन्दू ऐसी जगह बाजा न बजावें जहां खून-खराबी का अंदेशा हो और मुसलमान गोकुशी के लिए गाय का जुलूस न निकालें और इस तरह गोकुशी न करें जिससे हिन्दुओं के दिलों को चोट पहुँचे। धर्मान्तर के सम्बन्ध में भी उसने दोनों को आज़ादी दे दी है, मगर इस शर्त पर कि उसमें कोई किसी पर ज़बरदस्ती न करे, अनुचित रीति से फुसलावे या धोखा न दे और धर्मान्तर करने वाले की उम्र ... साल से अधिक हो। फिर धर्मान्तर में धूम-धाम न की जाय। सिद्धान्ततः तो ऐसा ही मार्ग ऐसे प्रश्नों के निपटारे का हो सकता है। पर इस समय तो सब से बड़ा प्रश्न यह होता है न कि इस पर अमल कौन और कितने करेंगे ? जिस समझौते पर पू० मालवीयजी और लालाजी अपनी मुहर लगावें उसे मानने के लिए हिन्दू-समाज कहाँ तक तैयार है उसी तरह डा० अनसारी और मौ० मुहम्मदअली की बातें सुनने और मानने के लिए मुसलमान कहाँ तक रजामन्द हैं ? अतः इस उद्योग को तो मैं पसन्द करता हूँ पर इसके फल के विषय में मौजूदा परिस्थिति शंकाशील होने पर मजबूर करती है।

यह जो कुछ हो; पर एक बात अवश्य होनी चाहिए या तो हम दिलोजान से एकता के लिए उद्योग करें या काफ़ी समय के लिए उसका नाम छोड़ दें। जब तक हिन्दुओं और मुसलमानों के नेताओं के दिल साफ़ न होंगे तब तक किसी समझौते का सुपरिणाम निकलना कठिन मालूम होता है। हृदय की स्वच्छता का रास्ता है अपने दोषों को और दूसरे के गुणों को अधिक देखना। जब तक हम अपने दोषों को नहीं या कम देखते रहेंगे और दूसरों को ही कोसा करेंगे, तब तक उस दिन को दूर समझना चाहिए। जिसे लगन लगी हुई है वह भविष्य को इतना दूर नहीं देखा करता, जितना की आम तौर पर वह देखा जाता है। आइए, हम सच्ची लगन और शुद्ध-हृदय आत्माओं के चरण चूमें, उन पर अपने को न्यौछावर होने योग्य बनावें। यही एकता का, स्वराज्य का और मोक्ष का एक-मात्र मार्ग है।

माहेश्वरी महासभा

पंढरपुर में हाल ही माहेश्वरी महासभा का अधिवेशन श्री रामगोपालजी मोहता के सभापतित्व में हुआ । उसके सम्बन्ध में एक आदरणीय और प्रभावशाली नेता ने, जो सभा में थे, अपना यह अभिप्राय हमें भेजा है—

"पंढरपुर की माहेश्वरी महासभा सब प्रकार से ठीक हुई । माहेश्वरी जाति में जो लोग सुधार-काम करना चाहते हैं उन्हें कई प्रकार से माहेश्वरी महासभा की सहायता मिलेगी। नवयुवक और सुधार चाहने वाले सभा की सहायता से अपना संगठन कर लेंगे तो उनका बल बढ़ सकेगा ।"

महासभा में एक प्रस्ताव द्वारा जाति-बहिष्कार की नीति का घोर विरोध और दूसरे प्रस्ताव द्वारा विदेश-यात्रा का समर्थन किया गया था । ख़ुशी की बात है कि माहेश्वरी प्रगति-पथ में आगे बढ़ रहे हैं और आशा है कि नवयुवक और सुधारेच्छु अपने उत्साह और व्याकुलता में धीरज, सहिष्णुता और कष्ट सहन का उचित मिश्रण करके अपनी नाव को किनारे लगाने का उद्योग करेंगे ।

स्वर्गीय लूसी सुलतान अहमद

'त्यागभूमि' का प्रथम अंक पाठकों को जा ही रहा था कि हमें एकाएक श्रीमती लूसी सुलतानअहमद के स्वर्गवास का समाचार मिला । उनकी मृत्यु से भारत से एक चित्रकला का स्तम्भ उठ गया और हमारा तो एक बड़ा सहायक खो गया । उन्होंने बड़े प्रेम और उदारता से अपनी सारी चित्र-शाला हमारे अधीन कर दी थी । वह निपुण चित्रकार और ऊंचे दरजे की कलाविद थीं । यह तो पाठक देख ही चुके हैं । ऐसी गुणी पत्नी के वियोग पर हम ग्वालियर के नवाब सुलतानअहमदखां साहब के प्रति अपनी समवेदना प्रकट करते हैं और श्रीमती लूसी की आत्मा को शान्ति देने के लिए परमात्मा से प्रार्थना। ईश्वर नवाब साहब को यह ज़बरदस्त धक्का सहने का बल दें । जन्म की तरह मृत्यु स्वाभाविक है । उसका रंज क्या ? पर जहां हानि है वहाँ रंज भी स्वाभाविक हो जाता है । सच्चे मनुष्य वही हैं जो मृत्यु को हानि न समझें । अपनी आँखों से नहीं, बल्कि मृत प्राणी की आंखों से मृत्यु को देखें । दुःख मृत्यु से नहीं, मोह से होता है । मोह को जीतना ही ग़म की दवा है ।

ह० उ०

चित्र-दर्शन

भक्त मीरा

उस दिव्य मूर्त्ति को भजन में ध्यान-मग्न देखकर दासी से कुछ न कहा गया । थाल हाथों में लिये उस दिव्य मूर्त्ति के पास वह खड़ी हो गई । उसकी आँखें ज़मीन में गड़ गईं ।

"क्या है री ?" भजन समाप्त होने पर मीरा ने पूछा । दासी कुछ न बोल सकी । आँखे उठाकर देखने की हिम्मत न हुई । भीतर से उसे अनंत यन्त्रणायें हो रही थीं । उसने थाल वाले हाथों को बरबस मीरा की ओर बढ़ाया । एक अदृष्ट शक्ति मानों उसके हाथों को पीछे खींच रही थी ।

मीरा समझ गई । हँसते-हँसते उसने उस भयंकर विष भरे कटोरे की ओर हाथ बढ़ाया—और उठा कर पी गई । फिर वही धुन—

मेरे राणाजी, गोविन्द गुण गाना
राजा रूठे नगरी रक्खे अपनी, मैं हर रूठ्या कहं जाना ?
राणे भेजा जहर प्याला, मैं अमृत कर पी जाना ॥ १ ॥ मेरे० ॥

इन्दौर के हमारे चित्रकार श्रीदेवलालीकर का बनाया यह चित्र हमें कल्याण के सौजन्य से प्राप्त हुआ है ।

दीप-दर्शन

"वह राखी का दिन था । मैंने आरती में दीपक रक्खा, राखी सजाई, भैया के हाथों में श्रीफल दिया और राखी बाँधने ही को थी कि हाय ! वे दुष्ट एकाएक आये और मेरे भैया को पकड़ कर ले गये । पिताजी स्तब्ध हो देखते रह गये—माँ चिल्लाकर भैया के पीछे दौड़ी और गिर पड़ी, भाभी दरवाज़े की ओट में खड़ी होकर रोती रह गई । और मैं ? मैं भी अपने तन-बदन की सुध भूल गई। आरती सजी रह गई, और दीपक-बुझ गया !

तीन राखियां और यह भैयादोज भी चली गई । आज शरत्पूर्णिमा है । तुम्हारी विमल ज्योत्स्ना में सारा संसार नहा रहा है चन्द्रदेव! पर, मेरा भैया वहीं क़ैद है !

हे विविध लोक-बिहारी चन्द्रदेव, तुम कोमल-हृदय हो, दुखियों के मित्र हो। टेक के पक्के मेरे भैया को अपनी अमृत-मय किरणों से नीरोग रखियो और अगली राखी पर नहीं तो भैयादोज पर तो ज़रूर हम सबको उससे मिलाइयो ! मिलाओगे न देव ? एक दुखिया बहन की इस प्रार्थना को नहीं सुनोगे ?"

वै० म०

प्रोत्साहन

'त्यागभूमि' के प्रथम अंश को देख कर अबतक मित्रों और जिन गुण-ग्राहक सज्जनों ने अपनी शुभ सम्मतियां भेजकर हमें प्रोत्साहित किया है उनके वे उत्साह-वचन हम यहाँ स-धन्यवाद उद्धृत करते हैं—

सरदार डाक्टर माधव विनायक किबे, डिप्टी प्राइम मिनिस्टर, इन्दौर—

'त्यागभूमि' की पहली संख्या मिली, उसे देखते ही बहुत हर्ष हुआ। यह कहने में मुझे फ़क्त एक ही संकोच होता है, कि यह आज आपके पत्र में मैं लिख रहा हूँ कि इतनी अच्छी पत्रिका मैंने आज तक नहीं पढ़ी। इसके बहुत से लेख बढ़िया हैं और श्रीयुत क्षेमानन्दजी ने और आपने जो कुछ लिखा है, वह अपने-अपने ढङ्ग से अप्रतिम है। 'त्यागभूमि' की ऐसी ही उन्नति चाहता हूँ।

श्री घनश्यामदासजी बिड़ला, एम० एल० ए०—

'त्यागभूमि' पढ़कर बड़ा आनन्द हुआ। मैं तो यही कहूँगा कि पहला अङ्क बड़ा सफल रहा।...लेखों के विषय में मुझे विशेष कुछ कहना नहीं है।...आठवें पृष्ठ पर छपा हुआ (पराजय का वीर) लेख सर्वोत्कृष्ट है। कृष्ण और वर्मा के लेख भी बड़े अच्छे हैं।

रायबहादुर सिरेमलजी बापना, प्रधान मंत्री, इन्दौर—

'त्यागभूमि' मिली। मुझे यह जानकर खुशी हुई कि उसे अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व की वस्तु बनाने के लिए उद्योग हो रहा है। मैं सच्चे हृदय से आशा करता हूँ कि इन उद्योगों में सफलता मिलेगी। पत्रिका रोचक और उपादेय है।

श्रीयुत वझे, सम्पादक 'सर्वेण्ट आफ इण्डिया' पूना—

प्रथमांक मिला। सर्वोत्कृष्ट है।

श्रीयुत दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर—

प्रथम अङ्क पाया। अच्छा है। सफलता चाहता हूँ।

पं० बदरीनाथ भट्ट, बी० ए०, लेक्चरार, लखनऊ-विश्व-विद्यालय—

पत्रिका देखकर बड़ा हर्ष हुआ। आशा है, शीघ्र ही हिन्दी-संसार में यह विशेष स्थल प्राप्त कर लेगी।

बा० पारसनाथसिंह, बी० ए० बी० एल०—

पत्र की विशेषता और सम्पादन शैली पर आ[illegible] बधाई है। स्वगत और सूक्तियां कुछ अधिक जान पड़ती पर उनमें मन के लिए ख़ूराक अच्छी है। लेख उत्कृष्ट [illegible] मुझे विश्वास है कि यह पत्र अपने ढङ्ग का एक ही हो[illegible]

श्रीमती विद्यावती सेठ, आचार्या कन्या-गुरुकु[ल] देहरादून—

योग्यतापूर्ण तथा सर्वाङ्ग-सुन्दर, सम्पादन तथा संचा[लन] के लिए आपको बधाई है। निःसंदेह 'त्यागभूमि' भारत [में] फैले हुए दुःखों, अत्याचारों तथा अनैक्य का त्याग करवा [कर] यहाँ के निवासियों को उन्नतमार्ग की ओर अग्रसर कर[ने में] समर्थ होगी।

श्रीयुत देवीप्रसाद खेतान, एम० ए० बी० एल०—

मुझे तो पत्रिका बहुत अच्छी लगी। आप लोगों [में] संचालकों के गुण हैं और मुझे विश्वास है कि पत्रिका [[illegible]] भी उन्नत होगी।

श्रीयुत विनायक सीताराम सरवटे, बी० ए० एल० बी० इन्दौर—

बहिरंग बहुत सुन्दर और सादा है, और मैंने जो [[illegible]] पढ़ा, उससे ज्ञात हुआ कि, अन्तरंग भी निर्मल, बो[धक] और मनोरञ्जक है। सम्पादकों के लिए भूषणास्पद है।

श्रीमती तारनदेवी शुक्ल 'लली' लखनऊ—

'त्यागभूमि' के बराबर गम्भीर तथा उत्तमोत्तम [[illegible]] से विभूषित इस तौर का कोई मासिक-पत्र मैंने नहीं दे[खा]। यह बहुत ही उच्चकोटि की तथा होनहार पत्रिका है। [[illegible]] से उसकी उन्नति चाहते हुए मैं इसका सहर्ष स्वागत करती [हूँ]।

पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी, प्रयाग—

'त्यागभूमि' की सम्पादन-शैली बिलकुल निराली [है] और अन्य मासिक पत्रों की अपेक्षा इसमें बहुत कुछ [[illegible]] पता है। आजकल जो नवीन नवीन मासिक-पत्र निक[लते हैं] वे प्रायः एक ही ढंग के होते हैं—अपनी कोई खास वि[शेषता] नहीं रखते। पर 'त्यागभूमि' के विषय में यह बात नहीं [कही] जा सकती। यह नूतन युगका नूतन सन्देश लेकर आ[ई] हुई है। और इसलिए आशा है कि आप लोगों को सफलता अवश्य प्राप्त होगी।

श्री० कालीप्रसाद खेतान, बैरिस्टर एट ला, कलकत्ता-

'त्यागभूमि' का प्रथमांक देखकर प्रसन्न हुआ। आपके उद्योग से अभी और भी उन्नति होगी, यह मुझे पूर्ण विश्वास है।

श्रीयुत शंकरलाल बैंकर, मंत्री अ० भा० चर्खा संघ, अहमदाबाद—

प्रथम अंक मिला। पत्रिका रोचक और उपादेय है। आशा है उसके द्वारा राजस्थान में खादी-संगठन में सहायता मिलेगी।

श्रीमती अनसूया बहन, मजूर-अग्रणी, अहमदाबाद-

पत्रिका भेजने के लिए धन्यवाद। दलित और दुःखी भाई-बहनों को उठाने के इस शुभ काम में मेरी सहानुभूति और शुभ आशायें आपके साथ हैं।

श्रीयुत मोहनलाल भट्ट, नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद

'त्यागभूमि' का पहला अंक मिला। यह बड़ा अच्छा निकला है। इसके लिए आपको और आपके सहायक संपादक को बधाई देता हूँ। उसका रंग-ढंग, लेखों का चुनाव, आदि देखकर मुझे बड़ी खुशी हुई है। मैं आपकी इस पत्रिका की सफलता चाहता हूँ।

तामिल-वेद अथवा त्रिक्कुरल

अनुवादक—श्रीक्षेमानन्द राहत—भूमिका लेखक, श्रीचक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

दक्षिण के अछूत ऋषि महात्मा तिरुवल्लुवर के इन अमृतमय उपदेशों का तामिल देश में वेदों के समान आदर है। "त्रिकुरल एक गद्यकाव्य है। यह विवेक, शुभ संस्कार और मानव प्रकृति के व्यावहारिक ज्ञान की खान है। कला की दृष्टि से संसार के साहित्य में इसका स्थान ऊंचा है।" (भूमिका से) संसार की प्रायः सभी भाषाओं में इसका अनुवाद हो गया है। पृष्ठ २४८ मू. ॥=)

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

स्त्री और पुरुष

लेखक महात्मा टॉलस्टॉय

भोग विलास को जीवन का सुख मानकर उसके स्वर्गीय रस के स्वप्नदेखने वाले भाई बहनों के लि यह ग्रन्थ सुन्दर ज्ञानांजन है। विकारों के गुलाम बने हुए भाई बहनों को यह ग्रन्थ उनके उद्धार का शुभ सन्देश सुनावेगा और विषय-विकार से मुक्त होने की इच्छा रखने वाले मुमुक्षु भाइयों के लिये यह सच्चे साथी का काम देगा। स्त्री पुरुषों के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में महात्मा टॉलस्टाय के दिव्य विचार सचमुच क्रान्ति कर देने वाले हैं। प्रत्येक गृहस्थ को यह ग्रन्थ पढ़कर जरूर लाभ उठाना चाहिए। पृष्ठ संख्या १६० मूल्य केवल ।=)

हाथ की कताई-बुनाई

(अनुवादक--श्रीयुत रामदासजी गौड़ एम० ए०)

यह उस निबन्ध का भाषान्तर है, जिस पर कि मूल-लेखकों को महात्मा गांधी जी ने १००) इनाम दिया है। इसमें वेद-काल से लेकर आज तक के समय का हाथ से कातने और बुनने का इतिहास, उसकी उन्नति तथा अंग्रेजी काल में कैसे-कैसे भीषण अत्याचारों से उस पर कुठाराघात हुए आदि बातें खूब विस्तार से समझाई गई हैं। अब उसकी उन्नति कैसे हो सकती है, मिल के कपड़ों के सामने खद्दर का व्यवसाय कैसे टिक सकता है और उसकी उन्नति कैसे हो सकती है, कातने और बुनने के काम से कुटुम्ब-निर्वाह कैसे हो सकता है आदि प्रायः सभी बातों की व्यावहारिक रूप से विवेचना की गई है। पृष्ठ संख्या २६७ मूल्य ॥=)

चीन की आवाज़

Lowes Dickinson के Letters of john chinaman का हिन्दी अनुवाद

एक सहृदय अंग्रेज के शब्दों में पूर्वी और पश्चिमी सभ्यता की यह सुन्दर तुलना बड़ी ही प्रभावोत्पादक है। इंग्लैण्ड की साम्राज्य लोलुपता, तथा ईसाई धर्म के प्रचार-रहस्य, आदि पर लेखक की टीका पढ़ने लायक हैं। चीन के स्वातंत्र्य-युद्ध को समझने की इच्छा रखने वालों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये। पृष्ठ संख्या १३० मूल्य ।-)

हमारे ज़माने की गुलामी (महात्मा टाल्स्टाय)

यदि आप अपने देश को गुलामी से छुड़ाने का उपाय जानना चाहते हैं तो इस पुस्तक को ज़रूर पढ़िये। विचारों की दृष्टि से यह गागर में सागर है। संसार की साम्राज्यलोलुप सरकारों का नग्न किन्तु यथार्थ स्वरूप आपकी आंखों के सामने आ जायगा। पृष्ठ १००, मूल्य ।)

इस प्रकार उपरोक्त पांच पुस्तकें ८९६ पृष्ठों की हैं। अब ७०० पृष्ठों की पुस्तकें इस माला में दिसम्बर सन् २७ तक निकलेंगी। इस माला में महात्मा गांधी लिखित 'आत्म-चरित्र' पृष्ठ लगभग ४५० और दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह दूसरा भाग" पृष्ठ २०० छप रहे हैं।

सस्ती-प्रकीर्ण-माला के दूसरे वर्ष के प्रकाशित ग्रंथ

यूरोप का सम्पूर्ण इतिहास (दूसरा व तीसरा भाग)

लेखक—श्री रामकिशोर शर्म्मा, बी० ए०, विशारद

इसका पहला भाग प्रकीर्ण माला के प्रथम वर्ष में प्रकाशित हुआ था। पृष्ठ ३६६ और मूल्य ।।।=) जो सज्जन इन दोनों भागों को मंगावें वे प्रथम भाग को भी जरूर मंगा लें नहीं तो ग्रंथ अधूरा रहेगा।

इस ग्रंथ में शुरू से लेकर सन् २६ तक का समस्त यूरोप का इतिहास है। यूरोप का इतिहास स्वाधीनता का इतिहास है। जागृत जातियों की प्रगति का इतिहास है और पश्चिमी सभ्यता के विकास का पाठक्रम है। यदि भारत के युवक स्वराज्य चाहते हैं तो वे इस विविध घटना और परम उपयोगी शिक्षाओं से भरे यूरोप के इतिहास को अवश्य पढ़ लें। लेखन-शैली सरल व मनोरंजक है। पृष्ठ-संख्या दोनों भागों की ४६७, मूल्य केवल १=)

ब्रह्मचर्य-विज्ञान

लेखक—पं० जगन्नारायणदेव शर्मा 'साहित्य-शास्त्री'

भूमिका लेखक—पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे, सम्पादक "श्री कृष्णसंदेश"

यदि आज भारत को किसी चीज़ की सबसे अधिक ज़रूरत है तो वह है ब्रह्मचर्य-पालन। ब्रह्मचर्य-विज्ञान में पंडितजी ने अपनी बालबोध शैली में ब्रह्मचर्य की आवश्यकता, महत्व तथा उसकी प्राप्ति के उपाय सात वृहत् खण्डों में बताये हैं। वेद, पुराण, दर्शन उपनिषद आदि की चुनी हुई सूक्तियों और महत्वपूर्ण प्रमाणों से ग्रन्थ भरा पड़ा है। प्रत्येक गृहस्थ और युवक तथा विद्यार्थी को यह ग्रन्थ पढ़ना चाहिए।

"इसमें लेखक ने ब्रह्मचर्य की महिमा और विधि के विषय में बहुत अच्छा संग्रह किया है जो सर्व-साधारण तथा विद्यार्थी युवकों के लिए बहुत ही उपकारक होगा। प्राचीन ग्रन्थों से जो अवतरण दिये हैं वे बहुत ही स्फूर्तिदायक और समय पर काम देने वाले हैं। इसमें सभी विचारणीय विषयों का समावेश है जिससे पुस्तक सबके लिए बड़े काम की हुई है। ऐसी पुस्तकों का देश में जितना प्रचार हो, उतना अच्छा है। पृष्ठ-संख्या ३७४, मूल्य केवल ।।।-)। हरएक गृहस्थ को एक प्रति अपने पास रखनी चाहिए।

इस प्रकार इस माला में अब तक कुल ८४० पृष्ठों की पुस्तकें निकल चुकी हैं। आगे 'अनोखा' उपन्यास (विक्टर ह्यूगो लिखित) 'जीवन-साहित्य' (दूसरा भाग) 'गोरों का प्रभुत्व' यह तीन ग्रन्थ छप रहे हैं जो सन् १९२७ तक प्रकाशित हो जावेंगे।

८) भेजकर दोनों मालाओं के वार्षिक ग्राहक बन जाइये

मुद्रक और प्रकाशक—जीतमल लूणिया सस्ता-सहित्य प्रेस, अजमेर।

माघ खंड १, अंश ४

...्य में हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित करनेवाली भारतवर्ष की एक मात्र सार्वजनिक संस्था

सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर

संस्थापक—सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला, सेठ जमनालालजी बजाज आदि

...क डेढ़ वर्ष में पांच हज़ार पृष्ठोंके ऊपरकी ... पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं

वार्षिक मूल्य ४)
छः माही मूल्य २॥)

संपादक { श्री हरिभाऊ उपाध्याय
श्री क्षेमानन्द 'राहत'

एक संख्या का ।।)
विदेशों के लिए ५)

सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर से प्रकाशित

'त्यागभूमि'

तीसरा अंक १२० पृष्ठ का

तैयार हो रहा है।

प्रथम अंक की मांग हमारे यहां बराबर आ रही है। इसलिये उसकी प्रतियां फिर से दुबारा छपाने का हम विचार कर रहे हैं, इसलिये जो सज्जन 'त्यागभूमि' के प्रथम अंक से ही ग्राहक बनना चाहें और पूरी फ़ाइल शुरू से अपने यहां रखना चाहें, वे हमारे यहां अपना आर्डर तुरन्त भेज दें। जितने आर्डर हमारे पास दर्ज होंगे, लगभग उतनी ही प्रतियां हम छपावेंगे।

प्रचारकों की आवश्यकता

साहित्य सेवा और साथ ही लाभ का सुअवसर

(१) त्यागभूमि का जन्म महान् उद्देश्यों और आदर्शों को लेकर हुआ है, उसके संदेश को घर घर में पहुंचाने के लिये हमें ऐसे परिश्रमी, विश्वस्त प्रचारकों की आवश्यक्ता है जो कि भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में घूम फिर कर इसके ग्राहक बना सकें। यह तो अब मानी हुई बात है कि **'त्यागभूमि' से सस्ती और उच्च आदर्शों वाली हिन्दी पत्रिका कोई दूसरी नहीं है** और यदि इसके लिए काफी उद्योग किया जाय तो बहुत बड़ी संख्या में ग्राहक बन सकते हैं। अतएव जो भाई साहित्य और देश की सेवा के नाते बिना कुछ लिए प्रचार करना चाहें, वे हम से पत्रव्यवहार करें।

(२) जो भाई कमीशन लेना चाहें, उन्हें आठ आने फ़ी ग्राहक पीछे दिया जायगा बशर्ते कि वे कम से कम दस ग्राहक बना कर भेजें।

(३) जो भाई वेतन लेकर काम करना चाहें, उन्हें हमसे पत्रव्यवहार करना चाहिए।

आशा है जो भाई इन सूचनाओं को पढ़ेंगे वे किसी न किसी रूप में देश-सेवा के इस उद्योग में अवश्य सहायक होंगे।

व्यवस्थापक—"त्यागभूमि" अजमेर

...त्य में हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित करनेवाली भारतवर्ष की एक मात्र सार्वजनिक संस्था

सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर

संस्थापक—सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला, सेठ जमनालालजी बजाज आदि

...क डेढ़ वर्ष में पांचहज़ार पृष्ठोंके ऊपरकी २६ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं

पुस्तकों का पूरा वर्णन बड़ा सूचीपत्र मंगाकर पढ़िये—कुछ पुस्तकों के नाम नीचे लिखे जाते हैं।

सस्ती-साहित्य-माला

(१) दक्षिण आफ्रिका का सत्याग्रह [म० गांधी] (पूर्वार्द्ध) पृष्ठ २७२ मूल्य ।।।)
(२) तामिल-वेद [महर्षि त्रिरुवल्लुवर] पृष्ठ २५० मूल्य ।।=)
(३) स्त्री और पुरुष [टाल्स्टाय] पृष्ठ १६० मू० ।=)
(४) हाथ की कताई-बुनाई पृष्ठ २६० मूल्य ।।=)
(५) चीन की आवाज़ पृष्ठ १३० मूल्य ।-)
(६) जीवन साहित्य [कालेलकर] पृष्ठ २१८ मू० ।।)

सस्ती प्रकीर्ण माला

(१) ब्रह्मचर्य-विज्ञान पृष्ठ ३७४ मूल्य ।।।-)
(२) यूरोप का संपूर्ण इतिहास पृष्ठ ८३० मूल्य २)
(३) स्वामीजी का बलिदान और हमारा कर्तव्य (ले. पं. हरिभाऊ उपाध्याय) पृष्ठ १२८ मू. ।-)
(४) तरंगित हृदय (गुरुकुल काँगड़ी के आचार्य पं. देवशर्मा विद्यालंकार) पृष्ठ १७५ मू० ।≡)
(५) गंगागोविंदसिंह (चण्डीचरणसेन) पृ० २८८ मू० ।।=)

नीचे लिखे ग्रन्थ छप रहे हैं

(१) आत्म-कथा [म० गांधी] पृष्ठ लगभग ४५० मूल्य ।।≡)
(२) दक्षिण आफ्रिका का सत्याग्रह [म० गांधी] (उत्तरार्द्ध) पृष्ठ २२८ मूल्य ।।)

फरवरी सन् १९२८ तक छप जावेंगे

(१) गोरोंका प्रभुत्व (रामचंद्र वर्मा) पृ० २७४ ।।=)
(२) जीवन साहित्य (दूसरा भाग) पृ० २०० मू. ।।)
(३) अनोखा (विक्टर ह्यूगो का उपन्यास) पृ० ३०० मूल्य लगभग ।।।)

उपरोक्त मूल्य सर्व साधारण का है। ग्राहकों को तो पोनी कीमत में पुस्तकें मिलती हैं।

नियम—प्रतिवर्ष मण्डल से ३२०० पृष्ठों की लगभग अठारह बीस पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। स्थाई ग्राहकों से इन पुस्तकों का लागत मूल्य केवल ६) और डाकव्यय २) इस तरह ८) वार्षिक मूल्य लिया जाता है। स्थाई ग्राहक बनने के लिये केवल एक बार एक रुपया प्रवेश फीस ली जाती है। इस तरह पहले वर्ष ९) भेजना चाहिये। आगामी वर्षों में वही ८) लेने का नियम है। स्वयं ग्राहक बनिये और अपने मित्रों को बनाइये।

प्रचारकों व एजंटों की आवश्यकता है। पत्र भेजकर नियम पूछ लें।

पता—सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर

विषय-सूची

२२.
२३.
२४.
२५.
२६.
२७.
२८.
२९.
३०.
३१.

पृष्ठ

तामिल-वेद अथवा त्रिक्कुरल

अनुवादक—श्रीक्षेमानन्द राहत; भूमिका-लेखक—श्रीचक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

दक्षिण के अछूत ऋषि महात्मा तिरुवल्लुवर के इन अमृतमय उपदेशों का तामिल देश में वेदों के समान आदर है। "त्रिकुरल एक गद्यकाव्य है। यह विवेक, शुभ संस्कार और मानव प्रकृति के व्यावहारिक ज्ञान की खान है। कला की दृष्टि से संसार के साहित्य में इसका स्थान ऊंचा है।" (भूमिका से) संसार की प्रायः सभी भाषाओं में इसका अनुवाद हो गया है। पृष्ठ २४८ मू. ॥=)

स्त्री और पुरुष

लेखक महात्मा टॉलस्टॉय

भोग विलास को जीवन का सुख मानकर उसके स्वर्गीय रस के स्वप्नदेखने वाले भाई बहनों के लिए यह ग्रन्थ सुन्दर ज्ञानांजन है। विकारों के गुलाम बने हुए भाई बहनों को यह ग्रन्थ उनके उद्धार का शुभ सन्देश सुनावेगा और विषय-विकार से मुक्त होने की इच्छा रखने वाले मुमुक्षु भाइयों के लिये यह सच्चे साथी का काम देगा। स्त्री पुरुषों के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में महात्मा टॉल्स्टाय के दिव्य विचार सचमुच क्रान्ति कर देने वाले हैं। प्रत्येक गृहस्थ को यह ग्रन्थ पढ़कर जरूर लाभ उठाना चाहिए। पृष्ठ संख्या १६० मूल्य केवल ।=)

हाथ की कताई-बुनाई

(अनुवादक—श्रीयुत रामदासजी गौड़ एम० ए०)

यह उस निबन्ध का भाषान्तर है, जिस पर कि मूल-लेखकों को महात्मा गांधी जी ने १०००) इनाम दिया है। इसमें वेद-काल से लेकर आज तक के समय का हाथ से कातने और बुनने का इतिहास, उसकी उन्नति तथा अंग्रेज़ी काल में कैसे-कैसे भीषण अत्याचारों से उस पर कुठाराघात हुआ आदि बातें खूब विस्तार से समझाई गई हैं। अब उसकी उन्नति कैसे हो सकती है, मिल के कपड़ों के सामने खद्दर का व्यवसाय कैसे टिक सकता है और उसकी उन्नति कैसे हो सकती है, कातने और बुनने के काम से कुटुम्ब-निर्वाह कैसे हो सकता है आदि प्रायः सभी बातों की व्यावहारिक रूप से विवेचना की गई है। पृष्ठ संख्या २६७ मूल्य ॥=)

चीन की आवाज़

Lowes Dickinson के Letters of john chinaman का हिन्दी अनुवाद

एक सहृदय अंग्रेज़ के शब्दों में पूर्वी और पश्चिमी सभ्यता की यह सुन्दर तुलना बड़ी ही प्रभावोत्पादक है। इंग्लैण्ड की साम्राज्य लोलुपता, तथा ईसाई धर्म के प्रचार-रहस्य, आदि पर लेखक की टीकायें पढ़ने लायक हैं। चीन के स्वातंत्र्य-युद्ध को समझने की इच्छा रखने वालों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये। पृष्ठ संख्या १३० मूल्य ।-)

(इसके आगे अन्तिम पृष्ठ पढ़िये)

卐 卐 卐 **सत्यं शिवं सुन्दरम्** 卐 卐 卐

(जीवन, जागृति, बल और बलिदान की पत्रिका)

आत्म-समर्पण होत जहँ, जहँ विशुभ्र बलिदान ।
मर मिटवे की साध जहँ, तहँ हैं श्रीभगवान् ॥

खण्ड १
अंश ४ सस्ता साहित्य मण्डल, अजमेर माघ
संवत् १९८४

क्यों ?

कचिड़ में क्यों सड़ता है ऐ बहने वाले नीर !
पिंजड़े में क्यों बन्द पड़ा ऐ गगन-विहारी कीर !
काई का क्यों खाद्य बना है ऐ तरकश के तीर !
चपला सी जब चमक रही है गैरों की शमशीर !

'राहत'

क्रान्ति-युग

यह क्रान्ति-युग है। वह देखो, क्रान्ति आ रही है। क्या भारत के अन्दर, और क्या बाहर, क्रान्ति अपनी सुवर्ण-रेखायें फैलाती जा रही है। मुझे यह स्पष्ट दीख रहा है कि अन्दर ही अन्दर घोर मंथन हो रहा है और एक नई सृष्टि—नई रचना तैयार हो रही है। आज चाहे वह सबको सोलह कलाओं में न दिखाई दे, पर अगले १०—५ वर्षों में लोग उसे 'वस्तुस्थिति' के रूप में देखने लगेंगे। यह मन्थन, यह उथल-पुथल, इतने वेग के साथ हो रहा है कि दुनिया की कोई शक्ति उसे रोक नहीं सकती। विरोधक शक्तियाँ या तो हार कर थक बैठेंगी, या अपने को उसके अनुकूल बना लेंगी। यह क्रान्ति मानसिक और सामाजिक जगत् के क्षोभ, शोध और जिज्ञासा का परिणाम होगी।

क्रान्ति जीवन की विशेष अवस्था है। जीवन-धारा जब तक बे-रोक बहती और स्वाभाविक रूप से आगे बढ़ती चली जाती है तब तक उसे प्रगति कहते हैं। जब अज्ञान, अन्धता, दुर्बलता और विलासिता आदि दोषों के कारण, उस प्रवाह का रास्ता रुक जाता है तब समाज का पतन समझना चाहिए और जब जीवन का भीतरी चैतन्य इन समस्त कठिनाइयों, रुकावटों को सहन करते-करते, अधीर और उतावला होकर, फूट निकलता है तब उसे क्रान्ति कहते हैं। पतन की अन्तिम और उत्थान की आदिम अवस्था—इस संक्रमणावस्था—का नाम है क्रान्ति। समाज जब अपनी बुराइयों और अ-समताओं के द्वारा प्रकृति के सरल-स्वच्छ पथ को कँटीला-कँकरीला और गंदा बना देता है, जीवन के लिए असह्य बना देता है, तब ईश्वर जिस सुगन्धित हवा के झोंके और तूफ़ान को भेजता है, वह है क्रान्ति। ज्वर शरीर के अन्दर छिपे विक्ष[illegible] को सूचित करता है और साथ ही वह नैरोग्य [illegible] क्रिया भी है। इसी प्रकार क्रान्ति जहाँ समाज के दो[षों] की परिचायिका है तहाँ वह उन्हें धोकर बहा ले ज[ाने] वाली और जीवन को स्वच्छ, सुन्दर, सतेज ब[नाने] वाली ज़बरदस्त पतितोद्धारिणी गंगा भी है। नासम[झ] लोग ज्वर को देखकर घबरा जाते हैं, भयभीत [हो] उठते हैं; उसी तरह क्रान्ति की मूर्ति देखकर भी, [उस] का महत्व और सौन्दर्य न समझने वाले, भौंचक [हो] जाते हैं। क्रान्ति हेय नहीं, स्वागत-योग्य वस्तु है।

भारत की आत्मा इस समय क्रान्तिशील [है।] सारा भूमण्डल मुझे तो चक्कर खाता हुआ नज़[र आ] रहा है। राजनैतिक जीवन में उसने साम्राज्यवा[द की] जड़ खोखली कर दी है। राजों-महाराजों की अ[परि]मित सत्ता अब नाम-मात्र को रह गई है। रू[स के] ज़ार का तो नामोनिशान दुनिया में न रह ग[या।] इंग्लैण्ड, जर्मनी और जापान आदि देशों के [राजा] अब प्रजा के प्रभु नहीं रह गये—प्रजा के सेवक [बन] गये हैं और इसी रूप में, इसी स्वाभाविक रूप [में] राजा बने रह सकते हैं। हमारे देश के राजों-महा[राजों] के भी पैर क्रान्ति की इस थपेड़ में उखड़ रहे [हैं।] जो दूरदर्शी हैं, होश में हैं, वे इसे देख और [समझ] कर रहे हैं; जो खुर्राटे भर रहे हैं, वे क्षुब्ध स[मुद्र की] रुद्र तरंगों की उछाल पर अपने को जगा [हुआ] पावेंगे। प्रजा भेड़ और राजा गडरिया, यह [भाव] अब नहीं रह सकती। ये विचार अब जंगली से [प्रतीत] होने लगे हैं। अब तो प्रजा—जनता अपना [शास]क स्वयं पसन्द करेगी, किसी शासक का जूआ [अपने] कन्धे पर न रहने देगी। एकतंत्र की जगह प्रजा[तंत्र] का दौर-दौरा होगा। बड़े-बड़े साम्राज्य स्थापित क[रने की] अभिलाषा, छोटे राष्ट्रों और देशों को जीतक[र] कर, उनपर प्रलय तक अपना आधिपत्य जमा[ने]

महत्वाकाँक्षा, अब अनुचित और आसुरी समझी जाने लगी है और साम्राज्यवादी अब जगतीतल पर नहीं खड़े रह सकते। मुट्ठीभर लोगों के अमन-चैन और ऐशोआराम के लिए जनता के सुख पर ध्यान न देने की प्रवृत्ति की उम्र अब अधिक नहीं दिखाई देती; अब तो बहुजन-समाज के हित के लिए थोड़े लोगों को अपनी सत्ता और ऐश्वर्य के त्याग करने का जमाना नजदीक आ रहा है।

सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में मिथ्या शास्त्र-वाद का गला घोंटने में वह—क्रांति तत्पर दिखाई देती है। अब धन, बल या सत्ता के ज़ोर पर समाज में कोई किसी भले आदमी को तंग और बरबाद न कर सकेगा। धन, बल और सत्ता का स्थान अब न्याय, नीति और प्रेम को मिल रहा है। धनी ग़रीबों के प्रति, पूँजीपति मजदूरों के प्रति, शासक प्रजा-जन के प्रति अपने शुद्ध कर्त्तव्यों में दिन-दिन जागरूक रहने लगेंगे। संसार में अब पूँजीवाद, सेनावाद और सत्तावाद का आदर कम होता जा रहा है; और समतावाद, जनतावाद और शांतिवाद की आवाज़ ऊँची उठ रही है। यूरोप में कम्यूनिज्म, बोल्शेविज़्म, फ़ासिज़्म, और भारत में गांधीज़्म इसके सबूत हैं। ऐसा दिखाई पड़ता है कि अब धनवानों और सत्तावानों, पुरोहितों और पोथी-पण्डितों, धर्म-गुरुओं और मठाधीशों के ग्रह नीच के आ रहे हैं, और दलित, पीड़ित, पतित, निर्बल—किसान, मजदूर, अछूत, और स्त्रियों के ग्रह उच्च के हो रहे हैं। महज़ विद्या, बुद्धि, धन, सत्ता या पाखण्ड के बल समाज में आदर-पात्र बनने वालों का युग जा रहा है और सेवाशील, निस्वार्थ, सच्चे लोगों का युग आ रहा है। अब समाज में केवल इसलिए कोई बात नहीं चलने पावेगी कि किसी ने ऐसा कहा है, अथवा कोई ऐसा लिखं गया है; बल्कि वही बात मान्य होगी, जिसे लोग देश और समाज के लिए अच्छा और उपयोगी समझेंगे। अनेक देवी-देवताओं की पूजा उठ कर एक ईश्वर की आराधना होगी। वेद, कुरान, इंजील, स्मृति, पुराण, आदि में से वही बातें क़ायम रहेंगी जो बुद्धि और नीति की कसौटी पर सौ टच की साबित होंगी। मुझे तो ऐसा भी स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि भारत की वर्ण-व्यवस्था और विवाह-कल्पना को भी एक बार गहरा धक्का पहुँचेगा। अब जन्म के कारण कोई बड़ा या छोटा, ऊँचा या नीचा नहीं माना जायगा; बल्कि योग्यता और सेवा के कारण माना जायगा। केवल विवाह-संस्कार हो जाने के बल पर अब पति-पत्नी को अपनी मनोवृत्तियों की दासी न बना सकेगा; बल्कि जीवन के मंच पर पति-पत्नी एक ही आसन पर बैठेंगे। भोग-विलास या कौटुम्बिक सुविधा विवाह का हेतु और आधार न रहेगा; बल्कि परस्पर प्रेम, स्नेह और सह-धर्म होगा। बाहरी बंधन शिथिल होंगे, और आंतरिक एकता बढ़ेगी। बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह के पाँव लड़खड़ा रहे हैं और विधवा-विवाह ज़ोर पर है। खान-पान और ब्याह-शादी में जात-पाँत की दीवारें टूट रही हैं और हिन्दू, मुसलमान और ईसाई संस्कृति के संयोग से भारत में संशोधित संस्कृति भीतर ही भीतर निर्माण हो रही है। अब समाज में कोई सिंहासन पर और कोई ख़ाली फ़र्श पर न बैठने पावेगा; बल्कि सब एक जाजम बिछा कर साथ बैठेंगे।

आर्थिक संसार में भी क्रांति के लाल बादल उमड़ रहे हैं। व्यापार और उद्योग दूसरों को चूसने के लिए नहीं, बल्कि राष्ट्र और मानवजाति के हित के लिए होना चाहिए—यह भाव दृढ़ होता जायगा और धन एक जगह इकट्ठा न होकर लोगों में बँटने लगेगा। बुद्धि-बल पर अथवा ज्ञान को बेंच कर धन कमाना श्रेष्ठ न समझा जायगा; बल्कि मेहनत-मजूरी करके अपने पसीने की रोटी खाना धर्म समझा जायगा।

अब भिक्षा-पात्र नहीं, चर्खा या हल ब्राह्मणों और बेकारों के हाथों में दिखाई देगा।

साहित्य, काव्य और कला भी इसके प्रभाव से अछूते नहीं हैं। इनकी मण्डली में भी क्रान्ति ने उपद्रव मचाना शुरू कर दिया है। भारत में साहित्य-सेवा अब मनोरंजन की, आमोद-प्रमोद की, या पेट पालने की वस्तु न रहेगी; बल्कि देश-सेवा, जन-सेवा के लिए होगी। कोरे ग्रन्थ-कीटक, निरे काव्य-शास्त्रज्ञ, अब समाज में न ठहर सकेंगे, अब तो उसीकी पुस्तकें पढ़ी जायँगी, जो विद्या, तपस्या और सेवा की त्रिवेणी बन गया होगा। अब तो उसीकी कवितायें गाई जायँगी, उसीके चित्र मीठी चितवन से देखे जायँगे, जो स्वाधीनता के विरह में मतवाला होकर रोयेगा, चीखेगा, जो अपनी वियोग-व्यथा की आग से बच्चे-बच्चे को विकल कर देगा और जो अपनी कूंची की एक-एक रेखा में बिजली डालेगा। काव्य और कला क्या हैं? हृदय की गूढ़तम अव्यक्त अस्फुट वेदना का उद्गार। मानव हृदय जब आन्दोलित, क्षुब्ध और विकल होकर पागल हो उठता है, इस पागलपन में वह जो कुछ बकता है, या कूँची से टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें खींच देता है वही काव्य और कला है। इस पागलपन में वह अद्भुत बातें कर डालता है और करा लेता है। यह जीवनी शक्ति जब काव्य-कला में कम पड़ जाती है तब समाज की तृप्ति उससे नहीं होती। जब समाज उसकी निष्प्राणता से ऊब उठता है तब काव्य-कला की अमर आत्मा नव-नव रूपों में प्रकट और विकसित होती है—वही अन्तरात्मा नवीन कलेवरों में प्रस्फुटित होती है। हिन्दी के वर्तमान काव्य-साहित्य में आज इसी क्रांति के दर्शन हम कर रहे हैं। अब कवि नवीन भावावेश में, नयी भाषा में, नयी धुन में गाते हैं और नवीन छंद बन जाते हैं, नवीन व्यंजना दर्शन देती है, नवीन कल्पनायें सामने आती हैं, नये भाषा-प्रयोग जन्म पाते हैं। छायावाद इसी क्रांति का परिणाम है। सविकार प्रेम को—शृंगार-रस को—आत्मिक और दैवी रूप देने की चेष्टा इसी क्रांति की प्रवृत्ति है।

इस प्रकार चारों ओर क्रांति ही क्रांति के परमाणु फैल रहे हैं। हम चाहें या न चाहें, हमें अच्छी लगे या बुरी, यह सर्वतोमुखी क्रांति अब टल नहीं सकती। नये विधाता नये ब्रह्माण्ड की रचना कर रहे हैं। पुराना ईश्वर भी अपने पार्षदों और गणों सहित नवीन रूप में हमारे सामने आ रहा है। एक-एक अणु नये जीवन और नये भविष्य की रचना में लगा हुआ है। ओ प्राचीन, तू जीर्ण-शीर्ण कलेवर के मोह को लेकर कब तक आहें भरता रहेगा? तू उठ, काया पलट कर और अपने नवीन नेत्रों से अपने नवीन तेजस्वी सुंदर रूप को निहार कर खिल उठ! तेरी अन्तर्वस्तु वही है, तेरा बाह्य रूप नवीन है। यही क्रांति है।

हरिभाऊ उपाध्याय

अनीराय सिंह दलन

राजपूत-जाति का इतिहास वीरता, आत्म-त्याग, दूसरों की रक्षा में प्राण देने, स्वामि-भक्ति आदि के अनेक उत्तम उदाहरणों से भरा पड़ा है। हम "त्यागभूमि" के पाठकों के मनोरंजनार्थ अनूपसिंह (अनीराय सिंह दलन) का संक्षिप्त परिचय नीचे देते हैं।

अनीराय बड़गूजर-वंश का राजपूत था। उसके पूर्वज जमींदार थे; परन्तु उसका दादा, ग़रीब हो जाने के कारण, बहुधा हरिणों को मार-मार कर उनके माँस से अपने कुटुम्ब का पालन किया करता था। एक दिन जंगल में, शिकार के समय, एक जानवर को

बाघ समझ कर उसपर गोली चलाई, जिससे उसका काम तमाम होगया। पास जाकर उसके गले में सोने की घंटी और जंज़ीर देख कर उसने जान लिया कि वह बादशाह अकबर का शिकारी चीता है। इस प्रकार अपने हाथ से शाही चीता मारे जाने के कारण वह भयभीत होगया और उस अपराध से बचने के लिए उस चीते को एक कुँए में डाल दिया और उसकी जंज़ीर व घंटी लेकर अपने घर चला गया। शिकारी लोगों ने इधर-उधर चीते की तलाश की तो एक कुँए में उसकी लाश पड़ी पाई। फिर वे पैरों के निशान के आधार पर उस राजपूत के घर पहुँचे। उसके घर की तलाशी लेने पर चीते की घंटी और जंज़ीर भी उन्हें मिल गई। वे उसको पकड़ कर बादशाह के पास ले आये। बादशाह के पूछने पर जब उसने सारा हाल सच-सच निवेदन कर दिया, तो बादशाह ने उसकी हिम्मत और निशान लगाने की कुशलता से प्रसन्न होकर उसे अपनी सेवा में रख लिया और शिकार में अधिक रुचि होने के कारण उसको उचित पद पर नियत किया। उसका पुत्र वीरनारायण हुआ, जिसने अपने पिता से भी उच्चतर पद पाया। वि० सं० १६८५ में उदयपुर के महाराणा जगतसिंह के गद्दीनशीन होने पर बादशाह शाहजहाँ ने राज्य-तिलक के उपलक्ष्य में पाँच हजारी ज़ात, पाँच हज़ार सवार के मन्सब का फरमान, राणा का ख़िताब, ख़िलअत, जड़ाऊ खपवा (एक प्रकार का शस्त्र), खासा घोड़ा और खासा हाथी तथा सोना और चाँदी का सामान देकर इसी वीरनारायण को उदयपुर भेजा।* उसका पुत्र अनूपसिंह हुआ, जो पीछे से अनीराय सिंह दलन के ख़िताब से प्रसिद्ध हुआ। अकबर के अन्तिम दिनों में वह ख़वासों का अफ़सर बनाया गया।

जहांगीर के समय कुछ काल तक वह उसी पद पर नियत रहा।※ अपने राज्य के पांचवें वर्ष (वि० सं० १६६७) एक दिन बादशाह जहांगीर बाड़ी के परगने में चीतों का शिकार करने में लगा हुआ था। उक्त प्रसंग के संबंध में बादशाह अपनी दिनचर्या में लिखता है— "मुझसे थोड़े अन्तर पर अनूपसिंह शिकारियों के साथ खड़ा था। उसने कुछ दूर पर चीलों को एक वृक्ष पर बैठे हुए देखा, और धनुष तथा बिना फल वाले तीर लेकर उधर बढ़ा। उस वृक्ष के निकट आधा खाया हुआ बैल उसे नज़र आया। उसके समीप ही झाड़ी में से एक बड़ा और प्रबल शेर निकल आया। यद्यपि शाम होने को दो घड़ी से ज्यादा समय नहीं था, तथापि उसने और उसके साथियों ने शेर को घेर लिया; क्योंकि वे मेरे शेर के शिकार के शौक़ को जानते थे। उसे घेर कर मेरे पास उसने ख़बर देने के लिए एक आदमी को भेजा। मैं यह सुनते ही घोड़े पर सवार होकर उधर चला और बाबा ख़ुर्रम, रामदास, एतमादराय, हयातख़ां तथा एक-दो और आदमी मेरे साथ चले। पहुँचने पर मैंने देखा कि शेर वृक्ष की छाया में बैठा हुआ है। मैंने उसपर घोड़े पर से निशाना लगाने का विचार किया, परन्तु मेरा घोड़ा चञ्चल था, इसलिए मैंने उससे उतर कर शेर पर निशाना लगाया। मैं कुछ ऊँची जगह पर खड़ा था, इसलिए मैं जान न सका कि गोली उसके लगी या नहीं। मैंने एक गोली और चलाई और मेरा ख़याल है कि वह गोली उसके लगी भी। शेर उठकर दौड़ा और एक पास के शिकारी को घायल कर पीछे अपनी जगह जा बैठा। मैंने दूसरी बन्दूक़ तिपाये पर रख कर तोली। अनूपराय तिपाये को पकड़े खड़ा था। उसकी कमर में एक

* मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १, पृ० १०-११

※ 'मआसिरुल उमरा' का एच. बैवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; पृष्ठ २६१-६२

तलवार और हाथ में लम्बी लाठी (आसा) * थी। बाबा खुर्रम बाईं ओर कुछ अन्तर पर था और रामदास तथा दूसरे नौकर उसके पीछे। कमाल किरावल ने बन्दूक़ भर कर मेरे हाथ में दी। मैं चलाने ही वाला था कि इतने में गर्जना करता हुआ शेर हम पर झपटा। मैंने बन्दूक़ चलाई, गोली उसके मुँह और दांतों में होकर निकल गई। बन्दूक़ की आवाज़ से वह और भी अधिक क्रुद्ध होगया। बहुत से सेवक, जो वहां थे, डर कर एक दूसरे पर गिर गये। मैं उनके धक्के से दो-एक क़दम पीछे जा गिरा। मुझे यह निश्चय है कि दो-तीन आदमी मेरी छाती पर पाँव रखकर मेरे ऊपर से निकल गये। मैं एतमादराय और कमाल किरावल के सहारे खड़ा हुआ। शेर बाईं तरफ़ खड़े होने वालों पर झपटा। अनूपराय तिपाये को हाथ से छोड़कर उसके सामने गया। शेर जिस तेज़ी से आया, उसी तेज़ी से वह उसपर लपका। उस पुरुष-सिंह ने भी वीरता से सामने जाकर दोनों हाथों से एक लाठी उसके सिर पर मारी। शेर ने मुँह फाड़कर उसके दोनों हाथ चबा डाले; परंतु उसके हाथ में लाठी और कड़े होने से उसे बड़ा सहारा मिला, और उसके हाथ बेकार न हुए। अनूपराय उसके धक्के से उसके दोनों अगले पैरों के बीच में गिर गया। उसका मुँह शेर की छाती के नीचे था। बाबा खुर्रम और रामदास अनूपराय की सहायता को बढ़े। खुर्रम ने शेर की कमर में तलवार मारी, रामदास ने भी तलवार के दो वार किये, जिनमें से एक उसके कन्धे पर पूरा बैठा। हयातख़ां ने एक लाठी शेर के सिर पर ज़ोर से लगाई। अनूपराय ने बल से अपने हाथ उसके मुख से छुड़ाकर उसके जबड़े पर दो-तीन घूँसे मारे। और करवट लेकर वह घुटने के बल उठ खड़ा हुआ। शेर के दाँत उसके हाथों के आर-पार हो गये थे, इसलिए उसके मुँह से खींचते समय वे फट गये थे। शेर के पंजे उसके दोनों कन्धों पर लग गये थे। जब वह खड़ा हुआ, तो शेर भी खड़ा हो गया और अपने पंजों से उसकी छाती में प्रहार किया, जिसकी पीड़ा कुछ दिनों तक बनी रही। ज़मीन ऊंची-नीची होने से वे दोनों कुश्ती करते हुए, पहलवानों की तरह लुढ़कते हुए, एक दूसरे के ऊपर-नीचे होते गये। उस समय मैं समान-भूमि पर खड़ा था। अनूपराय कहता था कि मुझे सर्व-शक्तिमान ईश्वर ने ऐसी बुद्धि दी, कि मैं शेर को बादशाह से दूर लेगया। फिर शेर उसको छोड़कर भागने लगा। फिर वह (अनूपराय) खड़ा होकर उसके पीछे दौड़ा और उसके सिर में तलवार का प्रहार किया। जब शेर ने उसकी ओर मुँह किया तो अपनी तलवार का दूसरा वार उसके मुँह पर किया कि जिससे उसकी आँखों पर की चमड़ी नीचे लटक गई। इतने में दैवयोग से दीपक बतलाने वाला शाली नाम का एक आदमी एक बगल से निकला और अकस्मात् शेर के सामने आगया। शेर ने एक पंजे से उस पर ऐसा प्रहार किया कि वह गिरकर वहीं मर गया। तत्पश्चात् दूसरे लोगों ने आकर शेर को मार डाला। अनूपराय ने मेरी सेवा बजाने के लिए अपनी जान किस तरह जोखिम में डाली, यह बात मैंने अपनी आँखों से देखी थी। इसलिए जब वह अच्छा होने पर मेरे पास उपस्थित हुआ, तो मैंने उसको अनीराय सिंह दलन के ख़िताब से सम्मानित किया। हिन्दी में अनीराय का अर्थ सेना का नेता होता है। मैंने उसको अपनी तलवारों में से एक

---

* बादशाही दरबार में या बादशाह के समक्ष शाहज़ादों को छोड़कर राजा या मनसबदार आदि बैठने नहीं पाते थे। उन्हें घंटों तक खड़ा रहना पड़ता था। इसलिए वे अपने साथ अर्द्ध-चन्द्राकार अग्रभाग वाली एक लाठी रखते थे। खड़े-खड़े थक जाने पर सहारे के लिए बगल के नीचे उसे रख देते थे।

ख़ास तलवार बख़्शी और उसका मन्सब बढ़ाया।"*

इस प्रकार अपनी असाधारण निर्भीकता और वीरता के कारण वह बादशाह का बड़ा ही विश्वास-पात्र हो गया। ठट्ठा के हाकिम मिर्ज़ा रुस्तम के प्रजा पर अत्याचार करने की शिकायत पहुँची तो बादशाह ने उसकी जाँच करने का काम अनीराय के सिपुर्द किया †। शाहज़ादा ख़ुसरो भी, जो बादशाह के पास क़ैद था, कुछ समय तक उसीकी अध्यक्षता में रक्खा गया था। बादशाह ने अपने राज्य के दसवें वर्ष (वि० सं० १६७२) पुष्कर में वराहघाट के सामने वाले तट की तरफ़ वर्तमान स्मशानों के निकट अनीराय की अध्यक्षता में एक महल बनवाया ‡।

बादशाह ने अपने राज्य के बारहवें वर्ष (वि० सं० १६७४) में उसका मन्सब बढ़ा कर १५०० ज़ात और ५०० सवार का कर दिया। × फिर अपने राज्य के तेरहवें वर्ष (वि० सं० १६७५) १०० मुहरों के मूल्य का एक घोड़ा उसे बख़्शा। वि० सं १६७६ में बादशाह ने उसका मन्सब बढ़ा कर २००० ज़ात और १६०० सवार का कर दिया। उसी वर्ष बादशाह ने शेख़ अहमद को, जो अपने चेलों की मार्फ़त सरहिंद के इलाक़े में धर्म के नाम से लोगों में बुरी बातें फैला रहा था और जो घमण्ड के मारे बादशाह के प्रश्नों का उत्तर ठीक-ठीक नहीं देता था, अनीराय की निगरानी में ग्वालियर के क़िले में क़ैद रक्खा। अपने राज्य के पन्द्रहवें वर्ष बंगश की चढ़ाई में महाबतख़ां की सिफ़ारिश से बादशाह ने उसको सेनापति नियत किया।* 'मआसिरुल उमरा' का कर्त्ता लिखता है कि एक दिन जहांगीर ने अनीराय की किसी बात पर ऐतराज़ किया, जिस पर उसने फ़ौरन कमर से जमधर निकाल कर अपने पेट में दे मारा—परन्तु उसे हलका घाव लगा। उस दिन से उसका दर्जा और प्रभाव बहुत बढ़ गया। † जहांगीर ने वि० सं० १६८३ में उसे काँगड़े का हाकिम नियत किया। ‡

जहांगीर के बाद, शाहजहां ने भी उसका सन्मान रक्खा। शाहजहां ने अपने राज्य के तीसरे वर्ष में उसके पिता राजा वीरनारायण के मरने पर अनीराय को राजा का ख़िताब दिया और उसका मन्सब तीन हज़ारी ज़ात व १५०० सवार कर दिया। शाहजहां ने भी उसे कई लड़ाइयों में सेनापति नियत करके भेजा। ×

वीर-प्रकृति अनीराय साहित्य में भी रुचि रखता था। उसका हस्त-लेख भी बहुत अच्छा था। शाहजहां के शासन-काल के १० वें वर्ष (वि० सं० १६९३) में उसका देहान्त हुआ। ‖ उसके बाद उसका पुत्र जयराम बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ।

खेद का विषय है कि बड़गूजरों की ख्यात में इस वीर पुरुष का कोई वृत्तान्त न मिला। इसीसे लाचार फ़ारसी तवारीख़ों से वह संग्रह करना पड़ा।

गौरीशंकर हीराचंद ओझा

---

* 'तुज़ुके जहांगीरी' का रोजर्स और बेवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; जिल्द १, पृष्ठ १८५-८८

† वही; जिल्द १, पृष्ठ २६२-६३

‡ पुष्कर में एक दूसरे के निकट जीर्ण-शीर्ण और बिगड़ी हुई दशा में जहांगीर के समय के बने हुए दो महल हैं, जिनमें से एक के द्वार पर एक फ़ारसी लिपि का हि० स० १०६४ का शिलालेख लगा हुआ है। उसेस पाया जाता है कि वह महल अनीराय सिंह दलन की अध्यक्षता में बना था। (हरविलास सारडा; अजमेर हिस्टोरिक एण्ड डिस्क्रिप्टिव; पृष्ठ १४४-४५)

× 'तुज़ुके जहांगीरी' का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० १, पृ० ३७२

* तुज़ुके जहांगीरी का अंग्रेज़ी अनुवाद; जिल्द २, पृष्ठ २, ८१, ९३ और १५५

† 'मआसिरुल उमरा' का अंग्रेज़ी अनुवाद; पृष्ठ २६३

‡ मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृष्ठ ५६५

× 'मआसिरुल उमरा' का अंग्रेज़ी अनुवाद; पृष्ठ २६३

‖ वही; पृष्ठ २६३

चौथा पुरुषार्थ

पुराने ग्रन्थों में केवल तीन ही पुरुषार्थों का उल्लेख पाया जाता है—धर्म, अर्थ और काम। चौथा पुरुषार्थ-मोक्ष कब उनमें शामिल किया गया, यह तो पुरातत्व-वेत्ता ही कह सकते हैं। हाँ, जरा विचार करने पर यह तो जरूर समझ में आ सकता है कि पुरुषार्थ तीन नहीं, चार ही हैं। परन्तु चौथे पुरुषार्थ का नाम जो मोक्ष रक्खा गया, इसने मेरी समझ में कई लोगों को भ्रम में डाल दिया।

अन्य प्राणियों की भांति मनुष्य की पहली सहज-प्रवृत्ति काम अर्थात् सुखोपभोग और उसकी खोज की ओर होना स्वाभाविक है। उसके समस्त प्रयत्नों का लक्ष्य-बिन्दु यही प्रतीत होता है। पुरुषार्थ के मानी हैं वह वस्तु, जिसके लिए मनुष्य प्रयत्न करता है। अतः पुरुषार्थों में सब से पहला स्थान काम को सुखोपभोग को स्वभावतः मिल जाता है।

परन्तु काम की पूर्ति के लिए प्रयत्न शुरू करते ही एक अदने से अदना आदमी भी, जिसके दिल में कुछ भी विचार पैदा हुआ हो, जान सकता है कि काम की सिद्धि के लिए अर्थ की जरूरत होती है। इसलिए 'अर्थ' अर्थात् सुखोपभोग के साधनों की प्राप्ति, उसका दूसरा पुरुषार्थ बन जाता है।

पहले-पहल तो अर्थ-प्राप्ति स्वतन्त्र-रूप से पुरुषार्थ का विषय नहीं प्रतीत होता, बल्कि काम की सिद्धि के लिए ही आवश्यक मालूम होता है। इसलिए थोड़ा अर्थ प्राप्त करके उसकी सहायता से कुछ सुख भोग लिया—फिर थोड़ा अर्थ प्राप्त करके फिर सुखोपभोग किया, यों चलता रहता है। परन्तु अर्थ-प्राप्ति करते करते मनुष्य के सामने दो बातें स्पष्ट रूप से खड़ी हो जाती हैं—(१) सुखोपभोग की इच्छा को विना नियन्त्रित किये अर्थ-प्राप्ति करना ही असंभव हो जाता है। (२) अर्थ की खोज में ही शनैः शनैः मनुष्य को एक ऐसा सुख मिलने लग जाता है, जिस से उसकी सुखोपभोग की कल्पना ही बदलने लग जाती है। इसका फल यह होता है कि उसकी पहली कामेच्छा कुछ अंशों में हमेशा के लिए मन्द हो जाती है। परिणाम यह होता है कि उस मनुष्य के जीवन का अधिकांश समय काम की अपेक्षा अर्थ-प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करने में ही व्यतीत होने लगता है। भले ही कोई खाने-पीने और चैन उड़ाने की अपेक्षा किसी अन्य बात को जीवन का ध्येय न समझता हो, परंतु यदि इस सुखोपभोग के साधन जुटाने के लिए उसे अपने प्रयत्न से अर्थ उपार्जन करना पड़ता हो, तो वह बहुत थोड़े समय में देख लेगा कि दिन का बहुत छोटा हिस्सा ऐसा होगा जिसमें वह मामूली सुखों का उपभोग कर सके। विशेष प्रकार के विलासों के लिए तो वर्ष भर में कुछ ही दिन वह अवकाश पा सकेगा। उसका अधिक से अधिक समय तो अर्थ-प्राप्ति के प्रयत्नों में ही लग जाता है। परन्तु इससे उसे कहीं असन्तोष नहीं होता। क्योंकि सुख के उपभोग से मनुष्य को जितना समाधान होता है, उससे कहीं अधिक समाधान मनुष्य उस सुख के साधन जुटाने—उसके लिए प्रयत्न करने में अनुभव करता है। इस तरह स्वभावतः अर्थ के मुकाबले में काम पुरुषार्थ का गौण विषय बन जाता है।

यों अर्थ चाहे कितना ही महत्व प्राप्त कर ले, परन्तु उसका अन्तिम प्रयोजन तो आखिर काम-प्राप्ति ही है न? जिस अर्थ-प्राप्ति से किसी को सुख न हो वह किस काम की? वह तो अनर्थ-प्राप्ति ही हुई। संसार जितने कपड़े का उपयोग कर सकता है उससे यदि अधिक कपड़ा उत्पन्न किया जाय तो वह भी एक अनर्थकारी वस्तु हो सकता है। अतएव अर्थ के

लिए अनुचित पुरुषार्थ न होने पावे इसके लिए उस-पर यह शर्त लगाई कि अर्थ-प्राप्ति कामोपभोग के लिए ही हो।

पुरुषार्थ मात्र के लिए कर्म तो अनिवार्य ही है। इस कर्म के दो लक्ष्य होते हैं। (१) हेतु को सिद्ध करने वाले साधनों को जुटाना (२) उसमें विघ्न उपस्थित करने वाले कारणों को दूर करना। जरा विचार करने से ज्ञात होगा कि इन दो प्रयत्नों में अर्थोत्पत्ति के लिए की जाने वाली प्रत्यक्ष मजदूरी से लेकर सभी सामाजिक वा राजनैतिक तथा तत्कालीन वैज्ञानिक और आध्यात्मिक प्रगति के अनुसार प्रति-कूल देवताओं की पूजा अथवा अनुकूल शक्तियों की आराधना तक के सभी कर्मों का समावेश हो जाता है। अर्थात् अर्थोत्पत्ति अथवा कामोपभोग के लिए जिस हद तक अनेक मनुष्यों के सहयोग की जरूरत होती है, उस हद तक अपने आप कर्माचरण के विधि-निषेधात्मक नियमों का जन्म भी होता है। यह है धर्म की नींव। अर्थ के समान धर्म भी प्रारम्भ में स्व-तंत्र पुरुषार्थ नहीं मालूम होता। पहलेपहल तो यही मालूम होता है कि अर्थ और काम की सिद्धि के लिए धर्म की योग्यता और जरूरत है। परन्तु जिस प्रकार काम की प्राप्ति के लिए अर्थ की खोज में ही हमें अधिक समाधान प्राप्त होता है और इसके फल-स्वरूप काम विषयक हमारी कितनी ही कल्पनायें-भावनायें बदल जाती हैं और उसके लिए हमारा पुरु-षार्थ मन्द हो जाता है, उसी प्रकार और वही गति धर्म की भी होती है। यह हो सकता है कि एक मनुष्य समाज में रह कर यदि समाज के हित की पर्वा न करे तो वह अधिक अर्थ-प्राप्ति और सुख-प्राप्ति कर सकता है। वह देखता है कि समाज के हित की चिन्ता करने में उसके अर्थ और काम की हानि होती है। परन्तु मनुष्य इसकी पर्वा नहीं करता। वह अपने अर्थ और काम की हानि सह कर भी धर्माचरण को महत्व देता है। स्वर्ग की आशा अथवा नर्क का डर न होने पर भी हर समय ऐसे कई लोग जरूर मिल सकते हैं कि जिनके लिए धर्माचरण वाला पुरुषार्थ ही सब-से अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। अर्थात् धर्म-पालन के लिए किये जाने वाले पुरुषार्थ में ही उनको इतने आनन्द और सुख का अनुभव होता है कि उनके लिए अर्थ अथवा काम-प्राप्ति का सुख गौण हो जाता है। अर्थात् जिस प्रकार अर्थ के पुरुषार्थ की सिद्धि के लिए काम का संयम जरूरी है उसी प्रकार धर्म का पुरुषार्थ भी पहले दो पुरुषार्थों के संयम की अपेक्षा रखता है। यह सत्य है कि अर्थ और काम की सिद्धि के लिए धर्म का जन्म हुआ। यह भी सत्य है बहु-जन-समाज उसे इन दो पुरुषार्थों के साधन-स्वरूप ही स्वीकार करता है। तथापि कई लोगों के लिए तो शनैः-शनैः यही मुख्य पुरुषार्थ बन जाता है और सर्व-साधारण को भी धर्म के लिए अर्थ और काम का संयम करना आवश्यक हो जाता है। क्योंकि इसपर समाज की सुरक्षितता निर्भर है। आदमी अगर अकेला ही विचरता होता तो उसके लिए धर्म-अधर्म का झगड़ा न भी होता। परन्तु जहाँ समाज है, वहां तो धर्म जरूर ही होगा। हां, उसका स्वरूप चाहे जो हो।

धर्म का प्रयोजन यह बताया जाता है कि वह अर्थ और काम को सिद्ध कर दे। यदि ऐसा कर्म, जो कि अर्थ और काम का विरोधी है, धर्म कहा जाय तो वह जरूर भूल होगी। यह विधान पूर्णतया सत्य नहीं है। धर्म व्यक्ति के लिए बार-बार और समाज के लिए भी कई बार अर्थ और काम की इच्छा पर लगाम या ब्रेक का ही काम देता है। ज्यों-ज्यों धर्म की मर्यादा विस्तृत होती जाती है त्यों-त्यों अर्थ और काम की सिद्धि अवश्य ही संकुचित होती जायगी। यह कल्पना करना भी असम्भव है कि टाल्स्टाय के

सिद्धान्तों का अनुयायी समाज बड़ा अर्थवान् या सुखोपभोग करने वाला हो सकता है। अर्थ भले ही काम की तृप्ति के लिए पुरुषार्थ बन बैठा हो परन्तु अन्त में तो अर्थ-पुरुषार्थ के मानी काम का संयम ही होता है। उसी प्रकार धर्म का पुरुषार्थ अन्ततोगत्वा अर्थ और काम का संयम ही करेगा। जो समाज जिस हद तक धर्म का पालन करेगा अवश्य ही उस हद तक उस समाज के अर्थ और काम का क्षेत्र संकीर्ण हो जायगा। इसके विपरीत जो इस समाज के बाहर होंगे उनके लिए अर्थ और काम स्वभावतः अधिक सुलभ हो जायेंगे। एक व्यक्ति धर्म-मर्यादा का पालन करे, अर्थात् अर्थ और काम की इच्छा का संयम करे, तो अवश्य ही दूसरे व्यक्तियों के लिए अर्थ और काम सुलभ हो जायेंगे। एक कुटुम्ब धर्म का पालन करेगा तो दूसरे कुटुम्बों को फ़ायदा होगा। एक राष्ट्र धर्म का पालन करेगा तो दूसरे राष्ट्रों को फ़ायदा होगा। और सारा-मानवसमाज धर्माचरण करने लग जाय तो अन्य प्राणी-समाज का लाभ हो। अर्थात् "धर्म से अर्थ और काम की सिद्धि होती है" इसके मानी यह नहीं कि धर्माचरण करने वाले को वह सिद्धि प्राप्त होती है। उसका अर्थ तो यह है कि वह सिद्धि संसार को प्राप्त होती है। धर्मशास्त्र–अथवा धर्म-रूपी पुरुषार्थ का क्षेत्र–अर्थ और सिद्धि की दृष्टि से आचरण करने वाले की अपेक्षा अधिक बड़े क्षेत्र को व्याप्त करता है।

तथापि "अर्थ और काम के विरोधी कर्म को धर्म कहना भूल होगी" इस कथन में भी इस हद तक सत्य है कि जिस कर्म से किसी को भी अर्थ अथवा काम की सिद्धि न हो, अथवा जो कर्म सभी के अर्थ और काम का विरोधी हो, उसको धर्म कहना सचमुच ग़लत है। बाल-विवाह तथा रोने-पीटने में जो लोग धार्मिकता देखते हैं वे यही भूल करते हैं।

दूसरे, इससे धर्म का परिणाम आचरण करने वाले की अपेक्षा अधिक विस्तृत क्षेत्र को व्याप्त करता है; इसलिए उस क्षेत्र की मर्यादा क्या हो, उसका विस्तार कितना हो, आदि की योग्य मर्यादा भी बंध जाती है। यह मर्यादा न समझने के कारण तारतम्य (Sense of proportion) का भंग होता है। इसका परिणाम यह होता है कि धर्म का आचरण करने वाला पंगु बन जाता है। इस मर्यादा का देश, काल आदि परिस्थिति के अनुसार संकोच-विकास भी हो सकता है। जो राष्ट्र या जाति इस मर्यादा को समझ सकती है और अपने जीवन में तदनुकूल फेरफार करती रहती है, वही जीवित रह सकती है और प्रगति करती रहती है। इस मर्यादा की कसौटी यह है कि वह कर्म ऐसा न हो जो उसके आचरण करने वाले व्यक्ति या वर्ग के जीवन—धारण, पोषण और सत्व-संशुद्धि—को किसी प्रकार अशक्य वा परावलम्बी बना दे। उदाहरणार्थ खेती से हिंसा होती है। इसलिए खेती न करने से कितने ही प्राणियों का सुखोपभोग बढ़ता है। परन्तु खेती न करने के धर्म का स्वीकार करने वाला वर्ग अपने धारण, पोषण और सत्व-संशुद्धि के लिए बुरी तरह परावलम्बी होजाता है। यदि समस्त मानव समाज इस धर्म का स्वीकार करले तो उसका जीवन क़रीब-क़रीब असम्भव ही हो जाय। इसलिए यह धर्म मानव समाज के अर्थ और काम की सिद्धि का विरोधी है। अतः इसे धर्म समझना भूल है। यह जुदी बात है कि कई लोग खेती ही न करते हों। यह भी एक जुदी बात है कि ऐसे उपाय खोजे जायँ जिनके कारण मनुष्य-समाज खेती के बिना ही अपना निर्वाह कर सके। परन्तु जबतक ऐसा नहीं होने लगता, यह कहना भूल है कि खेती करने वाला अधर्म करता है।

इस तरह धर्म के पुरुषार्थ के पीछे पड़ने वाले के लिए भी दो मर्यादायें हैं। (१) उसके धर्माचरण

से किसी के तो अर्थ और काम की सिद्धि होनी ही चाहिए (२) उसका आचरण उसके धारण, पोषण और सत्व-संशुद्धि को असम्भव वा किसी प्रकार पंगु करने वाला न हो। प्रत्येक पुरुषार्थ में हमने दो बातें देखीं। (१) उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न—खोज और उसके परिणाम-स्वरूप उसकी प्राप्ति, और यह भी देखा कि (२) इस प्रयत्न वा शोध में ही मनुष्य को ऐसा समाधान प्राप्त होता है कि कितने ही लोगों के लिए वही जीवन का मुख्य व्यवसाय बन जाता है। और उस प्रयत्न का प्रत्येक हेतु गौण हो जाता है।

इस तरह काम की अपेक्षा अर्थ-प्राप्ति के लिए किया जाने वाला पुरुषार्थ और अर्थ की अपेक्षा धर्माचरण के लिए किया जाने वाला पुरुषार्थ मुख्य बन जाता है।

परन्तु प्रत्येक प्रकार के प्रयत्न वा खोज के लिए—फिर वह सुखोपभोग, अर्थ वा धर्म के लिए ही क्यों न हो—ज्ञान की सबसे पहले जरूरत होती है। ज्ञान की ही सहायता से तो मनुष्य सुख, अर्थ वा धर्म को ढूँढ सकता है। ढूँढने के मानी हैं जिसको वह अबतक नहीं जानता था उसे जानने लगता है। जिस चीज़ को जान लेता है, उसे अधिक शुद्ध कर लेता है। और जिस प्रकार अर्थ और धर्म की प्राप्ति में ही मनुष्य को इतना समाधान मिल जाता है कि उसके फल-स्वरूप सुखोपभोग गौण ध्येय बन जाता है, उसी प्रकार ज्ञान की खोज और ज्ञान-प्राप्ति में भी मनुष्य को इतना समाधान मिलने लग जाता है कि वही एक स्वतंत्र पुरुषार्थ बन जाता है। इस तरह काम, अर्थ और धर्म के साथ-साथ ज्ञान चौथा पुरुषार्थ—प्रयत्न द्वारा खोजने योग्य वस्तु—बन जाता है।

इस तरह कितने ही मनुष्यों के लिए ज्ञान की खोज और प्राप्ति जीवन के मुख्य व्यवसाय बन गये। इसका क्षेत्र अनन्त और अपार दिखाई दिया। मनुष्य ने अनेक अनुभवों को जाँच कर, उनके आधार पर कल्पना दौड़ा कर, पुनः कल्पना की सहायता से नवीन खोज करके इसकी प्राप्ति की। कभी संसार को और कभी अपने शरीर और चित्त को खोजते-खोजते वह अन्त में ब्रह्मतत्व के निर्णय पर पहुँचा। शेष सब ज्ञान उसे इस तत्व के नीचे-नीचे ही दिखाई दिया। उसने देखा कि उस तत्व के आगे कोई बात जानने योग्य (ज्ञेय) नहीं रह जाती इसलिए वह अपने उस खोज के प्रयत्न से मुक्त हुआ। उसने उस खोज के अन्त में यह भी देखा कि अपने अस्तित्व-रूप तत्व के परे ऐसा कोई तत्व नहीं जिसका उसपर अधिकार हो। इस प्रकार इस तरह भी उसने अपनी स्वतंत्रता—मुक्ति का दर्शन किया। इससे उसकी अन्तिम जिज्ञासा का भी अंत हो गया। इसके पुरुषार्थ के लिए प्रयत्न करने की झंझटों से उसे छुटकारा—मोक्ष—मिल गया, उसकी समस्त स्वलक्षी इच्छायें भी इससे निवृत्त हो गईं।

इस ज्ञान-प्राप्ति की खोज में इस प्रकार किसी समय पुनर्जन्म के अस्तित्व का भी आविष्कार हुआ। यह पुनर्जन्मवाद शनैः शनैः इतना बल प्राप्त करता गया कि भारतीय चित्त पर जन्म से ही उसका संस्कार दृढ़ होने लग गया।

ज्ञान के पुरुषार्थ की परिसीमा तक पहुंच कर अपने अस्तित्व-तत्व अर्थात् आत्मतत्व का साक्षात्कार करने वाले तत्ववेत्ता ने कहा कि ये सब वाद उस "तत्वज्ञान" के नीचे-नीचे हैं। आत्मतत्व को खोज लेने के बाद ये सब गौण हो जाते हैं। इन वादों के संस्कारों से मुक्ति प्राप्त करना हो तो आत्मतत्व को खोजो।

इस तरह किसी कारणवश चौथे पुरुषार्थ का नाम ज्ञान के बदले मोक्ष हो गया, और उसका अर्थ

होगया पुनर्जन्म से छूटने के लिये किया जाने वाला पुरुषार्थ । पुनर्जन्म के वाद का आधार कर्म का सिद्धान्त है । इसलिए कर्म का नाश हो गया मोक्ष का साधन । और धर्म, अर्थ और काम तीनों कर्म-प्रेरक होने के कारण इन तीनों और मोक्ष के बीच रात और दिन के समान अन्तर है, यह कल्पना रूढ़ हो गई । अतः इन तीनों पुरुषार्थों से निवृत्ति—अथवा धर्म, अर्थ और काम इन तीनों के साथ जिनका सम्बन्ध न हो ऐसे कर्मों में प्रवृत्ति—यही चौथे पुरुषार्थ का साधन बन गया ।

इसके विपरीत कई लोगों ने आत्मतत्व की खोज के लिए स्वयं तो पुरुषार्थ नहीं किया किन्तु तद्विषयक विचार दूसरों से ग्रहण करके अपने आपको स्वच्छन्द बनाने में उसका उपयोग किया । उन्होंने मोक्ष का अर्थ किया धर्म के बंधन से मुक्ति ।

इस प्रकार मोक्ष शब्द से अनेक रीति से लोगों में भ्रम-मूलक कल्पनायें फैल गईं । चौथा पुरुषार्थ मोक्ष नहीं, ज्ञान अथवा खोज है । इसके लिए जो प्रयत्न होता है उसके द्वारा मनुष्य धर्म, अर्थ और काम को खोजता है । इससे वह अपनी उन प्रवृत्तियों और कामों को शुद्ध करता है जो उन पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिए किये जाते हैं । ज्ञान की सहायता से वह पुरुषार्थों की मर्यादाओं और उनके पारस्परिक सम्बन्ध तथा अधिकार-क्षेत्र को जान सकता है । और अन्त में वह अपने आपको तथा संसार को ढूँढता तथा शुद्ध करता है—सोभी यहाँ तक कि जीवन-तत्व को भी ढूँढ लेता है । ज्ञानी धर्म के बन्धन से मुक्ति नहीं चाहता । बल्कि धर्म को ठीक-ठीक समझता है और उसके बन्धन को ज्ञानपूर्वक स्वीकार करता है तथा उसकी मर्यादा में रहते हुए अर्थ और काम का उपभोग करता है । पहले तीन पुरुषार्थों के अनुसार इस चौथे पुरुषार्थ का ध्येय भी जीवन का धारण, पोषण और सत्व-संशुद्धि है, मृत्यु के बाद की चिंता व्यर्थ सी है । इस जीवन के व्यवहारों के साथ धर्म का संबंध न रहने के कारण तारतम्य भंग होने का भय रहता है, वही चौथे पुरुषार्थ के विषय में भी होता है । यह कल्पना तो 'मोक्ष' शब्द ने उत्पन्न कर दी है कि "चौथे पुरुषार्थ का लक्ष्य है कर्म-मात्र से निवृत्ति ।" अतः उपर्युक्त विचार के अनुसार देखेंगे तो इन चार पुरुषार्थों में रात और दिन के समान अन्तर नहीं दिखाई देगा । और न यह उपर्युक्त पुरुषार्थ नीचे वाले तीन पुरुषार्थों को पुष्ट करने वाला दिखाई देगा । बल्कि विचार करने पर वह तो अन्योन्याश्रयी और अन्योन्य नियामक ही दिखाई देगा ।

'मोक्ष' शब्द ने आचार और विचार में अनेक उलझनें और अस्पष्टतायें पैदा कर दी हैं, कर्माचरण की प्रवृत्ति और साधना को अनेक कृत्रिम मार्गों में लगा दिया है । और दो प्रकार के भिन्न-भिन्न कर्मों की रचना की है—सांसारिक और पारमार्थिक, मानों वे एक दूसरे से असम्बद्ध हों । मनुष्य को जिज्ञासु होना चाहिए—शुशुत्सु (शोध और शुद्धि की इच्छा वाला) होना चाहिए । इसका परिणाम यह होगा कि अनेक वहम, अज्ञान, अधूरा ज्ञान, अथवा संक्षेप में कहें तो अबुद्धि से उसे मोक्ष मिल जायगा । यदि सृष्टि के नियमों के अनुसार पुनर्जन्म आवश्यक होगा तो वह अनिवार्य जानकर समाधान-पूर्वक उसको स्वीकार करेगा । यदि वह कल्पना मात्र होगा तब तो उसे डरने की कोई बात ही नहीं है । परन्तु उस वाद के डर से ही वह पुरुषार्थ करने में न लगे ।

किशोरलाल घ० मश्रुवाला

"देवता भी उससे ईर्ष्या करते हैं जो एक कुशल सारथी की तरह अपनी इन्द्रियों को वश में रखता है, जो निरभिमान है, निर्विकार है ।" —भगवान बुद्ध

विनय

न्याय-दया-हीन जो हैं और जो अकारण ही,
कारण हैं बने हुए भूरि भूमि-भार के।
मन में सहानुभूति जिनके न नेक भी है,
जिनके हिये में भाव उठते न प्यार के।
क्रूर भरपूर जो हैं काले उर वाले बड़े,
रहते पड़े हैं जिन्हें लाले सुविचार के।
इतनी दया तो आप कीजिए दया-निधान !
दीजिए उन्हें न कभी पद अधिकार के ॥१॥

गोपालशरण सिंह

तत्व-परिवर्तन*

आधुनिक युग वैज्ञानिक युग है। इस युग के पूर्व, तीन बड़े-बड़े महत्वपूर्ण प्रश्न मनुष्य-मात्र के सन्मुख उपस्थित थे। पहला तो अमृत या ऐसे ही किसी पदार्थ की प्राप्ति, जिससे मनुष्य अमर हो जाय या कम से कम वृद्धावस्था के कष्ट से बच जाय। दूसरा ऐसे द्रव की प्राप्ति, जो प्रत्येक पदार्थ को घुला डाले। तीसरा पारसमणि की प्राप्ति, जिसके स्पर्श से लोहे सरीखी हीन धातु सुवर्ण जैसी श्रेष्ठ धातु में परिवर्त्तित हो जाय, और पारसमणि के अभाव में ऐसी क्रिया का ज्ञान जिससे हीन धातु श्रेष्ठ में बदल जाय। अनेक मनुष्यों के हृदय में इन पदार्थों की प्राप्ति की उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई और उनमें अनेकों ने इसकी चेष्टा भी की। यद्यपि उनकी सारी चेष्टायें व्यर्थ हुई तो भी उसके परिणाम से ही आधुनिक रसायन का प्रादुर्भाव हुआ।

आजकल भी सदा युवा रहने की चेष्टा हो रही है; किन्तु, विधि वैज्ञानिक है और बिलकुल दूसरी तरह की है। पाश्चात्य देशों में अनेक डाक्टर मनुष्य को सदा युवा बनाये रखने के उपाय को ढूँढ रहे हैं और कई एक प्रयोगों से, जो इस समय तक हुए हैं, मालूम होता है कि वृद्ध मनुष्य कृत्रिम रीति से भी युवा हो सकता है; किन्तु अभी तक वह विधि प्रयोगों से पूर्ण प्रमाणित नहीं हुई है। मनुष्य की जीवन-वृद्धि के लिए वैज्ञानिकों के द्वारा गहरी चेष्टा हो रही है। किन्तु इसमें कहाँ तक सफलता मिली है और कहाँ तक मिलने की आशा है, इस विषय का वर्णन दूसरे लेख में किया जायगा। सब पदार्थों को घुलाने वाले द्रव का भी उल्लेख अब कहीं नहीं होता। यदि ऐसा द्रव कहीं से प्राप्त भी हो जाय तब रसायनज्ञों के सामने एक बड़ी समस्या उपस्थित हो जायगी कि किस पात्र में ऐसे द्रव को रक्खें। क्योंकि ऐसा द्रव तो सारे पदार्थों को घुला देगा। इस समय घोलकों (Solvents) की कमी नहीं है; किन्तु उनकी विशेषता इस बात में है कि कुछ घोलक में कुछ पदार्थ घुलते हैं और कुछ में नहीं। इससे इन घोलकों के द्वारा भिन्न-भिन्न वर्गों के पदार्थों को एक दूसरे से अलग करने में बहुत सहायता मिलती है।

पारसमणि की खोज का प्रश्न दूसरे प्रकार का है। तत्वों की प्रकृति के ज्ञान से प्रत्येक वैज्ञानिक का सम्बन्ध है। वैज्ञानिकों को ऐसी सूचना पाने की सदा प्रबल इच्छा रहती है, जिससे इस सृष्टि के द्रव्यों के संगठन वा बनावट पर प्रकाश पड़े। इस सम्बन्ध में दो प्रश्न हम लोगों के सामने विचारार्थ उपस्थित होते हैं। क्या एक तत्व का दूसरे तत्व में परिवर्तन हो सकता है ? यदि कुछ देर के लिए मान लिया जाय कि यह सम्भव है, तब क्या प्रयोगशालाओं में भी एक तत्व

* मौलिक पदार्थों को रसायन में 'तत्व' कहते हैं। इस शीर्षक का आशय इस प्रश्न पर विचार करना है कि क्या एक मौलिक पदार्थ दूसरे मौलिक पदार्थ में परिवर्तित हो सकता है।

दूसरे तत्व में परिवर्तित किया जा सकता है ?

रासायनिक अन्वेषण का क्षेत्र दिन प्रति दिन विस्तृत हो रहा है। स्पेक्ट्रम विश्लेषण (Spectrum analysis) के प्रयोग से इसका क्षेत्र भी विस्तृत हो गया है। हम लोग इसकी सहायता से केवल इस पृथ्वी-मण्डल के पदार्थों का ही पता नहीं लगा सकते बल्कि उतनी ही सरलता से आकाश के ग्रहों और तारों में उपस्थित भिन्न-भिन्न पदार्थों की बनावट का ज्ञान भी प्राप्त कर सकते हैं।

इस सृष्टि-विकाश का जो सिद्धान्त आज स्वीकृत माना जाता है वह इस सृष्टि की चक्र गति (Cycli processc) पर अवलम्बित है। यदि हम लोग दो अँधेरे, पृथ्वी, सदृश, ठण्डे तारों का विचार करें, जो आकाश में भ्रमण करते हुए एक दूसरे से टकरा जाते हैं, तो हमें मालूम होगा कि इनके टकराने का परिणाम यह होता है कि इनसे बहुत अधिक मात्रा में गरमी उत्पन्न होती है। क्योंकि इनकी गति के कारण जो गन्त्यज-शक्ति (Kinetic energy) उत्पन्न होती है वह अकस्मात् ताप-शक्ति में परिवर्तित हो जाती है। यह ठीक उसी प्रकार होता है जैसे एक गोली ढाल पर टकरा कर गरम हो जाती है। इन तारों की टक्करों से सम्भवतः इतनी गरमी उत्पन्न होती है कि दोनों तारों के द्रव्य उससे पिघल कर पूर्ण रूप से भाफ बन जाते हैं। इस प्रकार ठोस तारों के स्थान में अपरिमित गैस का ढेर उस स्थान पर बन जाता है, जहां टक्कर लगी थी। समय बीतने पर इस नीहारिका (Nabulae) से धीरे-धीरे गरमी निकल कर इधर-उधर बिखरने लगती है और वह ठंडी होनी शुरू होती है। उसका आयतन क्रमशः घटता जाता है। इस प्रकार एक कण का दूसरे से मिलना शुरू होता है और समय पाकर ठंढा होते-होते पूर्व की भाँति वह अँधेरा तारा बन जाता है। यह अँधेरा तारा फिर भी उसी भाँति आकाश में भ्रमण करता रहता है और किसी दूसरे ढेर से टकरा कर, गरमी उत्पन्न कर, उसी चक्र को दुहराता हुआ समय व्यतीत करता है।

यहां यदि हम मान लें कि एक तत्व का दूसरे तत्व में परिवर्तित होना सम्भव नहीं तो यह निर्विवाद है कि नीहारिका और उस तारे के संगठन में जिससे नीहारिका बनी है कोई अन्तर नहीं होना चाहिए। यदि किन्हीं दो तारों में केवल लोह और कार्बन विद्यमान है तब उनसे बनी नीहारिका में भी केवल लोह और कार्बन ही होना चाहिए और उस नीहारिका से बने तारे में भी केवल लोह और कार्बन।

इस प्रकार स्पेकट्रम विश्लेषण से इन तारों के सम्बन्ध में मालूम होगा कि तारे और नीहारिकाओं का रासायनिक संगठन एकसां ही है या भिन्न-भिन्न। इस संबन्ध में जो प्रयोग हो रहे हैं उनसे मालूम होता है कि तारों और नीहारिकाओं में भिन्न-भिन्न तत्व विद्यमान हैं। एक तारा भी दूसरे तारे से इस विषय में भेद रखता है।

ऐसे उदाहरण मालूम हैं और हाल में ऐसे प्रयोग हुए हैं जहाँ दो अदृश्य अन्धेरे तारों के परस्पर टकराने से चमक के साथ भाफ बनी है। ऐसी नीहारिका का संगठन तारों के संगठन से भिन्न प्रमाणित हुआ है। इससे केवल यही सिद्धान्त निकल सकता है कि लोह और कार्बन बहुत उच्च तापक्रम पर तप्त होने से लोप हो जाते हैं और उनके स्थान में हाइड्रोजन हिलियम और अन्यान्य हलके तत्व बन जाते हैं।

तुरन्त की बनी नीहारिका में केवल नाइट्रोजन और एक अज्ञात गैस मिलती है। जैसे-जैसे यह ठण्डा होना शुरू होता है, वैसे-वैसे पहले उसमें हिलियम और बाद में आक्सीजन और नाइट्रोजन और तब कार्बन-तत्व प्राप्त होते हैं।

पृथ्वीतल के पदार्थों में रेडियम एक ऐसा पदार्थ है, जिसमें तत्व के सारे गुण विद्यमान हैं। इसके विशिष्ट गुण अन्य गुणों से भिन्न हैं और यह रासायनिक क्रियाओं में बेरियम धातु से घनिष्ट सम्बन्ध रखता है। यह रेडियम स्वयं बिना किसी के सहयोग से निटन (Niton) में परिवर्त्तित हो जाता है। इस निटन में भी तात्विक पदार्थों के गुण विद्यमान हैं। यह निटन भी फिर हिलियम में बदल जाता है।

इन दोनों उदाहरणों से साफ़ मालूम होता है कि रासायनिक तत्वों में भी पारस्परिक परिवर्तन होता है और वे अमर नहीं हैं। इन तत्वों में कुछ तो आपसे आप दूसरे तत्व में बदल जाते हैं। अतएव एक तत्व का दूसरे तत्व में परिवर्तन असम्भव नहीं बल्कि बिलकुल सम्भव है। अब हम दूसरे प्रश्न पर विचार करेंगे। क्या एक तत्व दूसरे तत्व में प्रयोगशाला में परिवर्तित हो सकता है?।

किसी स्थायी पदार्थ का साम्य (Equilibrium) बदलने में बल (Force) की आवश्यकता होती है। यह साम्य जितना ही स्थायी होता है उतने ही अधिक बल की आवश्यकता पड़ती है। अधिकांश रासायनिक तत्व बहुत ही स्थायी अवस्था में विद्यमान हैं। अतएव उनका साम्य साधारण रासायनिक प्रतिकारकों के द्वारा नहीं बदला जा सकता। कौनसी ऐसी प्रचण्ड शक्ति मनुष्य के हाथ में है, जिसकी सहायता से यह प्रश्न हल किया जा सकता है? उच्च तापक्रम, रेडियो-क्रियाशील विच्छेदन और विद्युत की सहायता से सम्भवतः कुछ हो सके।

ताप की सहायता से कोई सफलता की आशा नहीं होती। क्योंकि तप्त तारों का तापक्रम, जिनमें तत्वों का परिवर्तन होता है, प्रायः तीस हज़ार डिग्री माना गया है। इसकी तुलना में वैद्युत-भट्टी (Electric furnace) का ताप-क्रम, जो केवल तीन हज़ार से चार हज़ार तक होता है, बहुत कम है। जितना ताप-क्रम आजकल कृत्रिम रीति से प्राप्त हो सकता है उसका दस गुणा होने पर कहीं सफलता की आशा हो सकती है। फिर भी इतने ऊँचे ताप-क्रम को सहन करने के लिए यंत्र चाहिए, जिसका प्राप्त करना अभी असम्भव मालूम होता है।

दूसरी शुद्धि तत्वों के रेडियो-क्रियाशील विच्छेदन से प्राप्त होती है। इस शक्ति का रामज़े (Ramsay) और उनके सहयोगियों ने पहलेपहल इस सम्बंध में व्यवहार किया। इनके प्रयोगों से बहुत मनोरंजक बातें मालूम होती हैं।

रामज़े के प्रयोग में निटन जब विच्छेदित हो कर हिलियम बनता है तब यह क्रिया जल की उपस्थिति में भी होती है। किन्तु यदि जल के स्थान में तूतिया के घोल का व्यवहार हो तब हिलियम के स्थान में एक दूसरा तत्व आर्गन पाया जाता है। इस क्रिया के अंत में ताम्र (तूतिया ताम्र का यौगिक है) के स्थान में लिथियम नामक तत्व पाया जाता है। लिथियम ताम्र से हलका होता है। इससे रामज़े के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि सम्भवतः रेडियो-क्रियाशील शक्ति की सहायता से भारी धातु ताम्र हलकी धातु लिथियम में परिवर्त्तित हो जाता है। इससे उन्होंने विशेष प्रयत्न से बिलकुल शुद्ध किये हुए तूतिया के साथ प्रयोग करके इसे पूर्ण रूप से प्रमाणित किया कि ताम्र लिथियम में परिवर्तित हो जाता है। जिस समय में लन्दन में प्रयोग हो रहे थे उसी समय लीड्स में पेटरसन (Peterson) नामक एक दूसरे रसायनज्ञ स्वतन्त्र रूप से एक तत्व का परिवर्तन दूसरे तत्व में कर रहे थे। इन दो भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रयोगों से यह सिद्ध होता है कि एक तत्व दूसरे तत्व में परिवर्तित हो सकता है।

रामज़े के प्रयोग से मालूम होता है कि निटन के

विच्छेदन से जो बल उत्पन्न होता है उसकी सहायता से ताम्र और थोरियम धातु लिथियम और कार्बन हलके तत्व में परिवर्तित हो जाते हैं। यहाँ अवश्य ही विश्लेषण-क्रिया होती है। पेटरसन के प्रयोगों में सब से हलका तत्व हाइड्रोजन एक विशेष प्रकार के वैद्युत विसर्जन के द्वारा हिलियम और नीअन नामक भारी गैसों में बदल जाता है। यहाँ अवश्य ही विश्लेषण-क्रिया कार्य करती है।

सैद्धान्तिक रूप से यह पूर्ण रूप से प्रमाणित हो चुका है कि एक तत्व दूसरे तत्व में परिवर्तित हो सकता है। क्या इसका व्यावहारिक प्रयोग संभव है? क्या किसी प्रकार लोहा, चान्दी वा पारा सुवर्ण में परिवर्तित हो सकता है? कुछ रसायनज्ञों ने इस विषय पर प्रयोग करके यह घोषित कर दिया है कि पारा सुवर्ण में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार के प्रयोग जर्मनी और जापान में हुए हैं। कुछ तो यह भी आशा करते हैं कि वह समय दूर नहीं है, जब कृत्रिम रंग, कृत्रिम कपूर, कृत्रिम नील और कृत्रिम सुगन्धित द्रव्य की भाँति कृत्रिम सुवर्ण भी बाज़ारों में बिकने लगेगा। इसके विपरीत कुछ वैज्ञानिक इन प्रयोगों की सत्यता के सम्बन्ध में सन्देह करते हैं और यह आशा नहीं करते कि पारा वा अन्य कोई धातु शीघ्र ही सुवर्ण में परिवर्तित हो सकेगा। समय ही बतावेगा कि इसमें कहाँ तक सच्चाई है। इस देश में कुछ ठग साधु वा संन्यासी के रूप में भोले-भाले स्त्री-पुरुषों को भी चान्दी के आभूषण को सुवर्ण के आभूषण में बदलने की बात कहकर उनके चान्दी के आभूषणों को लेकर लुप्त हो जाते हैं। ऐसे ठगों से लोगों को अवश्य बचना चाहिए और कभी विश्वास नहीं करना चाहिए कि ऐसे लोगों के द्वारा चान्दी सुवर्ण में परिवर्त्तित हो सकती है।

फलदेवसहाय वर्मा

धर्म-अधर्म

(१)

फ़ीरोज़पुर एक छोटासा गाँव है। गाँव की आबादी कुछ फ़ासले पर, उत्तर की ओर, पाँच-सात झोंपड़ियाँ हैं। इन झोंपड़ियों से मिली हुई एक आम के बाग़ की खाई है। इस खाई पर सुक्खू चमार एक फटी बण्डी और एक मै फटी धोती पहने बैठा है। मालूम होता है कि इसे अ तन-बदन का होश नहीं है। कभी उठ कर अपनी झोंपड़ी जाता है। कभी फिर आकर इस खाई पर बैठ कर भाव-शू वेदना-पूर्ण दृष्टि से अपने सामने के दृश्य को दे लगता है।

सामने की ओर, इस विशाल आम के बाग़ के दू कोने पर, इस इलाक़े के सबसे बड़े ज़मींदार की आली कोठी बनी हुई है। पण्डित चन्द्रिकाप्रसाद, जो इस म के मालिक हैं, एक बड़े धनवान, प्रभावशाली और धर्मा पुरुष हैं। एक वर्ष से उनकी यह आलीशान कोठी बिल सुनसान थी। पण्डित चन्द्रिकाप्रसाद एक साल पहले अ बूढ़ी माता, पुत्र, स्त्री और दो बहनों तथा एक दर्जन नौ को लेकर तीर्थ-यात्रा के लिए निकले थे। संकल्प का था कि चारों धाम करने के सिवाय सभी छोटे-मोटे तीर्थों यात्रा करके ही घर लौटेंगे। इस यात्रा में आपने बड़ी रता के साथ दान-धरम किया। पंडों और पुजारियों मुँह-माँगी दीक्षणा दी। तीर्थों के पंडे और पुजारी यज के इस धर्म-प्रेम से मुग्ध होगये। वे कहा करते कि कलि में भी ऐसे दानवीर हैं, तभी तो पृथ्वी चल रही है।

एक सप्ताह हुआ कि पण्डितजी अपने महान् संक पूरा करके घर लौटे हैं। इसी कारण उनकी इस कोठी हर समय एक मेला सा लगा रहता है। बड़े-बड़े रईस, मोटे ज़मींदार, रियाया, दोस्त, अज़ीज़, अपने-पराये, से शाम तक इनके यहां आते जाते रहते हैं। मोटरों, गा इक्कों, बहेलियों, सभी का तांता सा बन्धा रहता है। फ़ पुर के और बाशिन्दों के समान सुक्खू भी अक्सर इस पर से इस चहल-पहल का तमाशा देखा करता था। दिनों की भांति आज भी वह खाई पर बैठकर पीड़ि

और अश्रु-पूर्ण नेत्रों से वह दृश्य देख रहा था। इसलिए नहीं कि उसे इस दृश्य के भीतर अपनी ग़रीबी और असहायता का रहस्य दिखाई देता हो। इस अभागे में इतनी विचार-शक्ति नहीं जो अपनी दरिद्रता और असहनीय दुःखों तथा पण्डित चन्द्रिकाप्रसाद की अनन्त धन-राशि और अपरिमित विलासिता के भीषण पारस्परिक सम्बन्ध को ग्रहण कर सके। वह यह क्या जाने कि समाज का प्रत्येक अङ्ग अपनी आत्मिक, नैतिक और भौतिक सम्पत्ति समाज के अन्य अङ्गों से ही प्राप्त करता है? उसको यह भी ख़बर नहीं कि असहनीय दरिद्रता के दुःख और अनन्त काल से पद-दलित रहने की पीड़ा कोई ईश्वरीय व्यवस्था नहीं है, वरन् परिवर्तनशील संसार की एक साधारण घटना है। वह तो परम्परा से यह सुनता चला आया है कि हमारे समस्त दुःख केवल हमारे ही कर्मों के फल हैं। भाग्य की प्रबलता का सिक्का उसके हृदय पर जमा है। मौन हो कर अपने सब दुःखों को सह लेना ही वह अपना परम-धर्म समझता है। उसकी वर्तमान पीड़ा और अश्रु किसी क्रोध के परिणाम नहीं हैं। वे उन दुःखों के नतीजे हैं, जो उसे चारों ओर घेरे हुए हैं।

सुक्खू बड़ा ग़रीब है। बुद्धू, इसका इकलौता पुत्र, तीन महीने से बहुत बीमार है। अब तक जब सुक्खू मज़दूरी पर जाता, तो उसकी स्त्री लड़के की देख-भाल किया करती थी। वह भी पिछले १५ दिनों से शीतलामाई की कृपापात्र बनकर उठने-बैठने योग्य नहीं रही। रोज़ जो मज़दूरी मिलती थी, उसीसे यह अपनी और अपने कुटुम्ब का पालन-पोषण करता था। अब कई दिनों से मरीज़ों की देख-भाल पर रहने के कारण इसका मज़दूरी पर जाना छूट गया है। गाँव वालों से क़र्ज़ा ले-लेकर अब तक अपना ख़र्च चलाता था। परन्तु कल से उसे किसीने क़र्ज़ा भी नहीं दिया। कहाँ जाय? इन बीमारों को किसपर छोड़े? दवा कहाँ से लाय? बीमार बच्चे और स्त्री को क्या खिलाये? ख़ुद क्या खाय? ये ऐसे प्रश्न हैं, जिनका उसके पास कोई जवाब नहीं। अपने पुत्र के कराहने की आवाज़ सुन कर वह अपनी झोंपड़ी में जाता है, उसे पुचकार-सम्हाल के फिर बाहर आता है, और इस आम के बाग़ की खाई पर बैठ कर सामने की कोठी की ओर विचार-शून्य दृष्टि से देखने लगता है।

दोपहर ढल रहा है। सुक्खू इसी हालत में खाई पर बैठा है कि इतने में पास की झोंपड़ी से सुखदेई निकली और उसके पास आकर कहने लगी—"भैया, तुम आज बड़े उदास हो; बुद्धू और सुखिया कैसे हैं?"

सुक्खू की आँखों से आँसू निकलने लगे। बोला—"कल से बचवा ने कुछ खाने को नहीं पाया, न उसकी माई ने ही कुछ खाया है। सुखदेई! दिन दो दिन तुम इन बीमारों को भी देख लिया करो, तो मैं कहीं मज़दूरी ढूँढ कर दो-चार पैसे लाऊँ, तो इनका पेट भरे। बुधुवा की माई दो-चार रोज़ में कुछ चलने-फिरने लगेगी। फिर वह बच्चे को देख लिया करेगी। तुमसे बुधुवा हिला भी है। तुम राज़ी हो जाओ, तो मैं आज ही जाकर कहीं मज़दूरी ठीक कर आऊँ। नहीं तो मेरा बच्चा भूख से मर जायगा।" यह कह कर सुक्खू और भी रोने लगा।

सुखदेइया ने कहा—"भैया, दो बीमार मेरे यहाँ भी हैं। कोई कमाने वाला नहीं! एक-एक दिन कटना दूभर हो रहा है। पर तुम रोओ मत। जाओ, मैं सुभगिया को भेज दूँगी। वह बच्चे के पास बैठ जाया करेगी। कुछ ज़रूरत हुई तो मुझे बुला लिया करेगी।"

सुक्खू अपनी पत्नी को सब समझा कर शहर चला गया। वहाँ से रात में आठ बजे के क़रीब लौटा, और अपनी पत्नी से कहने लगा—"आठ आने रोज़ की एक जगह मज़दूरी ठहरा आया हूँ। वहाँ कल से जाऊँगा। एक आना पेशगी लेकर कुछ गुड़ और मुरमुरे बच्चे के और तुम्हारे वास्ते ले आया हूँ!"

यह कह कर उसने गुड़-मुरमुरे पुत्र और पत्नी को खिलाये और कुछ शान्त होकर इस विचार में निमग्न हो सो गया कि कल सुबह को काम पर जायगा।

(२)

आधी रात बीत चुकी है। पण्डित चन्द्रिकाप्रसाद की कोठी बिजली की रोशनी से जगमगा रही है। एञ्जिन की धक-धक, जो दिन को केवल घर ही तक परिमित थी, इस समय धड़कते हुए हृदय के समान तमाम वायु-मण्डल को कंपा रही है। मोटरों, गाड़ियों का आना-जाना बन्द हो चुका है। मेहमान अपने-अपने कमरों में चले गये हैं। पण्डित

चन्द्रिकाप्रसाद दिन भर मेहमानदारी करने के बाद अपने सोने के कमरे में एक कोच पर बैठे हैं। इतने में लाला भवानीप्रसाद अन्दर आये और पूछने लगे—"सरकार ने मुझे बुलाया ?"

पण्डितजी बोले—"अरे भाई, तुमने सुना ? शास्त्री जी कहते हैं कि इस कोठी के आँगन में हवन नहीं हो सकता। जगह कम है। कोई डेढ़ सौ पण्डित आ रहे हैं। चार-पाँच सौ लोग और भी निमन्त्रित हैं। फिर इस यज्ञ का इन्तज़ाम कहाँ किया जाय ?"

"जहां हुज़ूर हुक्म देंगे, वहीं इन्तज़ाम हो जायगा।"

"मेरे ख़याल में तो वह सामने वाला आम का बाग़ बहुत अच्छा है। अगर यह साफ़ हो जाय तो इसमें यज्ञ हो सकता है। परन्तु कल ही का दिन बीच में है। इसमें इतने डेरे-ख़ेमे लगवाना, सारे बाग़ की ज़मीन दुरुस्त करवाना कोई आसान काम नहीं।"

"नहीं हुज़ूर, सब हो जायेगा। गाँव से पचास-साठ आदमी बुला लिये जायेंगे। वे सब कर देंगे।"

"ख़ैर, तुम जानो। मगर कल यह सब इन्तज़ाम हो जाना चाहिए। और देखो, वह जो गाँव के तरफ़ की खाई है उसके आगे क़नात लगा दी जावे। हर समय वहाँ गन्दे फटे कपड़े पहने ग़ोल के ग़ोल लोग खड़े रहते हैं।"

"बहुत अच्छा, हुज़ूर।"

भवानीप्रसाद कमरे से बाहर चले गये। बाहर जाकर उन्होंने मङ्गलसिंह को बुलाया और हुक्म दिया कि वह फ़ौरन फ़िरोज़पुर, मदारीपुर इत्यादि से आठ-आठ दस-दस चमार-पासी सूर्य निकलने से पहले ही पकड़वा बुलाने का प्रबन्ध करे। कोई बहाना न सुना जाय। अगर कोई सीधी तरह आने से इन्कार करे, तो टेढ़ी तरह लाया जाय। काम बहुत ज़रूरी है। अगर कोई फ़र्क़ पड़ा तो सारी ज़िम्मेदारी मङ्गलसिंह के सिर आयेगी।

मङ्गलसिंह ने कहा—"सरकार दुनिया का अजब हाल है। इन छोटी क़ौमों ने बड़ा सिर उठाया है। मालिक की बेगार को जुल्म कहा जाता है। हज़ारों बहाने करते हैं और आते हैं, तो ऐसे जैसे मौत के घर जा रहे हों।"

भवानीप्रसाद ने कहा—"मैं यह दुखड़ा नहीं सुनना चाहता। कल सूर्य निकलते-निकलते वहाँ पचास-साठ आदमियों को आना है।"

मङ्गलसिंह ने सिपाहियों को बुला कर फ़ौरन आस-पास के गाँवों में भेज दिये कि वे रात ही से लोगों को ख़बर दे दें जिसमें सुबह वे कहीं काम पर न चले जायें। खुद भी फ़ीरोज़पुर की ओर चला कि खाई के पार जाकर सुक्खू मंगला इत्यादि से यह खुशख़बरी कह दे। खाई के पास पहुँचा, तो देखा कि उस पर कोई बैठा है। आवाज़ दी—"कौन ?" जवाब मिला "सुक्खू।" "अरे! यह क्या? इस समय यहाँ कैसे बैठे हो ? क्या आज कोई सेंध-वेंध देने का इरादा है ?"

सुक्खू ने कहा—"नहीं हुज़ूर, आपके लड़के बुधुवा की हालत बहुत ख़राब है। दो रोज़ पीछे रात उसे थोड़ा चबेना-गुड़ खिलाया था। दो घण्टे से ऐसा तड़प रहा है कि देखा नहीं जाता। कहाँ जाऊँ, किसे दिखाऊँ, कहाँ से दवा पाऊँ, जो इसे कुछ चैन मिले! इसी चिन्ता में यहाँ बैठा हूँ। मुझे तो दिखाई देता है कि यह अब जीता न बचेगा।"

आँसू सुक्खू की आँखों में भरे थे। उसकी आवाज़ भारी हुई थी। मगर मङ्गलसिंह ने इस समय विशेष सहानुभूति प्रकट करना उचित न समझा। वह कहने लगा—"भाई घबराते क्यों हो ? बचा है, अच्छा हो जायगा। इस वक्त दवा कहाँ मिलेगी, कौन वैद्य तुम्हारे लिए दौड़ा आयेगा। मगर सुनो, देखो, सुबह कहीं चले न जाना। सूरज निकलने से पहले ही तुम्हारी कोठी पर हाज़िरी है।"

सुक्खू ने कहा—"कल का तो मैं बयाना ले चुका हूँ। बच्चे की यह हालत है, बुधुवा की माई भी बीमार है; सरकार साहब हमें माफ़ कर दीजिए, तीन अभागों की जान सरकार के हाथ में है। मोहलत मिलने पर एक दिन की नहीं, दस दिन की बेगार मुझसे करा लीजिएगा।"

मङ्गलसिंह ने कहा—"भय्या, मैं मालिक नहीं, मालिक का नौकर हूँ; तुम्हें जो उज़र हो, मालिक से कह देना, उनका जी चाहेगा, तुम्हें छोड़ देंगे।"

सुक्खू कुछ और कहना चाहता था कि मङ्गलसिंह ने यह कह कर चुप कर दिया—"भाई, मैं कुछ नहीं कर सकता, तुम्हें सुबह कोठी जाना होगा।"

यह कह कर मङ्गलसिंह वहाँ से चला गया। सुक्खू का दिल बैठ गया; बच्चे की भूख और तड़प, स्त्री के दुःखों का ख़याल, उसके लिए असहनीय हो गया। इस निराशा की हालत में खाई पर बैठ कर वह फूट-फूट कर रोने लगा।

मुँह-अंधेरे ही से पंडित चंद्रिकाप्रसाद की कोठी में चारों ओर जागृति दिखाई पड़ती है। मोटरों, गाड़ियों का आना-जाना आरंभ हो गया है। इधर-उधर से लोगों के एक-दूसरे को पुकारने की आवाज़ें आती हैं। लोगों के समूह के समूह इधर-उधर अते-जाते दिखाई पड़ते हैं। ऐसा प्रतीत होता है, कि जैसे कोई बड़ा उत्सव मनाये जाने का प्रबंध हो रहा हो। देहली, आगरा और बनारस आदि से मशहूर हलवाई बुलाये गये हैं। इसी आम के बाग़ के एक कोने में एक पकवान-शाला का प्रबंध किया जा रहा है। पूरब की ओर ३ या ४ क़तारें ख़ेमों की हैं, जिनमें शास्त्री, पंडित, वेदपाठी इत्यादि ठहरेंगे, जो मदरास, बङ्गाल व बनारस से बुलाये गये हैं। बाग़ के सामने अर्थात् फ़ीरोज़पुर के सामनेवाली खाई पर एक सौ-गज़ी क़नात खड़ी की जा रही है। इस क़नात से कोई बीस गज़ हट कर एक विशाल शामियाना खड़ा हो रहा है, जिसमें वेदपाठ होगा और जिसके सामने यज्ञ-कुंड होगा। इस विशाल ख़ेमे के दायें-बायें दो और ऐसे ही विशाल ख़ेमे आमने-सामने लगाये जा रहे हैं, जिनमें बैठकर निमंत्रित सज्जन यज्ञ को देखेंगे। ग़र्ज़े कि चारों ओर एक विचित्र हलचल मची हुई है और सैकड़ों चाकर और मज़दूर काम कर रहे हैं।

बैठा हुआ बाग़ के इन्हीं मज़दूरों में अभागा सुक्खू भी एक कोने में ज़मीन साफ़ कर रहा है। कुछ समय हुआ कि मंगलसिंह इसे भवानीप्रसाद के पास ले गया था। उन्होंने कुछ नहीं सुना। कहने लगे कि 'सुबह से दस आदमी मेरे पास ऐसे ही क़िस्से लेकर आ चुके हैं, मैं कुछ नहीं सुनूंगा। जिसे कहना हो, ख़ुद सरकार से कहे। देखो शिवमंगलसिंह सबसे कह दो कि अगर अब कोई सिपाई किसी को मेरे पास लाया, तो उसे मौक़ूफ़ कर दूँगा। इन छोटी क़ौमों ने तो ग़ज़ब में जान डाल दी है। न ख़ुद काम करते हैं, और न करने देते हैं; और तुम लोग ऐसे हो कि तुम लोगों से दस आदमियों से काम नहीं लिया जाता।'

मंगलसिंह वहां से गालियां देता हुआ सुक्खू को वापिस लाया। शामियाने और क़नात के बीच की ज़मीन इसे साफ़ करने को दी और कह गया कि यदि अब तूने कुछ अनमन की तो तेरी हड्डियां चूर कर दूंगा।

अभागा सुक्खू काम कर रहा है, और आँसू उसकी आँखों से बहते जाते हैं। उसने सोच लिया है कि सरकार को वह स्वयं अपना हाल सुनावेगा। इसीलिए उसकी निगाह बार-बार कोठी के बरामदे की ओर जा रही है। दिन चढ़ता जाता है, कभी-कभी सुक्खू क़नात के पीछे अपनी झोंपड़ी के सामने आकर खड़ा हो जाता है। अपने बच्चे के कराहने और तड़प-तड़प कर 'दादा' 'दादा' पुकारने की आवाज़ उसके कानों में आती है। परन्तु क्या करे? उसका हृदय विदीर्ण, शरीर अशक्त और चित्त अस्थिर है। ऐसा मालूम होता है कि मानों कुछ ही समय में अचेत होकर गिर पड़ेगा।

दस बजने के कुछ समय बाद पंडित चंद्रिकाप्रसाद कुछ पंडितों ही से बातें करते हुए, बरामदे में उसे दिखाई दिये। दरख़्तों की आड़ लेता हुआ सुक्खू बरामदे के सामने आया और सीढ़ियों पर चढ़ कर घुटने के बल बैठ माथा ज़मीन पर टेक दिया। पंडित चंद्रिकाप्रसाद ने पूछा—"हैं! यह कौन है?" भवानीप्रसाद ने पूछा—"अरे! तू कौन है? जो कुछ कहना हो सीधी तरह से खड़े हो कर कह।"

सुक्खू खड़ा हो गया और कंपित स्वर में बोला—"हुज़ूर! मेरे यहां दो प्राणी बीमार हैं। बड़ी विपत में हूँ। आज माफ़ कर दीजिए, बड़ा धरम होगा।

चंद्रिकाप्रसादजी ने पूछा—"यह क्या कहता है?"

भवानीप्रसाद ने कहा—"अब मैंने इसे पहचान लिया। हुज़ूर बात यह है कि जो बेगारी गाँव से बुलाये गये हैं, उन्होंने बड़ा सिर उठाया है! सुबह से दम मारना दुश्वार कर दिया है। क्षण-क्षण में एक न एक आता है और लम्बी-चौड़ी रामकहानी सुनाने लगता है। असल मतलब यह है कि हमें जाने दीजिए, हमसे बेगार नहीं हो सकती। इसकी ढिठाई देखिए, सुबह मेरे पास आया था, मैंने समझा दिया था, अब मेरी शिकायत हुज़ूर के पास करने आया है।"

पंडित चंद्रिकाप्रसाद ने कहा—"हां! यह बात है? मैं नहीं था, इसीलिए ये इतने सिर पर चढ़ गये हैं। अब

मैं आ गया हूँ, इनमें से एक-एक की चमरंग निकालूंगा। कोई है? इसको फ़ौरन यहां से निकाल दो; और आज क्या, यह कल भी घर न जाने पाये।"

मंगलसिंह ने सुक्खू को बरामदे पर चढ़ते देख लिया था। पीछे से आकर खम्भे की आड़ में खड़ा ख़ून के घूंट पी रहा था और सोच रहा था कि अन्त में यह आफ़त मेरे ही सिर आयेगी। यह हुक्म पाते ही बाज़ की तरह झपटा। सुक्खू को एक थप्पड़ मारा और गर्दन पकड़ कर सीढ़ियों की तरफ़ फेंक दिया।

सुक्खू के शरीर को तीन दिन के उपवास ने सर्वथा अशक्त कर दिया था। मंगलसिंह के धक्के से अपने आपको सम्हाल न सका। सीढ़ियों पर लुड़खुड़ाया। सम्हलते सम्हलते कोने की दीवार पर गिरा और वहाँ से सिर के बल पत्थरों के फ़र्श पर नीचे आ पड़ा। उठने की कोशिश की, परन्तु अपने आपको उठा न सका।

मंगलसिंह ने कहा —"हुज़ूर, देखिए, क्या मक्कर कर रहा है। छूते ही कैसा भरभरा पड़ा।

पंडित चंद्रिकाप्रसाद ने कहा—"मैं तुम्हारा या उसका मक्कर नहीं देखना चाहता। जाओ यहाँ से, तुम भी दूर हो और उसे भी दूर करो।"

सुक्खू बेचारे को दो आदमियों ने खींच-खांच कर क़नात के पास एक बड़े आम के वृक्ष की छाया में लाकर डाल दिया। पंडित चंद्रिकाप्रसाद शास्त्रियों को साथ ले कर उन कमरों में चले गये जहाँ दान-सामग्री रक्खी हुई थी। कहीं सैकड़ों लाल-पीले पीतांबर सजे हुए थे। कहीं सैकड़ों खड़ाउओं के जोड़े, सूती कपड़ों के पचासों थान, रेशमी वस्त्रों के बंडल के बंडल इधर-उधर दिखाई पड़ते थे। किसी कमरे में सूखे मेवों के बोरे भरे पड़े थे, कहीं बर्तनों के ढेर थे, कहीं चांदी की थालियां और अन्य-अन्य पदार्थ सजे हुए थे। ग़र्ज़ कि इतना सामान था कि देख के होश दंग रह जाता था।

(३)

सुक्खू अकेला अचेत आम के वृक्ष की छाया में पड़ा है। कोई उसकी ख़बर लेने वाला नहीं। आस-पास से गुज़रने वाले उसे देखकर तरह-तरह की बातें करते हैं। कोई कहता है कि खूब स्वांग रचा है। कोई कहता है कि नहीं, बेचारे को चोट आ गई है। कोई कहता है कि भय्या, ग़रीबी जो न करवाये वह थोड़ा। बेगार करो और ठोकरें खाओ। न्याय यही है। दया-धरम संसार से उठ गया, अब ग़रीब का कोई नहीं। सुक्खू के गाँव वाले उसे देख कर बहुत दुःखी हैं। वे जानते हैं कि इसका पुत्र और स्त्री दोनों मृत्यु-शय्या पर पड़े हैं। कोई उन्हें देखने वाला नहीं। परन्तु, क्या करें, बे-बस हैं। काम करते जाते हैं और एक दूसरे से कहते जाते हैं कि भय्या, अब ठिकाना नहीं। अब कोई दूसरा देश देखो। दूसरा कहता है—भय्या, जब अपना विधाता ही हमसे फिर गया है, तो कहां जाओगे? जहाँ जाओगे, अपना दुर्भाग्य साथ जायगा।

इसी प्रकार बारह का समय हुआ। मज़दूरों को खाने की छुट्टी मिली। सुक्खू के गाँव वालों ने उसके पास आकर उसे उठाने की कोशिश की। परन्तु, उसने आँख न खोली। यह देखकर कि उसकी हालत बहुत ख़राब है, वे बाबू भवानीप्रसाद के पास गये और सब हाल बताया। उन्होंने कहा कि गिर पड़ा है, चोट आगई होगी। गर्म दूध ले जाकर पिला दो और जहाँ चोट लगी हो गर्म तैल की मालिश कर दो, अच्छा हो जायगा।

दूध आया। सुक्खू के गले से चन्द ही घूंट दूध के उतरे होंगें कि उसने आँखें खोल दीं और दो-चार घूंट पीने के बाद उसको बिलकुल होश आ गया। इन लोगों को पहचान कर कहने लगा, "भय्या, एक काम कर दो, बड़ा धर्म होगा। यह दूध जो मुझे पिला रहे हो, इस क़नात के पीछे जाकर आधा मेरे बच्चे और आधा मेरी स्त्री को पिला दो। नहीं मालूम भूख से उनका क्या हाल होगा। सोचते होंगे, मैं शाम को उनके लिये दाना लाऊँगा। परन्तु अब मैं कहां और दाना कहाँ? अगर आज भी वे भूखे रहे तो उनके लिये यह रात मौत की रात हो जायगी।"

यह कह कर सुक्खू ने एक गहरी ठण्डी सांस ली।

इन लोगों ने उसे समझाया कि नहीं सुक्खू, तुम्हारा बच्चा और तुम्हारी स्त्री अच्छे हैं। हम दूध उन्हें और पिला देंगें, तुम इसे पीलो, फिर ज़रा हाथ-पाँव हिलाओ, जिससे शरीर कुछ खुल जाय।

सुक्खू ने कहा, "भय्या, मेरे हाथ-पाँव में कुछ नहीं हुआ है। मालूम पड़ता है कि मेरी बाईं पसलियां टूट गईं। अब इस जीवन में मेरा उठना कठिन है। शरीर ने बिल्कुल जवाब दे दिया, छाती की पीड़ा से मेरी जान निकल रही है। मैं अब न बचूंगा। बस, इतना धर्म करो, दूध मेरे बच्चे को पिला दो, ईश्वर तुम्हारा भला करेगा। यह कह कर सुक्खू ने दाँत भींच लिये और आँखें बन्द कर लीं।

मज़दूर बिचारों ने थोड़ी देर और कोशिश की। उनकी छुट्टी का समय ख़त्म हो गया और वे फिर काम में लग गये। शाम होते-होते सारा काम ख़त्म हो गया। अब बाग़ तैयार है। कल से बड़ी धूम-धाम से इसमें यज्ञ शुरू हो सकता है।

(४)

नौ-दस बजे का समय है। कोठी के सामने वाला बाग़ आज एक नई दुल्हन के समान सजा हुआ है। नाना प्रकार के बन्दनवार चारों ओर लटक रहे हैं। रंग-बिरंग के अनगिनती परदे शामियानों में चारों ओर पवन के साथ अठखेलियां कर रहे हैं। बाग़ में फूलों के पौदे तो नहीं हैं, परन्तु उनके स्थान पर लाल और पीले पीताम्बर पहने, रेशमी और ऊनी रंग-बिरंगी चादरें शरीर पर डाले शास्त्री, वेदपाठी, पंडित, आचार्य आदि गौरव के साथ इधर-उधर भ्रमण कर रहे हैं। रईसों के समूह के समूह इस पवित्र अवसर में सम्मिलित होने को अपना सौभाग्य समझ कर आनन्द-पूर्वक चारों ओर बिराजमान हैं। इन शामियानों के मध्य में एक महान् अग्नि-कुण्ड है। समस्त हवन-सामग्रियां इस कुण्ड के चारों ओर फैली हुई हैं। घी पानी के समान अन्य सुगंधित पदार्थों के साथ अग्नि-देव पर अर्पण हो रहा है। एक विचित्र सुगन्ध चारों ओर फैलती हुई आकाश की ओर जा रही है। वह सुगन्ध अवश्य उन अदृश्य आकाश-निवासी देवगण को सुख और मधुमय बना रही होगी, जिनकी प्रसन्नता और तृप्ति के निमित्त यह महान् यज्ञ रचा गया है। इस मनमोहक सुगन्ध के साथ-साथ बीच के शामियाने से उठते हुए वेदपाठ के शुद्ध तीव्र और अलौकिक स्वर चारों ओर फैल रहे हैं। ऐसा जान पड़ता है कि पं० चन्द्रिकाप्रसाद की कोठी आज के दिन स्वर्ग का एक साक्षात् भाग बन गई है।

परन्तु क़नात के पास खड़े होकर दूसरी ओर देखने वाले को एक दूसरा ही दृश्य दिखाई देता है। आठ दस टूटी-फूटी उजाड़ झोंपड़ियां, संकीर्ण, दरिद्र, श्री-हीन, ऐसी हैं, जो मानव तो क्या पशु-निवास के भी योग्य नहीं। मानव-जन के दुःख और पतन के इन स्मारकों में से यज्ञ-कुण्ड से उठने वाली सुगन्ध के स्थान पर घोर दरिद्रता की इन सामग्रियों से उत्पन्न होने वाली असहनीय दुर्गन्ध चारों ओर फैलती हुई आकाश की ओर जा रही है। वेदपाठ की अलौकिक ध्वनि के स्थान पर यहाँ एक और ही करुण गान सुनाई पड़ता है। सामने वाली झोंपड़ियों से उन बिलखते हुए रोगियों के कराहने की आवाज़ें आ रही हैं, जिनका संसार में कोई देखने वाला, कोई दवा करने वाला नहीं। और वह आवाज़ें वेद-गान के साथ सम्मिलित हो कर आकाश की ओर जा रही हैं। मालूम नहीं कि वहाँ पहुँच कर उपस्थित देवगण के हृदयों पर इन करुण स्वरों का वेद-विजय-गान से मिश्रित होना क्या प्रभाव डाल रहा होगा! परन्तु इतना निश्चय है कि इस महान् यज्ञ में भाग लेने वाली धनाढ्य और विदुषी धर्म-मूर्तियाँ न इन करुण और पीड़ा-पूर्ण स्वरों को सुन सकती हैं, न उनके हृदयों पर इनका कोई विशेष प्रभाव पड़ सकता है।

सामने वाली झोंपड़ी में से आने वाली कराहने की आवाज़ें बन्द हो गईं। एक स्त्री सूखी, दुःखी, रोगी, दीवार का सहारा लेती हुई बाहर आई। परन्तु आगे न जा सकी। दर्वाजे पर ही बेहोश हो कर गिर पड़ी। वह बुधुवा की माता है। सुखिया की झोंपड़ी में से रोने की आवाज़ें आईं और एक स्त्री घबराई हुई बाहर आई। सुक्खू की स्त्री को दर्वाज़े पर पड़ी देख वह झोंपड़ी में अन्दर गई और क्षण भर में चीख़ मार के, कि 'हाय! इन दोनों का भी देहान्त हो गया', बदहवास झोंपड़ी से निकल गाँव की ओर भागी।

कुछ ही समय में इन झोंपड़ियों में बीस-तीस पुरुष जमा हो गये और एक-दूसरे से मिलकर तीव्र और विकराल स्वरों में विलाप करने लगे कि वेदपाठी पण्डितों और उनके साथियों की दत्तचित्तता भंग हो गई और कुछ लोगों ने जाकर क़नात की दूसरी ओर के भयानक दृश्य को देखा। थोड़े ही समय में इस यज्ञभूमि में एक हलचल सी पड़ गई। वेद-पाठ बंद हो गया। यज्ञकर्ता पंडितों में शास्त्रार्थ होने लगा। कोई कहता था कि यज्ञ भंग हो गया। कोई

कहता था कि वेद-पाठ ऐसे स्थान पर करने का घोर पाप, जहां से वेद शब्द शूद्र और अछूतों के कान तक पहुंच सके, वेद-पाठी को नहीं, पाठ कराने वाले को लगता है। कोई कहता था कि यज्ञशाला के सौ गज़ के भीतर किसी लाश का होना, विशेष कर जब वह लाश एक अछूत की हो, समस्त यज्ञ को भ्रष्ट कर देता है।

पंडित चन्द्रिकाप्रसाद के क्रोध की कोई सीमा न थी। उन्होंने हुक्म दिया कि क़नात के सौ गज़ के अन्दर यदि कोई रोवे तो उसका सिर तोड़ दो। औरत-मर्द किसी का कोई ख़याल मत करो। सुक्खू, उसके बालक और स्त्री और सुखिया के पति की लाशें सब गाँव की दूसरी ओर बाग़ के किसी दरख़्त के नीचे डलवा दो। वहीं जिसे रोना-पीटना हो रोये-पीटे। इन सब झोंपड़ियों को फ़ौरन ख़ाली करवा कर सब रहने वालों को उसी बाग़ में भेज दिया जाय। झोंपड़ियां गिराकर जगह बराबर कर दी जाय और बीस गङ्गा-जल के सागर वहां बहाये जायँ। जब तक यह सब हो, यज्ञ बन्द रहे।

थोड़े ही अवसर में चन्द्रिकाप्रसादजी को एक शुभ सूचना सुनाई गई कि उनके हुक्म पूरे कर दिये गये। उन्होंने अब हुक्म दिया कि यज्ञशाला से दो-दो सौ गज़ पर चारों ओर सिपाही खड़े कर दिये जायें, जिसमें कोई छोटी जाति वाला इधर न आ सके। इस अरसे में भवानीप्रसाद ने प्रधान शास्त्रियों को वशीभूत मंत्र द्वारा अपने बस में कर लिया था, वे पंडित चन्द्रिकाप्रसाद के पास आये और यह राय प्रकट की कि अकस्मात् कोई आपत्ति पड़ जाने से यज्ञ भङ्ग नहीं होता, उस आपत्ति को हटाकर यज्ञ फिर आरम्भ किया जाना शास्त्रोक्त है। इसके बाद यज्ञ की धूमधाम फिर शुरू हो गई।

अभी सूर्य उदय नहीं हुआ है। यज्ञ-भूमि में चारों ओर से हर-हर शिव-शिव सीताराम और राधेकृष्ण की सदायें उठ रही हैं। परन्तु अचानक दूर से धीमे कम्पित स्वरों में "राम नाम सत्त है, यही सब की गत्त है" की व्याकुल कर देने वाली ध्वनि भी आ-आकर इनमें मिलने लगी। पंडित चन्द्रिकाप्रसाद ने इस ध्वनि को सुना और पूछा कि यह कौन लोग हैं? मालूम हुआ कि फ़ीरोज़पुर के चमारों की अर्थी स्मशान को जा जारही है। पंडित चन्द्रिकाप्रसादजी गुस्से से कांप उठे। कहने लगे कि स्मशान जाने का रास्ता भी मेरे सिर पर ही से होकर मुक़र्रिर किया है? तुम लोग अन्धे और नमकहराम हो। मुझे सब इन्तज़ाम अब ख़ुद ही करना होगा। नौकर बेचारे डर से ख़ामोश हो रहे। परन्तु इस ख़ामोशी में अर्थी इनके इस क्रोध और इन बातों का धीमे और कम्पित स्वरों में बार-बार यह जवाब देती हुई चली गई—"राम नाम सत्त है, यही सबों की गत्त है। बाक़ी सब असत्त है, राम नाम सत्त है।"

उमा नेहरू

वीर-जननी राजस्थान

यदि संसार में ऐसी कोई वीर-जननी वीर-भूमि है, जहाँ की चप्पा-चप्पा ज़मीन वीरता की सरगुज़िश्त हो और जहाँ जगह-जगह वीरों के कारनामों से पवित्र और अमर बनी हुई नदियाँ और उपत्यकायें वीरों के शहीद होने की गवाही देती हों, तो वह हमारी ही जननी-जन्म-भूमि, भारतवर्ष का गौरव, राजस्थान है। स्पार्टा वालों की बहादुरी, रोमन लोगों की वीरता, तुर्कों की निडरता, वीर-जननी राजस्थान के सन्मुख कोई वक़अत नहीं रखती। यदि स्वाधीनता के साक्षात् अवतार के चरण-कमल की पवित्र रज कहीं मिल सकती है तो वह हमारी गौरव-स्थापिनी मेवाड़-भूमि ही है। भारतवर्ष का चमचमाता हुआ सूर्य, महाराणा प्रताप, जिसने संसार को दिखला दिया कि स्वाधीनता के मुक़ाबले में राज-पाट, धन-दौलत, महलों के ऐशो आराम की कोई क़ीमत नहीं—वह स्वाभिमान की प्रति-मूर्ति राणा प्रताप, जिसको अपने ज़िगर के टुकड़े, महलों में पले हुए राजकुमार और राजकुमारी का कांटेदार जंगलों और नुकीले पत्थरों के बीच मारे-मारे फिरने और भूख-प्यास से बिलखते हुए देखने का हृदय-विदारक दृश्य भी विदेशियों के सामने शिर झुकाने पर मजबूर न कर सका, इसी वीर-जननी मेवाड़-भूमि की पवित्र गोद में खेला था। यही वह भूमि है

जहाँ आत्म-सम्मान की प्रति-मूर्ति बाँके अमरसिंह राठौड़ ने संसार को बता दिया कि राजस्थान के वीरों का खून मौत के डर से भी अपमान सहन नहीं कर सकता। इसी वीर-भूमि की राजपूती कटार में वह तेज था, जिसके कारण वह सलाबत जैसे आततायियों का शिर धड़ से अलग करने में ज़रा भी नहीं हिचकिचाई। आह! इस भूमि के जल में वह तासीर थी कि इसके छोटे-छोटे बालक भी देश पर मरना अहोभाग्य समझते थे। इसीकी वायु में वह तेज था कि जिसने बारह वर्ष के बादल और सोलह वर्ष के फत्ते में वह निर्भीकता पैदा कर दी कि देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए वे अपने प्राणों की आहुति दे देने में ज़रा भी न झिझके। इसी भूमि के अन्न में वह मादकता थी, जो खाने वालों को देश के मद में मतवाला बना देती थी।

अपनी जन्म-भूमि के नाम का भी अनादर न सहने का अद्वितीय गौरव इसी वीर-भूमि को प्राप्त है। उदयपुर के महाराणा ने शपथ ली कि यदि भोजन करूँगा तो बूँदी को फ़तह करके करूँगा। मेवाड़ से दूरस्थ बूँदी को फतह करना कोई आसान काम न था। सरदारों ने राणा को समझाया कि इसका मतलब तो आत्म-हत्या करना होगा। सरदारों की मंत्रणानुसार तय हुआ कि नक़ली बूँदी को फ़तह कर राणा अपनी प्रतिज्ञा पूरी करें। राणा की फ़ौज में कुछ बूँदी के हाड़े राजपूत भी थे। उनसे अपनी मातृ-भूमि का अपमान न सहा गया और उन्होंने वही कर दिखलाया, जो कि राजस्थान के गौरव के योग्य था। मेवाड़ के बहुसंख्यक राजपूतों के बीच, अल्प-संख्यक बूँदी के हाड़े मर मिटे। किसपर ? बूँदी के नाम पर ! धन्य राजस्थान, धन्य !!

राजस्थान ही वह भूमि है, जिसकी गोद में भामाशाह जैसे उदार त्यागी खेले हैं। सचमुच वीर-जननी, तू धन्य है ! तेरी गोद के लालों ने संसार में भारतवर्ष का नाम उज्ज्वल कर दिया। काश्मीर से लेकर रासकुमारी तक सारा भारत तेरे सुपुत्रों पर फ़ख्र करता है। तेरी ही छाती पर बप्पा रावल जैसे वीर खेले हैं, जिन्होंने सूर्य-वंशी प्रतापी झंडा न केवल भारतवर्ष ही में प्रत्युत् अफ़ग़ानिस्तान, बिलोचिस्तान और खुरासान तक लहराया। तेरे यशवन्तसिंह जैसे बाँके वीरों ने क़ाबुल के खूँख़ार पठानों को भी अपनी तलवार की शक्ति से सीधा बना दिया। तेरे पुत्र उदारता में अपनी नज़ीर आप ही थे; जो उनकी शरण में आया, आख़िर दम तक रक्षा की। यदि संसार के किसी देश को यह फ़ख्र हो सकता है कि उसके वीर पुत्रों ने ताज छीन कर बख़्श दिये, तो वह महाराणा राजसिंह जैसे तेरे ही सुपुत्रों के बदौलत् राजस्थान को प्राप्त है। तेरे लालों ने धर्म और देश के लिए बार-बार अपना गर्म खून चढ़ा कर हिन्दू-क़ौम की रगों में हरारत पैदा की—मेवाड़ के राणा कई पीढ़ियों तक केवल एक धर्मस्थान गया की रक्षा में एक दूसरे के बाद प्राणों की आहुतियाँ चढ़ाते रहे। सचमुच वीर-जननी माँ ! यदि तू दुर्गादास, राजसिंह, जयपुर के रामसिंह आदि वीरों का प्रसव न करती तो शायद ही भारतवर्ष में औरंगज़ेब ऐसे बादशाहों के होते हुए एक भी हिन्दू नज़र आता।

ओ राजस्थान! तेरे पुत्र ही नहीं प्रत्युत् पुत्रियाँ भी, देश व धर्म-रक्षार्थ, सदैव तत्पर रही हैं। तेरी पुत्री पद्मिनी, ताराबाई में वह शक्ति थी कि शत्रुओं के छक्के छुटा सकती थीं। तेरी पुत्रियाँ अपने बेटों और पतियों को प्रसन्नता-पूर्वक रणक्षेत्र में बलिदान के लिए भेज सकती थीं। फत्ते की माता कर्णवती भी तेरी ही पुत्री थी, जिसने पुत्र की ज़रासी कमज़ोरी को देख कर स्वयं पुत्र-वधू सहित रणक्षेत्र में जा प्राण विसर्जन कर दिये। तेरी पुत्रियों ने सतीत्व-रक्षार्थ जो-जो उदाहरण संसार के सामने पेश किये, वे तो समस्त स्त्री-

जाति के लिए एक अभिमान की वस्तु हैं। क्या राजस्थान की वीरपुत्रियों से अधिक ज्वलन्त उदाहरण सारे संसार के इतिहास का कोई पृष्ठ दे सकता है? तेरी पुत्रियाँ एक बार नहीं, अनेक बार सतीत्व-रक्षार्थ जलते हुए आग के शोलों में हज़ारों की संख्या में कूद पड़ीं। सचमुच भारत की वीरता का इतिहास तेरा ही इतिहास हैं। किन्तु, जननी! आज तेरे पुत्र व पुत्रियों के कारनामे केवल इतिहास के पृष्ठों की ही रौनक़ रह गये। तेरी वर्त्तमान दशा को देखकर हृदय विदीर्ण होता है। आज वीरों की जगह कायर और बुज़दिलों ने ले ली। दुर्गादास जैसे वीर, जिनको धन और राज-पाट का लालच भी अपने कर्त्तव्य से च्युत न कर सका था, आज दिखाई नहीं पड़ते; उनकी जगह ख़ुशामदी और चापलूस तेरे पुत्रों की कीर्त्ति पर कलंक लगाने के लिए पैदा हो गये हैं। दुर्गावती जैसी पवित्र देवियों का स्थान, जिसने अपना हाथ एक ग़ैर आदमी के स्पर्श होने के कारण काट कर फेंक दिया था, आज ख़ाली सा मालूम देता है। जहाँ कभी तेरे पुत्र आदर के पात्र थे, आज घृणा के केन्द्र बने हुए हैं। यदि स्वेच्छाचार, चापलूसी, स्वार्थ आदि दुर्गुण तेरे पुत्रों में इसी तरह बढ़ते गये तो वह दिन दूर नहीं कि जब उन पूर्वजों की कीर्ति पर पानी फिर जायगा। अब केवल आवाहन है उन पुत्रों का, जिनके दिल में तेरे लिए कुछ दर्द हो, कुछ जोश हो, और हो उनमें अतुल पराक्रम। तभी तेरी पूर्व-संचित कीर्ति स्थिर रह सकती है; अन्यथा नहीं। भगवन्! तू शीघ्र ही ऐसे पुत्रों को फिर राजस्थान में भेज।

शिवनारायण तोसनीवाल देशनोक

"हे परमात्मा के भक्तो! सब्र करो, शान्ति रक्खो, दूसरों से शान्ति में बढ़ जाओ, अपने निश्चय पर दृढ़ रहो और परमात्मा का ध्यान रक्खो। बस, यही सुख का मार्ग है।"—कुरान

सिद्धि-योग

संग्राम में विजय पाना सेना के गुण, योग्यता और नियम-पालन पर बहुत-कुछ अवलंबित रहता है। उसी प्रकार देशोद्धार का कार्य देशसेवकों के गुण, बल, योग्यता और नियम-पालन के बिना प्रायः असम्भव है। असहयोग-आन्दोलन के छिन्न-भिन्न हो जाने का एक मुख्य कारण यह भी है कि हम देश-सेवक कहलाने वाले सब तरह सुयोग्य न थे। केवल व्याख्यान दे लेने, लेख लिख लेने, अथवा सुन्दर कविता निर्माण कर लेने से कोई देश-सेवक की पदवी नहीं पा सकता। ये भी देश-सेवा के साधन हैं; पर ये लोगों के दिलों को तैयार करने भर में सहायक हो सकते हैं, संगठन और सैन्य अथवा राष्ट्र-सञ्चालन में नहीं। अतएव यह आवश्यक है कि हम जान लें कि एक देश-सेवक की हैसियत से हमें किन-किन गुणों के प्राप्त करने की, किन-किन नियमों के पालन करने की आवश्यकता है और फिर उसके अनुसार अपने-अपने जीवन को बनावें।

(१) देश-सेवक में पहला गुण होना चाहिए सचाई और लगन। यदि यह नहीं है, तो और अनेक गुणों के होते हुए भी मनुष्य किसी सेवा-कार्य में सफल नहीं हो सकता। मक्कारी और छल-प्रपञ्च के लिए देश या समाज या धर्म-सेवा में जगह नहीं।

(२) दूसरे की बुराइयों को वह पीछे देखे पर अपनी बुराइयाँ और त्रुटियाँ उसे पहले देखनी चाहिएँ। इससे वह ख़ुद ऊंचा उठेगा और दूसरों का भी स्त... संपादन करता हुआ उन्हें ऊंचा उठा सकेगा।

(३) तीसरी बात होनी चाहिए नम्रता और निरभिमानता। जो अपने दोष देखता रहता है वह स्वभावतः ही नम्र होता है, और जो कर्तव्य-भाव से...

सेवा करता है उसे अभिमान छू नहीं सकता । उद्धतता, अहम्मन्यता और बड़प्पन की चाह—ये देश-सेवक के रास्ते में जहरीले काँटे हैं। इनसे उन्हें सर्वदा बचना चाहिए ।

(४) देश-सेवक निर्भय और निश्चयशील होना चाहिए। सत्यवादी और स्पष्टवक्ता सदा निर्भय रहता है। ये गुण उसें अनेक आपदाओं से अपने आप बचा लेते हैं।

(५) मित और मधुर-भाषी होना चाहिए । मितभाषिता नम्रता और विचार-शीलता का चिह्न है और मधुरता दूसरे के दिल को न दुखाने की सहृदयता है। मधुरता की जड़ जिह्वा नहीं, हृदय होना चाहिए। जिह्वा की मधुरता कपट का चिह्न है; हृदय की मधुरता प्रेम, दया और सौजन्य का लक्षण है । भाषा की कटुता और तीखापन या तो अभिमान का सूचक होता है या अधीरता का । अभिमान स्वयं व्यक्ति को गिराता है; अधीरता उसके काम को धक्का पहुँचाती है।

(६) दुःख में सदा आगे और सुख में सबसे पीछे रहना चाहिए। यश अपने साथियों को बाँटे और अपयश का जिम्मेवार अपनेको समझने की प्रवृत्ति रहे।

(७) द्वेष और स्वार्थ से दूर रहना चाहिए। अपने योग्य साथियों को हमेशा आगे बढ़ने का अवसर देना, उन्हें उत्साहित करना और उनकी बताई अपनी भूल को नम्रता के साथ मान लेना द्वेष-हीनता की कसौटी होती है। अपने जिम्मे की संस्था या धन-संपत्ति को या पद को एक मिनट के नोटिस पर अपने से योग्य व्यक्तियों को सौंप देने की तैयारी रखना निःस्वार्थता की कसौटी है।

(८) सादगी से रहना, कम से कम खर्च में अपना काम चलाना, और अपना निजी बोझ औरों पर न डालना चाहिए। सादगी की कसौटी यह है कि अन्न वस्त्र आदि का सेवन शरीर की रक्षा के हेतु किया जाय, स्वाद और शोभा के लिए नहीं। सेवक के जीवन में कोई काम शोभा, श्रृंगार के लिए नहीं होता, केवल आवश्यकता के लिए होता है। खर्च-वर्च की कसौटी यह है कि आराम पाने या पैसा जमा करने की प्रवृत्ति न हो।

(९) जो सेवक धनी-मानी लोगों के संपर्क में आते रहते हैं या उनके स्नेह-पात्र हैं उन्हें इतनी बातों के लिए खास तौर पर सावधान रहना चाहिए—

(अ) बिना प्रयोजन उनके पास बैठना और बात-चीत न करना चाहिए।

(आ) अपने खर्च का बोझ उनपर डालने की इच्छा न पैदा होनी चाहिए—हुई तो उसे दबाना चाहिए।

(इ) वे चाहें तो भी बिना काम उनके साथ फर्स्ट या सेकंड क्लास में सफर न करना चाहिए।

(ई) उनके नौकर-चाकर, सवारी आदि पर अपने काम का बोझ न पड़ने देने की सावधानी रखनी चाहिए।

(उ) मान-पान की इच्छा न रखनी चाहिए—उसका अधिकारी अपनेको मान लेना तो भारी भूल होगी।

(ऊ) उनके धनैश्वर्य में अपनी सादगी और सेवक के गौरव को न भुला देना चाहिए।

(ए) थोड़े में यों कहें कि अपने सार्वजनिक कामों में सहायता प्राप्त करने के अतिरिक्त अपना निजी बोझ उनपर किसी रूप में न पड़ जाय इसकी पूरी खबरदारी रखनी चाहिए। यदि उनके यहाँ किसी प्रकार की असुविधा या कष्ट हो तो उसका प्रबंध स्वयं कर लेना चाहिए—इसकी शिकायत उनसे न करनी चाहिए।

(१०) अपने ख़र्च-वर्च का पाई-पाई का हिसाब रखना और देना चाहिए। अपने कार्य की डायरी रखना चाहिए।

(११) घरू काम से अधिक चिन्ता सार्वजनिक काम की रखनी चाहिए। एक-एक मिनट और एक-एक पैसा खोते हुए दर्द होना चाहिए। ख़र्च-वर्च में अपने और साथियों के सुख-साधन की अपेक्षा कार्य की सुविधा और सिद्धि का ही विचार रखना चाहिए। सार्वजनिक सेवा सुख चाहने वालों के नसीब में नहीं हुआ करती, इसके गौरव के भागी तो वही लोग हो सकते हैं जो कष्टों और असुविधाओं को झेलने में आनन्द मानते हों, विघ्नों और कठिनाइयों का प्रसन्नता-पूर्वक स्वागत और मुक़ाबला करते हैं। सेवक का कार्य उसके कष्ट-सहन और तप के बल पर फूलता-फलता है। सेवक ने जहाँ सुख की इच्छा की नहीं कि उसका पतन हुआ नहीं। सेवक दूध, फल और मिष्टान्न खाकर नहीं जीता है—कार्य की धुन, सेवा का नशा उसकी जीवनी-शक्ति है।

(१२) व्यवहार-कुशल बनने की अपेक्षा सेवक साधु बनने की अधिक चेष्टा करे। साधु बनने वाले को व्यवहार-कुशल बनने के लिए अलहदा प्रयत्न नहीं करना पड़ता। व्यवहार-कुशलता अपनेको साधुता के चरणों पर चढ़ा देती है। व्यवहार-कुशलता जिस भय से डरती रहती है वह साधुता के पास आकर उसका सहायक बन जाता है। मनुष्य का दूसरा नाम है साधु। सेवक और साधु एक ही चीज़ के दो रूप हैं। अतएव यदि एक ही शब्द में देश-सेवक के गुण, योग्यता और नियम बताना चाहें तो कह सकते हैं कि साधु बनो। साधुता का उदय अपने अन्दर करो, साधु की सी दिनचर्या रक्खो। अन्न पर नहीं, भावों पर जिओ। स्वीकृत कार्य के लिए तपो। विघ्नों, विपत्तियों, कठिनाइयों, मोहों और स्वार्थों से लड़ने में जो तप होता है वह पंचाग्नि से बढ़कर और उच्च है। अतएव प्रत्येक देश-सेवक से मैं कहना चाहता हूँ कि यदि तुम्हें सचमुच सेवा से प्रेम है, सेवा की चाह है, अपनी सेवा का सुफल संसार के लिए देखना चाहते हो, और जल्दी चाहते हो, तो साधु बनो, तप करो। दुनिया में कोई काम ऐसा नहीं जो साधु के लिए असंभव हो, जो तप से सिद्ध न हो सके। अपने जीवन को उच्च और पवित्र बनाना साधुता है और अंगीकृत कार्यों के लिए विपत्तियाँ सहना तप है। इन दो बातों का संयोग होने पर दुनिया में कौन सी बात असंभव हो सकती है?

हरिभाऊ उपाध्याय

हमारी कमज़ोरी

भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीन काल से हिन्दू जाति निवास कर रही है। हिन्दुओं से पूर्व यहाँ कोई जाति निवास करती थी या नहीं, इस विषय में इतिहास हमें कोई बात निश्चित रूप से नहीं बताता। जहाँतक खोज की गई है, उससे यह प्रतीत होता है कि बहुत प्राचीन काल से आर्य लोग यहाँ रहते आये हैं और ८००-९०० वर्ष पूर्व तक भारत में इनका अखण्ड राज्य और सत्ता स्थिर रही। हज़ारों वर्षों तक अपनी ताक़त को क़ायम रखने के बाद हिन्दुओं का ह्रास प्रारम्भ हुआ; और न सिर्फ उनका राज्य ही क्षीण होने लगा, बल्कि उनकी सामाजिक अवनति भी होने लगी तथा उनके धर्म और संस्कृति पर भी हमले शुरू होगये। इतना होने पर भी हिन्दू सात-आठ सौ वर्ष तक इस देश में विदेशी जातियों का अच्छी तरह मुक़ाबला करते रहे। किसी प्रान्त में विदेशियों ने अधिकार कर लिया, तो किसी में फिर हिन्दुओं ने अपना राज्य स्थापित कर लिया। इसी तरह

बहुत समय तक हमारा विदेशियों से यह संघर्ष चलता रहा। इस समय यद्यपि हिन्दुओं की राजकीय सत्ता बहुत क्षीण हो चुकी थी; तथापि विद्या, विज्ञान, कला-कौशल और व्यापार आदि में हिन्दू ही ऊँचे रहे। इन सब बातों में विदेशी हमारे से बढ़ न सके।

परन्तु अब सारी अवस्थायें बदल गई हैं। हिन्दुओं के हाथ से न सिर्फ़ राजकीय सत्ता जाती रही, बल्कि देश का कला-कौशल, व्यापार तथा व्यवसाय भी दूसरे लोगों के हाथ में चला गया। इस समय हमारे विरुद्ध जो हवा चल रही है और जो ताक़तें काम कर रही हैं, यदि वे इसी तरह काम करती रहीं, तो हिन्दू-जाति का अस्तित्व क़ायम रहना भी मुश्किल हो जायगा। इस समय इस गिरी हालत में भी हिन्दुओं की दिमाग़ी ताक़त किसी दूसरी जाति से कम नहीं है। हमारी आर्थिक स्थिति भी ऐसी अवहेलनीय नहीं है और हमारी संख्या भी पर्याप्त है। पर यह देखकर हमें दुःख होता है कि हमारी शारीरिक सजीवता बहुत क्षीण हो गई है और वह दिनों दिन गिरती जारही है, जिसके परिणाम-स्वरूप दूसरी जातियों के मुक़ाबले में इस सदा से चले आने वाले जीवन-संघर्ष में हम हारते ही चले जाते हैं।

किन्तु हमारी इस अवनति का कारण क्या है? यह एक महान् प्रश्न है, जिसपर हमें बहुत शीघ्र ही विचार करना चाहिए। यह ठीक है कि हमारे इस क्रमिक ह्रास का मूल कारण किसी एक प्रचलित रीति या बुराई को नहीं कहा जा सकता। ऐसी बहुत सी बातें हैं, जिन्हें इस अधोगति का कारण बताया जा सकता है। परन्तु प्रश्न तो यह है कि अधोगति की तरफ़ ले जाने वाले इतने कारण क्यों यहाँ आकर इकट्ठे हुए और जो हममें कुरीतियाँ प्रचलित हो गई उन्हें रोकने या दूर करने की शक्ति हममें क्यों न रही?

मनुष्य की शारीरिक और मानसिक क्रियाओं में स्फूर्ति देनेवाली शक्ति उसकी जीवन-शक्ति (Vitality) है। यह शक्ति मनुष्य के रुधिर की स्वच्छता और उत्तमता पर निर्भर है। जब रुधिर में बल होता है, तो मनुष्य की जीवन-शक्ति भी बढ़ती है और उसकी मानसिक और शारीरिक क्रियाओं में एक विशेष स्फूर्ति-प्रद गति पैदा होती है। जब रुधिर निर्बल और निश्चेष्ट होजाता है, तब मनुष्य की जीवन-शक्ति भी क्षीण होजाती है और मनुष्य उत्साह-हीन और निश्चेष्ट हो जाता है। रुधिर पर ही जीवन-शक्ति निर्भर है और इसलिए हमारी अधोगति का एक विशेष कारण हमारे रुधिर की कमज़ोरी है।

किसी जाति के रुधिर की ताक़त और कमज़ोरी के कारणों पर विचार कर एक परिणाम निकालना बहुत बड़ा और कठिन कार्य है, परन्तु हमें अनुभव से मालूम होता है कि जब तक हमारे रुधिर में बल रहा, तब तक हमारे हाथ में सत्ता रही और हम विदेशियों के आक्रमणों से सदा बचते रहे। इतना ही नहीं, हमने इस देश के बाहर जाकर भी अपना गौरव तथा अपनी सभ्यता फैलाई। परन्तु जबसे हमने जात-पाँत की प्रथा प्रचलित कर विशाल हिन्दू-जाति को हजारों टुकड़ों में विभक्त कर दिया और एक विभाग का दूसरे से सामाजिक सम्बन्ध तोड़ दिया तथा छोटे-छोटे सीमित घरों में विवाह करने शुरू किये, तबसे हमारा रुधिर भी निर्बल होगया और हमारी मानसिक तथा शारीरिक शक्तियों में शिथिलता आगई। हमारा उत्साह और हमारी क्रियाशीलता भी क्षीण होगई। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि दूसरे लोगों का प्रभाव हमपर बढ़ता गया और हममें विदेशियों के हमले को रोकने की ताक़त भी कम होती गई। अवस्थाओं के बदलने पर हममें अपनेको उनके अनुकूल बनाने और वैसा

कर अपनी प्राचीन स्थिति क़ायम रखने की ताक़त न रही। इसीसे हमारा ह्रास हुआ।

इसलिए सबसे अधिक महत्व का और सबसे पहला कार्य हमारे सामने है अपने रुधिर को फिर वैसा ही सबल और जीवन-प्रद बनाना। अपने रुधिर को फिर से सजीव बनाने तथा जीवन-शक्ति का संग्रह करने के लिए अपने स्वास्थ्य को अच्छा बनाना अत्यन्त आवश्यक है। स्वास्थ्य के लिए उत्तम अन्न तथा जल और पौष्टिक तथा विशुद्ध दूध और घी का होना बहुत ज़रूरी है; परन्तु, खेद की बात है कि, आज़ भारतवर्ष जैसे कृषि-प्रधान देश में अन्न, दूध और घी पर्याप्त मात्रा में और अच्छे नहीं मिलते। इसी तरह स्वास्थ्य के लिए शहरों की सफ़ाई का रहना भी निहायत ज़रूरी है। इन बातों के बिना हमारा रुधिर पुष्ट नहीं हो सकता। दुःख तो यह है कि इन सबका प्रबन्ध करना हमारे हाथ में नहीं है। यह है विदेशी सरकार के हाथ में, जिससे यह आशा करना भी कठिन है कि वह हमारे लाभ के लिए इन बातों की ओर पूरा ध्यान देगी। लेकिन रुधिर को निर्बल करने वाले ये सब कारण—विशुद्ध अन्न, दूध और घी का पर्याप्त मात्रा में न मिलना तथा सफ़ाई आदि न होना—मुसलमानों और पारसियों के लिए भी तो मौजूद हैं; फिर वे हमारी अपेक्षा क्यों अधिक हृष्ट-पुष्ट और उत्साही हैं? हम उनके समान तो शारीरिक दृष्टि से अच्छे और उन्नत हो सकते हैं, यदि इन कारणों के अतिरिक्त रुधिर को निर्बल करने वाले अन्य कारणों को हम दूर कर दें। उन कारणों को तो दूर करना हमारे हाथ में है। रुधिर को पुष्ट करने का एक अत्यन्त लाभप्रद उपाय यह है कि जिन बंधनों में जकड़ी जाने के कारण हमारी जाति गिर रही है, उन बंधनों को हम जल्दी ही तोड़ दें।

बहता हुआ पानी साफ़ रहता है, पर बाँध दिये जाने पर गन्दा हो जाता है। इसी प्रकार जो रुधिर छोटे दायरे में घूमता है, वह गन्दा होता जाता है। हमारे यहां वर्णों की जातियां, उपजातियां और फिर बिरादरियां बनने से कई इतनी छोटी जातियां होगई हैं, जिनके घर अंगुलियों पर गिने जा सकते हैं। ऐसी छोटी-छोटी जातियों में शादी होने के कारण जो हमारा रुधिर कमज़ोर होगया है, वह फिर इन बंधनों को तोड़ कर विस्तृत क्षेत्र में विवाहादि करने से पुष्ट और सजीव हो सकता है। हमारे पूर्वज इस बुराई से बचे हुए थे। उस समय छोटी-छोटी जातियां नहीं थीं। विस्तृत क्षेत्र में विवाह होते थे। केवल यही नहीं कि भारतवर्ष में ही विवाह होते हों, हमें इतिहास से पता लगता है कि भारत से बाहर भी हमारे पूर्वज विवाह करते थे। इससे हमारा रुधिर हर समय नवीन और बलवान रहता था, जिसका स्वाभाविक परिणाम यह था कि हम सब बातों में बढ़े-चढ़े थे। जात-पाँत की घातक प्रथा के साथ ही हमारी अवनति आरम्भ हुई और इसलिए यदि हम अपनी उन्नति चाहते हैं, तो सबसे पहले इस घातक प्रथा को दूर करना चाहिए। इस समय हिन्दू-समाज के समझदार पुरुषों और नेताओं का कर्त्तव्य है कि वे हज़ारों विभागों में बिखरे हुए हिन्दू-समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चार वर्णों में विभक्त करदें। एक वर्ण में फिर छोटी छोटी जातियाँ न हों। विवाह का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो। इससे हमारे रुधिर में फिर नवीन शक्ति का सञ्चार होगा, हमारा मानसिक तथा शारीरिक बल बढ़ेगा और हमारी इच्छा-शक्ति दृढ़ होगी। हम फिर भी वर्तमान जातियों के संघर्ष में अपने को स्थिर रखने में समर्थ होंगे और उसी उन्नत स्थिति को प्राप्त कर सकेंगे कि जिसमें हम पहले थे।

हरबिलास सारडा

राजपूतों को

शील-गुण-सागर हो, आगर उदारता को,
नय-नीति-नागर, नमूना मजबूती को।
भीड़ पड़े दोड़ धाय दीन की सहाय करे,
भजे सदा 'नवरत्न' कृष्ण की विभूती को।
पर को न देवे पीठ, दीठ न परनारी को,
सांचो सूरो पूरो हो, न राखे दूती धूती को।
काम पड़े काम आवे, सो सो घाव खावे तो हू,
जंग जीत आवे सो निभावे रजपूती को॥

गिरिधर शर्मा

जर्मनी में

मैंने यूरोप के बड़े शहरों में लंदन देखा, पेरिस देखा और बर्लिन देखा। मुझे कहने में कोई संकोच नहीं होता कि बर्लिन सबमें श्रेष्ठ है। लंदन तो ख़ूबसूरत शहरों में नहीं गिना जा सकता; किन्तु लंदन की ख़ूबी लंदन की चहल-पहल में है। पेरिस में ३-४ सड़कें अत्यन्त सुन्दर हैं, बाक़ी भद्दी हैं। वहाँ के नाटक, खेल-तमाशे मशहूर हैं; इसी लिए, मालूम होता है, पेरिस का नाम बहुत ज्यादा हो गया। किन्तु बर्लिन सबमें निराला है। सुन्दरता तो मानों कूट-कूट कर भरी है। लम्बाई-चौड़ाई में लंदन न्यूयार्क से भी बड़ा है। सड़कों पर अधिक भीड़ नहीं है, क्योंकि रास्ते अत्यन्त चौड़े और सीधे हैं। शहर में इधर-उधर घूमने के लिए नीचे ज़मीन के भीतर की रेल, ज़मीन के ऊपर पुल बाँधकर पुल पर चलने वाली रेल, मोटर, बस, ट्राम, इत्यादि तो हैं ही; रास्तों के दोनों तरफ़ गाड़ी-घोड़े चलते हैं, बीच में और सड़क के दोनों किनारों पर राहदारियों के लिए फ़ुटपाथ बने हैं। बीच का फ़ुटपाथ भी एक अलग सड़क समझिए, जिसके दोनों ओर वृक्ष लगे हैं। मकान सब सुन्दर हैं। रास्ते इतने साफ़ हैं कि कलकत्ते के चौरंगी से बढ़कर नहीं तो समान ज़रूर हैं। चौरंगी से अधिक साफ़ सड़क तो हमने कहीं नहीं देखी। चौराहों पर भीड़ को सम्हालने के लिए पुलिस नहीं खड़ी होती। लाल-हरी बत्ती दिखाकर भीड़ को सम्हालते हैं। क़ैसर के महल देखे, वे तो पञ्चम जार्ज के महलों की तरह घोड़ों का अस्तबल समझिए। भीतर सजावट अच्छी है, किन्तु इन महलों की अपेक्षा किसी-किसी होटल में सजावट अच्छी होती है। लोगों को आश्चर्य हो सकता है कि हमारे राजा-महाराजाओं की अपेक्षा इन सम्राटों के महल अधिक मनमोहक क्यों नहीं होते। किन्तु, लोग भूल जाते हैं कि, हमारे राजे-महाराजे निरंकुश हैं, उनके काम की ख़बर लेनेवाला कौन है? पर यहां तो पार्लमेण्ट रुपया मंजूर करती है तब कहीं पर लोग ख़र्च करने पाते हैं। नतीजा यह हुआ कि क़ैसर और पञ्चम जार्ज के जो महल हैं वे सब पुराने हैं, सजावट पुरानी है। करोड़ों रुपया बात-बात में यहां ख़र्च होता है, किन्तु शाही महलों पर नहीं। हमारे राजा-महाराजाओं के यहाँ लाखों उनके स्नान-घरों पर ख़र्चे जाते हैं, किन्तु लोकोपयोगी कामों के लिए कुछ नहीं। इनके कुरूप महल इनकी शोभा है, हमारे सुन्दर महल हमारी शर्म है। मैंने क़ैसर के पुराने-नये सब महल, कोई भीतर से कोई बाहर से, देखे; प्रायः साधारण हैं, कोई विशेषता नहीं, सो भी ५०-६० वर्ष पहले के बने हुए हैं।

बर्लिन का शाही पुस्तकालय देखा। पुस्तकालय का मकान १५ बीघे में बना है, १३ तल्ले का मकान है, तमाम ३० लाख पुस्तकों का संग्रह है—सारा पुस्तकों से भरा है। संस्कृत और पाली की तमाम

पुस्तकें हैं। हस्तलिखित अनेक पुस्तकें भारत से ला-लाकर रक्खी गई हैं। पुस्तकाध्यक्ष ने कहा—हमारे पास गांधीजी के अंग्रेजी ग्रंथ और उनके गुजराती ग्रन्थों के अनुवाद तो हैं, असल गुजराती ग्रंथ नहीं हैं। मैंने कहा—मैं भिजवा दूँगा। भारत में अलवर, बीकानेर इत्यादि तमाम राज्यों की पुस्तकों का सूचीपत्र इनके पास है। पुस्तकालय देखकर हम लोगों को अत्यन्त हर्ष हुआ।

जर्मनी के डाक्टर प्रसिद्ध हैं। मैंने एक विशेषज्ञ को बुला कर सारे शरीर की परीक्षा करवाई। मेरे मेदे में से एक यंत्र द्वारा कुछ रस निकाल कर उसकी परीक्षा की। अंत में कहा, मेरे तमाम अंग स्वस्थ्य हैं, कोई व्याधि नहीं है, कभी-कभी बीच में ज़ुकाम हो जाता है, वह बदहज़्मी के कारण है। बदहज़्मी अधिक खाने के कारण है। उलट-पुलट करके मुझे देख लेना चाहिए कि मुझे कितनी रोटी, कितना दूध सहज में पच सकता है और फिर उससे अधिक नहीं खाना चाहिए। मैंने हमारे वैद्यों का पर्पटी का इलाज और २५ सेर तक दूध पिलाने की कथा कही। पहले तो उसने नहीं माना, फिर सारी बात समझाने पर कहा—महाशय, आपके वैद्यजी को यहां भेजिए; हम उन्हें सब तरह सारा आराम देंगे, रोज़ी देंगे, सब सुभीता कर देंगे; हम जानना चाहते हैं कि वे यह कैसे करते हैं। उन्हें क्या पता कि हमारे शास्त्रीजी गर्मी में नंगे बदन, सर्दी में पतली बण्डी पहन कर चलते हैं। मैंने कहा—हमारे वैद्य लोग आपकी भाषा नहीं जानते। विशेषज्ञ ने कहा—इसका हम प्रबन्ध कर लेंगे। यह लोग सीखने के लिए कितने आतुर रहते हैं, यह ध्यान देने की बात है।

हेम्बर्ग भी अत्यन्त सुन्दर है। यहां नई बात यह है कि एक सड़क नदी की तह के नीचे है, जो पुल का काम देती है। शहर भी अत्यंत सुन्दर है।

मैंने जर्मनी के गाँव देखे, क़स्बे देखे, शहर देखे। विद्या में, परिश्रम में, व्यवहार में, कला में, कौशल में यह सर्वश्रेष्ठ हैं। धूर्तता में, धन कमाने में, राजनीति में अंग्रेज़ सर्वश्रेष्ठ हैं। वीरता में, ऐयाशी में, भल-मंसी में, वाचालता में फ्रेन्च सर्वश्रेष्ठ हैं।

और हमारे भारतवासी? "होइहै वही जो राम रचि राखा" को रोज़ कह लेते हैं; किन्तु हमारे ही कवियों का गाया हुआ "दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति" किसी की ज़बान पर नहीं।

घनश्यामदास बिड़ला

लन्दन का पत्र

चार महीने के बाद क्यों न हो, आपने मुझे स्मरण तो किया। इसे ही मैं अपना अहो-भाग्य समझता हूँ। क्योंकि जबसे मैं यहाँ आया हूँ मेरे मित्रगण ने मुझे प्रायः भुलासा दिया है। स्वतः ही मेरी खोज-ख़बर लेना तो दूर रहा; परन्तु मेरे पत्र देने पर भी उन्होंने आज़तक मेरी ख़बर न ली। लाचार यही सोचकर संतोष किये था कि शायद मैं जल-यात्रा कर उनकी निगाह में गिर गया हूँ। इस बात ने कितनी ही बार मुझे बेचैन भी किया, पर उपाय न देख कर अफ़सोस करने और चुप हो रहने के सिवा मेरे हाथ में क्या था? इस दशा में सबसे पहले 'त्यागभूमि' के दर्शन हुए। उसके बाद यह आपका पत्र मिला। इसने मेरे मुरझाये हुए हृदय पर अमृत का सा काम किया है।

पत्र न देने के दो कारण थे—पहला तो यह कि जब मैं यहाँ अकेला रह गया तो मुझे अपनी कठिनाइयाँ प्रत्यक्ष होकर विकट रूप दिखलाने लगी। उन्हों ने कितनी ही बार मेरे धैर्य को छुड़ा दिया। चारों ओर बेगाने ही बेगाने, और ऐसी जगह ज़िम्मेवारी

का बोझ आ पड़ा। इससे मैं इतना दब गया कि पत्र लिखने का उत्साह जाता रहा। दूसरा कारण यह था कि सिवा घर और आफ़िस के कहीं गया नहीं। ऐसी दशा में यहाँ के जीवन का अनुभव मुझे हो ही क्या सकता था? सुनी-सुनाई बातें लिखना आपको भ्रम में डालना था। पर अब जब कि आपने यह विषय उपस्थित कर ही दिया है तो अब तक जो कुछ मैंने यहाँ के संबंध में मनन किया है वह संक्षेप में आपको लिख देता हूँ।

मुझे अन्य क्षेत्रों का तो मालूम नहीं, पर व्यापार-क्षेत्र में यहाँ पर यहूदियों का आधिपत्य है। आप जानते ही होंगे कि सोने-चाँदी के जो चार दलाल सदियों से चले आ रहे हैं वे यहूदी ही हैं। शेअर-बाज़ार में दलालों की अधिक संख्या यहूदियों की है। इसी प्रकार सेलफ्रीज़ वूल्सवर्थ, आदि के बड़े-बड़े स्टोर सब यहूदियों के हैं। J. Loyns का होटल भी, जिसकी इस देश में लगभग १५००० शाखायें हैं, यहूदी का है। छोटे-मोटे सब तरह के व्यापारियों में आप यहूदियों को ही विशेष रूप से पायेंगे। इनके व्यापार के ढंग ठीक उसी प्रकार के हैं जैसे हम मारवाड़ियों के। क्योंकि इनके लिए व्यापार का कोई समय नहीं है। बड़े आफ़िसों की तो बात छोड़ दीजिए, क्योंकि वहाँ पर काम करने वाले अधिकतर अंग्रेज़ होते हैं, जो समय की पाबंदी ही अपना मुख्य ध्येय समझते हैं। इनकी प्रतिस्पर्धा करने वाली जाति यदि कोई मुझे जँचती है तो वह है मारवाड़ी और सिंधी। सिंधी लोग तो यहाँ पर कुछ हैं भी, परंतु मारवाड़ी बिलकुल नहीं। सिंधियों का व्यापार अधिकांश curios आदि का है। परंतु सबसे बड़ी कठिनाई जो यहाँ पर व्यापार फैलाने में है वह है यहाँ के व्यापारियों की गुट। यहाँ पर हरएक व्यापार के संघ हैं, जिनमें घुसना हर एक के लिए आसान नहीं है। इस सम्बन्ध में तो आपको फिर कभी लिखूंगा।

दूसरी बात जो आपने पूछी है वह यह कि यहाँ की परिस्थिति किन भावों की सृष्टि में सहायता देती है? इस विषय पर विचार प्रदर्शित करते हुए मुझे बड़ा डर मालूम होता है। क्योंकि मैं मानता हूँ कि हमें आदर्श से गिराने में अकेली परिस्थिति ही का दोष नहीं है। जिस प्रकार यहाँ पर हमें आदर्श से गिराने वाले भावों की प्रबलता है वैसे ही उत्थानकारी भावों की भी कमी नहीं है। उदाहरणार्थ, हमें स्थल-स्थल पर ऐसे विज्ञापन आदि लगे मिलते हैं जो स्वदेश-प्रेम को जगाते हैं। हर एक विज्ञापन इस बात पर ज़ोर देता है कि यह चीज़ पूर्णतया स्वदेशी है, अतएव इसीका व्यवहार किया जाना चाहिए।

हमारे देश की भांति न तो याकूती आदि के अश्लील विज्ञापन ही यहाँ पर देखे जाते हैं और न कोकशास्त्र और काम-शास्त्र के। हाँ, युवा-युवतियों का, बुड्ढे-बुड्ढियों का हाथ में हाथ देकर सांझ को सदैव साथ जाना अथवा युवतियों का यहाँ के चाल-ढाल के मुताबिक़ टीप-टाप से रहना ही यदि पतनकारी भावों का उद्रेक करे तो इसका यहाँ पर खूब दौर-दौरा है। एक बात यह भी है कि इस देश में शराब की दुकानें उसी प्रकार खुली हैं जैसे कि बैंक। बैंक किफ़ायत-शारी का राग अलापते हैं तो शराबखाने शराब का। जिन लोगों को अपने चहुं ओर शराबख़ाने, हंस-हंस कर बातें करने वाली, तथा कहीं-कहीं आलिंगन एवं चुम्बन करती हुई युवतियों का दृश्य अपने पतन के लिए काफ़ी मालूम हो उनके लिए पतन-कारी भाव की यहाँ कमी नहीं है। परन्तु जो उनसे बचे रहना चाहते हैं, उनके मार्ग में ये बाधा पहुंचावें, यह मैं नहीं मानता हूँ। क्योंकि ऐसे दृश्यों का प्राबल्य रात्रि के समय होता है और उस समय भला आदमी भला घर से बाहर निकलने का विचार ही क्यों करेगा?

जो इस विषय के अनुसंधान के लिए निकले उसे अपने मन पर क़ाबू रखने की ज़रूरत न केवल यहाँ पर, बल्कि सर्वत्र ही, होती है। एक बात यह भी है कि हमारे भारतीय भाई यहाँ पर दो-तीन साल अथवा इससे भी अधिक समय के लिए आते हैं। सब ही प्रौढ़ विचार के नहीं होते। यही नहीं, बल्कि कितनों ही का तो 'खाओ-पीओ मौज करो' सिद्धांत होता है। वे सदैव ऐसे ही घरों में रहने की चेष्टा करते हैं कि जहां जवान संगत हो। विवाहित लोग अपने परिवार से कभी अलग नहीं रहते। और जो अविवाहित हों वे यहां के रिवाज के मुताबिक किसी न किसी युवती के साथ सांझ को या कम से कम शनिवार-रविवार को घूमा करते हैं। कुछ तो यह इसलिए करते हैं कि उनका इरादा विवाह का होता है। और कुछ केवल मधु-मक्खी की तरह फूल-फूल से रस चखने के लिए। परन्तु यह इस देश का रिवाज है, हमारे देश का नहीं। हम भी अगर इन्हीं की तरह करने लगें तो फिर देश किसका है? आशा है, इस संक्षिप्त और अधूरे उत्तर के लिए क्षमा करेंगे।

बाल्टिक हाउस,
लन्दन।

कस्तूरमल बांठिया

तुम दोनों

ओ मेरी जीवन की स्मृति! ओ अन्तर के आतुर अनुराग!
बैठ, गुलाबी उषा विजन में गाते कौन मनोहर राग!
चेतन सागर उर्मिल होता यह कैसी कम्पन-मय तान।
यों अधीरता से न मींड़ लो, अभी हुए हैं पुलकित प्रान॥

कब का है यह प्रेम तुम्हारा,
युगल मूर्ति की बलिहारी।
यह उन्मत्त विलास बता दो,
कुचलेगा किसकी क्यारी?

इस अनन्तता निधि के नाविक! हे मेरे अनङ्ग अनुराग!
पाल सुनहला बन, तनती है स्मृति, यों उस अतीत में जाग!
कहां ले चले कोलाहल से, मुखरित तट को छोड़ सुदूर?
आह! तुम्हारे निर्दय डांडों से होती हैं लहरें चूर॥

देख नहीं सकते तुम दोनों,
चकित निराशा है भीमा।
बहको मत, क्या है न बता दो,
क्षितिज तुम्हारी नव सीमा?

जयशंकर 'प्रसाद'

विदेशियों की राजनीति का क्रीड़ास्थल

यों तो बहुत प्राचीन समय से चीन का अन्य राष्ट्रों से सम्बन्ध चला आता था, परंतु चीन की आन्तरिक स्थिति में कठिनाइयाँ खड़ी करने वाला सम्बन्ध चीन ने पहले-पहल रूस से किया। सन् १६८९ ई० में मनचूरिया और साइबेरिया की सीमा निश्चित करने और दोनों राष्ट्रों की प्रजा को एक दूसरे से व्यापार करने और एक दूसरे देश में आने-जाने का अधिकार देने के लिए एक सन्धि हुई। सन् १७२७ ई० में फिर एक सन्धि हुई, जिसके अनुसार रूसी पादरियों को पेकिंग में घर बनाने का अधिकार मिला और तीन वर्ष में अधिक से अधिक दो सौ रूसी व्यापारियों को पेकिंग में बिना कर दिये घुसने की आज्ञा मिली।

१८वीं सदी के अन्त में कैन्टन में रहने वाले चीनी व्यापारियों के साथ अंग्रेज़ों ने भी सम्बन्ध जोड़ा। परन्तु चीनी सरकार रूस की तरह उन्हें सुविधायें देने को तैयार न थी। रूस बड़ी चालाकी से मँगोल और मन्चूस से अपने पुराने सम्बन्ध के कारण चीन के महाराजाधिराज से ये सुविधायें प्राप्त कर सका। साधारणतया महाराज विदेशियों पर विश्वास नहीं करते थे और उन्हें दूर ही रखते थे। सन् १७९२ में लार्ड मेकार्टनी और सन् १८०३ में फिर लार्ड एमहर्स्ट अंग्रेज़ों की ओर से व्यापारिक सन्धि की प्रार्थना लेकर चीन की राज-सभा में पहुंचे। परन्तु उन्हें कुछ सफलता न हुई और बेचारों को अपमानित होकर लौटना पड़ा। कैन्टन में अंग्रेज़ चीनी व्यापारियों के हाथ अधिकतर अफ़ीम ही बेचा करते थे। चीनी सरकार ने, यह समझ कर कि अफ़ीम खाने से देशवासियों को हानि होता है, यह घोषणा कर दी कि अफ़ीम खाने वालों को प्राण-दण्ड दिया जायगा। पर इस घोषणा के बाद भी अंग्रेज़ लोग छिप-छिप कर अफ़ीम बेचते रहे। सन् १८३९ ई० में राज्य की ओर से इस मामले की जाँच के लिए एक कमीशन नियुक्त किया गया और कैन्टन नगर में जितनी अफ़ीम मिली सब अग्नि में झोंक दी गई। जिन अंग्रेज़ी कम्पनियों ने राज़ी से अफ़ीम नहीं दी उनकी तलाशी ली गई और उनके साथ दुर्व्यवहार भी हुआ। इसी पर अंग्रेज़ों ने चीन पर चढ़ाई करदी और बहुत से समुद्र के किनारे के बन्दरगाहों और यांग्ट्सी नदी के ऊपर के ख़ास-ख़ास शहरों पर कब्ज़ा जमा लिया। दो वर्ष तक युद्ध जारी रहा और अन्त में चीनियों ने हार मान कर हांककांग अंग्रेज़ों को भेंट किया और पाँच बन्दरगाहों में उन्हें व्यापार करने का अधिकार देने के अतिरिक्त लड़ाई में हुई अंग्रेज़ों की क्षति के लिए एक भारी रक़म देने का वचन दिया। क्योंकि बिना इस रक़म के लिए अंग्रेज़ अपना पग पीछे हटाने के लिए तैयार न थे। अंग्रेज़ों को तो किसी न किसी प्रकार चीन में घुसना था। लार्ड मेकार्टनी और लार्ड एमहर्स्ट की बात चीन ने मानी तो अंग्रेज़ व्यापारियों ने कैन्टन में धांधलबाज़ी कर डाली और जब बेचारे कमज़ोर चीन ने उन्हें दण्ड देना चाहा तो अंग्रेज़ी फौजें चढ़ दौड़ीं, बन्दरगाहों पर अधिकार जमा लिया और सन्धि में मनमानी शर्तें रख कर चीन में अपने पांव जमा लिये। एक प्रजाहितैषी राजा अफ़ीम जैसी बुरी चीज़ का उपयोग करने से अपनी प्रजा को रोकना चाहता है, परन्तु उसके इस सत्कार्य्य में हस्तक्षेप किया जाता है और उसको इस महान् पाप के लिए दण्ड दिया जाता है! सच तो यह है कि जिसकी लाठी में ज़ोर है उसकी तरफ़ दिन-दहाड़े धाँधलबाज़ी करने पर भी कोई उँगली नहीं उठा सकता, और जो शक्तिहीन हैं वे भले होने पर भी पीसे ही जाते हैं। सन् १८४२ ई० की अंग्रेज़ों की इस ज़बरदस्ती की सन्धि के बाद ही चीन को फ़्रान्स और अमेरिका से सन् १८४४ ई० में और नार्वे और स्वीडन से सन् १८४७ ई० में सन्धि करके उन पाँचों बन्दरगाहों में, जो विदेशियों की तिजारत के लिए खोल दिये गये थे, अंग्रेज़ों की तरह उन्हें भी अधिकार देने पड़े।

अंग्रेज़ लोग इसी पर सन्तुष्ट न हुए। सन् १८५६ ई० में 'तीर' नामी चीनी लुटेरों का एक जहाज़ अंग्रेज़ी झंडा फहराते हुए फिर रहा था। चीन-सरकार ने उसे गिरफ़्तार कर लिया और अंग्रेज़ अफ़सरों को सन्देश भेजा कि यह लुटेरे आपका झण्डा लगाकर इसलिए फिरते हैं कि यह मज़े में हमारी प्रजा को लूटें और हम इन्हें दण्ड न दे सकें। ब्रिटिश काउंसिल ने चीन की एक दलील न सुनी। उनका मिज़ाज़

तो इसी पर बिगड़ रहा था कि जिस जहाज़ पर अंग्रेज़ों का झंडा लहरा रहा हो उसे चीन ने पकड़ा ही कैसे? चाहे उसमें लुटेरे हों चाहे बदमाश! उनके इस ज़रासी बात पर मिज़ाज़ बिगड़ने का कारण भी था। वह ख़ूब समझते थे कि चीन कमज़ोर है और हम किसी भी बहाने उसपर दोषारोपण करके कुछ न कुछ छीन-झपट सकते हैं। अंग्रेज़ों की तरफ़ से हुक्म हुआ कि तुरन्त 'तीर' जहाज़ के आदमी मुक्त कर दिये जायँ। कैण्टन के चीनी वाइसराय ने बिना विलम्ब यह बात स्वीकार करली। परन्तु सर हेनरी पीक्स ने फिर और नई माँगें रक्खीं और उनके स्वीकार न होने पर कैण्टन पर गोलाबारी शुरू कर दी। अंग्रेज़ों और फ्रांसीसियों की एक मिश्रित सेना ने जाकर कैण्टन पर कब्ज़ा जमा लिया और वहाँ के वाइसराय को गिरफ़्तार करके कलकत्ते भेज दिया। कलकत्ते में वह बेचारा इसी आशा में तड़प-तड़प कर मर गया कि अंग्रेज़ी ख़ून से पैदा एक महारानी विक्टोरिया ही ऐसी है जो बुद्धिमान् और न्याय-प्रिय है और उससे मिलकर दो बातें मैं अवश्य करूँगा। परन्तु उसे यह सौभाग्य प्राप्त न हुआ। अंग्रेज़ों और फ्रान्सीसियों के साथ नई सन्धि हुई और उसके अनुसार यह निश्चय हुआ कि ईसाई-धर्म का प्रचार करने वालों की रक्षा का भार चीनी अफ़सरों पर होगा, यदि कोई विदेशी कोई अपराध करेगा तो उसको दण्ड देने का अधिकार उसके देश के चीन में रहने वाले काउंसिल ही को होगा और यँगट्सी नदी पर अंग्रेज़ और फ्रान्सीसी बे-रोक-टोक व्यापार कर सकेंगे। सात और नये बन्दरगाह विदेशियों के व्यापार के लिए खोल दिये गये और उनमें अंग्रेज़ों और फ्रान्सीसियों को पिछले पाँच बन्दरगाहों में जो अधिकार मिले हुए थे उनके साथ-साथ रहने, बसने, मकान ख़रीदने और भाड़े पर लेने, ज़मीन पट्टे पर लेने, गिरजे, अस्पताल और स्मशान बनाने के अधिकार भी दिये गये। परन्तु यह सन्धि समाप्त होते-होते एक और नया टण्टा खड़ा हो गया। मालूम ऐसा होता है कि जब इन मतलबी यूरोपियनों ने देखा कि चीन दबता ही चला जाता है और कड़ी से कड़ी शर्तें मँज़ूर करता जाता है तो हविस और बढ़ी और सोचा कि जो बन पड़े और झटको। सन्धि पर हस्ताक्षर कराने फ्रान्सीसी और अंग्रेज़ी अफ़सर जहाज़ों पर चढ़ पीहो दरिया में हो कर पेकिंग की तरफ़ चले। इस दरिया पर दोनों तरफ़ चीन की नाके-बन्दी रहती थी और चीनी जहाज़ों के अतिरिक्त किसी जहाज़ के आने-जाने की आज्ञा न थी। अंग्रेज़ और फ्रान्सीसी तो अपने ज़ोम में मस्त झगड़े मोल लेते ही फिरते थे। इसी दरिया में हो चीनी नाकेबन्दी तोड़ कर निकले और जब चीनी सेना ने गोली चलाई तो युद्ध छेड़ दिया गया और यूरोप से नई सेना आ धमकी। अन्त में अंग्रेज़ और फ्रांसीसी विजयी सेनायें अपने झण्डे फहराती हुई पेकिंग में घुसीं। लोगों से ज़बरदस्ती सेनाओं के लिए रसद मांगी गई, सोने, चाँदी और जवाहरात के ख़ज़ानों पर कब्ज़ा जमा लिया गया, और शाही महल का माल-असबाब हड़प लेने के बाद उस सदियों की कारीगरी से बनाये नये महल में आग लगा दी गई। महाराज ज़ोहो को भाग गये और उनकी तरफ़ से प्रिन्स कुंग ने जो सन्धि की उसके अनुसार यह निश्चित हुआ कि सन् १८५८ ई० की पिछली सन्धि, जिसपर हस्ताक्षर होने से पहले ही यह नया बखेड़ा खड़ा हो गया था, मान ली जाय और उसके अनुसार तुरन्त ही कार्य होने लगे, टीण्टसिन को विदेशी तिजारत के लिए खोल दिया जाय, हांगकांग के मुक़ाबले का कौडलून का एक भाग अंग्रेज़ों को दे दिया जाय और इस युद्ध में होने वाली क्षति के लिए फ्रांस और इंग्लैण्ड को रुपया दिया जाय।

इधर यह लूट-खसोट मच रही थी, उधर रूस अपने हाथ पैर बढ़ाता चला आता था। १८५१ ई० में रूस ने चीन से एक सन्धि करके इली और टरबगाटाइ में व्यापारिक रियायतें ले ही ली थीं। सन् १६८९ ई० से जो मनचूरिया की सीमा के सम्बन्ध में झगड़ा चला आता था उसका फ़ैसला सन् १८[illegible] ई० में एक सन्धि करके रूस ने करा लिया। आमूर नदी का बायाँ किनारा रूस साम्राज्य की सीमा बना दिया गया और उसके उत्तर का सारा भाग, जो सदा से चीन के अधिकार में चला आता था, रूस की भेंट चढ़ा। चीन साम्राज्य को विवश होकर आमूर का दाहिना तट अपनी सीमा बनाना पड़ा। अन्य राष्ट्रों की तरह रूस को भी सब बन्दरों में व्यापार करने के अधिकार और अन्य सारी रियायतें मिलीं। रूस प्रशान्त महासागर में एक ऐसा बन्दर चाहता था जिससे वह प्रशान्त महासागर में अपना अधिकार जमा सके और इस दृ[illegible]

पूर्ति के लिए जो-जो आवश्यक था चीन को देना पड़ा। तिस पर भी चीनी तुरकिस्तान में बलवा हो जाने पर रूसी फ़ौजें चढ़ दौड़ीं और चीनी सरकार पर शासन-कुप्रबन्ध का दोष लगाकर अपनी फ़ौज के ख़र्च के लिए ९० लाख रुपये झपट लिए और मंगोलिया और इली में रूसी व्यापारियों को बिना कर दिये व्यापार करने का अधिकार भी प्राप्त कर लिया। अन्य राष्ट्रों ने तो जल द्वारा व्यापार करने का ही अधिकार पाया था, रूस ने जल और स्थल दोनों ओर के द्वार अपने लिये खोल लिये। १८७० ई० में मार्गेरी नाम का ब्रिटिश पर-राष्ट्र विभाग का एक अधिकारी किसी कार्य्य से यूनान में होकर जा रहा था। उसे लुटेरों ने मार डाला। इसके लिए चीन का महामंत्री इंग्लैण्ड महारानी विक्टोरिया से माफ़ी माँगने गया और चीन को पाँच बन्दर और विदेशी व्यापार के लिए खोलने पड़े।

१८७७ ई० से १८८५ ई० तक चीन और फ्रान्स का अनाम के सम्बन्ध में झगड़ा चला आता था। चीन को रूस और अंग्रेज़ों से इस प्रकार फँसा देख फ्रान्स अनाम पर अधिकार जमा बैठा। चीन और फ्रान्स का युद्ध छिड़ गया। ब्रिटिश मंत्री सर हेनरी पीक्स ने दोनों में फ़ैसला करा कर दक्षिण चीन में दो नगरों में व्यापार करने का अधिकार फ्रान्स को दिल-वा दिया और अनाम पर भी फ्रान्स का ही अधिकार रहा। फ्रान्स ने ही पहली चीन की ज़मीन पर हाथ मारा; अन्त में सन्धि में फ्रान्स को ही और अधिकार और सुभीते मिले। क्या ही अच्छा न्यायपूर्ण फ़ैसला हुआ!

इधर अंग्रेज़ों ने चीन को फ्रान्स से उलझा देख चीन साम्राज्य के दूसरे महत्वपूर्ण भाग ब्रह्मदेश पर हाथ साफ़ किया। उसकी राजधानी पर धावा बोल, राजा को गद्दी से उतार, आन की आन में उसे भारत साम्राज्य में मिला लिया। जापान ने भी इस सुअवसर को पा कोरिया को हड़प करना चाहा। उस समय के सबसे बड़े चीनी राजनीतिज्ञ वायस-राय लीहंगचेंग ने बड़े प्रयत्न से रूस और फ्रान्स की सहा-यता से लियाओटँग पेनिनशुला को जापान के हलक़ से निगलते-निगलते बचा पाया। फिर भी जापान ने फ़ारमूसा हड़प ही लिया और चीन को कोरिया स्वतंत्र करना पड़ा।

अभी तक अन्तर्राष्ट्रीय लूट-खसोट के इस अखाड़े में जर्मनी को कुछ प्राप्त न हो पाया था। जर्मनी समुद्र के किनारे एक ऐसा स्थान चाहता था जहाँ वह अपने जहाज़ी बेड़े लगा कर इधर-उधर हाथ-पैर फैला सके। किआउचाउ की खाड़ी इस कार्य्य के लिए बड़ा सुन्दर स्थान था और इसीपर जर्मनी का दाँत था। १८९७ ई० में दो जर्मन पादरियों को किसीने मार डाला। यह बहाना मिलते ही जर्मनी ने किआउ-चाउ की खाड़ी पर अधिकार जमा लिया। चीनी अफ़सर इतने भोले-भाले थे कि वे यह समझे कि जर्मन लोग सैर करने आये हैं। उन्होंने जर्मन जहाज़ों का खूब स्वागत किया। परन्तु जब बाबाजी चिमटा गाड़ कर वहीं डट गये तब उनकी आँखें खुलीं। रूस ने कहा कि जर्मन किआउचाउ की खाड़ी में आ डटे हैं इसलिए हमें अपनी रक्षा के लिए पोर्टआर्थर और डाली चाहिये, चीन क्या कर सकता था? पोर्टआर्थर और डाली २५ वर्ष के पट्टे पर रूस को देना पड़े। फ्रान्स और ब्रिटेन ने कहा कि रूस और जर्मनी की शक्ति बढ़ गई है इसलिए हमें अपनी रक्षा के लिए और स्थान मिलने चाहिएँ। फ्रान्स ने क्वांगचाउवान और ब्रिटेन ने वीहाइवी और कौडलून का शेष भाग माँगा और उन्हें यह स्थान दिये गये। ब्रिटेन ने यह माँग भी रक्खी कि याँगृसी नदी में कोई और व्यापार न कर सकेगा और फ्रान्स ने कहा कि क्वांगटंग, क्वाँग्सी और यून्नान यह तीनों प्रान्त किसी और को न दिये जायँ। बेचारे चीन को यह सब शर्त्तें भी माननी पड़ीं। जिस प्रकार कोई हृदय-हीन लुटेरा किसी अबला पर अत्याचार करता है उसी प्रकार यूरोप के राष्ट्रों ने मिलकर चीन पर मन-मानी की। आपस में यह भी मंसूबे होने लगे कि चीन साम्राज्य का आपस में बटवारा कर लिया जाय। इसी समय अमेरिका के राष्ट्रपति मैकिंले ने संसार के राष्ट्रों को सन्देशा भेजा कि सब राष्ट्रों को चीन में व्यापार करने का समान अधिकार रहे। इस प्रस्ताव से आपस की बहसाबहसी द्वारा चीन पर विदेशी राष्ट्रों की बाढ़ रुकी। परन्तु अभी तक चीन की समस्या हल नहीं हो पाई है। अभी चीन के दिन आने में कुछ देर है।

चन्द्रभाल जौहरी

मृत्यु-विजय

या मनखाँ मोटी बात, मरणो जाणणो । टेक
मरणों मरणो सारा ही केवे मरे सबी नर नारी रे।
मरवा पेली ज्यो मर जाणे तो बलिहारी रे ॥१॥
जीवा सूँ सघलो जग राजी मरणो मन नी भावे रे।
राजा रंक सरीखो सबरे तो पण आवे रे ॥२॥
दूजा भूप डरप म्लेच्छारीं कीधी तावेदारी रे!
वीर प्रताप जाण ने मरणो टेक न टारी रे ॥३॥
गुरु गोविन्द रो वामण भूल्या बालक दो चणवाया रे।
भामाशाह धरया ने धन दे जाता लाया रे ॥४॥
मरवा ने वनवीर बीसरयो धाय याद कर लीधो रे।
चूँखाया रे साटे जायो गाता कीधो रे ॥५॥
मरवा ने जो जाणें वींसूँ पाप करम नी वेवे रे।
सुख दुख री परवा नी राखे प्रभु ने शेवे रे ॥६॥
मरने ज्वाव राम ने देणो या जीरे मन लागी रे।
चातुर चरण वणी रे लागे वो वड़भागी रे ॥७॥

महाराज चतुरसिंह

भावार्थ

मरना जानना, ऐ मनुष्यो! यह एक बहुत बड़ी बात है।

मरना अनिवार्य है, ऐसा सभी कहते हैं, और मरते भी सभी नर-नारी हैं। किन्तु, मरने से पहले जो मरना सीख गया उसीकी बलिहारी है, सचमुच वह धन्य है ॥ १ ॥

जीना तो सारा संसार पसन्द करता है, पर मरना किसी को अच्छा नहीं लगता। किन्तु फिर भी मौत तो राजा और रङ्क सबको ही एक समान आती है ॥ २ ॥

अन्य राजाओं ने मौत से डर कर म्लेच्छों की पराधीनता स्वीकार कर ली; परन्तु राणा प्रताप मरना जानता था, इसी लिए उसने अपना प्रण न छोड़ा ॥ ३ ॥

गुरु गोविन्दसिंह का ब्राह्मण इस तत्व को भूल गया और इसी लिए लोभ में आकर दो बालकों को दीवार में चुनवाया; किन्तु भामाशाह ने अपनी सारी सम्पत्ति महाराणा प्रताप को देकर उन्हें विदेश जाने से रोका ॥ ४ ॥

मौत की सीख को बनवीर भूल गया; किन्तु पन्ना धाय ने उसे याद कर लिया। इसी लिए उसने दूध पिलाये हुए बालक को बचाने के लिए अपने पुत्र को उसकी जगह लिटा कर उसे अपनी आँखों मरते देखा ॥ ५ ॥

जो मरना जानता है उससे बुरे काम नहीं होते हैं; वह न तो सुख के प्रलोभन में आता है और न दुःख से भयभीत होता है; वह तन्मयता के साथ प्रभु की सेवा करता है ॥ ६ ॥

मरने पर हमें भगवान को जवाब देना होगा, यह बात जिसके मन में बैठ गई, वह सचमुच ही बड़ा भाग्यवान है, 'चातुर' उसके चरण छूता है ॥ ७ ॥

हमारी व्यापारिक संस्थायें

संसार में बड़े काम सम्मिलित शक्ति से ही हुआ करते हैं। यदि कोई मनुष्य अपना मत प्रकाश करे तो उसका उतना प्रभाव नहीं पड़ता, जितना किसी संस्था अथवा जन-समूह के प्रतिनिधि स्वरूप प्रकाश करने से पड़ता है। कई बार ऐसे अवसर आते हैं कि कोई एक मनुष्य अपने कष्टों के बारे में स्वयं नहीं बोल सकता, लेकिन वही बात किसी संस्था द्वारा ज़ोर से कही जा सकती है।

कई आदमियों के मिल कर परामर्श करने से विषय पर समुचित प्रकार विचार और ठीक मत तैयार होता है, जो कोई एक मनुष्य केवल अपनी बुद्धि से विचार करने पर नहीं कर सकता। संस्था बनाने से सभासदों के सुख-दुःख का सर्वदा निरीक्षण होता रहता है, जो एक आदमी नहीं कर सकता। व्यवसाय अच्छी तरह चलाने के लिए, परस्पर का

झगड़ा मिटाने के लिए, अन्यान्य प्रकार हानि से बचने और लाभ उठाने के लिए संस्था द्वारा नियम बनाये जाते हैं; और, एक से दूसरे को सहायता मिलती है।

इन सुविधाओं को देखते हुए यूरोप में चेम्बर्स आफ़ कामर्स (व्यवसाय-संघ) संस्थापित किये गये। आर्थिक प्रश्नों पर अधिकांश विचार इन चेम्बरों में ही किये जाते हैं। राज्याधिकारी उनकी राय को शिरोधार्य करते हैं और एक दृष्टि से तो ऐसा ही मालूम होता है कि यूरोप की चेम्बरें ही संसार पर राज्य कर रही हैं। इङ्गलैण्ड के सिवाय यूरोप के और देशों में चेम्बरें सरकार द्वारा स्थापित की हुई हैं; वे प्रायः उसी ढङ्ग की हैं, जैसे हिन्दुस्थान में पोर्ट-कमिश्नर्स इत्यादि संस्थायें हैं। क़ानून द्वारा उन चेम्बरों को अधिकार दिये हुए हैं।

भारतवर्ष में भी अंग्रेज़ व्यापारियों ने सब प्रान्तों में अपनी चेम्बरें बना रक्खी हैं। बंगाल में बंगाल चेम्बर, संयुक्तप्रान्त में अपर इंडिया चेम्बर, पंजाब में पंजाब चेम्बर, बम्बई प्रान्त में बम्बई चेम्बर, मद्रास प्रान्त में मद्रास चेम्बर। ये संस्थायें व्यापार मात्र से सम्बन्ध रखती हैं और विशेष कर बंगाल चेम्बर का सरकार पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। जो काम बंगाल चेम्बर कराना चाहती है उसे करने के लिए सरकार को बाध्य करती है—मानों हिन्दुस्थान का राज्य बंगाल चेम्बर ही कर रही है। बंगाल चेम्बर का संगठन बहुत बड़ा है। अंग्रेज़ लोग तो कोई सौदा करते ही नहीं, जिसमें ऐसी एक शर्त न हो कि झगड़ा होने पर बंगाल चेम्बर उसका फ़ैसला कर देगी। इसी प्रकार लाइसेंस्ड मेज़रर्स इत्यादि कई प्रकार का काम बंगाल चेम्बर के ही आधीन चला गया है। इन सब चेम्बरों की सम्मिलित एक चेम्बर है, जिसका नाम एसोशियेटेड चेम्बर आफ़ कामर्स है। यह अंग्रेज़ व्यापारियों की अखिल-भारतवर्षीय संस्था है।

इन चेम्बरों के सिवाय प्रत्येक व्यापार के लिए अंग्रेज़ों ने अलग-अलग संस्थायें क़ायम कर रक्खी हैं, जिन्हें एसोसियेशन कहा जाता है—जैसे, जूट मिल्स एसोसियेशन, टी एसोसियेशन, वेल्ड जूट एसोसियेशन, माइनिंग एसोसियेशन, इत्यादि।

इस प्रकार अंग्रेज़ व्यापारियों ने अपना संगठन कर रक्खा है, और अपनी संस्था के बनाये हुए नियमों का पूर्णतया पालन किया करते हैं। नियम-पालन में अंग्रेज़, हिन्दुस्थानियों से, बहुत अग्रसर है। उन्नति करने के लिए हिन्दुस्थानियों को उनसे एकता और नियम-पालन की शरण लेना सीखना होगा।

कुछ वर्षों से हिन्दुस्थानी व्यापारी भी अपनी संस्थायें बना रहे हैं। उनमें कई शक्तिशाली हो गई हैं, कई अच्छी तरह काम कर रही हैं, और कई में अभी बहुत उन्नति की आवश्यकता है। बम्बई की इंडियन मर्चेण्ट्स चेम्बर और कलकत्ते की इंडियन चेम्बर बड़े विचार और निर्भयता के साथ काम करते हैं। जब सरकार भारत के लिए हानिकारक १८ पेंस का विनिमय करने पर उतारू हुई, तब इन दोनों चेम्बरों ने सरकार की पोल अच्छी तरह खोली थी। आर्थिक प्रश्नों पर ये दोनों संस्थायें हमेशा नजर रखती हैं और सरकार तथा सर्व-साधारण को भारत का हित दिखाती रहती हैं।

इसी प्रकार अन्य प्रान्तों में भी भारतीय व्यापारियों के चेम्बर स्थापित हैं। यथा, मद्रास में सदर्न इंडियन चेम्बर, रंगून में बर्म्मा इंडियन चेम्बर, कानपुर में यूनाइटेड प्राविंसेज़ चेम्बर, पटना में बिहार-उड़ीसा चेम्बर, इत्यादि। परन्तु खेद की बात है कि ये संस्थायें उतनी शक्ति और बुद्धि से काम नहीं लेतीं, जितनी से उन्हें लेना चाहिए।

विशेष व्यापारों की भी संस्थायें कलकत्ता, बम्बई, कराची, मद्रास, आदि नगरों में हैं और उनमें कई

अच्छा काम करती हैं। उदाहरणार्थ, कलकत्ता में ग़ल्ले के व्यापारियों की इंडियन प्रोड्यूज़-एसोसियेशन, कोयले के खान वालों की इंडियन माइनिंग फ़ेडरेशन, क़िराना के व्यापारियों की कलकत्ता किराना एसोसियेशन, विलायती कपड़े के व्यापारियों की मारवाड़ी चेम्बर, इत्यादि। परन्तु, इस विषय में, बम्बई के व्यापारी जितनी सफलता प्राप्त कर चुके हैं उतनी कलकत्ते के व्यापारियों ने भी अभी तक नहीं कर पाई है।

सब स्थानों के व्यापारियों को चाहिए कि वे स्वयं अपने हित तथा देश-सेवा की भावना से प्रेरित होकर चेम्बर अथवा एसोसियेशन बनावें और उनसे लाभ उठावें। आजकल ऐसा किये बिना व्यापारियों को कई प्रकार की हानि उठानी पड़ती है। एक तरफ़ तो सरकार हमेशा अंग्रेज़ों के लाभदायक कार्य्य करने के लिए तत्पर रहती है और दूसरी तरफ़ अंग्रेज़ों की संस्थायें सदा जागृत रह कर सरकार को बताती रहती हैं। प्रत्येक प्रश्न पर भारतीयों को सचेत रहने की बड़ी आवश्यकता है। अब तो भारतीयों का ऐसा संगठन हो रहा है कि यदि किसी स्थान के व्यापारी अपने प्रश्नों पर विचार करने की स्वयं बुद्धि नहीं भी रखते हों तो भी, यदि वे अपने कष्ट और हानि के सम्बन्ध में स्थापित संस्थाओं से परामर्श करते रहें तो, उन्हें उचित राय मिलती रहे। सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय व्यापारी अपनी हानि और कष्टों को चुपचाप न सहते रहें और उनके सम्बन्ध में आन्दोलन करें। यदि सरकार किसी बात से डरती है तो जनता के आन्दोलन से।

भारतीय व्यापारियों की अखिल भारतवर्षीय संस्था भी बन चुकी है। उसका नाम है फ़ेडरेशन आफ़ इंडियन चेम्बर्स आफ़ कामर्स। सब प्रान्तों के प्रभावशाली चेम्बर एवं एसोसियेशन इस संस्था के सदस्य बन गये हैं और बनते जा रहे हैं। इस[का] प्रभाव भी अच्छा पड़ता है—सरकार और अंग्रे[ज़] व्यापारी दोनों पर। प्रतिवर्ष एक बार इसकी बैठ[क] होती है। उस बैठक का नाम इंडस्ट्रियल एंड कमर्शि[यल] कांग्रेस रक्खा गया है। इसमें सम्पूर्ण भारत [के] प्रभावशाली और बुद्धिमान व्यापारी शामिल होते और बहुत उत्साह दिखाते हैं। इस वर्ष इस कांग्रेस [का] अधिवेशन मद्रास में २९, ३० और ३१ दिसम्बर [को] होगा।* इसके सभापति बम्बई के सर इब्राहीम रह[मत]तुल्ला चुने गये हैं। सब प्रान्तों से व्यापारिक गम्भी[र] विषयों पर बहुत से प्रस्ताव उपस्थित किये गये [हैं] जिन पर विचार किया जायगा।

इस फ़ेडरेशन की एक कार्य्य-कारिणी समिति चुनी जाती है, जो साल भर काम करती रहती [है।] इसका कार्य्य भलीभांति सम्पादन करने के लिए [श्री] पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास एवं श्रीयुक्त घनश्यामदा[स] बिड़ला सरीखे सज्जन दत्तचित्त रहते हैं और अ[पना] बहुमूल्य समय देते हैं। †

देवीप्रसाद खे[तान]

---

* इस लेख के प्रकाशित होने के पहले ही यह [बैठक] हो चुकी है।

† व्यापार एक ऐसा विषय है, जिसमें सर्व-साधारण [आम] तौर पर कम दिलचस्पी लेते हैं। इसका कारण यह है कि [उन्हें] यह पता नहीं है कि इससे उनके हानि-लाभ का क्या सम्[बन्ध] है। एक ओर जहाँ देशी व्यापारियों की सम्मिलित शक्ति के सुसं[गठित] होने और बढ़ने की आवश्यकता है तहाँ दूसरी ओर जनता [में] उसके ज्ञान के प्रचार की भी बड़ी आवश्यकता है। कृषि-प्र[धान] देश होने के कारण, तथा कच्चे माल की बहुतायत होने [के] कारण, भारतवर्ष व्यापार-उद्योग का प्रभावशाली केन्द्र है। [पर] एक तो व्यापारियों के सुदृढ़ संगठन के अभाव और दूसरे [सर्व-]साधारण के अज्ञान के कारण वह व्यापार-उद्योग में भी पर[दे]शी हो रही है। आशा है, यह औद्योगिक और व्याप[ारिक] कांग्रेस इस दिशा में देश की अच्छी सेवा करेगी। सं०

हृदय के टुकड़े

५

तुम कहाँ हो, ऐ मेरे जीवन-धन ! क्या न मिलोगे, सचमुच न मिलोगे, इस जीवन में ? तुम्हें ढूँढते-ढूँढते आशा की जवानी थक कर प्रातःकालीन दीपक की भांति, मुर्झाये हुए कमल की भांति निर्वाणोन्मुख हो चली है ।

देखो, अधिक नहीं । एक बार, सिर्फ़ एक बार तुम मुझे इतना बता दो कि तुम मेरे हो—मुझे चाहते हो। और, फिर, फ़रहाद की तरह, मजनूँ की तरह, राम की तरह मैं तुम्हें ढूँढूँगा—बन-बन में, पत्ते-पत्ते में ढूँढूँगा और तुम्हें खोज निकालूँगा ।

आह, तुम बोलते क्यों नहीं ? देखो, तुम्हारे हाथ का खिलौना, यह चन्द्र हँस-हँस कर कैसी रस-वर्षा कर रहा है ? पर तुम, चुप हो ।

लोग तुम्हें न्यायी और दयालु कहते हैं ? यह झूठ है, बिलकुल झूठ है । तुम क्या हो, यह मेरे जी से पूछो । तुम क्रूर हो, निष्ठर हो, हृदय-हीन पाषाण हो—हाँ, पत्थर हो, बिलकुल पत्थर ।

हिन्दू जो तुम्हें पत्थर का बना कर पूजते हैं सो कुछ बुरा थोड़े ही करते हैं । मैं समझता हूँ, वे तुम्हें और तुम्हारे हृदय को अच्छी तरह जान गये हैं !

६

मैं देखता हूँ, तुम मुझसे नाराज़ से रहते हो । और नाराज ही नहीं, मैं समझता हूँ, तुम मुझसे दुश्मनी रखते हो ।

मैं जितना ही तुम्हारे नज़दीक आने की कोशिश करता हूँ तुम मुझसे उतना ही दूर भागते हो । मैं तुम्हारे दर्शनों के लिए लालायित हूँ और तुम मुझसे छिपते फिरते हो । मैं तुम्हें समझने की कोशिश करता हूँ और तुम मेरे लिए अनबूझ पहेली बन रहे हो ।

क्या कहा ? मैं बुरा हूँ ? सचमुच बुरा हूँ ? बहुत बुरा हूँ ? अच्छा तो ऐ मेरे अच्छे से साजन, तुम मुझे भी अच्छा बना क्यों नहीं लेते ? तुमने मुझे बुरा बनने ही क्यों दिया ?

यदि तुम मुझसे बोलो, मुझे दर्शन करने दो, मुझे अपने चरणों के पास बैठने दो, तो क्या मैं कभी अच्छा बने बिना रह सकता हूँ ?

७

मैं देखता हूँ, ऐ मेरे अज्ञेय बन्धो ! मुद्दतों से, जन्म-जन्मान्तर से, तुम मुझे अच्छा बनाने की फ़िक्र में हो ।

हाय, कितना अनुनय-विनय किया तुमने, कितना डराया और धमकाया, पर तुम्हारा यह दास तुम्हारे क़ाबू में न आया ।

तुम्हारी वह खीझी हुई मुद्रा, कितनी भली लगती है ! दिल फड़क उठता है देखकर तुम्हारे यह रक्त-रञ्जित लाल कपोल ! और क्या कहूँ, कैसी हैं वह तुम्हारी अनमनी सी आँखें !

तुम्हें ख़ुश करके स्वर्ग का बड़े सा बड़ा सुख और संसार का महान् से महान् वैभव भी मैं पाना नहीं चाहता ।

मोक्ष और मुक्ति ! आह, यह तो थके हुए बालकों को बहलाने के खिलौने हैं ।

मैं तो दिक़ कर करके तुम्हें सदा अपने ही में लीन रखना चाहता हूँ ।

और देखो, प्रियतम ! मेरे इन अनन्त अपराधों को अपनी उदारता के कारण तुम कहीं क्षमा न करने लग जाना !

क्षेमानन्द 'राहत'

—————

हृदय की फुलझड़ी

बच्चा

बच्चे क्या हैं ? हँसते-बोलते चलते-फिरते खिलौने हैं ।

प्रभातकालीन ऊषा की आभा बालक की पेशानी को चूमने आती है, गुलाब की शुगुफ्तगी बच्चे की मुस्कुराहट पर निसार होती है, और कोयल का गान बालक की तोतली बोली में वास करता है ।

हमारी लालसाओं, हमारी भावनाओं का सार यह बालक है । वह हमारी गुह्यतम आकांक्षाओं और गूढ़ातिगूढ़ संस्कारों की प्रतिमूर्त्ति है ।

कौन कहता है कि बालक नादान और नासमझ हैं ? वे जबर्दस्त समीक्षक और गहरे विद्यार्थी हैं ।

ख़बरदार ! भूलकर भी बच्चे के आगे कोई कुचेष्टा न करना । बस, यह समझ लो, तुम्हारी बातों को देखने के लिए भगवान् शिशु के रूप में आ बैठे हैं !

बालक अमीर हो या ग़रीब, वह शहन्शाह है । जो प्रेम के साथ उसका अभिवादन नहीं करता, देखो, उसके हृदय में कुछ ख़राबी तो नहीं है ?

मनुष्य एक बिगड़ा हुआ बालक है, जो अपनेको भूल गया है । वे पवित्र और परमेश्वर के प्यारे बने, जो अपनेको फिर से बालक बनाने में समर्थ हुए ।

बालक, संसार के लिए, हमारा सबसे बड़ा दान है । संसार की सेवा करने का यह एक नया प्रतिज्ञा-पत्र है ।

ऐ मनुष्य ! संसार को बालक से वञ्चित न कर । यदि तूने संसार को यह दान नहीं दिया है, तो तू स्वयं बालक बन !

क्षेमानन्द 'राहत'

पंखड़ियां

अस्त होते हुए रविदेव ने पूछा—रात्रि के समय मेरा कार्य कौन करेगा ? यह सुनकर समस्त विश्व स्तब्ध सा रह गया !

मृत्प्रदीप ने विनय-पूर्वक कहा—दिनेश, आप जाइये, रात को मैं आपका कार्य यथा-शक्ति करूँगा।

* * *

आहुति चाहिए, आहुति ! प्रेम-मन्दिर के पुजारी होना चाहते हो, सच्चे प्रेमी बनना चाहते हो, तो पतङ्ग की तरह आत्मार्पण करो । प्रेम की साधना का दूसरा नाम आत्म-समर्पण है । इसके बिना प्रेम-पुजारी बनना संभव नहीं ।

* * *

यह सरिता न जाने किसके लिए आँसुओं की यह अविरल धारा बहा रही है ! मुझे इस नदी-तट पर बैठ कर भगवान् को अपने दुःखाश्रु अर्पण कर लेने दो ! फिर मैं तुम्हारी बात सुन सकूँगा ।

* * *

इस ग्रामकुटीर का वासी तुच्छ नहीं है । इसे छोटा न समझो । यह मेरे घर को सुख से भर सकता है । मेरा मृत्प्रदीप घर के उस अन्धेरे कोने को प्रकाशित करता है, जहाँ उद्दाम रवि की पहुँच नहीं, चन्द्र-किरणें जहाँ प्रवेश नहीं पा सकतीं ।

* * *

यह जलाशय सूख गया । ग्रीष्म के प्रखर ताप से यह सरोवर नीरस होगया । यह रवि-राजा इसका समस्त रस पी गये । किस लिए ? भरने के लिए ! जग के तृषार्थ जनों को अमृत छकाने के लिए ! वर्षा से धरणी को शस्य-श्यामला बनाने के लिए !

"विजय"
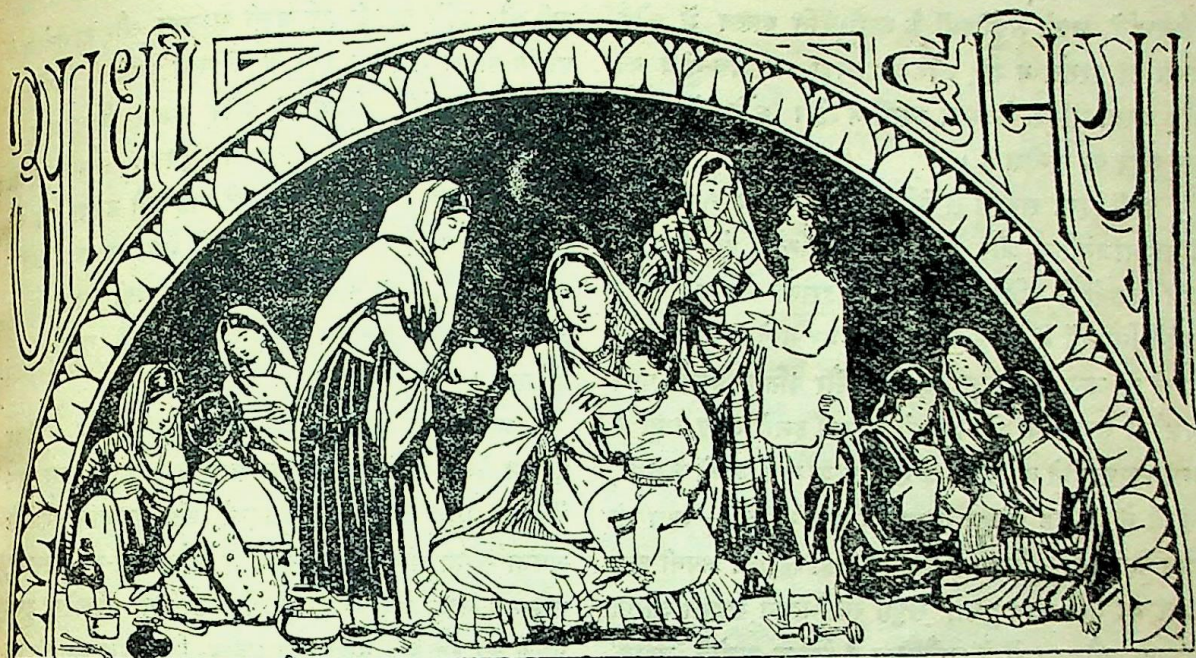
हम जाग उठीं, सब समझ गईं, अब करके कुछ दिखला देंगी ।
हाँ, विश्व-गगन में भारत को, फिर एक बार चमका देंगी ॥

महामाया को जगाओ

"जिस देश अथवा राष्ट्र में नारी-पूजा नहीं, वह देश या राष्ट्र कभी महान् अथवा उन्नत नहीं हो सकता। नारी-रूपी शक्ति की अवगणना करने से ही आज हमारा अध:पतन हुआ है। जहां स्त्रियों का आदर न हो, जहां स्त्रियाँ दु:ख में समय बिता रही हों, उस समाज अथवा देश की उन्नति की आशा रखना दुराशा मात्र है। इसलिए, स्त्रियों को जागृत करना चाहिए। स्त्रियां महामाया की प्रतिमा हैं। जब तक उनका उद्धार न होगा, हमारे देश का उद्धार होना असम्भव है।"

—स्वामी विवेकानन्द

स्त्रियों का प्रश्न

(१)

इस समय संसार में एक ज़बरदस्त लहर आ रही है। सुदूर पश्चिम से यह उठी है, और उत्तर-दक्षिण को व्याप्त करती हुई सुदूर पूर्व तक इसका प्रवाह पहुँच चुका है। कहने वाले इसे स्वाधीनता की लहर कहते हैं। प्रत्येक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की अधीनता से बन्धन-मुक्त हो जाना चाहता है। प्रत्येक जाति दूसरी जाति की अधीनता या उच्चता को अन्तिम नमस्कार कर लेना चाहती है। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के दबाव को उखाड़ फैंकना चाहता है। इसी प्रकार प्रत्येक वर्ग (Sect) दूसरे वर्ग की श्रेष्ठता और आधिपत्य के दावे को नेस्तनाबूद कर देने का इच्छुक है। न्याय, स्वतन्त्रता और समता इस लहर की सर्वतोमुखी गूँज है। मानव समाज परस्पर न्यायपूर्वक

बर्त्ते-बर्त्तावे, अपने सदुद्देश्यों के भलीभाँति पालन में कोई किसी का परतंत्र न रहे, और छोटा-बड़ा या ऊँच-नीच का कोई अस्वाभाविक भेदभाव उसमें न रहे। संक्षेप में, यही इस लहर का सन्देश है।

इसी दिव्य सन्देश से प्रेरित होकर आज तक संसार में कई राजनैतिक और सामाजिक क्रान्तियाँ हो गईं। न जाने कितनों के रुधिर की आहुतियाँ इसकी भेंट चढ़ गईं। कितने निराशों ने इससे आशा का अमर सन्देश पाया। और कितने ही जन्म के पीड़ित, दलित और पतित इसके पुण्य स्पर्श से उद्धार पा गये। राष्ट्रों ने जहाँ इससे अन्य राष्ट्रों से बन्धन-मुक्त होने का पुनीत उत्साह पाया तहाँ, अन्यों के साथ, स्त्रियों ने भी यह निश्चय किया कि हम भी अब—मात्र स्त्री होने के कारण—किसी के दबाव में नहीं रहेंगी। अपनी लुप्त शक्ति का उन्हें भान हुआ, सपुप्त स्वाभिमान सहसा जागृत हो उठा, और पुरुषों के अनौचित्य के विरुद्ध उन्होंने 'जहाद' की आवाज़ उठा दी। उन्होंने कह दिया, कोई पुरुष होने के ही कारण अब हमपर प्रभुत्व न कर सकेगा। इसी का नाम है उनका स्वातंत्र्यभान और आगे चल कर यही स्त्री-स्वातंत्र्य के नाम से प्रचलित हुआ।

प्रतिक्रिया एक स्वाभाविक नियम है। पुरुष-जाति ने सचमुच स्त्रियों पर बड़ा जुल्म किया। उन्हें न केवल अपनी दासी बनाया; बल्कि, अपने स्वार्थों की सिद्धि के अर्थ, उन्हें शिक्षादि जीवनोत्कर्ष एवं स्वावलम्बन के साधनों से भी वंचित कर मात्र 'घर-धन्धे वाली' और पुत्रोत्पत्ति की मशीन बना डाला। नतीजा यह हुआ कि स्त्रियाँ जब चेतीं तो ऐसी चौंक के साथ कि छाछ को भी फूँक मार-मार कर पीने लगीं। पुरुषों के कुव्यवहार ने उनके इस विश्वास को ठेस पहुँचा दी कि अपने हितों की रक्षा के लिए वे पुरुषों के भरोसे निश्चिन्त रह सकती हैं। आश्चर्य नहीं, यदि कुछ के मन में पुरुष मात्र के प्रति घृणा या द्वेश के भाव भी जड़ पकड़ गये हों। इसीलिए न केवल अपने घरेलू और सामाजिक जीवन में उन्होंने स्वतंत्रता की आवाज़ बुलन्द की; बल्कि राजनैतिक मताधिकार और निर्वाचनाधिकार तथा पुरुषों के समान सभी नौकरियों व धन्धों की अ-बाध्य स्वतंत्रता की भी उन्होंने घोषणा करदी।

इसमें शक नहीं कि यह लहर सबसे पहले पश्चिम में उठी और वृद्धिंगत भी हुई उसी सभ्यता और वातावरण के पालन-पोषण में। पर पूरब में भी क्या पुरुषों ने स्त्रियों पर स्वेच्छाचार नहीं किया ? और हमारे हिन्दुस्थान में ही 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' जैसी मनु की शास्त्राज्ञा होते हुए भी क्या हमारे भाइयों ने उनपर कुछ कम ज़्यादतियाँ कीं ? तब हमारे यहाँ भी भला यह लहर क्यों न आती ? नहीं, ऐसा सम्भव न था; और यही कारण है कि हमारे यहाँ भी इसका न केवल प्रवेश बल्कि मूलारोप भी हो गया।

आज हमारे यहाँ भी स्त्री-स्वातंत्र्य की पुकार ज़ोरों पर है। न केवल महिलायें बल्कि समझदार पुरुष भी इस पुकार में उनके साथ हैं। पुरानी रूढ़ियाँ और कुप्रथायें शनैः शनैः अपना रास्ता नापती जा रही हैं और नये-नये सिद्धान्त, नये-नये भाव, नयी-नयी प्रथायें, नये-नये दृष्टिकोण उनमें प्रवेश कर रहे हैं। पुरुषों का दबाव दिनोंदिन कम हो रहा है और घरेलू व सामाजिक तो क्या, राजनैतिक क्षेत्रों में भी वे पैठ रही हैं। यहाँ तक कि राजनैतिक मताधिकार और निर्वाचनाधिकार भी किसी हद तक उन्हें उपलब्ध हो गया है। कितनी सुनहली और आशाप्रद हैं यह बातें !

(२)

स्वतंत्रता ! आह, कितना मधुर शब्द है ! कितना सुन्दर और प्रिय है यह शब्द ! सचमुच स्वतंत्रता ही जीवन है। डा० सण्डरलैण्ड का कथन है—"मनुष्य को स्वतंत्रता दीजिए और फिर देखिए कि सारी अच्छाइयां अपने आप ही, एक के बाद एक, आती चली जायँगी।" स्त्रियों के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है, इसमें शक नहीं। परन्तु, यह तो निश्चय होना चाहिए न कि, आख़िर उनकी स्वतंत्रता का रूप हो क्या ? स्वतंत्रता किससे—पुरुषों से, या उनके और अपने दुर्गुणों से ? और, फिर वह हो किस रूप में ? यह ऐसा प्रश्न है कि स्त्री-स्वातंत्र्य के सभी, स्त्री-पुरुष, समर्थकों का ध्यान तुरन्त और सबसे पहले इसपर आकर्षित होना चाहिए।

इस सम्बन्ध में वैसे तो जितने मुँह उतने ही मत हैं पर मोटे तौर पर हम उन्हें निम्न भागों में विभक्त कर सकते हैं:—

(१) अ-बाध्य स्वतंत्रता—जैसे पुरुष वैसे ही स्त्रियां भी भगवान् की स्वतंत्र सृष्टि हैं। जब पुरुषों को किसी बात की लगाम नहीं तो स्त्रियां ही क्यों किसी बंधन में रहें? सार यह कि पुरुषों को जो-जो उचित-अनुचित अधिकार हैं वे सब ज्यों के त्यों, बिना किसी ननु-नच के, स्त्रियों को भी उपलब्ध हों। पुरुष नौकरियां करें तो स्त्रियां भी कर सकें। पुरुष स्वेच्छाचारी हों तो स्त्रियां भी वैसा ही कर सकें। यहाँ तक कि व्यभिचार आदि की यदि पुरुषों को छूट रहे, वह क्षम्य माना जाय, तो स्त्रियां भी ऐसा करने पर पतित और परित्यक्त न मान ली जायँ।

(२) उचित स्वतंत्रता—स्त्रियां अपनी वर्त्तमान दशा से ऊँची उठें और इतनी ऊँची उठें कि पुरुषों की सम-कक्ष बन जायें। पुरुषों के माने जाने वाले क्षेत्रों में भी वे उनकी समकक्ष बनने का प्रयत्न करें। उनकी दासी हर्गिज़ न रहें, वास्तविक अर्द्धाङ्गिनी बनें। घरेलू और सामाजिक ही नहीं, राजनैतिक क्षेत्रों में भी वे पुरुषों का मुक़ाबला करें। मताधिकार और निर्वाचनाधिकार भी उन्हें मिले और ज़रूर मिले। ग़र्ज़ कि उपर्युक्त, पूर्ण स्वतंत्रता वाले, सारे अधिकार स्त्रियों के लिए उपलब्ध रहें; पर सब उसी सीमा तक कि जहाँ तक वे असदाचार के क्षेत्र में न पहुँचे, समाज-व्यवस्था में बाधक न हों, उच्छृंखलता का रूप धारण न करें। सार यह कि स्वतंत्रता का रूप पुरुषों के समान दर्जा और उनके गुणों की प्राप्ति हो, उनके दुर्गुणों की नक़ल और उच्छृंखलता नहीं।

(३) अल्प स्वतंत्रता—स्त्रियां अपनी उन्नति तो ज़रूर करें; पर पुरुषों की छत्रच्छाया न छोड़ें—रहें उनके अधीन ही। समाज में गौरव प्राप्त रहे, घरू और सामाजिक तथा औचित्य की सीमान्तर्गत राजकीय क्षेत्रों तक में वे बहिष्कृत न मानी जायँ; पर पति के तो सदा ही अधीन रहें। अर्थोपार्जन के धन्धों से उन्हें वास्ता नहीं; बस, खुश रहें अपने चौके-चूल्हे आदि के धन्धों में। पुरुष औचित्य की सीमा का भंग न करें तो अच्छा, कर डाले तो भी चल जाय, पर स्त्री तपा सोना रहे।

यह तो स्वातंत्र्य-वादियों के मत हुए, जिनमें स्त्री-पुरुष दोनों का समावेश है। इसके अलावा कुछ नर-नारी स्वतंत्रता के विरुद्ध भी हैं—इतने विरुद्ध कि यह कल्पना ही उनके लिए पतनोन्मुखी है। उनके लिए स्त्री की परतंत्रता पत्थर की अमिट लकीर है, और उसपर आक्षेप करना भी महा पातक। इसके विपरीत कुछ ऐसे उग्र कि, पुरुषों की ज़्यादती की प्रतिक्रिया-रूप में, स्त्रियों को पुरुषों का मालिक बना देने पर कटिबद्ध। जापान राज्यान्तर्गत मार्शल टापू की नाईं वे चाहते हैं कि यहाँ भी स्त्रियां तो पुरुषों के काम करने लगें और पुरुष स्त्रियों के—सिवा उस एक स्वाभाविक कर्म के, जो कि ईश्वर ने ही भिन्न-भिन्न कर दिया है। कुछ विनोदी जीव तलाक और कोर्टशिप के उदादरण पेश कर अमेरिका में कहीं प्रचलित एक विचित्र—झाड़ू से पुरुषों की पूजा करने की—प्रथा के प्रचलन का भी समर्थन करते हैं।

मतलब यह कि सभी 'अपनी-अपनी डफली और अपना-अपना राग' अलापते हैं। कोई सर्व-सम्मत निर्णय इस सम्बन्ध में अभी तक नहीं हुआ। अतः क्या यह ठीक न होगा कि इस सम्बन्ध में कोई निश्चित विचार तैयार किया जाय?

(३)

इसमें शक नहीं कि पश्चिम में यह स्वतंत्रता अपनी मर्यादा का उल्लंघन कर गई है। स्वतंत्रता और अधिकारों की पुकार में पाश्चात्य नारियों ने मनुष्यगत गुणों को कहाँ तक अपनाया, यह तो निश्चित नहीं; पर मनुष्यों के दुर्गुणों की तो उन्होंने खूब ही नक़ल की है। एक अंग्रेज़ लेखक (Hoarce Newten) ने तो हाल में स्पष्ट कहा है—Indeed, the only use that the women have made of their freedom is to immitate men in their petty vices, the vices that were so freely condemned by the suffragettes. सच तो यह है कि उनकी स्वतंत्रता एक अति को पहुँच गई है, वस्तुतः अब वह स्वतंत्रता नहीं रही, स्वतंत्रता के स्थान पर उच्छृंखलता ने प्रवेश कर लिया है।

अब वे क्या नहीं करतीं? सभी क्षेत्रों में प्रवेशाधिकार प्राप्त कर थोड़ा-बहुत योगदान तो उन्होंने शुरू कर ही दिया है। यहाँ तक कि मनुष्य जहाँ आज दिनों-दिन मद्य-निषेधक होते जा रहे हैं तहाँ वे दिन-दिन शराबिन

बनने में प्रगति कर रही हैं। जिस नस्य-सेवन और धूम्रपान के लिए बेचारे पुरुषों की खूब तीव्र निन्दा की जाती थी उसीमें आज वे पुरुषों से भी बाज़ी ले जाना चाहती हैं। दुःसाहस-पूर्ण (Daring) घटनाओं से परिपूर्ण नाटक-उपन्यासों की अधिकांश खपत उन्हींमें होती है और नाटकवर भी प्रायः उन्हींसे भरे रहते हैं। नित-नये वेशों और शृंगारों का आविष्कार और उपयोग सर्व-सामान्य बात है। फिर समव्यस्क पुरुषों से ख़ास तौर पर प्रेम-संबंधी और काम-विषयक बातों में तो वे और भी अधिक रस लेती हैं। सार यह कि स्वतंत्रता को उन्होंने आत्मोत्कर्ष या आत्म-सुधार का साधन नहीं वरन् पुरुषों की नक़ल और दूसरे शब्दों में कहें तो अ-मर्यादित भोग का साधन बनाया है। हमारा आर्य-आदर्श इससे मेल नहीं खाता; हमारे यहाँ तो भोग नहीं, त्याग वा संयम को श्रेष्ठ माना गया है।

पर इसके विपरीत हमारे यहाँ दूसरी अति है। हमारे यहाँ न केवल उपर्युक्त सभी अधिकार—अ-बाध्य स्वतंत्रता—अभी स्त्रियों के हस्तगत नहीं हुए हैं; बल्कि आज भी अधिकांश स्त्रियां, कम से कम मन से तो, पुरुषों के आधिपत्य से उन्मुक्त नहीं होना चाहतीं। यह ठीक है कि दक़ियानूसी ख़यालातों का क्षेत्र अब बहुत सङ्कीर्ण हो गया है; पर विभिन्न क्षेत्रों में पुरुषों का मुक़ाबला करने की महत्वाकांक्षा अभी हमारे यहां कम ही है। कुछ शिक्षित देवियां ज़रूर मताधिकार और निर्वाचनाधिकार तक पहुँची हैं; पर स्वातंत्र्य के मुख्य साधन स्वावलम्बन पर तो अभी तक उनका भी पर्याप्त ध्यान नहीं गया। अर्थोपार्जन को तो अभी वे भी प्रायः हेय ही समझती हैं। गार्हस्थ्य जीवन को तो ज़रूर बुरा नहीं ही समझना चाहिए; पर सदा-सर्वदा पुरुष की पददलिता दासी और सब मामलों में पुरुष सदा निर्दोष और स्त्री ही सदा दोषी रहने की भावना भी अब तक अनेकों में बद्धमूल है। पुरुषों का अन्याय-अत्याचार आज भी बहुताँश में ज्यों का त्यों जारी है। आज भी हममें से अनेक उन्हें अपनी भोग्य वस्तु—रमणी—पुत्रोत्पत्ति की मशीन-मात्र समझते और बनाये हुए हैं। संयम ने गुप्त व्यभिचार का रूप धारण कर लिया है और त्याग एवं समर्पण की भावना ने उनके सर्व सुखों और आनन्दों का ही उनसे त्याग और समर्पण करा लिया! फलतः न तो आज हमारा गार्हस्थ्य जीवन ही पहले जैसा शान्त और सुखी रहा, और न हममें व उनमें पूर्व का वह बल ही रह गया। कुप्रथायें न केवल दूर ही नहीं हुईं; बल्कि नित-नयी समस्यायें और उठती जा रही हैं। तीतर-बटेर स्थिति है। न इस पार का ठीक, न उस पार का ठिकाना।

ऐसी दशा में क्या किया जाय? और क्या हो हमारी माताओं व बहनों की स्वतंत्रता का रूप? इसमें रंच-मात्र सन्देह नहीं कि उनकी और पुरुषों की जन्म-क्रिया में कोई भेद नहीं, एक ही तरह दोनों संसार की रंग-भूमि में उतरते, पलते और अन्त में लोप होते हैं। इसलिए कोई कारण नहीं कि पुरुषों के समान स्त्रियां भी क्यों न बन्धन-हीन रहें। स्वेच्छाचार और अपने कर्मों का आत्म-निर्णय यदि पुरुषों के लिए अनुचित नहीं तो स्त्रियों के लिए भी वह क्यों न उचित हो? रंगमंच पर दोनों समान खिलाड़ी हैं और दोनों ही के साथ एक व्यवहार होना चाहिए।

यह सब बातें सुन्दर हैं और तर्क-सम्मत भी, इसमें सन्देह नहीं। पर इसके साथ ही, जैसा कि आचार्य ध्रुव ने प्रकट किया है, हमें यह भी तो न भूल जाना चाहिए कि 'स्त्रीत्व' के रूप में उनके कोई बात ऐसी भी है कि जो पुरुषों से उन्हें भिन्न बनाये हुए है। साथ ही इसके स्वतंत्रता परतंत्रता का विचार करते समय समाज की व्यवस्था पर भी तो लक्ष्य रखना होगा। पुरुष हो या स्त्री, स्वतंत्रता और सम्ब-न्धों तथा कार्यों का फ़ैसला तो उनकी विशेष परिस्थिति का ख़याल रखते हुए इसी दृष्टि से न होगा कि समाज की व्यवस्था कैसे दृढ़ और सुन्दर रह सकती है, मनुष्य-समाज कैसे सुखी और सन्तुष्ट हो सकती है, सांसारिक लक्ष्यों तक नहीं प्रत्युत् आध्यात्मिक और अपने अंतिम लक्ष्य—मोक्ष तक नर-नारी कैसे पहुँच सकते हैं?

इन सब बातों पर विचार करने पर पश्चिम के नारी-स्वातन्त्र्य का अन्ध-अनुकरण तो कम से कम हमारे देश के लिए उपयुक्त नहीं जँचता, और न हमारे यहाँ प्रचलित वर्त-मान दशा पर ही सन्तोष किया जा सकता है। इन दो अतियों के बीच हम अपना कोई नया और श्रेष्ठ मार्ग खोज निकालें, वही ठीक है। इसके लिए स्त्री पुरुषों के वर्त्तमान दृष्टिकोण—गुलाम-मालिक की भावना में तो अव

ही ज़बरदस्त परिवर्त्तन होना चाहिए । स्त्री पुरुष के अन्तर्गत तो रहे, क्योंकि बिना किसी एक वर्ग के दूसरे वर्ग के अंतर्गत रहे उच्छृंखलता फैलने का भय है, पर उसकी दासी होकर नहीं—उसकी अर्द्धाङ्गिनी बनकर । हाँ, अर्थोपार्जन की योग्यता उसमें ज़रूर आनी चाहिए; यह उसमें आई नहीं कि फिर पुरुष-जाति अपने आप उसपर कोई अन्याय-अत्याचार करने का साहस नहीं कर सकेगी । स्त्री-जाति पर पुरुष जो अन्याय करते हैं उसका एक ज़बरदस्त कारण उनकी स्वयं अर्थोपार्जन करने की उपयुक्तता और स्त्रियों का उससे हीन होना भी है । यह ठीक है कि यह क्रम जब आरम्भ हुआ होगा उस समय समाज-व्यवस्था के सुचारुत्व के लिए ही ऐसा किया गया होगा, और यह भी ग़लत नहीं कि स्त्रियों का काम भी पुरुषों के काम से कम महत्वपूर्ण नहीं। परन्तु सांसारिक दृष्टिकोण में अर्थोपार्जन की ही प्रधानता है और इसलिए पुरुषों के अनुचित दबाव से बचने के लिए स्त्रियों में यह योग्यता भी आनी ही चाहिए—फिर चाहे वे इसका उपयोग न करें और आड़े वक्त के लिए ही उसे सुरक्षित रक्खें। संयम बड़ी अच्छी चीज़ है, स्त्रियों को भूल कर भी इसका परित्याग न करना चाहिए; पर यह भी उनके स्वावलम्बन—अर्थोपार्जन—की योग्यता पर ही बहुत कुछ निर्भर करता है। नहीं तो, कौन नहीं जानता कि अनेक बहनों को असहायावस्था में पड़ जाने पर संयम की इच्छा होने पर भी, अर्थोपार्जन की असमर्थतावश, अ-संयम का आश्रय लेने पर बाध्य होना पड़ता है ? पुरुषों के समान अ-बाध्यता भी सभी क्षेत्रों में उन्हें मिले—पर उसी हद तक, जहाँ तक कि उससे सदाचार के नियमों का भंग न होता हो और उनमें उच्छृंखलता उत्पन्न हो कर समाज-व्यवस्था को कोई हानि न पहुंचती हो। इस विषय में स्त्रियों का द्रष्टिकोण यह होना चाहिए कि वे पुरुषों के दुर्गुणों को नहीं, सद्गुणों को अपनावें ।

हाँ, एक भय है । स्वतंत्रता की वर्त्तमान भावना इसके कहाँ तक उपयुक्त है, यह प्रश्न है । स्वतंत्रता तो अच्छी; पर, पश्चिम के अनुकरण से, इसके लिए अधिकारों की जो पुकार उठाई जाती है वह हमारी समझ में ठीक नहीं । अधिकारों की भूख तो उच्छृंखलता की प्रेरक है, उसका कहीं अंत नहीं, और न सीमा ही है । आर्य-आदर्शानुसार तो वास्तविक स्वतंत्रता स्व-कर्त्तव्यों के पालन में हैं । गीता के उपदेश का यही सार है । यही ठीक है, इसकी सीमा भी है, और यही विधायक और श्रेयस्कर भी है । इस सम्बंध में, हो सका तो, फिर कभी विचार किया जायगा । इस समय तो यही कहना है कि भारतीय स्त्रियाँ अधिकारों की पुकार के बजाय कर्त्तव्यों के पालन की महत्वाकांक्षा रक्खें, तभी उन्हें वास्तविक स्वतंत्रता का सुख मिलेगा, उनका गार्हस्थ्य जीवन सुखमय होगा, और हमारी समाज-व्यवस्था सुचारु एवं सुदृढ़ होगी ।

पर, यह तो हुईं बड़ी-बड़ी बातें । इनकी पूर्त्ति में तो काफ़ी समय और प्रयत्न अपेक्षित है । इनके अलावा निम्न छोटी-मोटी बातों पर तो उन्हें तुरंत और शीघ्र निश्चय करना चाहिए—

(१) बाल-विवाह एकदम और बिलकुल रोका जाय ।

(२) विधवा विवाह को आदर्श चाहे न बनाया जाय; पर जो विधवा वैधव्य के बजाय गार्हस्थ्य की आकांक्षा रक्खे उसको विवाह करने की पूरी और अपमान-रहित छूट दी जाय ।

(३) विधवाओं को अमङ्गल-रूप नहीं, वंदनीय माना जाय ।

(४) बाल, वृद्ध या बेमेल विवाह के फलस्वरूप होने वाली अल्पायु एवं अक्षत-योनि विधवाओं को तो विधवा माना ही न जाय ।

(५) दोनों की सलाह और पसन्दगी से विवाह होने की प्रथा एकदम न भी डाली जा सके तो भी बेमेल विवाह तो हर्गिज़ होने ही न दिया जाय ।

(६) जाति-बन्धन की मर्यादा तोड़ना आदर्श नहीं माना जाय तो भी अपमान की बात तो हर्गिज़ न रहे ।

(७) वर्ण-संकर बालकों के दोष का दण्ड बालकों के बजाय उन्हें उत्पन्न करने वालों को दिया जाय ।

(८) सास-नन्दों के झगड़े आदि गार्हस्थ अशान्ति की बातों को सुशिक्षा के द्वारा निवारण किया जाय ।

(९) गार्हस्थ्य, आर्थिक और पारमार्थिक लक्ष्यों की सिद्धि की दृष्टि से—सम्पूर्ण बनने के लिए—शिक्षा का उचित और पूर्ण प्रबन्ध किया जाय ।

(१०) परदे आदि कुप्रथाओंका पूर्ण परित्याग किया जाय। लज्जा ज़रूर प्रधान गुण रहे, पर विकृत रूप में और दिखावटी हर्गिज़ नहीं।

(११) क़ानून आदि में जो अपमानपूर्ण विधान हैं, उनका संशोधन किया जाय।

(१२) देवदासी जैसी प्रथाओं का उन्मूलन तुरन्त किया जाय।

(१३) दिखावटी धार्मिकता के बजाय वास्तविक धार्मिकता—शुद्ध, सात्विक प्रेम और सेवा के भावों का प्रसार हो।

(१४) बाल-पालन आदि की उत्तम और व्यावहारिक शिक्षा पर पूरा ध्यान दिया जाय।

(१५) पुरुषों पर निर्भरता दिन-दिन कम कर स्वावलम्बन की वृत्ति का दिन-दिन ग्रहण किया जाय।

(१६) मजूरी करने वाली स्त्रियों की सुविधाओं की व्यवस्था की जाय।

(१७) क्षुद्र स्वार्थ नहीं, मानव-हित उनका अन्तिम लक्ष्य हो।

इन बातों पर ध्यान दिया गया तो कौन कह सकता है कि भारतीय देवियों की दशा आज से कहीं अच्छी न हो जायगी? फिर किसकी ताक़त जो, उनका अपमान तो दूर, उनकी तरफ़ आँख उठा कर भी देख सके? अतः भारतीय देवियो! उठो, जागो, स्वलक्ष्य को सिद्ध करो। संसार को बता दो कि अब आप रमणी नहीं, अबला नहीं, नारी और वास्तविक अर्द्धाङ्गिनी हैं। इसीमें आपका, पुरुष-समाज का, और समष्टि रूप से हमारे प्यारे स्वदेश भारत का हित है।

मुकुटबिहारी वर्मा

आदर्श महिला

आदर्श महिला सुख-शक्ति-कारी।
संजीवनी सी भवताप-हारी॥
होके क्षमा-मयि महतीक्ष्मा सी।
हो जाइए हाँ, दिव्याङ्गना सी॥

जान्हवीदेवी भटनागर

स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध

स्त्री संसार भर में सौन्दर्य का प्रतिबिम्ब और मनुष्य ताक़त का। संसार [में] दो ही चीज़ें प्राप्त करने और भोगने के योग्य हैं— सौन्दर्य और ताक़त। विद्या, ज्ञान, तप और भ[क्ति] आदि सब इसीमें आ जाते हैं। जो मनुष्य सौन्द[र्य] का अनुभव करके उससे आनन्द प्राप्त नहीं कर सक[ता] और जिसमें ताक़त नहीं है उसका संसार में आ[ना] व्यर्थ है। इसलिए सदैव मनुष्यों के समूहों ने स्त्री [को] अनमोल पदार्थ समझा है और उसकी रक्षा त[था] शृङ्गार के लिए और उससे आनन्द प्राप्त करने के लि[ए] नाना प्रकार के साधन बर्ते हैं। बाज़ जातियों की [...] सभ्यता में औरतों को अधीन रखने में ही यह आन[न्द] प्राप्त हो सकता है; अन्य जातियों ने इस तत्व [को] समझा है कि स्त्री को उसके अधिकार देने से या [उस] के अधिकार स्वीकार कर लेने से ही अधिक आनन्द प्राप्त होता है और अधिक बल आता है। बल औ[र] बुद्धि दोनों और आनन्द भोगने की शक्ति यह बहु[त] दर्जे तक माता से प्राप्त होती हैं। यह नियम बिलकु[ल] सच्चा है कि जैसी मातायें होती हैं वैसी ही उन[की] सन्तान भी होती है। कहीं-कहीं व्यक्ति-रूप से जन्[म] के बाद भी असाधारण साधनों से पैदायश की क[म]ज़ोरियाँ दूर हो जाती हैं, परन्तु यह ज़ाहिर है कि [जो] मनुष्य पैदायश से बलवान् और बुद्धिमान् हों उन[को] भी अगर ऐसे ही असाधारण साधन प्राप्त हों तो [वे] अवश्यमेव उन लोगों से ज्यादा बलवान् और सु[ख] भोगने के योग्य होंगे, जो जन्म से कमज़ोर पैदा हु[ए] हैं। संसार भर की बुराइयों में कमज़ोरी, शारीरिक [हो] अथवा मानसिक, सबसे ज्यादा ख़राब है। यह मनु[ष्य] को कमीना, पाजी, बुज़दिल, लालची, चुग़लख़ोर और बदमाश बना देती है। दुर्बल आदमी कभी संसार [में] महान् कार्य कर नहीं सकता। हिन्दुस्थान में हम

सदियों से अपनी बेड़ियां काटने का प्रयत्न करते रहे परन्तु हमको उस कार्य में सफलता प्राप्त नहीं होती; क्योंकि माताओं से जो बल हमको मिलना चाहिए, वह ऐसा क्षुद्र और लघु है कि हमारे कार्य और सफलता के लिए काफ़ी नहीं हो सकता। ऐसी अवस्था में हिन्दू-जाति के लिए सबसे प्रथम और सबसे महान् कार्य यह है कि वह अपनी स्त्री-जाति में बल और बुद्धि की वृद्धि का प्रबन्ध करे। इस कार्य के लिए दो मार्ग हैं; एक तो हिन्दुओं की प्राचीन सभ्यता का और दूसरा पश्चिम की नवीन सभ्यता का। बहुत सी बातों में दोनों सभ्यताओं का एक ही आदर्श है, परन्तु कई बातों में उनका भिन्न भिन्न भाव है। इस समय हमारे सामने यह प्रश्न है कि हम क्या करें। मेरी राय में गुज़रा हुआ ज़माना कभी वापिस नहीं आता और न आ ही सकता है। हम उसके इतिहास से और अनुभव से लाभ उठा सकते हैं, परन्तु पूर्ण रूप से पुनः उसको स्थापित करना असम्भव है। कोई वजह मालूम नहीं होती कि इस समय दुनिया में जो सभ्यता प्रचलित है उससे हम फ़ायदा क्यों न उठायें? इसके सम्बन्ध में भी मेरी यह राय है कि दूसरों की नक़ल करने से कोई जाति अपना उद्धार नहीं कर सकती और पूरी नक़ल करनी भी नामुमकिन है। परिणाम यह होता है कि आधे तीतर और आधे बटेर रह जाते हैं। इसमें भी कुछ हानि नहीं कि अगर आधे तीतर का अच्छा हिस्सा और आधे बटेर का भी अच्छा हिस्सा हमारे अन्दर आ जाय। परन्तु प्रायः यह देखने में आता है कि नक़ल करने वालों में नक़ल किये गये मनुष्यों या जातियों के अच्छे भाव पैदा नहीं होते। प्रायः बुरे भाव आ जाते हैं। इसलिए जहाँ हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम पश्चिम की नवीन सभ्यता से फ़ायदा उठाने में संकोच न करें वहाँ हमारा यह भी कर्त्तव्य है कि हम नक़ल करते समय नक़ल किये जाने वाले स्वभावों के अच्छे और बुरे होने की अच्छी तरह से जाँच कर लेवें।

पश्चिम में इस समय मनुष्यों और स्त्रियों के परस्पर सम्बन्ध में बड़ा आन्दोलन चल रहा है। मिस मेयो ने अपनी किताब में हमारे ऊपर यह दोष लगाया है कि हम बचपन से ही कामोत्तेजक (Sex stimulus) वायु-मंडल में रहते हैं। यह दोष बिलकुल मिथ्या नहीं है, परन्तु यूरोप में यह दोष हमसे भी ज़्यादा पाया जाता है। भेद केवल इतना ही है कि वहाँकी सभ्यता और वहाँकी राजनैतिक नीति ने ऐसा प्रबंध कर दिया है कि इस दोष के कारण उनके बल और बुद्धि में इतनी हानि नहीं होती, जितनी हमारे में होती है। कामोत्तेजन दुनिया में से उस समय तक दूर नहीं हो सकता, जब तक मनुष्य मनुष्य हैं और स्त्रियां स्त्रियां हैं। पश्चिम के लोगों ने इस रहस्य को समझ लिया है कि जब तक मनुष्य और स्त्रियों के सम्बन्ध को नियमबद्ध नहीं किया जायगा तब तक आइन्दा की उन्नति की स्थिति (Durability) नहीं हो सकती। हमारे प्राचीन बड़ों ने इस रहस्य को भी ख़ूब समझ लिया था। हमने आजकल इसको भुला दिया है। समाज-संशोधन के लिए इससे अधिक महत्व का कोई प्रश्न नहीं है। हिन्दू-जाति की स्थिति और उन्नति इसी प्रश्न के ठीक हल करने पर निर्भर है। यह काम कठिन है और जल्दी नहीं होगा, परन्तु पढ़े-लिखे लोगों को यह समझ लेना चाहिए कि बिना समाज-संशोधन के बल और बुद्धि की प्राप्ति नहीं होगी। और बल और बुद्धि के बिना स्वराज्य भी नहीं मिलेगा। इसलिए यह आवश्यक मालूम होता है कि स्त्रियों और पुरुषों के सम्बन्ध के मुतल्लिक़ पढ़े-लिखे लोग विचार करें और इस विषय के सम्बन्ध में जो कुछ उनको मालूम हो उसका अच्छी तरह प्रचार करें। *

लाजपतराय

---

* पूज्य लालाजी ने 'सोहागरात' नामक पं० कृष्णकान्त मालवीय-लिखित पुस्तक की भूमिका के लिए लिखा यह लेख हमें 'त्यागभूमि' के लिए भेजने की कृपा की है। —सम्पादक

गृह-सौन्दर्य

गार्हस्थ्य और मातृत्व ऐसे कार्य हैं, जिनसे अधिकांश स्त्रियों को काम पड़ता है। और ये दोनों ही जीवन के महानतम कार्य हैं; क्योंकि गृहिणी या माता के रूप में अच्छे कार्य करने की ज़बरदस्त शक्ति उनके हाथ में होती है।

इसमें शक नहीं कि एक आदर्श गृह में यह सबसे मुख्य बात है कि पति और पत्नी के बीच हार्दिक सहयोग और सम्मिलित-कार्य करने का भाव रहे। यही गार्हस्थ्य सुख और आनन्द की कुञ्जी है। ऐसा होने पर ही घर सुख और स्वास्थ्य की रश्मियों का अभिवर्षण करने वाला शान्ति-स्थल बन सकता है कि जिससे न केवल कुटुम्ब के प्रत्येक मनुष्य को ही बल्कि उसके आतिथ्य का सौभाग्य प्राप्त करने वालों को भी लाभ पहुँचता है।

पर यह ज़रूरी नहीं कि घर के काम-धन्धे में ही वे सारे दिन लगी रहें। घर के प्रबन्ध की सुघरता के लिए आधुनिक गृह-स्वामिनी को चाहिए कि अपना कुछ समय वह दूसरे उपयोगी कामों के लिए भी रक्खे—जब कि अपना घर का काम-काज उसी प्रकार बल्कि उससे भी अधिक अच्छी तरह करती रहे, जैसा कि सारे दिन रसोई आदि में लगी रहने वाली स्त्रियां करती हैं।

ईश्वर के बाद दूसरा नम्बर सफ़ाई का है—इस महान् सत्य को हमेशा ध्यान में रखना चाहिए। और ख़ूबसूरती, आराम, सुविधा, तन्दुरस्ती तथा किफ़ायत के साथ-साथ मकान को आरोग्य-दृष्टि से साफ़-सुथरा रखने पर भी विशेष ध्यान देना चाहिए।

रसोई को हेय कार्य मानने की जो पुरानी धारणा है, वह अब नहीं रही। दूसरे भ्रामक विचारों के साथ अब इसका भी ख़ात्मा हो गया है।

जीते रहने और अधिक अच्छाई के साथ का[म] कर सकने के लिए हमें खाना चाहिए; और, इसलि[ए] जो कोई स्वादिष्ट, पोषक और उपयुक्त भोजन क[र] सकता है वह निस्सन्देह एक कलाविज्ञ ही है।

यहाँ पर कुछ विचारणीय बातें दी जाती हैं, [जो] अनुभव से बड़ी सहायक सिद्ध हुई हैं जैसे—

इस बात पर ख़ास ध्यान देना चाहिए कि दू[ध] कहाँ से आता है। दूध को छानने के बाद ढक[कर] किसी ठण्डी जगह में रखना चाहिए।

बाज़ार की बनी हुई वे चीजें जिन पर धूल पड़[ती] है और मक्खियां भिनकती रहती हैं, कभी न खा[नी] चाहिएँ।

मच्छरदानियों का इस्तेमाल करना चाहिए। इस[से] मच्छर तंग न कर सकेंगे और गहरी व आराम[की] नींद आयगी। इस बात का पूरा ख़याल रक्खो [कि] घर के आस-पास कहीं कोई गन्दा या रुका हुआ पा[नी] न रहे; क्योंकि, उससे मच्छर इकट्ठा होते और पो[षण] पाते हैं।

अगर किसी ऐसे स्थान पर रहना पड़े कि [जहाँ] नालियां खुली हुई हों तो किसी कृमि-नाशक दवा[ई के] घोल से उन्हें नित्य धुलवा कर साफ़ कराना चाहि[ए]।

घर में सब जगह ताज़ा हवा के प्रवेश [के लिए] खिड़की-झरोखों की बाक़ायदगी पर ध्यान र[खना] चाहिए। और, जहाँ तक हो सके, दर्वाज़ों के आ[गे] या बराम्दों में ही सोना अच्छा है।

प्रारम्भिक शुश्रूषा की दवाइयों का बक्स [जिसमें] जिसमें तमाम बोतलें और गोलियां सावधानी [और] व्यवस्था के साथ मौजूद हों, आवश्यकता के स[मय] प्रायः बड़ा उपयोगी सिद्ध होता है।

पीतल-ताम्बे के बर्त्तनों को चूल्हे-अंगीठी की [राख] से माँज कर साफ़ करना चाहिए, मिट्टी से न[हीं]

मिट्टी लाने वाले नासमझ नौकर अक्सर गन्दी जगहों से मिट्टी ले आया करते हैं।

पाश्चात्य टूथब्रश और पेस्ट से दाँत साफ़ करने की अपेक्षा नीम या दूसरी कोई कड़वी दतौन करना न केवल आर्थिक बल्कि रोग-निवारण और स्वास्थ्य की दृष्टि से भी कहीं ज्यादा उपयोगी है।

मसूढ़ों को स्वस्थ बनाये रखने के लिए थोड़े नमक से नित्य उन्हें मलते रहना बड़ा उपयोगी है।

मौसम खत्म होने पर कपड़ों को जब रक्खा जाय तो बजाय फ़िनाइल की गोलियों के उनके बीच-बीच में नीम के सूखे पत्ते रखना कहीं उपयोगी और किफ़ायत की बात होगी।

स्कूल छोड़ने के साथ ही शिक्षा की भी इतिश्री न हो जानी चाहिए। हर रोज़ कुछ समय लिखने-पढ़ने और मनन करने में भी लगाना चाहिए। इससे दिमाग़ तो बढ़ेगा ही, साथ ही वे पति और बच्चों की उपयोगी सहायक भी बनेंगी।

गृह-स्वामिनी को इस बात का हमेशा ख़याल रखना चाहिए कि उसका मुख्य कर्तव्य और खुशी इसी बात में है कि मकान को सच्चा घर, दिव्यस्थल और प्रेम का अमर निवास बना दे।

कला हमारे दैनिक जीवन का एक अंग होनी चाहिए और गृह-व्यवस्था के साथ-साथ जहाँ कहीं बड़ी सुन्दरता के साथ यह व्यक्त की जा सके हमारे हर-एक कार्य में मौजूद रहनी चाहिए।

सौन्दर्य तो मानों जीवन की आत्मा ही है। और योग्यता और सौन्दर्य का विचार हमेशा इसी प्रकार करना चाहिए, कि उनका बड़ा अच्छा और सुघर असर पड़ता है।

बच्चे क्या हैं, मानों छोटी-छोटी मानवी कलियां। अपने घर के वातावरण में जो कुछ भी सुन्दरता उन्हें मिलती है, निश्चय ही, तुरन्त वे उसके गहरे सम्पर्क में आ जाते हैं।

परन्तु भारत की ही अनेक ऐसी सुन्दर वस्तुयें हैं कि जिनपर कुछ ख़र्च नहीं होता। उन्हें छोड़कर सस्ती पश्चिमी चीज़ों को घर सजाने के लिए खरीदना बड़ी भारी ग़लती है।

पोशाक में और आस-पास की चीज़ों में सानुकूल रंगों का मिश्रण हमारे स्वास्थ्य और मस्तिष्क दोनों ही पर बड़ा ज़बरदस्त प्रभाव डालता है।

रंग-बिरंगी सुन्दर और शानदार साड़ियां तथा पगड़ियां अधिकतर दिखाई पड़नी चाहिएँ और साथ ही हमें यह याद रखना चाहिए कि सुन्दर भारतीय स्लीपरों से भारतीय वेश-भूषा में सुन्दरता और आराम की वृद्धि होती है।

संगीत और कला बच्चों की शिक्षा का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग होना चाहिए।

अगर घर में और कोई बुद्धि-वर्द्धक ज़रिया न हो तो यह अच्छा होगा कि एक फ़ोनोग्राफ़ बाजा लेकर कुछ उत्तमोत्तमत गीत चुन लिये जायँ। इससे बच्चों के कानों को न केवल शिक्षा और सर्वोत्तम संगीत की जानकारी ही मिलती है, वरन् यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि संगीत का स्वास्थ्य-विधायक मूल्य भी होता है और इससे शारीरिक और मानसिक प्रक्रियाओं में बड़ी सहायता मिलती है और आत्मा पर बड़ा ही स्फूर्तिप्रद असर होता है।

घर राष्ट्र का पालना है। प्रेमल और बुद्धिमान माता वह है जो ऐसे आध्यात्मिक आदर्शों पर अवलम्बित नैतिक उपदेश देती है कि जिनका बच्चे के चरित्र पर चिरस्थायी प्रभाव पड़े।

घर एक ऐसी जगह होनी चाहिए कि सारे सद्गुण जहाँ से पैदा हों और मानव समाज की सेवा के लिए फलें-फूलें।

जैसा कि एक कवि ने बड़ी सुन्दरता के साथ कहा है—"घर प्रेम, आनन्द, शान्ति और समृद्धि का एक ऐसा आश्रय है कि जहाँ आश्रय देने वाले और आश्रित जन, सुसंस्कृत मित्र और प्रिय बंधुगण, सभी एक साथ मिलकर आनन्द का रसास्वादन करते हैं।

सुवीरादेवी शास्त्री

पतीव्रत-धर्म

आशा है, इस लेख के नाम से हमारी बहनें खुश होंगी। ख़ास कर वे बहनें, जिनकी यह शिकायत है कि प्राचीन काल के पुरुषों ने स्त्रियों को हर तरह दबा रक्खा। और वे पुरुष, सम्भव है, लेखक को कोसें, जिन्हें स्त्रियों को अपनी दासी समझने की आदत पड़ी हुई है। यह बात, कि किसने किसको दबा रक्खा है, एक ओर रख दें, तो भी यह निर्विवाद सिद्ध और स्पष्ट है कि आज स्त्री और पुरुष के सम्बन्ध पर और उनके मौजूदा पारस्परिक व्यवहार पर नये सिरे से विचार करने की आवश्यकता उपस्थित हो गई है। स्त्री और पुरुष यह दो परस्पर-पूरक शक्तियाँ हैं और उनका पृथक्-पृथक् तथा सम्मिलित बल और गुण व्यक्ति और समाज के हित और सुख में लगना अपेक्षित है। यदि दोनों के गुणों और शक्तियों का समान विकास न होगा, तो उनका पूरा और उचित उपयोग न हो सकेगा। पक्षी का एक पंख यदि कच्चा या कमज़ोर हो, तो वह अच्छी तरह उड़ नहीं सकता। गाड़ी का एक पहिया यदि छोटा या टूटा हो, तो वह चल नहीं सकती। हिन्दू-समाज में आज पुरुष कई बातों में स्त्रियों से ऊँचा उठा हुआ, आगे बढ़ा हुआ, स्वतंत्र और बलशाली है। धर्म-मन्दिरों में उसीका जय-जय-कार है, साहित्य-कला में उसका आदर-सत्कार है, शिक्षा-दीक्षा में भी वही अगुआ है। स्त्रियों को न पढने की स्वतंत्रता और सुविधा, न घर से बाहर निकलने की। परदा और घूँघट तो नाग-पाश की तरह उन्हें जकड़े हुए हैं। चूल्हा-चौका, धोना-रोना, बाल-बच्चे, यह हिन्दू स्त्री का सारा जीवन हैं। इस विषमता को दूर किये बिना हिन्दू-समाज का कल्याण नहीं। देश और काल के ज्ञानी पुरुषों को चाहिए कि वे स्त्रियों के विकास में अपना क़दम तेज़ी से आगे बढ़ायें। जहाँ तक लब्ध-प्रतिष्ठ, बलवान् और प्रभावशाली व्यक्ति के दुर्गुणों से सम्बन्ध है, हिन्दू-पुरुष हिन्दू-स्त्री से बढ़-चढ़ कर है, और जहाँतक अन्तर्जगत् के गुण और सौंदर्य से सम्बन्ध है, वहाँ तक, स्त्रियाँ पुरुषों से बहुत आगे हैं। पुरुषों का लौकिक जीवन अधिक आकर्षक है, उपयोगी है; व्यक्तिगत जीवन अधिक दोष-युक्त, नीरस और कलुषित है। अपने सामाजिक प्रभुत्व से वह समाज को चाहे लाभ पहुँचा सकता हो, पर व्यक्तिगत विकास में वह पीछे पड़ गया है। विपक्ष में स्त्रियों के उच्च गुणों का उपयोग देश और समाज को कम होता है; परन्तु व्यक्तिगत जीवन में वे उनको बहुत ऊँचा उठा देते हैं। अपनी बुद्धि-चातुरी से पुरुष सामाजिक जगत् में कितना ही ऊँचा उठ जाता है, व्यक्तिगत जीवन उसका भोग-विलास, रोग-शोक, भय-चिन्ता में समाप्त हो जाता है। स्त्रियों की गति समाज और देश के व्यवहार-जगत् में न होने के कारण, उनमें सामाजिकता का अभाव पाया जाता है। अतएव अब पुरुषों के जीवन को अधिक व्यक्तिगत और पवित्र बनाने की आवश्यकता है, और स्त्रियों के जीवन को सामाजिक कामों में अधिक लगाने की। पुरुषों और स्त्रियों के जीवन में इस प्रकार सामञ्जस्य जब तक न होगा, तब तक, न उन्हें सुख मिल सकता है, न समाज को।

यह तो हुआ स्त्री-पुरुषों के जीवन का सामा-

प्रश्न। अब रहा उनके पारस्परिक संबंध का प्रश्न। मेरी यह धारणा है कि स्त्री, पुरुष की अपेक्षा, अधिक वफ़ादार है। पुरुष एक तो सामाजिक प्रभुता के कारण और दूसरे अनेक प्रकार के भले-बुरे लोगों और वस्तुओं के सम्पर्क के कारण अधिक बेवफ़ा हो गया है। स्त्रियाँ व्यक्तिगत और गृह-जीवन के कारण स्वभावतः स्वरक्षणशील अतएव वफ़ादार रह पाई हैं। पर अब हमारी सामाजिक अवस्था में ऐसा उथल-पुथल हो रहा है कि पुरुषों के जीवन अधिक उच्च, सात्विक और श्रेष्ठ एवं वफ़ादार बने बिना समाज का पाँव आगे न बढ़ सकेगा। अब तक पुरुषों ने स्त्रियों के कर्त्तव्यों पर बहुत ज़ोर दिया है। उनकी वफ़ादारी, पातिव्रत हमारे यहाँ पवित्रता की पराकाष्ठा मानी गई है। अब ऐसा समय आ गया है, कि पुरुष अपने कर्त्तव्य की ओर ज्यादा ध्यान दें। व्यभिचारी, दुराचारी, आक्रामक, अत्याचारी पुरुष के मुँह में अब पातिव्रत-धर्म की बात शोभा नहीं देती। हमारी माताओं और बहनों ने इस अग्नि-परीक्षा में तप कर अपने को शुद्ध सुवर्ण सिद्ध कर दिया है। अब, पुरुष की बारी है। अब उसकी परीक्षा का युग आ रहा है। अब उसे अपने लिए पत्नीव्रत-धर्म की रचना करना चाहिए। अब स्मृतियों में, कथा-वार्ताओं में, पत्नीव्रत-धर्म की विधि और उपदेश होना चाहिए। पत्नीव्रत धर्म के मानी हैं पत्नी के प्रति वफ़ादारी। स्त्री अब तक जैसे पति को परमेश्वर मान कर एकनिष्ठा से उसे अपना आराध्यदेव मानती आई है, उसी प्रकार पत्नी को गृहदेवी मान कर हमें उसका आदर करना चाहिए, उसके विकास में हर प्रकार सहायता करनी चाहिए, और सप्तपदी के समय जो प्रतिज्ञायें पुरुष ने उसके साथ की हैं, उनका पालन एकनिष्ठा-पूर्वक होना चाहिए।

इस प्रकार स्त्री-जीवन को समाजशील बनाये बिना, और पुरुष-जीवन को पत्नीव्रत धर्म की दीक्षा दिये बिना हिन्दू-समाज का उद्धार कठिन है। हर्ष की बात है कि एक ओर पुरुष अपनी इस त्रुटि को समझने लग गया है और दूसरी ओर स्त्रियों ने भी अपनी आवाज़ उठाई है। इसका फल दोनों के लिए अच्छा होगा, इसमें सन्देह नहीं।

हरिभाऊ उपाध्याय

स्त्रियों की ओर से-

आज भारत के कोने-कोने से स्त्री-सुधार, स्त्री-स्वातन्त्र्य और स्त्री-शिक्षा की आवाज़ सुनाई देरही है। समाचारपत्रों में भी इसी-के लिए आन्दोलन किया जारहा है, बहुत से पत्र तो केवल इसी उद्देश्य से निकलने लगे हैं। बहुत सी संस्थायें भी स्त्री-सुधार के लिए खुल रही हैं, समय-समय पर महिला-सम्मेलन भी होते हुए नज़र आते हैं। सारांश यह कि आज सारे भारत में स्त्री-सुधार की आवश्यकता को समझ कर स्त्रियों को शिक्षित, उन्नत और स्वतन्त्र करने का प्रयत्न किया जा रहा है। बहुत से स्त्री-सुधार-प्रेमी तो स्त्रियों की गिरी दशा से इतने व्याकुल और विह्वल होगये हैं, कि वे एक क्षण भी स्त्रियों को घर में बन्द नहीं देखना चाहते। वे चाहते हैं कि उनकी स्त्रियां भी यूरोपियन स्त्रियों की भांति उनके साथ सभाओं में जाकर लैक्चर दिया करें, बाग़ों में घूमा करें और खेलों तथा नाच-रंग में भी उनका सहयोग दें। वे चाहते हैं कि स्त्रियां सब बंधनों को तोड़ कर आज ही 'अपटूडेट' और 'फ़ैशनेबल' बन जायँ। इसके लिए वे अपनी तरफ़ से भरसक प्रयत्न भी कर रहे हैं। मैं सुधारों के विरोध में नहीं हूँ, परन्तु उनकी इस जल्दबाज़ी और उतावलेपन के सम्बन्ध में कुछ निवेदन करना चाहती हूँ। चिरकाल से जो वृक्ष सूखा पड़ा है, उसे पल्लवित और पुष्पित करने

के लिए बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। यदि हम उसे एकदम पानी से तर कर एक-दो दिन में उसे पल्लवित देखना चाहेंगे, तो उसका परिणाम शायद अच्छा न हो। पानी की अत्यन्त अधिकता से या तो वह सड़ जायगा और या असर ही पैदा न करेगा। इस विषय पर धीरे-धीरे शान्ति के साथ सोचना चाहिए, उतावलेपन से नहीं। हम सदियों से अन्धकार की कोठरियों में बन्द पड़ी हैं और आज ही हमें हमारे भाई पश्चिमी महिलाओं की तरह अपनी सहचरी बनाना चाहते हैं! इस तरह उन्नति होना कठिन है। पर्वत पर शनैः शनैः ही चढ़ा जाता है, एक कूद में उसपर चढ़ने के सभी प्रयत्न निष्फल होंगे। इसी तरह हमारे सुधार में यह जल्दबाज़ी और उतावलापन हानिकर ही सिद्ध होगा। स्त्री-सुधार-प्रेमी पुरुषों को चाहिए कि अपनी स्त्रियों की त्रुटियां उन्हें शान्ति और प्रेम से बताकर दूर कराने की कोशिश करें, उनकी त्रुटियों पर क्रोध करने और बुरा-भला कहने की ज़रूरत नहीं। उनके लिए वे उचित शिक्षा का प्रबंध करें। विद्वन्मण्डली तथा सभा-सम्मेलनों में उन्हें जाने का अवसर दें। प्रायः स्त्रियों को देश तथा राज्य का कुछ भी हाल मालूम नहीं होता; इसलिए उन्हें प्रेम से अख़बार पढ़ कर सुनाये जायँ, और इस तरह अखबारों की ओर उनकी रुचि पैदा करने की कोशिश की जाय। जब तक उनके मानसिक विचार नहीं सुधरेंगे और उन्हें देश की वर्तमान स्थिति का पता नहीं लगेगा, वे कार्य-क्षेत्र में कैसे पदार्पण कर सकती हैं? अतः स्थान-स्थान पर उनके लिए पुरुष-सम्मेलनों की अपेक्षा स्त्री-समाजों और सभाओं का प्रबंध किया जाय, जिससे उन्हें देश की वर्तमान दशा का ज्ञान हो। कई शहरों में ऐसी संस्थायें बन भी गई हैं; परन्तु ऐसी संस्थायें जितनी अधिक हो सकें, उतना ही अधिक लाभ होगा। यूरोपियन स्त्रियों की भाँति जबरदस्ती उनके स्त्रैण-भावों को कुचल कर स्वतंत्र तथा उच्छृंखल बनाने की आवश्यकता नहीं।

स्त्रियों को स्वतंत्र और 'फ़ैशनेबल' बनाने के लिए कई स्त्री-सुधारक लोग उनकी इच्छा के विरुद्ध उनके स्त्री-सुलभ भावों को भी विनाश करने का यत्न करते हैं। यह स्वतंत्रता के नाम पर उन्हें परतंत्र करना है। मैं एक दम्पत्ति को जानती हूँ, जो बड़े सुधारक हैं, सभा-समितियों में भी जाते हैं एक दिन पतिदेव ने अपनी स्त्री से नृत्य करने के लिए कहा। उस ने इन्कार कर दिया; क्योंकि उनके ४—५ बच्चे बड़े हो गये थे, उनके सामने नाचना लज्जायुक्त था। बस, इसी बात पर पतिदेव रुष्ट होगये और दो दिन तक भोजन न किया! यह शोचनीय तथा हास्यप्रद घटना है। क्या ऐसे सुधारक इसी प्रणाली से महिलाओं का सुधार करेंगे?

यदि यथार्थतः वे स्त्री-सुधार करना चाहते हैं, तो उन्हें अपने स्वार्थ तथा इच्छाओं को छोड़ कर शनैः शनैः उनकी मानसिक प्रवृत्ति बदलनी चाहिए और इसपर भी उनके स्त्रीसुलभ लज्जा, नम्रता एवं आत्म-सन्मान आदि गुणों का आदर करना चाहिए।

स्त्री-सुधारकों से मेरी एक और प्रार्थना है। वह यह कि उन्हें इस आंदोलन में स्त्रियों के भावों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। आंदोलन करने या सुधार के भिन्न-भिन्न कार्य करने से पहले उन्हें हमारी इच्छाओं, हमारी आवश्यकताओं और हमारे भावों को जान तो लेना चाहिए। हमारी इच्छाओं और आवश्यकताओं के विरुद्ध हमारे सुधार के लिए कोई क़दम उठाना हमारे साथ क्या वैसी ही ज्यादती न होगी, जैसी कि पहले के लोगों ने हमारी आवश्यकताओं और हमारी इच्छाओं की उपेक्षा कर हमारे पढ़ने-पढ़ाने आदि के अधिकार छीन कर की थी

एक प्रतिष्ठित और सम्पन्न व्यक्ति से उनकी धर्मपत्नी ने यह इच्छा प्रकट की कि मैं स्वदेशी वस्तु पहनना और अपनी बहनों की सेवा करना चाहती हूँ, आप मुझे आज्ञा दें। पतिदेव स्त्री-शिक्षा के आन्दोलन में काफ़ी भाग लेते हैं, परन्तु अपनी पत्नी को वैसा करने से इन्कार कर दिया! जब उस साध्वी स्त्री ने उसके लिए विशेष आग्रह किया, तब पतिदेव का पारा चढ़ गया और लगे उस अबला पर अनेक यन्त्रणाओं के बाद जूतों की वर्षा करने !! यह सच्ची घटना है। मैं अधिक न लिख कर ऐसे शिक्षित पुरुषों से पूछती हूँ कि क्या इसी प्रकार स्त्रियों का सुधार होगा? मेरा अभिप्राय सभी पुरुषों पर आरोप करने से नहीं। बहुत से ऐसे सज्जन भी हैं, जो स्त्री-सुधार को सच्चे अर्थों में चाहते हैं, वे पुरुष आदरणीय हैं—उन्हींकी कृपा से कुछ स्त्रियाँ शिक्षित होकर कमल की भाँति विकसित हो रही हैं। परन्तु अधिकांश पुरुष हमारे उपर्युक्त श्रीमान् की तरह हमारे पर अत्याचार ही कर रहे हैं। हमारा सुधार करने के लिए नम्रता और शान्ति से काम लेना चाहिए। शास्त्रों ने हमें अर्धाङ्गिनी का पद दिया है। हमारे साथ विवाह में जो-जो प्रतिज्ञायें की जाती हैं और उस समय हमें जो अधिकार दिये जाते हैं, उनका आजीवन स्मरण रखते हुए वैसा ही हमारे साथ व्यवहार करना चाहिए, यही मेरी पुरुषों से प्रार्थना है। यही हमारे सुधार का मूल सिद्धांत है।

शारदाकुमारी बिड़ला

"स्त्री पुरुष की अर्द्धाङ्गिनी है, उसकी सर्वश्रेष्ठ मित्र है, धर्म अर्थ और काम का मूल है। जो उसका अपमान करता है, उसका नाश होता है। घर का धन और उसकी शोभा भी स्त्री ही है। इसलिए सदा उसकी रक्षा करनी चाहिए।"

महाभारत

हमारे अधिकार

"अपने स्थान और अधिकार को गृहण करो; वह तुम्हारी सम्पत्ति है। दूसरे मनुष्य स्वयं सम्मत हो जावेंगे। संसार न्यायवान है; वह प्रत्येक मनुष्य को अपना अस्तित्व जमाने की पूर्ण स्वाधीनता देता है।"

—एमरसन

"किसी मनुष्य को यह अधिकार नहीं है कि वह सदा पराधीनता की कड़ी बेड़ियों में जकड़ा रहे, जिसमें वह अब तक रहता आया है। उसका आत्म-सम्मान चाहता है कि वह ऐसी परिस्थिति से एकदम बाहर निकल जाय। उसका धर्म है कि वह अपने को ऐसी स्थिति में ला रक्खे, जो सम्मान पूर्ण हो, और जिसमें रह कर वह किसीका आश्रित या बोझ न रहे, बल्कि औरों का सहायक बन सके।"

—भारतीय हृदय

प्राचीन भारत में स्त्री-पुरुषों के समान अधिकार थे, यह अब कोई रहस्य की बात नहीं रही। वेदों और शास्त्रों के ज़माने में यह समानता बराबर बनी रही और स्त्री-पुरुषों के स्वत्व और अधिकारों में कोई भेद-भाव नहीं रहा। वेदों की अनेक ऋचाओं की प्रकाशिका स्त्रियां थीं। क़ानून बनाने का अधिकार इन्हें प्राप्त था। यज्ञ ये करतीं और कराती थीं। विवाह करना या अविवाहिता रहकर देश और जाति की सेवा करना बिलकुल इनकी इच्छा और रुचि पर निर्भर था। सामाजिक अधिकार इन्हें पूर्णतया प्राप्त थे। पुरुष इनकी स्वतंत्रता में किसी प्रकार बाधक नहीं थे और ये भी उनकी हर तरह से सहायिका और सहयोगिनी थीं। परस्पर किसी प्रकार ईर्ष्या, द्वेष नहीं था—हाँ, स्पर्धा भले ही कभी हो जाती।

साम्पत्तिक विषयों में भी स्त्रियों का अधिकार पुरुष के समान ही था। ये जायदाद की स्वामिनी होती थीं। जो धन इन्हें विवाह के समय मिलता था, जो कुछ ये

पैदा करतीं अथवा इनका पति कमाता वह तो इनका था ही; पर पिता और पति के मर जाने पर भी ये पुत्र या अन्य हक़दार पुरुष की तरह ही अपनी पैतृक तथा पति की सम्पत्ति की अधिकारिणी होती थीं। धर्म-शास्त्र या अन्य स्मृतियों में जहाँ 'पुरुष' शब्द लिखा हुआ है वहाँ केवल पुरुष से ही अभिप्राय नहीं है, बल्कि उससे 'स्त्री-पुरुष' दोनों समझा जाता था। जैसे पुत्र वैसे ही पुत्री अपने माता-पिता के लहू से बनती है और इनका यह समान अधिकार नितान्त स्वाभाविक और जन्मसिद्ध है। यह तो महा अन्याय और अधर्म की बात है कि स्त्री के पिता और भाई के मर-जाने पर वह अपने बाप की सम्पत्ति की अधिकारिणी न समझी जाय और एक दूर के नातेदार को, चाहे उसका सम्बन्ध उन लोगों के जीवन-काल में कैसा ही प्रिय या अप्रिय ही रहा हो, जायदाद दे दी जाय।

स्त्री और पुरुष दोनों को गोद लेने का अधिकार था। स्त्री के पति के सामने भी गोद लेने की मिसालें मौजूद हैं। पति मर गया हो, खो गया हो, अथवा निकल गया हो, तो स्त्री दूसरा विवाह करने की अधिकारिणी समझी जाती थी और उसका यह काम समाज की दृष्टि में पाप और अधर्म नहीं समझा जाता था।

विवाहिता स्त्री का आदर और सन्मान उसके पति की हैसियत, मान और मर्य्यादा के अनुसार होता था।

पढ़ने-पढ़ाने के सम्बन्ध में तो कुछ पूछना ही नहीं। स्त्रियां सभी विषयों की उच्च से उच्च शिक्षा प्राप्त करती थीं। उनके लिए किसी प्रकार की मनाई नहीं थी। वे पूर्ण विदुषी और तत्वज्ञानी तथा ब्रह्मवादिनी होती थीं। उनका वेदारंभ और यज्ञोपवीत-संस्कार होता था, और पुरुषों के समान वे यज्ञोपवीत रखती थीं। पुरुषों का कोई भी मत और धर्म का काम उस समय तक पूर्ण नहीं समझा जाता था, जब तक उसकी सहधर्मिणी उसमें सम्मिलित नहीं होती थी।

राजनैतिक अधिकारों में भी स्त्रियों के स्वत्व [illegible] पूर्ण ध्यान रक्खा जाता था। वे पुरुषों के समान [illegible] शासन में सुदक्ष और बड़ी कुशल होती थीं और लड़[illegible] में पुरुषों की तरह अपने शत्रुओं से बड़ी वीरता [illegible] साथ युद्ध करती थीं।

भारत का प्राचीन इतिहास स्त्री-जाति के गु[illegible] गौरव का एक सजीव और चमत्कार-पूर्ण इतिहास है। हम यह नहीं कहतीं कि अन्य देशों में ऐसी ही यो[illegible] और वीर ललनायें नहीं हुईं, परन्तु भारत की श[illegible] इस सम्बन्ध में बिलकुल ही निराली है। स्त्रियां पु[illegible] से शारीरिक बल में साधारणतया चाहे कम हों, प[illegible] मानसिक, नैतिक, या आध्यात्मिक बल में वे कि[illegible] तरह भी न्यून नहीं हैं। उन्हें जब भी कभी स[illegible] और अवसर मिला है, सदा अपनी योग्यता, श[illegible] और कार्य-दक्षता तथा चातुर्य्य का बड़ा ही अद्[illegible] और उत्साह-प्रद परिचय देकर संसार को चकित क[illegible] दिया है। परन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है [illegible] पौराणिक काल में पुरुषों की स्वार्थलोलुपता ने ह[illegible] हमारे उपर्युक्त अधिकारों से ही केवल नहीं वञ्चित [illegible] दिया बल्कि सच पूछिए तो संसार को मानव-सम[illegible] के अर्ध भाग के असीम उपकारों से महरूम रख[illegible] अपनी अदूरदर्शिता और बुद्धि-हीनता का बहुत [illegible] खेदजनक परिचय दिया है।

पुरुष हमसे शारीरिक बल में सबल थे ही, उन्हों[illegible] पशुओं की तरह अपने निकृष्ट स्वार्थ में आकर हम[illegible] ऊपर मनमाना अत्याचार करने में कोई कसर न[illegible] उठा रक्खी। हम हर तरह से पराधीन बना दी गईं [illegible] शिक्षा का द्वार हमारे लिए एकदम बन्द कर दि[illegible] गया। हमारी स्वतंत्रता को नष्ट करने, हमारे पक्ष [illegible] दुर्बल बनाने के लिए, उन्होंने पुरानी स्मृतियों में [illegible] अपनी इच्छानुसार मिलावट करनी शुरू कर दी। [illegible] और सत्शास्त्रों के मंत्रों के अर्थ का अनर्थ करके जै[illegible]

चाहा वैसा ऊधम और अन्याय करते रहे। स्त्रियों को नीच और स्वभाव से ही पुरुषों को अपने रूप, लावण्य और शृङ्गार-चेष्टा में फँसा कर बिगाड़ने वाली बताया गया। इतना ही नहीं, पुरुषों ने जैसा भी बना स्त्रियों के प्रति अत्यन्त पतित, घृणित और अमानुष व्यवहार करने में ही अपना मनुष्योचित कर्त्तव्य कर्म और धर्मात्मापन समझा। स्त्रियाँ कभी और किसी अवस्था में भी स्वतंत्रता के योग्य नहीं समझी गईं। लड़कपन में पिता, जवानी में पति और बुढ़ापे में पुत्र के अधीन उन्हें रहना चाहिए। स्त्रियां धन नहीं पैदा कर सकतीं। यदि करें, तो उसका मालिक उनका स्वामी ही होगा। वे पुरुषों के सुख और आनन्द की सामग्री मात्र हैं, और कुछ नहीं।

स्त्रियाँ दुःखी होती हैं, आपत्ति पर आपत्ति सहते हुए उनका कलेजा पक जाता है। वे अपने इस दारुण दुःख और महाअपमानजनक अवस्था से निकलने के लिए आत्म हत्या तक-करने को उद्यत होती हैं, परन्तु मूर्खा और अबला होने के कारण कुछ कर नहीं सकतीं और अब वे इस दयनीय अवस्था को पहुंच गई हैं कि उन्हें यह भी पता नहीं रहा कि हम भी किसी उच्च ध्येय या पवित्र उद्देश के लिए जन्मी हैं।

अर्वाचीन समय में गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज बड़े महात्मा हुए हैं। हम उनके सम्बन्ध में अपनी ओर से कुछ नहीं कहना चाहतीं। हाँ, उनकी रामायण के दो-तीन पद नीचे उद्धृत किये देती हैं:—

"सत्य कहहिं कवि नारि सुभाऊ।
सब विधि अगम अगाध दुराऊ॥
ढोल गंवार शूद्र पशु नारी।
ये सब ताड़न के अधिकारी"॥

❀ ❀ ❀

"महा वृष्टि चालि फूटि कियारी।
जिमि स्वतंत्र होहि बिगरहि नारी॥"

इन उपर्युक्त पंक्तियों में स्त्रियों के प्रति जो और जैसे सद्भाव (?) प्रकट किये गये हैं वे बहुत ही स्पष्ट हैं और इससे स्त्रियों तथा पुरुषों का जैसा कुछ कल्याण हुआ या होना संभव है वह भी स्पष्ट ही है। परन्तु आपको इतने से ही सन्तोष नहीं हुआ। आपने अपनी रामायण में अनेक स्थानों पर 'त्रियाचरित्र' का प्रयोग बड़े ही घृणित और अत्यन्त अपमान-सूचक अर्थों में किया है।

तुलसीदासजी को उनकी धर्मपत्नी ने ही भगवद्-भजन और ईश्वर-प्रेम का उपदेश किया था। आपके ये पवित्र भाव (?) कदाचित् उसीके कृतज्ञता-प्रकाशन के रूप में प्रकट किये गये हैं! अस्तु।

हम एक तुलसीदासजी को ही क्या कहें? स्त्रियों की भाग्यहीनता ने तो प्रत्येक स्थान में ही अपना चमत्कार दिखलाया है। पुरुष को अपने क्रोध, कुरुचि, कुस्वभाव और अत्याचार का शिकार बनाने के लिए सबसे निकट वस्तु उसकी स्त्री ही होती है।

महात्मा बुद्ध बड़े उदार और सुधारक कहे जाते हैं। बौद्ध-धर्म ने स्त्रियों को बहुत कुछ स्वतंत्रता भी प्रदान की है। इसमें सन्देह नहीं कि भगवान् बुद्ध के समय में स्त्रियों की बहुत ही बुरी दशा थी। इनका अत्यन्त तिरस्कार और निरादर होता था। गोतमी, प्रजापति और अन्य देवियाँ बुद्ध के पास दीक्षा लेने को गईं। पर बुद्ध ने उन्हें भिक्षुणी बनाने से इन्कार कर दिया। गोतमी निराश होकर चली आई। परन्तु वह साधारण स्त्री नहीं थीं। उसने यह निश्चय कर लिया था, कि मुझे स्त्रियों का उद्धार करना ही है। वह बड़ी दृढ़-प्रतिज्ञ और व्रतशीला देवी थी। वह फिर दूसरे वर्ष बुद्ध के शरण में गई। इस बार 'यशोधरा' भी उसके साथ थी। ये सब देवियां नंगे पांव थीं। इनके हाथ में भिक्षा-पात्र था और यह दृढ़-संकल्प कर चुकी थीं कि हम इस बार संन्यास लेकर ही रहेंगी। बुद्ध ने

इनकी यह दृढ़ता देख कर इन्हें संन्यास की दीक्षा देदी। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि बौद्ध-धर्म के व्यापक प्रचार में स्त्रियों का कैसा और कितना भाग है। संघमित्रा और मालिनी जैसी भिक्षुणियों ने लङ्का और भारतवर्ष में जैसा प्रचार किया है वह इतिहास के पाठकों से छिपा हुआ नहीं हैं। बौद्ध-धर्म में अब भी पुत्र और पुत्रियों का समान रूप से उपनयन-संस्कार होता है और इनमें अनेक बाल-ब्रह्मचारिणी प्रचारिका मौजूद हैं।

यह तो हुई बौद्ध स्त्रियों की बात। हिन्दू देवियों की दशा पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। हाँ, पाश्चात्य सभ्यता के संघर्ष से स्त्रियों में कुछ हलचल और अशांति के चिन्ह अवश्य दृष्टिगोचर होने लगे हैं; परन्तु यह भी वहीं, जहाँ परदे का रिवाज नहीं है और स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार अच्छा हो गया है। हमारी परदानशीन बहनों की तो दुनिया ही दूसरी होती है। परदे की कुप्रथा से स्त्रियों के स्वास्थ्य पर जैसा कुछ घातक और भयानक प्रभाव पड़ता है, वह तो पड़ता ही है, पर उन्हें उसके कारण मानसिक और व्यावहारिक आदि आवश्यक ज्ञान की क्षति भी कम नहीं होती। इन्हें सामाजिक और सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने का अवसर ही बिलकुल नहीं मिलता। उनका कार्य-क्षेत्र घर की चहारदीवारी के अन्दर ही परिमित है। और यह गृहलक्ष्मी कहला कर चाहे शोभा की वस्तु भले ही बनी रहे; परन्तु यह स्वतंत्र नहीं। इस छोटे से क्षेत्र में भी यह अपने पतिदेव के ही सर्वथा अधीन रहेगी।

पर यह जो भी हो, हमें अपने घर में भली-बुरी जैसी स्वतंत्रता प्राप्त है उसके लिए किसी विशेष अधिकार की आवश्यकता नहीं है। घर का काम पारस्परिक प्रेम और सद्भाव से चलता रहता है। परन्तु घर के बाहर समाज में केवल प्रेम से काम नहीं चल सकता। यहां धन और स्वत्व दोनों की अत्यन्त आ[वश्यकता] पड़ती हैं। स्त्रियों को अगर घर के बाहर सा[र्व]जनिक सेवा या अन्य कामों में भाग लेना है तो आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए स्वावलम्बी [बनना] चाहिए। सफ्रेजिस्ट—मताभिलाषिणी बहनों को घर से बाहर देश-सेवा या अधिकार-प्राप्ति के [लिए] काम करना पड़ा तो धनाभाव के कारण उन्हें [मार्ग] में कम बाधायें नहीं पड़ीं। फिर ग़रीब देश की ग़[रीब] स्त्रियों के सम्बन्ध में तो कहना ही क्या है?

महाभारत के पश्चात् देश में अनेक सुधा[रक] उत्पन्न हुए और देश के उपकारार्थ उन्होंने बड़े[-बड़े] काम किये; परन्तु स्त्री-जाति को पतित दशा से उ[बारने] के लिए बहुत कम किसी ने ध्यान दिया। प्रस[न्नता] है कि अन्ततः यह सौभाग्य बीसवीं शताब्दि को प्र[ाप्त] हुआ। इस समय ऋषि दयानन्द का प्रादुर्भाव हो[ता] है। इस वीर पुरुष ने अन्यान्य सुधारों के साथ-[साथ] स्त्री-जाति के ऊपर भी बड़ा उपकार किया है।

पौराणिक सभ्यता के हज़ारों वर्षों के बाद यह प[हला] शख्स है जिसने हमें इस उदारता और प्रेम के [साथ] यह बतलाया कि स्त्री और पुरुषों के समान अधि[कार] हैं और किसी को एक दूसरे के अधिकार दबाने [का] कोई हक़ नहीं है। ऋषि ने केवल अपनी ज़बान [से] ही यह उपदेश नहीं दिया, बल्कि आर्य-समाज [के] नियमों और अन्य सिद्धांतों में इसको विशेष स्[थान] और महत्व प्रदान किया। आर्य-समाज के नियम [जो] पहलेपहल बंबई में निर्धारित हुए थे, उनके [एक] नियम में ये शब्द हैं:—

"प्रत्येक समाज में एक प्रधान पुरुष और दू[सरा] मंत्री तथा अन्य पुरुष और स्त्री सभासद् होंगे।"

पश्चिमी देशों में इन्हीं अधिकारों के पाने के लि[ए] हमारी वीर बहनों ने क्या नहीं किया, परन्तु सभ्य जाति[यों के] उदार पुरुषों ने जैसे उनकी महत्व कांक्षाओं का स्वा[गत]

किया वहभी आप विद्वानों से अप्रकट नहीं है। हाँ, अधिकार बड़ी बुरी चीज़ है, इन्हें कोई देता नहीं। यह बल और शक्ति से प्राप्त किये जाते हैं। प्रभुता में मनुष्य का मनुष्य रहना कठिन है।

पाश्चात्य देशों में यह आवाज़ अभी उठाई गई है, लेकिन दयानन्द ने आज से कोई अर्द्ध-शताब्दि पहले ही अपनी स्वाभाविक उदारता और दिव्य-दृष्टि से यह सब अधिकार हमें प्रदान कर दिया है।

हम नहीं कह सकतीं कि इनके अनुसार कहाँ और किस प्रकार बर्ता गया। लेकिन यह जान कर किसे प्रसन्नता न होगी कि अब श्रीमती प्रतिनिधिसभा में स्त्री-समाज भी सम्मिलित किये जाने लगे और हमारी बहनें प्रतिनिधि होकर महासभा और कार्यकारिणी सभा में भी सम्मिलित होने लगीं। हम इसे देश और जाति के लिए शुभ समझती हैं। पर इस अवसर पर हम यह कह देना भी अपना कर्त्तव्य समझती हैं कि भारतवर्ष एक कर्त्तव्य-प्रधान देश है। यहां सदा से कर्त्तव्य-पालन को महत्व दिया गया है। हमें अपनी कर्त्तव्य-परायणता पर ही सदा दृष्टि रखनी चाहिए। सीता, द्रौपदी, इत्यादि माताओं का सुयश इस कर्त्तव्य-परायणता के कारण ही अब तक बना हुआ है। यह अवश्य है कि चिरकाल की पराधीनता ने हमें अपने स्वत्व और अधिकारों के लिए लालायित कर रक्खा है। पतित अवस्था में रहना हम पाप समझती हैं। और इससे जितनी जल्दी हम छुटकारा पा सकें उतना ही अच्छा है। पर यह भी तभी होगा जब हम अपने स्वत्वों और अधिकारों की पूर्णतया रक्षा कर सकेंगी और एक सुदक्ष और कार्य-कुशल मनुष्य की भाँति अपना कर्त्तव्य-पालन करेंगी।*

(स्वर्गीय) कुन्तीदेवी

---

* स्व० कुन्तीदेवीजी का यह लेख हमें उनके सुयोग्य पति श्री आनन्द भिक्षुजी से प्राप्त हुआ है। इसे हम स्वर्गीया देवी की ही भाषा में प्रकाशित कर रहे हैं। हम मानते हैं कि स्त्रियों को अपना दावा कड़ी और जली-कटी भाषा में भी पेश करने का अधिकार है। लेखिका जब कि संसार में नहीं हैं, उनकी भाषा पर सम्पादकीय क़लम चलाना हमने उचित नहीं समझा है। सं०

८

माता की महिमा

'मा' सा शब्द उचरते मुख से,
मन पाता आनन्द अमन्द।
उपजाता है अनुपम प्यारा,
भाव सौख्य-दायक स्वच्छन्द॥
करते ध्यान प्रकट होती है,
मञ्जुल ममता वाली मूर्त्ति।
रक्त दौड़ जाता नस-नस में,
आ जाती है अविरल स्फूर्ति॥ १॥

दिव्य दर्शनों से जननी के,
होता अतिशय अद्भुत मोद।
यही वासना बस होती है,
खेलूँ बैठ सदा ही गोद॥
शिशु बन करता रहूँ प्रेम से,
अमृत से गुरुतर पय-पान।
उसी एक को सब कुछ जानूँ,
उसकी 'चुमकारी' को प्रान॥ २॥

उसकी बाणी कल्याणी में,
निर्मल स्नेह भरा स्वर्गीय।
उसके कर-कमलों की थपकी,
होती अहो! अनिर्वचनीय॥
जो करुणा है दया-क्षमा है,
जग में गुण-रत्नों की खान।

तेजमयी सुख-शांति-ज्ञानदा,
प्रकृति-रूपिणी दे वर-दान ॥ ३ ॥
उससे बढ़ कर अन्य देवता,
आता नहीं दृष्टि साकार ।
दोष-नाशिनी धर्म-बोधिनी,
भुक्ति-मुक्तिदा जन-आधार ॥
श्रीमाता के स्मरण मात्र से,
हो उठता है हृदय पवित्र ।
जीवन-पथ निर्विघ्न भासता,
होता है आदर्श चरित्र ॥ ४ ॥
जिसकी चितवन ज्योतिमयी में,
मिलता तीन लोक का राज्य ।
जिसकी है मुसकान प्राणदा,
जिसके आगे नव-निधि त्याज्य ॥
सब विभूतियाँ जिसकी चेरी,
अम्बा अवलम्बन है सार ।
उसके यश गाने में रसना,
पाती नहीं कभी है पार ॥ ५ ॥

जगन्नारायणदेव शर्मा
'कविपुष्कर'

"तेरा स्वर्ग तेरी माता के चरणों में है।"
—मुहम्मद साहब

"एक आदर्श जननी सौ उस्तादों से भी श्रेष्ठ है।"
—जार्ज हर्बर्ट

"मैं जो कुछ करता हूँ और जैसा भी हो सकता हूँ, वह सब दैवी प्रकृति वाली मेरी माता का ही प्रसाद है।"
—अब्राहम लिंकन

"देवी ! तू रात्रि का तारा और प्रातःकाल का हीरा है। तू ओस की बूँद है, जिनसे काँटों के मुँह भी मोतियों से भर जाते हैं।"
—रास्स रो

स्त्री-शिक्षा कैसी हो ?

अब सब लोग इस बात को मानते हैं कि भारत की वास्तविक उन्नति बिना स्त्री-समाज के शिक्षित हुए नहीं हो सकती । पुरुष अपनी चाहे जितनी उन्नति कर लें, किन्तु स्त्री-समाज की उन्नति के बिना उन्हें सदा पीछे ही हटना पड़ता है । स्त्री पुरुष की अर्धाङ्गिनी होती है । जब तक दोनों अंग उन्नत न होवें तब तक कोई देश, कोई राष्ट्र अथवा कोई समाज आशातीत उन्नति नहीं कर सकता । यह उन्नति का—आगे बढ़ने का युग है; अतः हमें स्त्री-समाज को भी, पुरुषों से पूर्ण सहयोग करके अपने अधिकारों को प्राप्त करने में समर्थ होना चाहिए ।

पर, मेरा तो खयाल है कि, स्त्रियाँ बिना शिक्षा प्राप्त किये कभी अपनी उन्नति नहीं कर सकतीं । शिक्षण-सुधार-विषयक अखिल-भारतीय महिला-परिषद् की छः माही रिपोर्ट, जो हाल ही प्रकाशित हुई है, देखने से मालूम हुआ कि अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा में नैतिक और धार्मिक शिक्षण की आवश्यकता इत्यादि विषयों पर अच्छी चर्चा हो रही है। इन्हीं विषयों पर आज मैं भी अपने कुछ विचार प्रकट करूँगी ।

बालिकाओं के लिए अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की आवश्यकता है ही, किन्तु हमें इस बात पर भी पूरा-पूरा ध्यान देना चाहिए कि उनकी शिक्षा किस प्रकार हो रही है । कन्याओं को पाठशाला भेज देने भर ही हमारा कर्त्तव्य नहीं होना चाहिए; किन्तु हमें इस बात पर भी सदा ध्यान रखना चाहिए कि उनकी पढ़ाई कैसी हो रही है, अध्यापिका का चरित्र कैसा है, सदाचार की ओर ध्यान दिया जाता है या नहीं । प्राथमिक शिक्षण ही उच्च शिक्षण की नींव है । नींव जितनी ही गहरी और अच्छे मसालों से बनाई

जाती है, इमारत उतनी ही दृढ़ और भव्य होती है। कभी-कभी हमें स्त्री-शिक्षण का जो कटु अनुभव मिलता है वह इसी अज्ञान का फल है। अतः प्राथमिक शिक्षण में हमें सदाचार की ओर बहुत ही अधिक ध्यान देना चाहिए।

प्राथमिक शिक्षण समाप्त करने के बाद ज्योंही कन्यायें माध्यमिक शिक्षण की ओर अग्रसर हों, उनके मन पर नैतिक और आध्यात्मिक सद्गुणों के संस्कार अंकित करने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए। स्त्री-स्वातंत्र्य की शोभा इन्हीं गुणों के प्राप्त होने पर है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की स्थिति अनेक दृष्टियों से बड़ी नाजुक होती है। शील उनका परम भूषण है। नैतिक और आध्यात्मिक विचार ही उनके निष्कलंक चरित्र के मुख्य पाये हैं, जिनके बल पर वे पुरुषों की शक्ति (देवी) होकर समाज, राष्ट्र और देश को अति उच्च शिखर पर ला बैठाती हैं। अबला वे तभी तक हैं, जब तक कि उनमें सुशिक्षा और चारित्र्य का अभाव है। दुनिया में ऐसा कौन पुरुष है, ऐसी किसकी ताक़त है, जो सदाचार-सम्पन्न स्त्रियों के सामने नज़र उठा कर भी देख सके। अस्तु, अपनी भलाई और बुराई हमारे ही हाथ है। माध्यमिक और उच्च शिक्षण में हमें बालिकाओं के नैतिक और आध्यात्मिक चरित्र की ओर बहुत ही अधिक ध्यान देना चाहिए।

अन्य देशों की भांति हमारे भारत की स्त्रियाँ स्वावलम्बिनी नहीं है। विवाह होने के बाद उन्हें पुरुषों के अधीन रहना पड़ता है। इस अधीनता के विरुद्ध, हमारे देश में, आजकल आवाज़ उठाई जा रही है। निस्सन्देह स्वाधीनता एक बहुत उत्तम वस्तु है; किन्तु हमारी भारतीय संस्कृति के अनुसार पुरुषों की सहधर्मचारिणी होकर रहना ही स्त्रियाँ अपना परम कर्तव्य समझती हैं। योग्य पुरुष की सुयोग्य पत्नी होने से बढ़कर भारतीय स्त्रियों के लिए अन्य कोई गौरव की बात नहीं है। सामाजिक बन्धन नहीं, किन्तु अनाचार, अत्याचार, अज्ञान, और शिक्षा का अभाव हो हमारी स्वाधीनता के बाधक मुख्य बन्धन हैं। कुशील एवं चारित्र्य-भ्रष्ट पुरुषों तथा स्त्रियों से ही हमारा समाज बदनाम हो रहा है। यदि हम इन दुर्गुणों को दूर कर दें, तो फिर न तो अपनी अधीनता ही हमें अखरे और न पुरुषों से स्वाधीनता प्राप्त करने की आवश्यकता ही जान पड़े। बात यह है कि सुशिक्षित पति-पत्नी को अपने-अपने कर्तव्यों का ज्ञान रहता है। वे लौकिक, पारमार्थिक एवं सामाजिक कार्य्यों को सुचारु रूप से चलाकर सच्चे सुख के भोक्ता बनते हैं। उन्हें अपने कर्तव्यों के पालन करने में स्वर्गीय सुखों का आनन्द मिलता है। कहिए, इससे बढ़कर और कौनसी स्वाधीनता हो सकती है? अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए चाहे हम कौंसिल की मेम्बर हो जायँ, बैरिस्टर बन जायँ, या और किसी उच्च अधिकार को प्राप्त कर लें, हमें किसी प्रकार का भय नहीं रहेगा; बल्कि उत्तरोत्तर हमारी कीर्ति ही बढ़ेगी। इस प्रकार हम केवल अपने को ही स्वाधीन नहीं कर सकेंगी, किन्तु सम्पूर्ण राष्ट्र को उठाने का श्रेय हमको मिलेगा और हम देश को शीघ्र ही स्वाधीनता दिलाने में कारणीभूत होंगी।

हमारे समाज में कुछ कुरीतियों का प्रचार अवश्य है। देश में आज ब्याह के योग्य उम्र कायम करने का जो आन्दोलन हो रहा है उसमें हमें खूब दिल से भाग लेना चाहिए। बाल-विवाह से जो-जो बुराइयाँ पैदा हुई हैं उनका दुष्परिणाम हमारे देश ने खूब भोगा है और अब भी यदि हम नहीं चेतेंगी तो हमारा देश रसातल को पहुँच जायगा। ब्रह्मचर्य के कारण ही बुद्धि, बल, वीर्य और पराक्रम की वृद्धि होती है। ब्रह्मचर्य के नाश से अर्थात् कच्ची-उम्र में शील भंग करने से ही हमारे समाज को अनेक प्रकार के रोग, शोक, भय उद्वेग आदि आपदाओं का सामना करना

पड़ता है। अतः पक्की उम्र में ब्याह करने के साथ ही साथ संयम और नियम से रहने की शिक्षा भी स्त्रियों को दी जानी आवश्यक है।

यह जानकर बड़ी प्रसन्नता होती है कि भारत अब अज्ञान की निद्रा को छोड़-चुका है। उन्नति की ओर तेज़ी से वह अग्रसर हो रहा है। हमारे स्त्री-समाज को उठाने के लिए पुरुष तो प्रयत्न कर ही रहे हैं, किन्तु स्त्रियां भी अब अपने कर्तव्यों को समझकर हित-साधन में लग गई हैं। मुझे आशा और विश्वास है कि स्त्री-समाज में जो-जो बुराइयाँ प्रचलित हैं उन्हें यह जागृति की लहर समूल नष्ट करके भारतीय स्त्रियों को सच्ची और आदर्श देवियाँ बनाने में अवश्य सफल होगी।

सौ० कंचनबाई
(धर्मपत्नी सर हुकुमचन्दजी, इन्दौर)

स्त्री-शिक्षा की कसौटी

स्त्रियों की शिक्षा के बारे में भारत में बड़ी लापर्वाही रही है। हाँ, पिछले २५-३० वर्षों से प्रमुख व्यक्तियों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है। परन्तु देश के हित की दृष्टि से, यह प्रश्न इतना महत्वपूर्ण है कि, इस पर अभी और भी अधिक ध्यान देने की जरूरत है। सचमुच, अपनी स्त्रियों की शिक्षा में भारत बहुत पिछड़ा हुआ है। दस सैकड़ा स्त्रियां भी तो ऐसी नहीं, जो मामूली तौर पर लिखना-पढ़ना जानती हों, फिर उच्च शिक्षितों की तो बात ही क्या—उनकी संख्या तो और भी शोचनीय है। ऐसी स्त्रियां तो हजार पीछे एक भी नहीं। भारत के भाग्य का उसकी स्त्रियों के साथ गहरा सम्बन्ध है, यह हमको भली भाँति समझ लेना चाहिए। अतएव स्त्री-शिक्षा की समस्या पर तुरन्त और वास्तविक ध्यान देने की आवश्यकता है।

सौभाग्यवश लोग अब यह समझने लग गये हैं कि जब तक स्त्रियां शिक्षित नहीं हो जातीं, तब तक हमारे देश की भी कोई तरक़्क़ी नहीं हो सकती। तथापि स्त्रियों की शिक्षा किस प्रकार हो, इस विषय में उनके भिन्न-भिन्न कई मत हैं। बहुत बढ़े हुए विचार वाले कुछ लोगों का ख़याल है कि लड़कों को जो शिक्षा दी जाती है उनके साथ-साथ और वही शिक्षा लड़कियों को भी दी जाय, ताकि लड़कों को प्राप्त समस्त सुविधाओं का वे भी पूर्ण उपभोग कर सकें। उनका विश्वास है कि लड़के-लड़कियों की एक साथ पढ़ाई होने से भारत की नारी-जाति का बड़ा कल्याण होगा। क्योंकि, ऐसा होने पर, स्त्रियों की बौद्धिक समानता का प्रश्न हमेशा के लिए हल हो जायगा, और जो लोग स्त्रियों को जन्म से ही पुरुषों से कम बुद्धिमती समझते हैं उन्हें ख़ामोश हो जाना पड़ेगा। यही नहीं, बल्कि लड़कों के साथ के संघर्ष से लड़कियों में साहस का भी प्रादुर्भाव होगा, जोकि उनके भावी जीवन में उन्हें बड़ा उपयोगी सिद्ध होगा।

इसके विपरीत दूसरों का मत यह है कि लड़कियों की पढ़ाई के लिए पृथक् शालायें खुलें। अपने कथन के समर्थन में वे मनोवृत्ति और विज्ञान पर अवलम्बित अनेक दलीलें पेश करते हैं। यही नहीं बल्कि सम्मिलित पढ़ाई की पद्धति से जिन दुष्परिणामों के होने की सम्भावना है, उनसे वे अपने उपर्युक्त अग्रगामी भाइयों को सावधान भी करते हैं। बहुमत भी इन्हींका है, इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि लड़कियों की ज्यादातर पढ़ाई पृथक् शालाओं में ही होती है। यहाँ तक कि बम्बई और मद्रास में भी, जहाँ लड़के-लड़कियों की एक साथ पढ़ाई में बाधक होने के लिए परदे की कुप्रथा भी नहीं है, लड़कियों के लिए कई पृथक् शालायें हैं। अस्तु।

भारत में स्त्री-शिक्षा के कई भिन्न-भिन्न प्रकार प्रचलित हैं। अधिकांश शालाओं में तो पाश्चात्य शिक्षा की आधुनिक प्रणाली प्रचलित है। आर्य-कन्या-शालायें और सरकारी तथा ज़िला व म्युनिसिपल बोर्डों की समस्त शालायें इसी श्रेणी में हैं।

परन्तु अनेक महानुभावों को ऐसा अनुभव हुआ कि यह पद्धति दोषपूर्ण है और समाज की आवश्यकताओं के अनुकूल नहीं है। इसकी सबसे बड़ी त्रुटि उन्हें पढ़ाई की पुस्तकों के चुनाव में मालूम पड़ी। क्योंकि, पढ़ाई के लिए चुनी जाने वाली पुस्तकों में जिन दृश्यों और समाज का वर्णन होता है, हमारे यहाँ के विद्यार्थियों के लिए, वे प्रायः बिलकुल विदेशी ही होते हैं। इसलिए विद्यार्थी जो कुछ पढ़ते हैं, उसे भली भाँति समझ नहीं सकते और उसे हृदयङ्गम करने में उन्हें सहज ही कहीं ज्यादा समय लग जाता है। इतिहास जो उन्हें पढ़ाया जाता है, वास्तव में वह उसका विकृत रूप ही होता है। देश का वास्तविक इतिहास तो उन्हें बताया ही नहीं जाता—उनसे गुप्त रक्खा जाता है। नतीजा यह होता है कि देशभक्ति के भावों का उनमें एकदम अभाव रहता है। अपने गौरवशाली अतीत के प्रति भी उनमें कोई आदर-भाव उत्पन्न नहीं होता, जिसका कि उत्पन्न करना इतिहास का प्रधान ध्येय है। यही नहीं, इस पद्धति में इस तथ्य पर भी कोई ध्यान नहीं दिया जाता कि पुरुषों के कर्त्तव्यों से स्त्रियों के कर्त्तव्य सर्वथा भिन्न हैं। स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र भी, इसमें शक नहीं कि, है उतना ही महत्वपूर्ण; पर वह वही नहीं कि जो पुरुषों का है। अंकगणित, विज्ञान, अर्थशास्त्र, तत्वज्ञान और तर्कशास्त्र जैसे विषयों की उच्च शिक्षा का यद्यपि अपनी-अपनी दृष्टि से महत्व है; परन्तु लड़कों के लिए ये जितने उपयोगी हैं उतने लड़कियों के लिए नहीं। दूसरी ओर संगीत, चित्रकारी, गार्हस्थ्य, मितव्ययता, सिलाई और घरू शुश्रूषा आदि ऐसे विषय भी हैं कि जो लड़कियों के अधिक काम के हैं। संस्कृत जो कि भारतीयों की धर्म-भाषा है और राष्ट्रीय इतिहास की कुंजी है, उसका शुमार तो सिर्फ़ ऐच्छिक विषयों में ही है; परन्तु अँग्रेज़ी केवल मुख्य विषय ही नहीं किन्तु शिक्षा का माध्यम भी है। फिर शिक्षा देने का ढंग भी बिलकुल अस्वाभाविक और कृत्रिम है। शिक्षा का माध्यम एक विदेशी भाषा होने के सबब लड़कियों पर बहुत सा अनावश्यक भार पड़ जाता है। नतीजा यह होता है कि जब वे अपने पके जीवन में प्रवेश करती हैं उससे पहले ही उनकी सारी बुद्धि और शक्ति ख़र्च और समाप्त हो चुकती है।

अलावा इसके, यह शिक्षा एक देशीय है—सामाजिक, नैतिक और शारीरिक जैसे अन्य सब सुधारों पर इसमें कोई ध्यान नहीं दिया जाता। सामाजिक कर्त्तव्य के भाव को यह जमने ही नहीं देती। 'शक्ति ही ज्ञान है'—यह बेकन की शिक्षा है। परन्तु प्राचीन भारतीय विश्वविद्यालयों का आदर्श-वाक्य था—'सेवा ही ज्ञान है।' फिर समाज के विधानों और नियमों की भी यह प्रणाली अवहेलना करती है। नतीजा यह होता है कि देश के बौद्धिक और सामाजिक जीवन में स्वभावतः जो तादात्म्य रहना चाहिए, उसे यह भङ्ग कर देती है। विद्यार्थिनी ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है त्यों-त्यों वह अपने गृह-जीवन से अधिकाधिक दूर होती जाती है। प्राचीन भारतीय पद्धति में कला और सौन्दर्य-सौष्ठव पर कितना ध्यान दिया जाता था! पर इस प्रणाली में उसपर बिलकुल ध्यान नहीं दिया जाता। प्राचीन काल में शहर से बिलकुल अलग प्रशस्त हवादार खुले मैदान में विश्वविद्यालय होते थे और विद्यार्थियों को सच्चे सौन्दर्य का प्रेमी बनने में उनसे बड़ी मदद मिलती थी। विद्यार्थी प्रकृति के नित्य संयोग में रहते और उससे प्रेम करना

सीखते थे। प्रकृति ही उनका सबसे बड़ा शिक्षक था। प्रकृति के रहस्यों को समझने के लिए अपने दर्जे के बन्द कमरों से बहानेबाज़ी के साथ ग़ायब होने की उन्हें कोई ज़रूरत न थी। श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर का विश्वभारती-विश्वविद्यालय इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है। यह संस्था शिक्षा के कलामय और सौन्दर्य-सूचक अंश पर ध्यान रखती है। परन्तु पद्धति और अनुशासन जो कि किसी भी संस्था के जीवन-निर्माण के लिए आवश्यक होते हैं, उनका इसमें अभाव है, इसलिए विश्वभारती को संस्था कहना ज़रा मुश्किल ही है।

अंग्रेज़ी शिक्षा की इस पद्धति के अलावा भारत में और कई तरह की शिक्षा भी प्रचलित है। इनमें से एक पूने का कर्वे-विश्वविद्यालय है। इसमें शिक्षा मराठी-भाषा के द्वारा होती है और केवल यही एक ऐसा सुधार है जो, मालूम होता है, आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा-पद्धति में इसके द्वारा किया गया है। क्योंकि, और सब बातों में तो इसमें तथा अंग्रेज़ी विश्वविद्यालयों में कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं है।

शिक्षा का तीसरा प्रकार प्राचीन भारत की शिक्षण पद्धति के अनुसरण का है। इसमें जालन्धर का कन्या-गुरुकुल और कन्या-महाविद्यालय सम्मिलित हैं, जिन दोनों का उद्देश्य प्रधानतः नैतिक एवं राष्ट्रीय शिक्षा का प्रचार करना है। कहा जाता है कि वे शिक्षा सम्बन्धी दूसरी बातों पर भी ध्यान देते हैं—जैसे धार्मिक, सामाजिक और सौन्दर्य-सूचक। ये संस्थायें शारीरिक शिक्षण की आवश्यकता को तो शायद महसूस करती हैं, मगर इस ओर पर्याप्त ध्यान उनमें अभी तक नहीं दिया गया है। शारीरिक शिक्षण कन्याओं के लिए इतना महत्वपूर्ण है कि अन्य विषयों के समान इसे भी हरएक शाला के दैनिक क्रम में स्थान मिलना चाहिए। हमें यह याद रखना ज़रूरी है कि कन्याओं के कर्त्तव्यों में सबसे आवश्यक कर्त्तव्य मातृत्व का है, और माता का काम कोई मामूली काम नहीं है। उसीका तो हाथ है, जो पालना हिलाता और संसार पर शासन करता है। राष्ट्र की शक्ति प्रधानतः उसीपर तो अवलम्बित होती है।

इन विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम अँग्रेज़ी नहीं किन्तु वहाँ एक ऐच्छिक विषय के रूप में अँग्रेज़ी पढ़ाई जाती है। इसकी बड़ी कड़ी आलोचना की गई है। अतः शिक्षा की योजना में अँग्रेज़ी का क्या स्थान रहे, यह एक ऐसी समस्या है कि जिसपर भली भाँति विचार होना चाहिए। प्रश्न यह है कि जो सम्मानपूर्ण स्थान आज इसे प्राप्त है, क्या उसीको चलने दिया जाय? किसी भी पद्धति का निर्णय उससे होने वाले परिणामों से ही होना चाहिए। अंग्रेज़ी एक विदेशी भाषा है, इसलिए स्वभावतः विद्यार्थियों के लिए इसका पढ़ना मुश्किल होता है। अन्य विषयों को छोड़कर उन्हें अपने समय का अधिकांश इसमें लगाना पड़ता है और इसीकी पढ़ाई में उनके समय और शक्ति का अधिकांश ख़र्च हो जाता है। यहीं नहीं किन्तु, उनके बहुमूल्य समय के साथ ही, उनका स्वास्थ्य भी इससे नष्ट होता है।

दूसरी ओर, इसके पक्ष में, यह कहा जाता है कि अंग्रेज़ी हमारे देश की सबसे बड़ी राज-भाषा है और देश का सारा कारोबार इसीके द्वारा चलता है इसलिए इसका थोड़ा-बहुत ज्ञान तो होना ही चाहिए। आधुनिक विश्व की सामयिक घटनाओं से अवगत रहने के लिए भी अंग्रेज़ी को जानने की ज़रूरत है। फिर संसार में सबसे अधिक और श्रेष्ठ साहित्य भी अंग्रेज़ी में ही बताया जाता है—इस दृष्टि से भी इसका ज्ञान उपयोगी है। इन दोनों दृष्टियों पर विचार करने पर मालूम होता है कि स्त्रियों की पढ़ाई-लिखाई में अंग्रेज़ी भी एक आवश्यक साधन अवश्य माना जाना चाहिए।

परन्तु ऐसी हालत में शिक्षा-योजना में इसका वही स्थान होना चाहिए जो कि संगीत और चित्रकारी जैसे शिक्षा के अन्य साधनों को प्राप्त है। उनसे ऊँचा स्थान देकर इसे शिक्षा का माध्यम बनाना तो बड़ा भद्दा और हास्यास्पद है।

राजनीति का साधारण ज्ञान भी कन्याओं के लिए आवश्यक है। संसार के विभिन्न राष्ट्रों में हमारे देश का क्या स्थान है, यह उन्हें मालूम होना चाहिए। साथ ही, देश की आवश्यकताओं से भी उन्हें परिचित होना चाहिए। राष्ट्रीय समस्याओं के उठने पर, देखा गया है कि, स्त्रियां देश की पुकार पर चलने में बड़ी सुस्ती दिखाती हैं। और उनकी इस जड़ता का मुख्य कारण है देश की आवश्यकताओं से उनका बिलकुल अपरिचित रहना। सार यह कि अतीत में स्त्रियों का जो प्रधान गुण था उस देश-भक्ति की भावना का उनमें साधारणतः अभाव होता है।

अलावा इसके शिक्षा का एक ख़ास उद्देश्य यह भी होना चाहिए कि कन्यायें व्यावहारिक जीवन के उपयुक्त बनें। जैसा कि आम तौर पर देखा जाता है, शिक्षा से उनमें अपने समाज के प्रति वैर या द्वेष का भाव न पैदा होना चाहिए; क्योंकि उन्हींकी शक्ति और सहायता पर तो समाज का अवलम्ब होता है। उनका कर्त्तव्य तो यह है कि सामाजिक संगठन की पथ-प्रदर्शक बनें। साथ ही इसके शिक्षा से उनमें इतनी क़ाबलियत भी आनी चाहिए कि गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश करने पर प्रेम और सेवा के अपने सिद्धांतों को वे असली रूप दे सकें। क्योंकि यहीं से उनके वास्तविक जीवन का आरम्भ होता है। और पहले की तरह अब भी यही जीवन स्त्री-शिक्षा की कसौटी है।*

चन्द्रावती

---

* 'वैदिक मार्जन' से

काया पलट

(१)

चौधरी अमरसिंह की धर्मपत्नी का स्वर्गवास हुए पाँच वर्ष हुए और इस समय उनकी अवस्था पैंसठ साल की है। उनका लड़का रामसिंह उनकी टहल-सेवा भले प्रकार करता है। रामसिंह की पत्नी सीता अपने ससुर से अच्छा बर्ताव नहीं करती है और न अपने पुत्र सुजानसिंह ही को भले प्रकार रखना जानती है। रामसिंह स्कूल में अध्यापक है और उसको ८० रुपया वेतन मिलता है। चौधरी साहब को सूद-ब्याज की आमदनी लगभग २०० रु० प्रतिमास की हो जाती है। किन्तु, आर्थिक दशा इतनी अच्छी होने पर भी, उनको संतोष रत्तीभर भी नहीं है। जब देखो रुपये की ही धुन सवार है, और स्वप्न भी रुपये पैदा करने के ही देखा करते हैं। किसीने ठीक कहा है, बिल्ली को ख़्वाब में भी छिछड़े नज़र आते हैं। वास्तव में यही दशा चौधरी साहब की है। इनकी यह प्रबल इच्छा थी कि युवावस्था में खूब धन कमा लो, परमात्मा का भजन बुढ़ापे में कर लेंगे। किन्तु बुढ़ापे में जवानी से अधिक रुपये पैदा करने का भूत सवार हुआ, और भजन तो उनसे कोसों दूर भाग गया। इस संसार में मनुष्य को जिस काम के करने का अभ्यास शुरू से पड़ जाता है, वह उस काम को आख़िर तक कर सकता है, अन्यथा नहीं। इसी प्रकार भजन करने का अभ्यास तो चौधरी साहब को था नहीं, अब बुढ़ापे में भजन कैसे करते? उनको केवल रुपये पैदा करने की धुन नहीं थी, उनका विचार इस उम्र में अपना पुनर्विवाह करने का भी था। और उनके बेटे की पत्नी कोई दिन क्लेश किये बिना ख़ाली नहीं जाने देती थी। बुढ़ापे में पुरुष को स्त्री के मरने से बहुत दुःख हो जाता है। किसीने बहुत ठीक कहा है कि बच्चे की

माँ और बूढे की घरवाली कभी न मरे। चौधरी साहब को अपनी पत्नी के मर जाने के कारण अपने बेटे की बहू के दुर्वचन प्रति दिन सुनने पड़ते थे। और जब वह सुनते-सुनते तंग आ गये तो पुनर्विवाह का वह विचार उनके दिमाग़ में चक्कर लगाने लगा और विवाह की तैयारी करने लगे।

(२)

अपनी कन्याओं को बूढ़ों के हाथ बेचकर निर्वाह करने वाले व्यक्तियों की इस भारत में कमी नहीं। ऐसे ही एक कन्या विक्रेता-बिजनौर में विद्यमान थे। उनकी कन्या की आयु १६ या १७ वर्ष की थी और वह सुन्दर भी अत्यन्त थी। यों तो चारों तरफ़ से बूढ़ों के पत्र कृपाणसिंह के पास आ रहे थे; किन्तु मुँह-माँगे रुपये न देने के कारण सब हाथ मलते रह गये। हमारे चौधरी साहब को भी इस लड़की का पता उनके एक लंगोटिये मित्र ने दिया था। अतः उन्होंने भी अपने नाई बुद्धू को लड़की के बाप के पास एक चिट्ठी लेकर भेजा, जिसमें लिखा था 'यदि आप अपनी लड़की का विवाह मेरे साथ करदें तो मैं ५ हज़ार रुपये देने को तैयार हूँ।'

संध्या-समय बुद्धू बिजनौर पहुंचा। चिट्ठी पढ़ने पर कृपाणसिंह के आनन्द की सीमा न रही; क्योंकि उनको २--३ हज़ार से अधिक कोई नहीं देता था। उन्होंने चौधरी अमरसिंह के प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। बुद्धू ने चौधरी साहब के पास जाकर यह आनन्द समाचार सुनाया, जिसको सुनकर उनका सेरों खून बढ़ गया।

(३)

रामसिंह की पत्नी सीता यथा नाम तथा गुण वाली नहीं थी। नाम तो उसका सीता था, किन्तु उसके लक्षण श्रेष्ठ स्त्रियों जैसे नहीं थे। वह न तो पढ़ी-लिखी थी, और न घर-गृहस्थ के काम-काज में निपुण थी। इन लक्षणों को देख कर रामसिंह कुढ़ रहता था। वह बहुत कुछ ऊंच-नीच समझाता, किन्तु सीता की समझ ऐसी मोटी थी, कि वह रत्ती भर नहीं समझती थी। बेचारे को स्कूल से आने पर आराम के साथ भोजन भी नसीब नहीं होता था। जब देखो किसी न किसी चीज़ की फ़रमाइश मौजूद है। कभी बनारसी साड़ी का सवाल है, तो कभी रिस्ट वाच का। बेचारे के नाक में दम था। किन्तु, क्या करे? कोई छोड़ देने या बदलने लायक़ तो चीज़ थी नहीं, जो छोड़ देता या बदल लेता। बेचारे को चुप साधनी पड़ती थी। सुजानसिंह भी अपनी माता के प्रति दिन के बर्ताव से बहुत दुःखी था। न तो उसकी माँ चैन से उसको खाने देती और न अच्छा पहिनने देती थी। यही नहीं, अपने आप सदा कुढ़ा करती। किसीने क्या ही उत्तम बात कही है, "यदि तुम खुश रहना चाहते हो तो दूसरों को खुश रक्खो" किन्तु इस अभागिन में इतनी समझ कहाँ थी?

(४)

एक दिन संध्या-समय जब रामसिंह स्कूल के लड़कों के साथ मगज़-पच्ची करके घर आया, तो उसने अपनी घरवाली को स्कूल के लड़कों से अधिक चीख़ते चिल्लाते पाया। ग़रीब बहुत परेशान था कि क्या करे? अपने पति को देखते ही सीता के क्रोध का पारा [illegible] डिग्री पर पहुंच गया और गरज कर बोली-'बस, [illegible] अभी मेरी माँ के घर भेज दो; नहीं तो मैं अपने [illegible] को, मुरादाबाद चिट्ठी भेज कर, बुलवा लूँगी।' [illegible] सिंह इतना सुनकर और भी भयभीत हुआ, [illegible] सावधानी और नम्रता-पूर्वक पूछा—'भागवान! [illegible] तो सही, ऐसी कौनसी बात होगई, जिससे ऐसी [illegible] में भर गई?' इतना सुनना था कि सीता लगी [illegible] और दहाड़-दहाड़ कर कहने, 'मुझ जैसी दुखिया [illegible] संसार में और कौन होगी! अपने पति और बेटे [illegible]

जन करना तो मुश्किल है, बूढ़े खूसट ससुर का
ना कहाँ से बनाऊँ ? बुढ़ापे में नित-नई चटपटी
जें खाने को जी करता है, पर कभी कोई चीज़ बस्त
वाये में लाकर रखने का नाम नहीं। खाना होते
र नहीं होती कि बूढ़े को खाने की पहले से पड़
ाती है। जब देखा नई-नई चीजें बनाने को कहा
रता है!" ग़र्ज़ कि उस भागवान ने अपने पति के
ामने ससुर को खूब उलटी-सीधी और पेट भर कर
ातें सुनाईं। और इसपर भी बस नहीं किया,
क कोठरी में जाकर कैकई की तरह रूठ कर
ड़ रही।

रामसिंह नित्य के ऐसे झगड़ों से ऊब चुका
था। उसने भी सीधी अँगुली घी न निकलते देख
सत्याग्रह की ठानी। न अपने आप तीन दिन तक भोजन
किया, न घर वाली को कुछ खाने दिया। सुजानसिंह
को उसके दादा ने स्कूल जाते समय तीन दिन तक
खूब घी डाल-डाल कर खिचड़ी बनाकर खिलादी और
अपने आप भी खाली। उसको अपने हाथ की बनी
खिचड़ी में अपने बेटे की बहू सीता के हाथ की बनी
खिचड़ी की अपेक्षा अधिक स्वाद आया।

(५)

तीन दिन के उपरान्त कुछ तो भूख लगने के
कारण और कुछ पति के सत्याग्रह के तप की वजह
से सीता का गुस्सा अपने आप ठण्डा पड़ गया। उसने
अपने पतिदेव के पैरों में आकर सिर नवाया और
अपराध क्षमा करने को कहा। अपने पुत्र सुजानसिंह
को बुलाकर प्यार किया। स्वामी से कहकर अपने
ससुर को बुलवाया और विनय-पूर्वक उनसे भी अपना
अपराध क्षमा करा लिया। अब रामसिंह सानन्द स्कूल
जाने लगा। और सुजानसिंह की पढ़ाई और खाने-पीने
का प्रबन्ध भी ठीक तरह हो गया।

(६)

इधर तो यह लीला हो रही थी, जो अन्त में
सानन्द समाप्त होगई; उधर बिजनौर में कृपाणसिंह
बेटी के विवाह की तैयारी में लग रहे थे। चौधरी
साहब भी अपने विवाह की तैयारियाँ, अपने
बहू-बेटे को चोरी-चोरी कर रहे थे। इस तैयारी का
पता था केवल उनके मित्र करोड़ीमल सेठ को। जब
उन्होंने देखा कि बहू के लक्षण पहले से सुधर गये हैं,
तो उन्होंने सोचा कि अब चित्त गृहस्थ के झगड़ों में न
फंसा कर भगवत्-भजन में लगाना चाहिए। किन्तु ढाई
हज़ार की रक़म, जो उन्होंने अपने विवाह के संबन्ध
में कृपाणसिंह को पेशगी दी थी, हर समय खटकने
लगी। विवाह के होने में केवल महीना भर शेष था
और सब तरह विवाह की तैयारी समाप्त हो चुकी थी।

एक दिन उन्होंने अपने मित्र करोड़ीमल से
सलाह की—'भाई, अब घर में सब तरह की मौज है।
बहू-बेटे सेवा करते हैं, पोता भी बहुत सपूत है। यदि
विवाह हो भी गया तो जिस समय मैं मौत के समीप
पहुँचूँगा वह ठेठ जवान ह्वे जायगी और मेरे मरने पर
मुझे और अपने बाप को जी भर कर कोसेगी। इस
कारण तुम ही नेक सलाह दो कि जिससे रुपया भी
सुकारथ लगे और परलोक भी न बिगड़ने पावे।'

अपने मित्र की बातें सुन कर सेठ करोड़ीमल
ने कहा—'एक बात मेरे मन में उठी है; यदि आज्ञा
हो तो कहूँ ?'

चौधरी साहब समझे कि सेठजी उनको विवाह
करने की अनुमति देंगे। वह बहुत ध्यान से सुनने लगे।

वह बोले—'अर्जुनसिंह का लड़का सुचेतसिंह
कॉलेज में बी. ए. क्लास में पढ़ता है और २२ वर्ष की
उम्र है। सुशील भी बहुत है। यदि आपकी मर्ज़ी हो
तो उसकी जन्म-पत्री मंगाकर लड़की की जन्म-पत्री
से किसी विद्वान् ज्योतिषी द्वारा मिलवा लें ?'

अंधे को क्या चाहिए ? दो आँखें। अमरसिंह इस बात को सुनते ही राज़ी हो गये।

(७)

कृपाणसिंह की लड़की और सुचेतसिंह के ग्रह इत्यादि भले प्रकार मिल गये और ठीक विजयादशमी के दिन, जो अमरसिंह ने अपने विवाह के लिए सुभ-वाया था, विवाह हो गया। इस विवाह में कृपाणसिंह की लड़की का कन्यादान अमरसिंह ने अपने हाथ से किया और बाक़ी का ढाई-हज़ार रुपया दहेज़ में दे दिया। इस विवाह की चर्चा सब ओर फैल गई। क्योंकि अब तक कृपाणसिंह कन्या-विक्रेता के नाम से विख्यात था, किन्तु अमरसिंह की कृपा और सेठ करोड़ीमल की नेक सलाह के कारण इस नये प्रकार का विवाह होने से उसकी पिछली बदनामियों का कलङ्क धुल गया। कन्या लक्ष्मी, जो सुचेतसिंह के साथ ब्याहे जाने के कारण अब पत्नी के शुभ नाम से विभूषित होगई थी, अपने पति और बरातियों के साथ कानपुर आई। सारी उम्र वह अमरसिंह की सद्गति के लिए परमात्मा से प्रार्थना करती रही और अपने पिता कृपाणसिंह से अधिक अपने धर्म-पिता अमरसिंह का आदर-सत्कार किया।

गोपालकृष्ण शर्मा

"यदि स्त्री स्त्रीत्व के गुणों से रहित हो तो, और सब नियामतें (श्रेष्ठ वस्तुओं) के होते हुए भी, गार्हस्थ्य जीवन व्यर्थ है।"

"यदि किसी की स्त्री सुयोग्य है तो फिर ऐसी कौनसी चीज़ है, जो उसके पास मौजूद नहीं ? और यदि स्त्री में योग्यता नहीं तो फिर उसके पास है ही क्या चीज़ ?"

—ऋषि तिरुवल्लुवर

अनाथों का मूल

अनाथों की उत्पत्ति का मूल कारण अज्ञान है। जि[स] देश में मातायें शिक्षित नहीं होतीं उसी देश के बच्चे अ[नाथ,] दीन, हीन दरिद्र, होते हैं। और स्त्रियों की ऐसी दशा [का] कारण पुरुष-जाति ही है। पुरुष-जाति ने स्त्रियों को अ[ज्ञान] के गड़हे में डाल कर छल करके उनके हाथ-पाँव में चा[ँदी] सोने की बेड़ियाँ डाल दीं ! नाकमें नकेल, कान में सां[कल,] कण्ठ में कठसरी, छाती पर हार, भुजाओं में बाजूबन्द इ[त्यादि] अनेक बन्धनों को डाल कर उनके मन में यह निश्चय [करा] दिया कि ये बन्धन नहीं भूषण हैं ! त्रिकाल से [पति] को परमेश्वर मानने वाली स्त्रियों ने इन बन्धनों को भू[षण] समझ कर अपना लिया। और समय के फेर से उनका [यह] प्रलोभन इतना बढ़ गया कि प्रियतम से भी प्यारा भूषण [हो] गया ! बाहरी चमक-दमक, वेष-भूषा ही उनकी आ[त्मा] कहलाने लगी। इस प्रकार पुरुष-जाति ने स्त्रियों को, शिक्षा [के] बजाय बन्धन डाल कर, गुलाम बना लिया। यही नहीं, घ[र की] चहारदीवारी के भीतर बन्द कर उन्हें अपने विषय-भोग [की] वस्तु समझने लगे; और सन्तानोत्पत्ति तथा चूल्हा, चक्की [आदि] घर के काम-धन्धे ही स्त्रियों के प्रधान कार्य हो गये।

कालान्तर में, उनकी अशिक्षा के कारण उनके आच[रण] इतने बिगड़ गये कि पुरुष जाति स्वयं ही उनसे घृणा [करने] लगी और सारा दोष उनके सिर मढ़ दिया।

बी० ए० विदित पतिदेव हैं; पर शत्रु अक्षर स्वामिनी।
पंडित पुरुष तो बन रहे हैं, हैं अशिक्षित भामिनी॥
दिन-रात का सा भेद है, अत्युक्ति क्या इसको कहें ?
फिर प्रेम, सुख स्वातंत्र्य घर में, आपके कैसे रहें ?॥१॥
अत्यल्प भी अपराध पर, डण्डे उन्हें तुम मारते।
पर हेतु उनकी मूर्खता का, सोचते न विचारते॥
हो, हाय ! दोषी तो स्वयं, देते उन्हें तुम दण्ड हो।
आश्चर्य क्या फिर पा रहे, ये दुःख आज अखण्ड हो ?॥२॥

अनाथों की उत्पत्ति पुरुष-जाति के ही पापों का फल है। पर इस विषय को, यहाँ पर, मैं और नहीं बढ़ाना चाहती। पुरुष अगर अपने धर्म-कर्म को भले प्रकार समझें, तो उ[न्हें] ख़ुद ही मालूम हो जायगा।

अनाथों के लिए संस्था की आवश्यकता इस समय अनिवार्य है। मगर स्त्रियों के सहयोग के बिना इसमें भी सफलता मिलना अत्यन्त कठिन है। माता आटा पीसने वाली होने पर भी कई बच्चों को पाल सकती है; किन्तु पिता के लखपति होने पर भी उसके लिए एक बच्चे का पालना असम्भव नहीं तो महाकठिन ज़रूर है। बच्चे पैदा करना और उनके लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा का कार्य परमात्मा ने स्त्रियों को ही सौंपा है, पुरुष इन्हें कदापि नहीं कर सकते। भारत में पुरुषों ने स्त्रियों से बालकों को शिक्षा देने का अधिकार छीन लिया है; किन्तु अन्यत्र, संसार के सारे सभ्य देशों में, आज भी प्राथमिक शिक्षा स्त्रियाँ ही देती हैं। भारत की उन्नति के समय में यहाँ भी यही प्रथा थी, और यहाँ भी स्त्रियों की शिक्षा पुरुषों से कम न थी। मण्डन मिश्र की स्त्री सरस्वती का उदाहरण सब पर विदित ही है। सच तो यह है कि भारत का इतिहास स्त्रियों की विद्वत्ता, शील, स्वार्थ-त्याग, प्रेम, साहस, धैर्य आदि असंख्य गुणों से भरा पड़ा है। संसार के इतिहास में भारत का नाम जो ऊँचा है, वह भी इसी कारण। यही नहीं, पुरुष-जाति ने भी स्त्री-जाति का लोहा मान लिया है। शास्त्रकारों को भी आख़िर यही कहना पड़ा—

दाराधीनाः क्रिया सर्वा दारा स्वर्गस्य साधनम्।

अर्थात्—सारी क्रिया स्त्रियों के ही अधीन है और स्त्रियों से ही स्वर्ग प्राप्त होता है।

परन्तु, आदर्श स्त्रियाँ तो शिक्षा से ही बनाई जा सकती हैं। अतः पुरुषों को चाहिए कि वे अपनी-अपनी स्त्रियों को उत्तमोत्तम शिक्षा से विभूषित करें और कृत्रिम बंधनों को नष्ट कर उन्हें अपनी ग़ुलामी से मुक्त करें। ऐसा होने पर ही परमात्मा उन्हें भी उनकी ग़ुलामी से मुक्त करेगा और समस्त सफलतायें स्वयंमेव उनके चरणों में आ पड़ेंगी। अन्यथा अनाथों की संख्या इस क़दर बढ़ जायगी कि जिसका रोकना असम्भव हो जायगा। क्योंकि स्त्रियों की अशिक्षा ही अनाथों की जननी और कलह का मूल है।

"दुख-दरिद्रता का आवाहन, तुमने अपने आप किया।
ज्ञान, कला-कौशल का तुमने, खुद ही सत्यानाश किया॥
लड़ने की इस बीमारी से, जब छुटकारा पाओगे।
होगा सुख-मय जीवन जब, निज बहनों को अपनाओगे॥

लक्ष्मीबाई सोगाणी

स्फुट प्रसंग

आशा की किरण

देश का वातावरण इस समय बड़ा क्षुब्ध है। ख़ास कर हिन्दू-मुसलमान-समस्या ने तो उसे बड़ा ही निराशापूर्ण बना रक्खा है। और यह तो एक आम शिकायत है कि स्त्रियां अपने देश के हित-अहित से बड़ी लापर्वाह बनी हुई हैं। ऐसे समय सिन्ध और दिल्ली की नारियों ने अपना जो रुख़ प्रदर्शित किया है, वह बड़ा आशाप्रद है। दोनों जगह की नारियों की शिक्षा-विषयक परिषदें हाल में कराची और दिल्ली में हुई हैं और दोनों ही इस बात का प्रमाण हैं कि हमारी बहनें भी स्वदेश की समस्याओं से अपरिचित नहीं और उन्हें हल करने में यथाशक्ति सहायता देने को भी तैयार हैं।

"किसी राष्ट्र की उन्नति उसकी नारियों द्वारा किये गये कार्यों पर ही मुख्यतः अवलम्बित है। यह एक ऐसी सच्चाई है कि जिसपर पुरुषों या स्त्रियों ने प्रायः ध्यान नहीं दिया है। और यह दुर्भाग्य की बात है कि सिवाय कुछ थोड़ी सी बहनों के हम नारियों ने अपनी सामाजिक और शिक्षण परिस्थिति को सुधारने के कार्य में अभी तक कोई भाग नहीं लिया है। अब भी समय है कि भारतीय स्त्रियां यह समझ लें कि उनकी मानसिक, नैतिक और शारीरिक उन्नति के लिए शिक्षा आवश्यक है। साथ ही इसके अपने राष्ट्रीय उत्थान में भी हमें अपना स्थान ग्रहण करना चाहिए। एइसके लिए हमें इतना योग्य बनना होगा कि जिससे अपने बच्चों को हम सुनागरिक बना सकें। क्योंकि, उन्हीं पर हमारे भारत का भविष्य निर्भर है।"

एक ओर तो इन सुन्दर शब्दों के साथ श्रीमती एस० आर० दास ने दिल्ली-परिषद् का उद्घाटन किया; दूसरी ओर हिन्दू-मुसलमान-भेदभावों का ज़िक्र करते हुए कराची-परिषद् की सभानेत्री श्रीमती मेहता ने स्त्रियों से यह मर्म-पूर्ण अपील की—

"पुरुष अपने छोटे-छोटे देवताओं के लिए लड़ते हैं तो लड़ने दो। भगवान् उन्हें बुद्धि दें। उनसे तो अब किसी प्रकार की आशा करना शायद व्यर्थ है; वे तो, मालूम होता है,

हमारे देश को तहस-नहस और नष्ट ही कर डालेंगे। लेकिन, मेरा नम्र कथन है कि, इतने पर भी अपनी एकता से हम उन्हें मुक्ति-मार्ग पर पहुंचा सकती हैं।.........और मेरा अन्तिम एवं आदर-पूर्ण आग्रह यही है कि पुरुष अगर आपस में लड़ना चाहते हैं तो लड़ने के लिए उन्हें अकेला छोड़ दो; हमारे लिए तो यही ठीक है कि इस गन्दगी से हम बची रहें और उन्हें जता दें कि हम स्त्रियां तो आपस में मिली-जुली ही रहेंगी।"

यही नहीं, दिल्ली-परिषद् की सभानेत्री श्रीमती नेहरू ने भी स्वदेश-सेवा के ही भावों को जगाया। परिषद् को समाप्त करते हुए उन्होंने कहा कि स्त्रियां अपने देश से प्रेम करें, यही नहीं, बल्कि अपनी मातृभूमि के लिए अपना सब कुछ परित्याग करने के लिए भी तत्पर रहें। भारत की हर-एक पुत्री का यह कर्त्तव्य है कि अपने बृहत्तर गृह अर्थात् स्वदेश की उन्नति के लिए ही वह अपनी बुद्धि और शक्ति को व्यय करे। और इस सुन्दर अपील के साथ उन्होंने अपने भाषण को समाप्त किया—

"याद रक्खो कि इस समय भी यदि हमने अपने कर्त्तव्य का पालन न किया तो हम भावी पीढ़ियों को विरासत में दुर्गति के सिवा और कुछ न दे सकेंगी। अब समय आगया है कि हम अपनी जन्मभूमि के उद्धार में उचित रूप से भाग लें और एक बार फिर उसे उसी गौरव से विभूषित करदें कि जिससे वह अतीत काल में अलंकृत थी।"

निस्सन्देह ! भारतीय नारियां चाहें तो आज भी भारत को पुनः गौरवान्वित कर सकती हैं। जैसा कि वीर नेपोलियन ने फ्रांस के लिए कहा था, हमारे देश के पुनरुद्धार के लिए भी तो सुमाताओं की ही सबसे बड़ी ज़रूरत है।

बहुत ठीक

पर, सुमाता हों कैसे ? हमें हर्ष है कि सुयोग्य बहनों ने इसके मूल तत्व को ढूंढ लिया है। शिक्षा पर उनका जो ज़ोर है, वह इसी बात का प्रमाण है। और वह शिक्षा हो कैसी, यह भी श्रीमती मेहता ने बड़े सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है—

"हमारा उद्देश्य है हमारे बच्चों की शिक्षा, जिससे कि व्यावहारिक रूप में उनके जीवन का सम्बन्ध है। हमारे घरों में हमारा जो प्रभाव है, अपने बच्चों को हम जो कुछ सिखा... और एकता के लिए हमारी जो इच्छा, विश्वास और निश्च... उसका और तो और पर हमारी होने वाली सन्तति पर भी असर पड़ेगा कि उनके लिए वह एक बहुमूल्य विरासत होगी। हमें रोज़ी देने वाली हमारी मातृभूमि में जिस प्रक... जीवन और व्यवहार होता है हमारी शिक्षा ठीक उ... अनुसार होनी चाहिए।"

श्रीमती मेहता के इस विचार पर तो सहसा हम नहीं कह सकते कि स्त्री पुरुषों के लिए विश्वविद्यालय भि... ही रहें; पर शिक्षा का आधार जो उन्होंने देश के जीव... अवलम्बित रक्खा है, उसकी उत्तमता में किसे सन्देह !

यह क्यों ?

ये परिषदें नारी-जागृति का प्रमाण हैं ही, दिल्ली... षद में उपस्थिति चार हज़ार से भी ऊपर पहुँच गई... साथ ही इनके प्रस्ताव भी सुन्दर हैं। दिल्ली-परिषद् अ० भा० परिषद् से भी आगे बढ़ गई है। उसने केवल डा० गौड़ के सहवास-बिल का ही समर्थन ... बल्कि विवाह-वय भी १६ वर्ष ही क़रार दिये जाने पर ... दिया है। अन्य प्रस्तावों में दिल्ली-परिषद् ने प्राथ... शिक्षा अनिवार्य और निशुल्क करने पर ज़ोर देते हुए ... शिक्षा के संबंध में इतने प्रस्ताव पास किये हैं—

(१) तमाम कन्याशालाओं और महाविद्यालयों में ... और अभ्यस्त शारीरिक शिक्षा को अनिवार्य किया जाय।

(२) विवाहिता स्त्रियों को गार्हस्थ्यशास्त्र और ... कलायें सिखाने के लिए समस्त म्युनिसिपैलिटियों से ... खुलवाये जायँ।

(३) उद्योग-धन्धों के संगठन के लिए सरकार एक ... को नियुक्त करे और उसकी अधीनता में घरू उद्योग... प्रोत्साहन देने के लिए दस्तकारियों का एक स्कूल ... जाय।

(४) नैतिक शिक्षा सब स्कूलों में अनिवार्य की ... और प्रार्थनायें बुलवाने की प्रथा को उत्तेजन दिया जाय।

(५) कन्याओं के लिए रसोई, सिलाई, कपड़े ... संगीत, घर सजाना, चित्रकारी और क़सीदा जैसे घर-गृ...

के काम समस्त माध्यमिक शालाओं में अनिवार्य किये जायँ।

(६) नागरिकता और समाज-सेवा को भी शिक्षाधिकारी स्वतन्त्र विषयों के रूप में सब स्कूलों में दाख़िल करें।

(७) शिक्षाधिकारियों द्वारा नियुक्त दक्ष व्यक्तियों द्वारा गाँवों में कृषि संबंधी भाषण और प्रदर्शन भी हों।

(८) विभिन्न धर्मों के तुलनात्मक अभ्यास को सब विश्वविद्यालयों में एक ऐच्छिक विषय के रूप में दाख़िल किया जाय।

इसमें शक नहीं कि ये सब प्रस्ताव शिक्षा की दिशा में प्रगति करने वाले हैं। साथ ही इनके दिल्ली में रहने वाली बंगाल. कन्याओं के लिए बंगाली भाषा की शिक्षा की व्यवस्था के लिए भी कहा गया है। पर घर-गृहस्थी के कामों में चर्खे-खादी को स्थान नहीं! एक बात और। एक प्रस्ताव द्वारा दिल्ली-म्युनिसिपैलिटी से कहा गया है कि वहाँ के परदाबाग़ की तरक़्क़ी करे और उसका प्रबन्ध स्त्रियों की एक समिति के सुपुर्द रहे। एक ओर तो आज चर्खे-खादी की उपयोगिता ऐसी सर्वविदित है कि उसपर कुछ लिखने की यहाँ ज़रूरत नहीं; दूसरी ओर परदे को किस सुशिक्षित ने कुप्रथा नहीं स्वीकार कर लिया? ऐसी दशा में पहले के प्रति उपेक्षा और दूसरे के लिए इतना आग्रह क्यों? यह बात समझ में नहीं आती।

'प्रेम से जीतो'

महिलाधिकारों के संबंध में दिल्ली-परिषद् की मांगें हैं:-

(१) समस्त सार्वजनिक संस्थाओं में, ख़ास कर दिल्ली प्रान्त की स्थानिक संस्थाओं में, पुरुषों के समान स्त्रियों को भी प्रवेश करने का अधिकार दे दिया जाय। और (२) दिल्ली की महिलाओं की कठिनाइयों और आवश्यकताओं पर दृष्टि रखने के लिए सरकार म्युनिसिपल बोर्ड में एक स्त्री-सदस्य को नामज़द करे।

निस्सन्देह ये मांगें कोई बहुत कड़ी नहीं। फिर इन्हें प्राप्त करने का, अपने अधिकारों को विजय करने का, जो ढंग बताया गया है, वह तो बड़ा ही महत्वपूर्ण है। सभानेत्री श्रीमती नेहरू ने इसके लिए अपने अंतिम भाषण में कहा—

"प्रेम हमारे अधिकारों को प्राप्त करने का एक ज़बरदस्त हथियार है; इसलिए, आइए, प्रेम से ही हम अपनी लड़ाई में विजय-लाभ करें!"

यही भावना, मालूम होता है, श्रीमती दास के हृदय में भी काम कर रही थी, जब कि आरम्भ में ही उन्होंने यह आशा प्रकट की—

"क्या मैं यह आशा करूँ कि यहाँ पर पास हुए प्रस्ताव हममें वास्तविक एकता की ऐसी भावना का उदय करेंगे कि अपने से कम भाग्यवती अपनी बहनों की आवश्यकताओं को हम अधिक अच्छी तरह समझ कर अपनी शक्ति भर उनकी मदद कर सकेंगी?"

ये भावनायें बड़ी सुन्दर हैं। अपने जीवन में क्रियात्मक रूप देकर, इनके द्वारा, स्त्रियां अपना ही नहीं बल्कि पुरुषों और समष्टिरूप से मानव-समाज का भी बड़ा उपकार कर सकती हैं। परमात्मा उन्हें इसके लिए समर्थ करें!

महात्माजी का उपदेश

अपने लङ्का-प्रवास में महात्मा गांधी को कई स्त्री-सभाओं में बोलना पड़ा। कोलम्बो की एक स्त्री-सभा में स्त्रियों को गहनों से सुसज्जित देख महात्माजी बड़े दुःखी हुए। भारत की दरिद्रता का चित्र उनके सामने अंकित कर महात्माजी ने उनसे अपने गहने उसके लिए दे देने तथा भविष्य में गहनों के मोह से छूटने की जो अपील की, वह बड़ी हृदयस्पर्शी है—

"मेरी भूखी आँखें बहनों के गहनों की ओर ताकने लगती हैं, जब कभी मैं उन्हें गहनों से ख़ूब सजा हुआ देखता हूं। उनके गहने माँगने में एक आन्तरिक हेतु भी होता है। वह यह कि मैं महिलाओं को गहनों और जवाहरातों की लालसा से छुड़ाऊँ। और मैं अन्य बहनों से जिस प्रकार निःसङ्कोच व्यवहार करता हूँ उसी तरह यदि आपसे करूँ तो क्या मैं यह पूछ सकता हूँ कि पुरुष की अपेक्षा स्त्री अधिक शृंगार क्यों करती है? स्त्री मित्रों ने मुझसे कहा है कि वे यह सब पुरुषों को प्रसन्न करने के लिए करती हैं। ठीक, पर मैं आपसे कहता हूँ कि संसार की हलचलों में अगर आप साझीदार होना चाहती हैं तो पुरुषों की खुशी के लिए ऐसा करने से आपको इन्कार ही करना पड़ेगा। अगर मैं

स्त्री-रूप में पैदा हुआ होता तो पुरुष की किसी भी ऐसी धारणा के विरुद्ध अवश्य विद्रोह खड़ा करता, जिससे यह सिद्ध होता हो कि स्त्री उसके आनन्दोपभोग के लिए निर्माण की गई है। स्त्री के हृदय में प्रवेश करने के लिए मैं स्वयं मानसिक रूप में एक स्त्री बन गया हूँ। मैं अपनी स्त्री के हृदय में घुस नहीं सका, जब तक कि मैंने उसके साथ पहले की अपेक्षा दूसरे प्रकार का व्यवहार करने का निश्चय नहीं किया। पति के रूप में जो मेरे बहुत से अधिकार समझे जाते थे वे सब मैंने छोड़ कर उसको ही सौंप दिये और आज आप देखते हैं कि वह मेरी ही तरह सादगी के साथ रहती है। उसके शरीर पर न तो आप मालायें देखेंगे और न शौक़ीनी की चीज़ें। मैं चाहता हूँ कि आप भी ऐसी ही बनें। अपने वहमों और शौक़ीनी को छोड़ दो, और पुरुषों की गुलाम होने से इन्कार कर दो। सज-धज को छोड़ो, इत्र-फुलेल और लवेण्डर की फ़िक्र मत करो; अगर तुम सच्ची सुगन्ध देना चाहती हो तो वह तुम्हारे हृदय से ही निकलनी चाहिए। ऐसा होने पर तुम पुरुष ही नहीं बल्कि समस्त मानव-समाज को वश में कर लोगी। यह तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है। पुरुष तो स्त्री से ही पैदा हुआ है, उसीके माँस और हड्डी से वह बना है। अतः, अपने असली स्वरूप को पहचानो और पुनः अपना सन्देश प्रदान करो।"

क्या भारतीय स्त्रियां इसे कार्य-रूप में परिणत करेंगी?

मुकुट

श्रीमती लक्ष्मीबाई सोगाणी

श्री० लक्ष्मीबाई हाल ही तीन वर्ष यूरोप और अमेरिका रहकर यहाँ लौटी हैं और उन्होंने अपनी सादगी, दृढ़ता तथा सौजन्य की अच्छी छाप वहाँ वालों पर छोड़ी है। आप जयपुर के जौहरी श्री ईश्वरदासजी सोगाणी की धर्मपत्नी हैं। सोगाणी जी एक साहसी समाज-सुधारक हैं। १९२०-२१ में ही आपने श्रीमती लक्ष्मीबाई से परदा छुड़वा दिया और गहने उतरवा दिये थे। नये अर्थ में 'शिक्षित' न होते हुए भी आपने रूढ़ियों और कुटुम्बियों के प्रभावों से ऊपर उठकर, अनेक मानसिक यातनायें सहकर, जो क़दम बढ़ाया वह राजपूताना जैसे परदा के सुदृढ़ दुर्ग-रूप प्रान्त के लिए बड़े ही आश्चर्य की, और इसलिए प्रशंसा की बात है। श्रीमती लक्ष्मी-बाई को भी धन्य है कि उन्होंने न केवल इस सुधार में पति का साथ दिया, बल्कि यूरोप और अमेरिका जाकर भी 'सह-धर्मचारिणी' शब्द को सार्थक किया एवं वहाँ के स्त्री-समाज को अपने आर्योचित सद्गुणों से मोहित किया। श्रीमती सोगाणी का पहला चित्र जब वे परदा करती थीं और गहनों से लदी रहती थीं, पाठकों के कुतूहल का कारण होगा। उनके शेष चित्र यूरोप और अमेरिका के हैं। अब भारत में भी आप इसी तरह सादगी और आज़ादी से रहती हैं। आपकी सादगी, नम्रता, सौजन्य ने आपकी आज़ादी पर शोभा और पवित्रता का सुन्दर रंग चढ़ा दिया है। आशा है, अन्यत्र छपे हुए आपके विचारों को पढ़ कर पाठक प्रसन्न होंगे।

ह० उ०

वीर नारी हेमन्तबाला

कहा जाता है कि बंगाल का नारी-जीवन इस समय सङ्कटापन्न है। बंगला मासिक पत्र 'प्रवासी' ने ऐसी घटनाओं की एक लम्बी तालिका भी प्रकाशित की है। ऐसे समय वहाँ के मैमनसिंह ज़िले की एक युवती ने जो साहस दिखाया है वह सराहनीय है।

युवती का नाम हेमन्तबाला है, और वह एक ग़रीब नाई की स्त्री है। उसकी सुन्दरता पर उसका एक पड़ोसी नाई मुग्ध हो गया। वह मालदार और बलिष्ट था। उसने कई तरह हेमन्तबाला को फुसलाने की चेष्टा की, पर वह राज़ी न हुई। तब उसने अपनी काम-वासना को ज़बरदस्ती तृप्त करना चाहा। शरीर का हट्टा-कट्टा तो था ही, एक दिन सुबह ९-१० बजे के क़रीब जब कि उसका पति घर नहीं था, वह उसके घर जा पहुंचा और बल प्रयोग द्वारा हेमन्तबाला का सतीत्व नष्ट करना चाहा। हेमन्तबाला चिल्लाई-पुकारी, पर कोई उसकी रक्षा को न आया। अपनी शक्ति का प्रयोग भी उसने किया, पर कोई सफलता मिलती नज़र न आई। अन्त में वह हताश हो गई। और तब घर में पड़े एक खंजर को उठा कर, उससे उस नीच पर उसने हमला

श्रीमती लक्ष्मीबाई सोगाणी, जयपुर

पहला कदम

स्वाधीनता की गोद में

श्रीयुत सोगाणीजी के साथ में

करना शुरू किया। उस आदमी ने पहले तो विशेष पर्वाह न की, पर फिर बेहाल होकर गिरा और अंत में छटपटा कर घर भाग गया। एक घण्टे बाद वहीं वह मर भी गया।

इस प्रकार शरीर से बलवान् होते हुए भी वह पुरुष ग़रीब-ग्रामीण १८ वर्षीय हेमन्तबाला का कुछ न बिगाड़ सका, हेमन्तबाला ने जाति की 'नीच' होते हुए भी अपने उच्च गुणों के द्वारा अपनी सतीत्व-रक्षा कर ही ली। सतीत्व-रक्षा के लिए परावलम्बित रहनेवाली महिलाओं के लिए हेमन्तबाला का यह उदहारण स्फूर्त्तिदायक होना चाहिए। वहाँ के नारी-रक्षा-संघ ने कटार तथा चाँदी के कास्केट में एक जोड़ी साखा (शंख की चूड़ियां) और सिन्दूर भेंट करके हेमन्तबाला को सन्मानित किया है। हमारी बहनें हेमन्तबाला का सबक़ सीख लें तो फिर उनके संकट का अपने आप ही ख़ात्मा हो जायगा। परमात्मा उन्हें इसके लिए शक्ति दें!

❀ ❀ ❀

एक बात विचित्र हुई। हेमन्तबाला पर इसके लिए मुक़दमा चला और सब-डिवीज़नल आफ़िसर ने उसे दौरा सुपुर्द किया। दौराजज ने उसके कृत्य की प्रशंसा की, यह भी कहा कि जब उसने ऐसा किया उस समय सिवा आत्म-रक्षा के उसे और कोई सुध ही नहीं थी; फिर भी उसे दण्डनीय तो माना ही गया! वह सात महीने की गर्भवती थी, इसलिए सज़ा में ज़रूर रियायत रक्खी गई। वह यह कि जुर्माना ज़रूरी न रक्खा गया और क़ैद सिर्फ़ अदालत उठने तक की ही रही। समझ में नहीं आता, यह न्याय कैसा! जब उसके पास आत्म-रक्षा का कोई और चारा न था, और सिवा आत्म-रक्षा के उसे कोई और सुध भी न थी, यही नहीं बल्कि उसके पास से पुरुष लौटा भी जीता-जागता और स्वयं ही घर गया तथा वहाँ पहुँचने के एक घन्टे बाद मरा, तब फिर वह क़सूरवार हुई ही कैसे? हमारा तो ख़याल है कि इस वीरतापूर्ण आत्म-रक्षा के लिए, इतना तंग करने के बजाय, उसे सन्मानपूर्ण पुरस्कृत करना चाहिए था।

एक महिला का सन्मान

स्वीडन में एक संस्था है, जो भिन्न-भिन्न विषयों पर हर साल 'नोबल प्राइज़' दिया करती है। यह 'प्राइज़' या पुरस्कार एक लाख से ज्यादा का होता है और उस विषय के संसार में सर्व-श्रेष्ठ व्यक्ति को मिला करता है। हमारे देश में भी कवि-सम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर साहित्य विषय पर एक बार इसे प्राप्त कर चुके हैं। इस बार, हर्ष है कि, इसका सौभाग्य प्राप्त हुआ है एक महिला-रत्न को। ग्रेज़िया-डिलेड्डा वह इटालियन महिला हैं, जिन्होंने इसे प्राप्त कर न केवल अपनेको बल्कि सारी स्त्री-जाति को ही गौरवान्वित किया है। फिर यह और भी विशेषता है कि यह पुरस्कार आपको मिला है अपनी ग्राम्य-जीवन की रचनाओं पर। इससे दो बातें सिद्ध होती हैं। एक तो यह कि शहरी तड़क-भड़क से सीधे-सादे ग्रामीण जीवन का महत्व आज भी ज़्यादा है और दूसरी यह कि महिलायें किसी बात में पुरुषों से कम नहीं—कोशिश करने पर साहित्य में भी वे पुरुषों का मुक़ाबला ही नहीं कर सकतीं वरन् उनसे बाज़ी भी ले सकती हैं। महिला-मात्र को, आशा है, श्रीमती ग्रेज़िया का यह दृष्टान्त स्फूर्त्तिदायक होगा।

रूस और स्त्रियां

साम्यवाद के कारण रूस इस समय सबके दाँतों चढ़ा हुआ है। हमारे अंग्रेज़ 'प्रभु' तो उसके दोष दिखाते नहीं अघाते। पर 'करेंट हिस्ट्री' में श्री वी० एफ़० केलवर्टन ने उसके सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, उससे मालूम होता है कि वहां की स्त्रियां भारत ही नहीं पश्चिम के सभ्यताभिमानी देशों से भी कहीं सुखी और स्वतंत्र हैं। वह लिखते हैं:—

"स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हैं। स्त्री के आर्थिक और राजनैतिक अधिकार बिलकुल पुरुष के समान हैं। सार्वजनिक सभाओं में स्त्रियां वक्तृता देती हैं, और अदालतों में कम स्त्रियां न्यायाधीश नहीं हैं। प्रसवावस्था में स्त्रियों की बड़ी सावधानी रक्खी जाती है। बच्चा पैदा होने से पहले व पीछे, कुछ दिनों तक, स्त्री की बड़ी सेवा-शुश्रूषा की जाती है। जहां काम करती है वहांसे उसे ६ से ८ सप्ताह तक की सवेतन छुट्टी मिल जाती है और डाक्टरी इलाज मुफ्त होता है। यही नहीं, वेतन के अलावा, नौ महीने तक बच्चे के भोजनादि के लिए भी उसे आर्थिक सहायता मिलती है। तदुपरांत, काम पर जाना शुरू कर दने पर, काम के बीच-बीच में उसे बच्चे को सम्हालने का समय भी मिलता है।...

"विवाह के पुराने धार्मिक बन्धन उठा दिये गये हैं। पूंजी-वाद-संसार में स्त्री-पुरुष के अधिकारों में जैसा भेदभाव है, वैसा रूस में नहीं है। सोवियट रूस में जब कोई स्त्री विवाह करती है तब वह अपना माल या अपना कोई अधिकार पुरुष को नहीं सौंप देती। यही नहीं, वहां के एक क़ानून के अनुसार, पति किसी दूसरी जगह काम करने जाय तो स्त्री भी उसके साथ जाने के लिए वाध्य नहीं है।"

यही क्यों, रूसी युद्ध-मन्त्री के हाल के एक भाषण से ज्ञात होता है कि, सैनिक क्षेत्र में भी वे पुरुषों के साथ हैं। उन्होंने कहा है—

"लाल सेना ही ऐसी सेना है, जहां स्त्रियां पुरुषों के समान दर्जे प्राप्त करते हुए काम कर सकती हैं। सैनिक विद्यालय में ८ स्त्रियां अपनी पूर्ण सैनिक शिक्षा में उत्तीर्ण हुई हैं। ७२ स्त्रियां राजनैतिक सेनापतियों का कार्य कर रही हैं। वायुयान के उड़ाकों में एक स्त्री भी है।"

सार यह कि, श्री केलवर्टन के शब्दों में, "सोवियट रूस में स्त्रियों के सभी अधिकार पुरुषों के समान हैं और पुरुष स्वप्न में भी उनपर कोई अत्याचार करने का साहस नहीं कर सकता।"

ब्रिटेन और बाल-विवाह

भारत में बाल-विवाह का जो ज़ोर है, उसके हम ज़बर-दस्त विरोधी हैं। पर मिस मेयो जैसे आलोचक देखें कि ब्रिटेन जैसे सभ्य देश भी उससे एकदम कोरे नहीं। इंगलैण्ड में विभिन्न नारी-संस्थाओं का एक प्रतिनिधि-मण्डल हाल में स्वराष्ट्र-सचिव से मिला था। उससे विदित होता है कि वहाँ के क़ानून में बालक-बालिकाओं की विवाहवय है सिर्फ़ १४ और १२ वर्ष! यह ठीक है कि वहाँ छोटी उम्र में विवाह होते बहुत कम हैं, पर फिर भी हो तो सकते हैं न? वहाँ की नारियां इस बात का प्रयत्न कर रही हैं कि यह आयु बढ़ा कर, बालक-बालिका दोनों के लिए, १६ वर्ष कर दी जाय। चीन और मिस्र जैसे पिछड़े हुए देशों में भी यह १६ वर्ष से कम तो नहीं है। पर स्वराष्ट्र-सचिव अभी भी टालमटोल ही कर रहे हैं। ऐसी दशा में इस कारण यदि भारत स्वशासन के अयोग्य माना जाता है तो स्वयं इंगलैण्ड भी क्यों नहीं किसी राष्ट्र के अधीन हो जाता?

एक नया दृष्टि-कोण

बाल-विवाह के निषेध में अभीतक जितने भी प्रस्ताव और क़ानून पेश हुए हैं, सबमें प्रायः यही तत्व प्रतिपादित है कि अमुक अवधि से पहले किया हुआ विवाह नाजायज़ माना जाय परन्तु अब, हाल में, एक नया दृष्टि-कोण सामने आया है। रायसाहब हरविलास सारडा के बाल-विवाह-निषेधक बिल के समर्थनार्थ उस दिन नागपुर में महिलाओं की जो सभा हुई, उसने इसे उपस्थित किया है। उक्त अवधि से पहले जो विवाह हों, बजाय इसके कि उन्हें नाजायज़ क़रार दिया जाय, जो अभिभावक उन्हें करने के लिए ज़िम्मेदार हों, उन्हें ही क्यों न दण्ड दिया जाय? दरअसल, चाहिए तो यही—क्योंकि लड़के लड़कियां स्वयं तो उनके लिए ज़िम्मेवार होते नहीं, तब भला उसका दण्ड भी वे क्यों भुगतें! जो असली ज़िम्मेवार हैं वे अभिभावक ही क्यों न दण्ड भोगें? हां, यह तर्क-सम्मत ज़रूर हो सकता है कि, ऐसे विवाहों वाले लड़के-लड़की अपने विवाहों से संतुष्ट न हों तो दूसरे विवाह करने की उन्हें छूट रहे। समाज-सुधारकों तथा इस दिशा में क़ानून प्रस्तावित करने वाले महानुभावों को चाहिए कि इस दृष्टि-कोण पर भी वे विचार करें।

अ० भा० महिला-परिषद

अ० भा० महिला-परिषद का दिल्ली-अधिवेशन दिन दिन निकट आ रहा है। फ़रवरी में यह होगा। दिल्ली में तैयारियां शुरू हो गई हैं। वाइसराय महोदय की पत्नी लेडी इरविन ने उसका उद्घाटन करना स्वीकार कर लिया है। अध्यक्षता के लिए दिल्ली प्रान्त ने भोपाल की बेगम साहबा, वह मंजूर न करें तो श्रीमती सरोजिनी नायडू और वह भी स्वीकार न करें तो विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्र वसु की पत्नी के नाम सुझाये हैं। भारतभर की महिलाओं को विशेष दिलचस्पी के साथ इस पर ध्यान देना चाहिए। जिन प्रान्तों की स्त्रियां पूनाधिवेशन में शरीक नहीं हुई थीं उनसे भी आशा है इसमें अच्छी संख्या में भाग लेंगी।

मुकुट
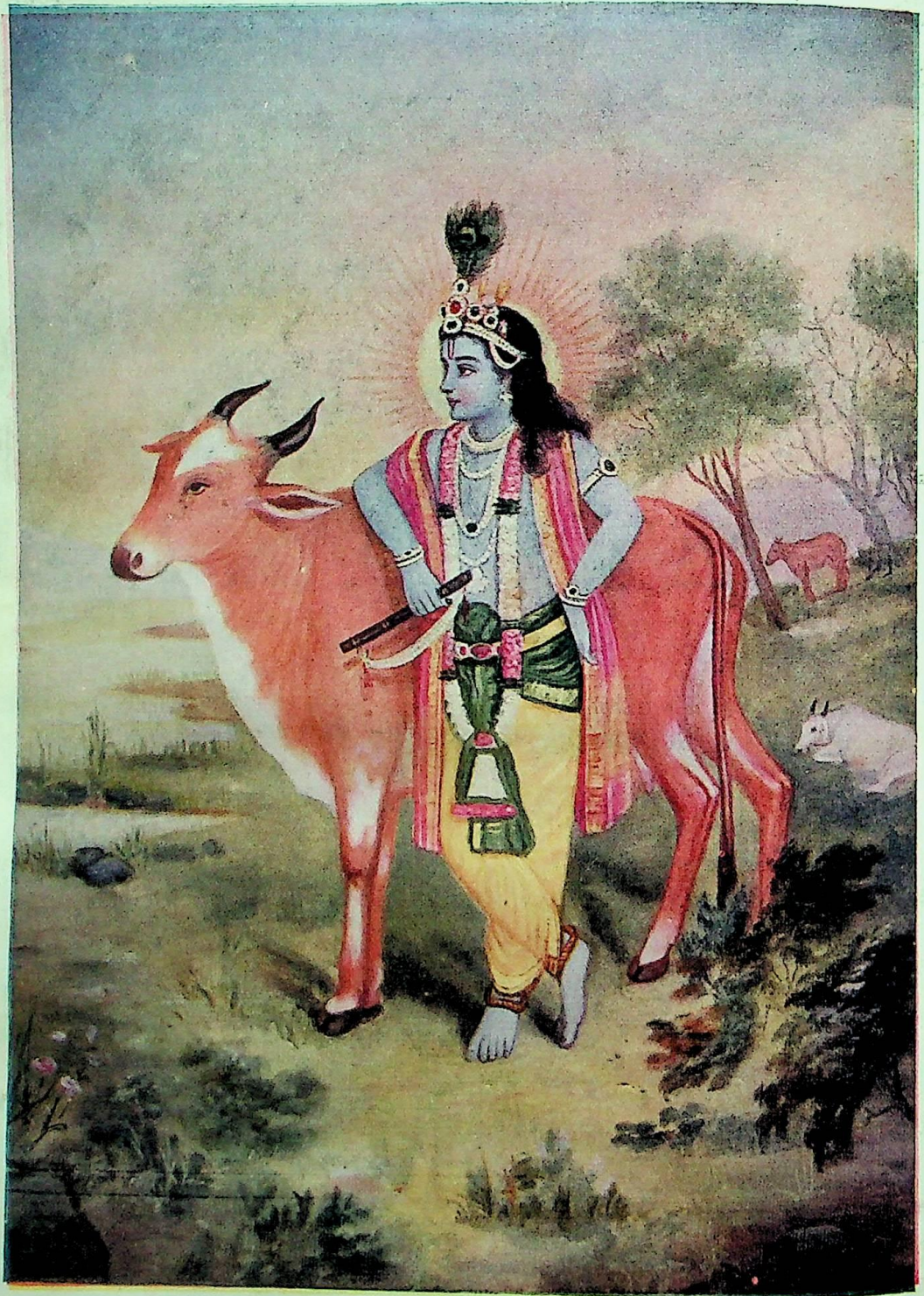
卐 卐 卐 गोपाल

Lakshmi Art, Bombay, 8.
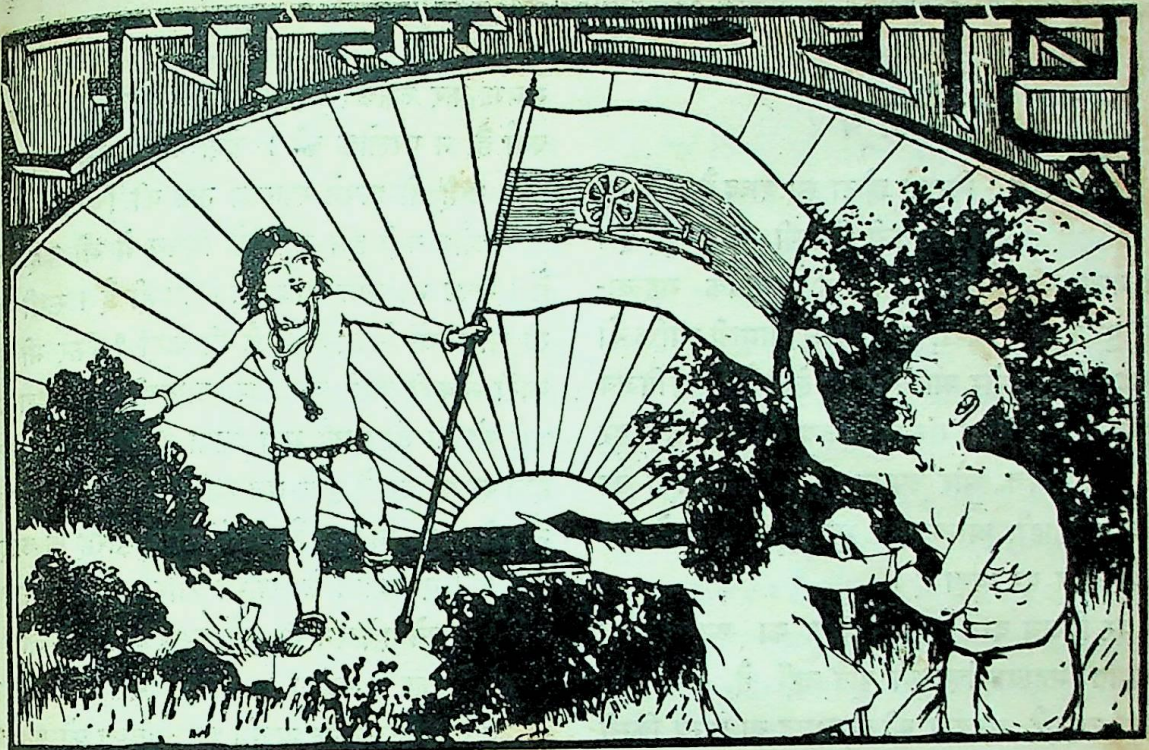
प्रार्थना

भगवन् रहे निरंतर दृढ़ संगठन हमारा।
छूटे स्वदेश ही की सेवा में तन हमारा॥

(१)

बल बुद्धि और विद्या, धन के अनेक साधन।
कर प्राप्त हम करेंगे निज देश को समर्पन॥
वह शक्ति दो कि भगवन् निभ जाय प्रण हमारा। छूटे०॥

(२)

हममें विवेक जागे हम धर्म को न छोड़ें।
बंधन कुरीतियों के हम एक-एक तोड़ें॥
व्रत ब्रह्मचर्य कम से कम बीस वर्ष पालें।
मन और देह दोनों की शक्तियां कमा लें॥
निर्बल न हों कभी हम कि न हो पतन हमारा। छूटे०॥

(३)

मरना अगर पड़े तो मर जायँ हम ख़ुशी से।
निज देश के लिए पर छूटे लगन न जी से॥
पड़ संकटों में चाहें बन जायँ हम भिखारी।
सिर पर मुसीबतें ही आ जायँ क्यों न सारी॥
हिम्मत कभी न हारें बिचले न मन हमारा। छूटे०॥

(४)

सुन वीरता हमारी कँप जायँ दुष्ट सारे।
कोई न न्याय छोड़े आतंक से हमारे॥
जब तक रहे फड़कती नस एक भी बदन में।
हो रक्त बूँद भर भी जब तक हमारे तन में॥
छीने न कोई हमसे प्यारा वतन हमारा। छूटे०॥

(५)

विधवाओं की न आहें हमको कभी जलायें।
आचार-हीनता के हममें न पाप आयें॥
कोई दलित न जग में हमको पड़े दिखाई।
स्वाधीन हों सुखी हों सारे अछूत भाई॥
सबको गले लगा ले यह शुद्ध मन हमारा। छूटे०॥

(६)

वह शक्ति दो कि जग को अपना बना सकें हम।
वह भक्ति दो कि तुमको फिर से बुला सकें हम॥
सुख में तुम्हें न भूलें दुख में न हार मानें।
कर्त्तव्य से न चूकें तुमको परे न जानें॥
गायें सुयश ख़ुशी से जग में सुजन हमारा। छूटे०॥

रामनरेश त्रिपाठी

विजय

विजय ! कितना छोटा सा शब्द है ? परन्तु इसमें कितनी बिजली भरी हुई है। कैसी गज़ब की आकर्षण-शक्ति है। प्रत्येक महत्वाकांक्षी पुरुष को—नहीं, मामूली से मामूली व्यक्ति को भी यह अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। सब विजय की धुन में हैं। सारा संसार विजय का भक्त है। पर इसका परमभक्त और उपासक है वह नवयुवकों का सजीव, उत्साही, आनन्दमय झुण्ड, जो जीवनोपवन के प्रवेश-द्वार पर खड़ा है।

पर विजय क्या है ? विजय का अर्थ केवल व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा की पूर्ति नहीं है, ढेरों धन कमाना नहीं है, सरकार की ख़ुशामद या अन्य किसी प्रकार से उच्च पद प्राप्त कर लेना भी नहीं है। विजय विद्वत्ता को नहीं कहते। विजय लम्बी-लम्बी स्पीचें झाड़ने से नहीं मिलती, और न कौंसिलों या पार्लमेंट के राजनीतिज्ञ बन जाना ही विजय है। विजय तो एक बिलकुल जुदी वस्तु है।

भारत में यों सफल पुरुषों की न्यूनता नहीं है। आज कलकत्ता और बम्बई में हम कई करोड़पतियों को देखते हैं। मामूली से मामूली अवस्था से बढ़कर उन्होंने कुबेर के समान सम्पत्ति एकत्र कर ली है। क्या यह विजय है ? जिसने धन को इकट्ठा करके सत्कार्यों में देना न सीखा उसकी सफलता में बहुत देरी है। फिर केवल धन इकट्ठा कर लेने से ही कोई मनुष्य धन्यवाद का पात्र नहीं हो सकता। सिद्धांत और सदाचार का बलिदान करके इकट्ठा किया धन और प्रभुत्व किस काम का ? अपनी आत्मा को बेंच कर यदि आदमी संसार के प्रभुत्व को भी प्राप्त कर ले तो इससे उसका क्या कल्याण हुआ ? मैं स्वयं ऐसे कई पुरुषों को जानता हूँ, जो धन को परमात्मा समझ कर उसके पीछे पड़े हुए हैं। उन्हें इस लोक की पर्वा है, न परलोक की। देश और धर्म की कौन कहे, उन्हें तो अपने स्वास्थ्य तक की चिंता नहीं !

और यही हम सत्ता के विषय में भी कह सकते हैं। सत्ता भी नाम मात्र की सत्ता ही है। सच्ची सत्ता तो भारतीयों के हाथों में है ही कहाँ ? फिर भी सरकारी नौकरी करने पर प्रायः आदमी अपने देश और धर्म को या तो क़तई भूल जाता है, या मन में इच्छा होने पर भी उससे कुछ बन नहीं पड़ता। वह भी अपनी नौकरी का ग़ुलाम होता है। इसमें भी दो तरह के आदमी होते हैं। एक शान के लोभी और दूसरे नौकरी के जरिये मिलनेवाले धन के। मैं दूसरे प्रकार के लोगों के विषय में कुछ न कहूँगा। किन्तु ऐसे आदमी भी कि जो स्वतंत्रता-पूर्वक अपनी आजीविका को प्राप्त कर सकते हैं, शान और भोग-विलास के लोभ के कारण अपनी आत्मा की प्रेरणाओं की अवहेलना करते हैं। इस पामरता को विजय या सफलता के नाम से कैसे भूषित कर सकते हैं ? और देश के तेजस्वी युवक इस आत्म-हनन के मार्ग को पसंद भी क्योंकर करेंगे ?

विजय का सच्चा अर्थ है अपनी सद्गुण-संपत्ति का सम्पूर्ण विकास करके शैतान के भेजे प्रलोभनों पर विजय प्राप्त करना। धन और सत्ता को प्राप्त करने में अपनी शक्तियों को बरबाद करने के लिए नहीं, परमात्मा ने यह मानव-शरीर हमें अन्य ऊँचे कर्त्तव्यों के पालन के लिए दिया है, जिनसे हमारा सच्चा शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक कल्याण हो सकता है। हम अपने बच्चों के लिए इन चमकीले पत्थरों की अपेक्षा कहीं अधिक क़ीमती विरासत छोड़ सकते हैं। और वह क्या है ? हम उनके लिए अगाध बंधु-प्रेम, निर्मल चरित्र, गहरी और दृढ़ श्रद्धा, और सच्चा देश-प्रेम छोड़ सकते हैं। हम उनके लिए वे तमाम बातें छोड़ सकते हैं, जिनसे मनुष्य का

आत्मा, जाति, देश और धर्म की उत्तम से उत्तम सेवा हो सकती है—जिससे मनुष्य सदाचारी और समृद्ध भी हो सकते हैं। और यही सच्ची विरासत होगी।

"समय कठिन है। दिन ब दिन जीवन-संघर्ष भीषण रूप धारण करता जा रहा है, और शिक्षा महँगी। फिर देश-कार्य के लिए तो मानों अपने सिर को हथेली पर लेकर ही उतरना चाहिए। सरकार भी तो कम शक्तिशाली नहीं है। उसे हम कैसे परास्त करेंगे? आज मनुष्य के लिए अपना पेट भरना तो एक जटिल समस्या हो रही है, फिर देश-कार्य करने के लिए समय और शक्ति हम कहाँ से लावें? माता-पिता, भाई-बहन, स्त्री, इन सब को कहाँ रक्खें?"

यह सब ठीक है। पर क्या आप मानते हैं कि अब हम आजन्म इसी प्रकार पराधीन रहेंगे? एक विदेशी सत्ता द्वारा इसी प्रकार लुटते रहेंगे? इस देश में स्वाधीनता की वायु का कभी संचार ही न होगा? यदि आपका यह ख़याल हो तो जितनी जल्दी हो सके उसे मिटा दीजिए। हम स्वाधीन होंगे और होकर रहेंगे। और वह भी इतनी जल्दी कि जितनी जल्दी हम चाहें। मांगल्य में श्रद्धा रखिए। यह परिस्थिति नितान्त अस्वाभाविक है। प्रकृति और परमात्मा इसे मंजूर नहीं कर सकते कि एक देश के निवासी दूसरे देश पर अब अधिक दिन तक शासन करते रहें। यह उसकी आज्ञा के विपरीत है। पूर्व प्रकाश की भूमि है। यहाँ सूर्य उदय हो कर सारे संसार को प्रकाशित और सचेत करता है। हमें भी प्रकृति की आज्ञा को मानना होगा। आज यदि अपने अज्ञान-वश हम उसे मानने में टाल-मटूल करेंगे तो कल वह हमें इस अपराध की सज़ा देकर उसका पालन करने के लिए मजबूर करेगी। और यदि उसे भी न मानेंगे तो एक जोर का झटका दे कर हमें संसार के इस पर्दे से हटा देगी। प्रकृति को नालायक़ों की ज़रूरत नहीं है।

पर किसी ने ठीक ही कहा है—"अयोग्यो पुरुषो नास्ति योजक स्तत्र दुर्लभः।" प्रत्येक ज्योति में अपना विशिष्ट प्रकाश होता है। उसे पहचान कर उसका उपयोग कर लेने वाला पुरुष ही इस संसार में सबसे अधिक सफल होता है। प्रकृति के साम्राज्य में कोई यह भी शिकायत नहीं कर सकता कि 'हमें मौक़ा ही नहीं मिला।' प्रतिदिन प्रतिपल वह प्रत्येक प्राणी को मौक़े देती रहती है। हां, मनुष्य को अपनी आँखें खुली रखनी चाहिएँ। दो विद्यार्थियों को हम किसी काम पर भेजते हैं और देखते हैं कि एक सफल होता है और दूसरा असफल। अथवा एक केवल उस काम को करके लौट आता है और दूसरा उसके साथ-साथ और भी दो-तीन काम कर लेता है। इससे हम देख सकते हैं कि समय और अवसर का सदुपयोग आदमी कैसे कर सकता है।

किन्तु जबतक आदमी के विचार सुलझे हुए और बुद्धि में निश्चय की दृढ़ता नहीं होगी उसे विजय मिलना कठिन है। सुलझे हुए विचार उसके मार्ग को प्रकाशित करते हैं तो निश्चयात्मक बुद्धि उसे वह उत्साह-शक्ति प्रदान करती है, जिससे वह विघ्नों की पर्वा न करके बराबर अपने निश्चय को पूर्ण करके छोड़ता है। विजय के लिए जितनी इन दोनों बातों की जरूरत है उतनी और किसी की नहीं। इसके मानी हैं दिमाग़ और शरीर पर मनुष्य का पूर्ण प्रभुत्व होना। जिसके वश में ये दोनों हैं उसके लिए संसार में क्या असम्भव है? मनुष्य की ये दो शक्तियां जितनी ही अधिक स्वस्थ होंगी वह उतना ही महान् होगा।

पर इसके लिए आवश्यकता होती है सुसंस्कारों की। स्मरण रहे, हमारा मतलब केवल शिक्षा अथवा सुशिक्षा से ही नहीं है। आजकल स्कूलों और कालेजों में जो पढ़ाई होती है केवल उससे हमारा काम नहीं चल सकता। उसकी निःसारता और हीनता को

कितने ही भारतीय तथा विदेशी विद्वानों ने संसार के प्रति प्रकट कर दिया है। अतः यह कोई ज़रूरी नहीं कि कालेजों में शिक्षा पाये हुए युवक संस्कारवान् होते ही हैं। एक अपढ़ युवक भी कालेज में शिक्षा प्राप्त किये हुए लोगों की अपेक्षा संस्कारवान् और अधिक व्यवहार-कुशल तथा कर्तव्य-दक्ष हो सकता है।

इसका कारण है। काम काम सबसे बड़ा शिक्षक है। एक बुद्धिमान् किसान में कालेज में शिक्षा पाये हुए युवक की अपेक्षा नाज, फ़सल, आदि का अधिक व्यावहारिक-ज्ञान पाया जाता है। मकान बनाने वाला सुतार या कारख़ानों में काम करने वाले बुद्धिमान् कारीगर इन यंत्रों की रचना, बनावट आदि का अमली ज्ञान अधिक रखते हैं। और एक जुलाहा बनिस्बत कपड़े के व्यापारी के उसके गुणागुण का अधिक गहरा ज्ञान रखता है। पर यह तब होता है जब मनुष्य बुद्धि से काम ले।

व्यापारियों का ही उदाहरण लीजिए। वे हमारे कालेजों और स्कूलों में शिक्षा पाये हुए युवकों की अपेक्षा कहीं अधिक चतुर और व्यवहार-कुशल होते हैं। व्यवहार के अज्ञान के लिए कालेज के विद्यार्थी कम बदनाम नहीं। किन्तु यह दोष विद्यार्थियों का नहीं; उस शिक्षा-प्रणाली का है, जो उन्हें दी जाती है।

परन्तु इन सब बातों को पढ़कर हमें चौंकने की ज़रूरत नहीं। काम तो बहुत हैं और हम क्या-क्या करेंगे? हमें शिक्षा-प्रणाली को बदलना है, देश के व्यापार को सुव्यवस्थित करना है, कला और विज्ञान में तरक्की करना है। भारतीय उद्यमों का पुनरुज्जीवन तो है ही। कृषकों की दीनावस्था को दूर करना है। मज़दूरों को कारख़ानों के नारकीय जीवन से बचाना है। और भी न जाने कितने काम हैं। ये सब हम-से कैसे होंगे?

इन सब पर आप दृष्टि न रक्खें। इनमें से किसी एक को ही चुन लें। प्रत्येक आदमी में कोई न कोई विशेषता होती है। उसे किसी न किसी विषय के साथ ख़ास रुचि होती है। बस, वह अपने उस प्रिय विषय को ही हाथ में ले ले।

यह सत्य है कि इन कार्यों को संपूर्णतया संपन्न करने के लिए महान् आत्माओं की ज़रूरत होती है। और निस्सन्देह बुद्ध और शंकराचार्य, सूर और तुलसी, शिवाजी और प्रताप, तिलक और गाँधी, किसी असाधारण तेज को ही लेकर पैदा होते हैं, अनेक जन्म-संसिद्धि को ले कर आते हैं। वह तो तपस्या का परिपाक होता है। वह भाग्य, वह तपस्या और वह विजय हमें कहां नसीब हो?

परन्तु निराशा के लिए कोई कारण नहीं है। हम देखते हैं कि वे सब हमीं लोगों में पैदा हुए थे। वही मौक़े, वही कठिनाइयां, वही रुकावटें उनके मार्ग में भी आई थीं, जो आज हमारे मार्ग को रोके हुए खड़ी हैं। देखना चाहिए कि उन्होंने ऐसे अवसरों पर क्या किया था? किस बुद्धिमानी से, किस तेजस्विता से, और किस अटल निश्चय से काम लिया था? किस तरह विपत्तियों को सामने देखते हुए भी वे अपने कंटकाकीर्ण मार्ग पर भावी की परवाह न करते हुए क़दम बढ़ाते चले गये थे। उस वृत्ति को ढूंढिए। उसको विकसित कीजिए। वही विजय की कुंजी है।

इतने पर भी हमें वह सफलता और विजय न मिले तो निराश होने की ज़रूरत नहीं है। अपने काम के चुनाव और कार्य पद्धति पर पुनः विचार कीजिए। हम कभी-कभी भूल से अपने लिए ग़लत काम चुन लेते हैं। हम देखते हैं एक संकोचशील युवक जो एक दिन वकालत में असफल हुआ था, जिसे समय पर स्कूल में अध्यापक का स्थान भी नहीं मिला, आज वही संसार का सर्व-श्रेष्ठ पुरुष हो गया है। एक डाक्टर अपने पेशे में असफल हो कर

भारत का एक विख्यात व्यापारी हो सकता है। इसी प्रकार केवल दृष्टि-दोष, पर्याप्त निर्णायक-शक्ति के अभाव और शिथिल निश्चय के कारण हम कई बार अपने हाथों में आई हुई विजय को खो देते हैं।

फिर विजय की भी तो सीढ़ियां और वर्ग हैं। उचित तो यही है कि हम पहले वर्ग की तैयारी करें। परन्तु यदि पहले वर्ग में नहीं आ सकें तो दूसरे में तो जरूर हम चमके बिना नहीं रह सकते।

मतलब यह कि जो जितनी ही क़ीमत देगा उसे उतनी ही बड़ी विजय मिलेगी। यह तो बाज़ार का नक़द सौदा है। इस हाथ दो उस हाथ लो। ऐसे मौक़ों पर परमात्मा किसी की तरफ़दारी नहीं करते। गुणी किन्तु अनिश्चयी और संकोचशील पुरुष रक्खे रह जाते हैं और दूसरे साहसी पुरुष उनकी आँखों के सामने बाज़ी मार ले जाते हैं।

कठिनाइयों का स्वागत करने और उनसे झगड़ने ही में तो सच्चा पुरुषार्थ है, और वही जीवन का आनन्द भी है। वह जीवन किस काम का, जिसमें कोई साहस नहीं, कोई ख़तरा नहीं, किसी नाजुक और घोर चिन्ता के लक्षण नहीं, जीवन एक-दो बार घोर संकट में नहीं पड़ा, एक-दो बार असफलता का कड़वा और तेज को जगा देने वाला कोई अनुभव नहीं हुआ? आये दिन गद्दे पर बैठे हैं; वही सुबह आठ बजे का उठना, वही चाय, वही ग्यारह बजे भोजन, वही दोपहर की नींद वही नौकरों की टहल,—यह भी कोई जीवन है? यह जीवन नहीं, तपस्या की बरबादी है, पूर्व शुभ कर्मों का क्षय है, और दारिद्र तथा नरक का सीधा रास्ता है।

विजय की कुंजी तो है सिद्धान्त, निष्ठा, साहस और कौशल।

वैजनाथ महोदय

सेवा

(१)

आज दिवाली है। शाम के समय मुहल्ले के सब छोटे-छोटे लड़के बाहर पटाख़े छोड़ रहे थे। मैं भी एक कोने में बैठा पटाख़े छोड़ रहा था। मेरी छोटी बहन भी मेरे पास ही बैठी तमाशा देख रही थी। पिताजी अन्दर लक्ष्मी-पूजन कर रहे थे। मैंने पटाख़े छोड़ना बन्द कर दिया और प्रसाद लेने के लिए अन्दर चला आया। मेरी बहन भी अन्दर आगई थी।

थोड़ी ही देर हुई होगी कि मेरे कान में एक आवाज़ आई—"बेटा, हज़ार बरस की तेरी उमर हो। एक भूखी आत्मा है। एक मुट्ठी आटा और एक फटा-पुराना कपड़ा दिलवा दे।" पिताजी पूजन करते-करते अंदर से ही बोले—"दूर हो यहां से; जानती नहीं, आज दिवाली है? आज के दिन किसी को कुछ नहीं दिया जाता। आगे जा आगे!"

न जाने क्यों, मेरी आँखें डबडबा आईं। मैं चुप-चाप बाहर निकल आया। वहाँ मैंने एक अर्धनग्न वृद्धा को दरवाज़े पर खड़ा देखा। भूख के मारे वह व्याकुल थी। मैं खड़ा-खड़ा उसकी ओर देखता रहा। थोड़ी देर के बाद वह फिर बोली, "बेटा कुछ मिलेगा?"

मैं चौंक उठा। मैंने एक बार फिर उसकी ओर देखा। और चुपके से अपने दोनों सोने के कड़े उतार लिये। धड़कते हुए हृदय से और आँसू-भरी आँखों से मैंने वह प्रसाद और कड़े उस भिखारिन के हाथ में रख दिये। वह चली गई; लेकिन, मैंने उसको जाते नहीं देखा। मेरी आँखों से आँसू बह रहे थे।

उस रोज़ मुझे रात को खाने को रोटी नहीं दी गई। पिताजी मुझपर नाराज़ थे!

(२)

छः साल बीत गये। मेरी छोटी बहन ससुराल

चली गई। घर में मैं, मेरे पिता और माता, ये तीन प्राणी रह गये थे ।

इस साल बारिश का नाम नहीं था । शहर में हैज़ा फैल गया और खूब फैला । एक क़ै हुई, एक दस्त, और बस, चटपट मामला ख़तम ! मुर्दों की गिनती नहीं । स्मशान में जलाने तक को जगह नहीं मिलती। लेकिन शहर की सेवा-समिति ने कमाल किया। मेरे स्कूल के हेडमास्टर सेवा-समिति के प्रधान थे । मैं सेवा-समिति का स्वयंसेवक तो पहले से ही था। मेरी ड्यूटी बोली गई थी फ़िनाइल और दवाइयों की शीशियां तथा कम्मल लेकर मुहल्ले-मुहल्ले चक्कर लगाने की। बस, सुबह के ६ बजे से रात के १० बजे तक यही काम—मुहल्ले में जाना, असहाय तथा ग़रीब रोगियों को दवाई देना, उनको सफ़ाई से रखना, गटरों, नालियों तथा पाखानों में फ़िनाइल डालना ताकि मच्छर और मक्खियाँ पैदा न हों। यही हमारा रोज़ का नियम था। आज इस मुहल्ले में तो कल दूसरे में ।

एक रोज़ मुझे ख़याल आया—"हम लोग शहर में ही इधर से उधर चक्कर लगाते हैं, दवा बाँटते हैं, सफ़ाई करते हैं; लेकिन शहर बाहर, लगभग जंगल में, तथा टूटे-फूटे फूस के झोंपड़ों में रहने वाले भंगियों —अन्त्यजों का क्या होता होगा ? उन बेचारों पर क्या बीतती होगी ? किसे मालूम !" मैंने अपना यह विचार प्रधानजी को सुनाया और कहा—"कल हम लोगों का चक्कर अन्त्यजों के मुहल्लों की ओर होना चाहिए। उनकी ओर भी हमें ध्यान रखना आवश्यक है ।

प्रधानजी ने ज़रा मुँह बनाकर कहा—" जितना मैं काम बताता जाऊँ, उतना तुम करते जाओ; बीच में हाथ मत डालो। वे अंत्यज हैं—अछूत हैं। भगवान् ने उन्हें अछूत बनाया है। हमें वहाँ जाने की ज़रूरत नहीं। हमें तो स्पर्श तक नहीं करना चाहिए। वे तो अपने पूर्व जन्म के किये का फल भोग रहे हैं। तुम इस झगड़े में मत पड़ो। पहले अपने पड़ोसियों की—घर की सोचो, फिर आगे की सोचना । "

प्रधानजी के यह वाक्य मुझे अच्छे नहीं लगे। मैंने उत्तर दिया—"हम स्वयंसेवक हैं न ? हमारे सामने कौन छूत और कौन अछूत ? हमारा तो कर्तव्य है कि मुसीबत के समय दोनों की समान-भाव से सहायता करें। हमारा धर्म तो प्राणी-मात्र की सेवा करना है। फिर हमारे सामने छूत और अछूत का प्रश्न कैसा ?"

" मुझे उपदेश देने की ज़रूरत नहीं। मैं तुमसे ज्यादा जानता हूँ । जैसा मैं कहूं वैसा तुम्हें करना चाहिए—और करना होगा। बस ! " प्रधानजी ने चिड़कर कहा ।

'प्राणी-मात्र की सेवा करना प्रत्येक स्वयंसेवक का धर्म है,' यह आदर्श-वाक्य जो प्रत्येक स्वयंसेवक को सिखाया जाता है, अपनी सुमधुर ध्वनि के साथ मेरी आत्मा में गूँज उठा । मुझमें शक्ति न थी कि उसकी अवहेलना कर सकूँ। प्रधानजी के अधीन रहकर कर्तव्य पालन करना असम्भव था । उन निस्सहाय, व्यथित और परित्यक्त भाई-बहनों की करुण मूर्तियां मुझे रह-रह कर बुला रही थीं। मैंने उसी समय लिख कर इस्तीफ़ा दे दिया ।

(३)

मेरे पास पैसे तो थे नहीं जो दवा आदि ख़रीदता। घर में होम्योपेथिक दवाओं का एक बक्स था। एक हाथ में तो उसे ले लिया, दूसरे हाथ में फ़िनाइल की एक शीशी ली, बग़ल में अपना बिस्तर दबा लिया, और अंधेरे ही अंधेरे, चुपके से, अंत्यजों के मुहल्ले में जा पहुँचा। वहां गन्दगी का पार नहीं था। मारे बदबू के नाक फटी जा रही थी। मैंने अपना सामान तो एक पेड़ के नीचे रख दिया और उनसे एक फावड़ा मांग लाया। सुबह ८ बजे तक सारा मुहल्ला साफ़ कर दिया। गंदी जगहों पर फ़िनाइल छिड़क दी।

इतने में एक कराहने की आवाज़ मेरे कानों में पड़ी। आवाज़ की ओर मैं चल दिया।

एक फटी-टूटी फूस की झोंपड़ी में एक वृद्ध पाखाने और पेशाब से लथपथ एक चटाई पर पड़ा पीड़ा के मारे बुरी तरह छटपटा रहा था। उसकी हालत मुझसे देखी न गई। मैं झोंपड़ी से बाहर आया। कुएं से एक बालटी में पानी भर लाया। उसे गरम किया और उस वृद्ध को कपड़े से स्नान करवाया। मकान भी साफ़ किया और अपना विस्तरा बिछा कर उसे उसपर लिटाया। थोड़ी देर बाद दवा दी। दवा से उसे कुछ आराम मालूम हुआ।

रात को क़रीब १० बजे तक मैं उस वृद्ध के पास बैठा रहा। न जाने क्यों, मेरा जी उससे अलग होने को नहीं चाहता था। जब रात अधिक बीत गई, तब वह वृद्ध मेरी ओर मुड़कर बोला—बेटा, तुम कहाँ से आये हो? रात बहुत हो गयी, अब अपने घर जाओ। आज तुमने मेरे लिए बहुत तकलीफ़ उठाई। भगवान् तुम्हें खुश रक्खें।

मैंने अपना सिर उठाया और जाने के लिए उठा। लेकिन, यह क्या?—पिताजी और प्रधानजी दोनों मेरे सामने खड़े हैं! मुझे देखते ही वे बोले—"बच्चा, मैं ग़लती कर रहा था। तू तो आदर्श स्वयंसेवक है।" और उन्होंने मुझे छाती से लगा लिया। मैं दोनों के पैरों में गिर पड़ा। मेरे आनन्द का पार नहीं था।

रात को स्वप्न में मैंने देखा कि मैं लक्ष्मीजी की गोद में बैठा हूँ और वह मेरे हाथों में वही कड़े पहना रही हैं जो मैंने उस रोज़ भिखारिन को दिये थे।

मैंने और देखा कि नारायण भगवान् मेरे सिर पर अपना हाथ फेरते हुए उपदेश कर रहे हैं कि "प्राणीमात्र की सेवा करना मनुष्य का धर्म है।"

मार्त्तण्ड उपाध्याय

युवक-सम्मेलन

२२ दिसम्बर को, मद्रास में, युवक सम्मेलन का द्वितीय वार्षिकोत्सव हुआ। कर्मण्य युवक नेता पं० जवाहरलाल नेहरू ने उसका ध्वजारोपण किया। नवयुवकों से उन्होंने कहा, आप लोगों का आदर्श पीछे नहीं बल्कि आगे देखना होना चाहिए। पुरानी रूढ़ियों से बग़ावत करके समय के अनुसार आपको काम करना चाहिए। स्वागताध्यक्ष श्रीयुत टी० प्रकाशम ने इटली, जर्मनी आदि पश्चिमी देशों के युवक-आन्दोलनों की ओर भारतीय युवकों का ध्यान आकृष्ट किया और कहा कि भारत को भी इस सम्बन्ध में पीछे न रहना चाहिए। सभापति डा० केशवदेव शास्त्री थे। उन्होंने राष्ट्रीय पुनरुत्थान, ख़ास कर ग्राम्य-संगठन की ओर भारतीय युवकों का ध्यान आकर्षित किया। भारतीय युवकों के संगठन तथा उस संगठन को अन्य देशों के संगठनों से सम्बद्ध करने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। जाति-व्यवस्था के कठोर बंधन, बाल-विवाह, अस्पृश्यता आदि दूर करने की अपील कर मूसोलिनी जैसे व्यक्ति की ज़रूरत बताई। अन्त में उन्होंने कहा, हमारे युवकों की महान् शक्ति भारत के उद्धार में लगाई जानी चाहिए। संगठन से लाखों श्रमजीवी देशोद्धार के काम में लगाये जा सकते हैं। "युवकों ने टर्की, इटली, मिस्र, रूस और चीन में जो कुछ किया वही हमारे युवक भारत में कर सकते हैं।" प्रस्तावों में भारत भर के युवकों से साम्प्रदायिक झगड़ों से दूर रहने और परस्पर भ्रातृभाव पैदा करने का अनुरोध किया गया है। हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा स्वीकार किया गया है। और एशिया की सांस्कृतिक एकता के लिए काम करने की नवयुवकों से अपील की गई है। नानक, नन्दे आदि भारतीय सन्तों की जयन्तियां मनाने का निश्चय हुआ है। और साधु वास्वानी के सम्पादकत्व में 'युवक संग्रह' नामक एक पत्र निकालने का भी निश्चय किया गया है। सार यह कि भारतीय युवकों की सर्वाङ्गीण जागृति के लिए यह प्रयत्न हो रहा है। अतः युवक बन्धुओं को चाहिए कि वे इस लहर का खुलेदिल से स्वागत करें और संगठित होकर अपने तथा अपने राष्ट्र के उद्धार में सहायक हों।

मुकुट

बालकों से

१—तुम सवेरे जल्दी उठते हो या नहीं ?

२—सवेरे, सो कर उठते ही, पहले ईश्वर का स्मरण, इसके बाद माता-पितादि गुरुजनों को श्रद्धा-पूर्वक प्रणाम कर, शौच, दतौन, स्नान आदि नित्य-कर्मों को सम्पन्न करने में आलस्य तो नहीं करते ?

३—नित्य-कर्मों से निपट कर पाठ याद करते हो ?

४—भोजन समय पर और कुछ भूख बाक़ी रख कर करते हो या नहीं ? और जो कुछ भी तुम रुचि-पूर्वक खाते हो वह सब होता तो सादा-सात्विक ही है न ? मीठे-खट्टे और चरपरे-चटपटे के फेर में तो तुम अभी नहीं पड़े हो ? चाय, पान, तमाखू की बुरी लत तो तुममें नहीं पड़ गई है न ?

५—भोजन के बाद हाथ-मुँह धो, दाँतों को भली भांति साफ़ करके, साफ़-सुथरे कपड़ों और प्रसन्न मन के साथ तुम शाला जाते हो या नहीं ?

६—रास्ते में किसी से लड़ते-झगड़ते अथवा बातों या खेल के चक्कर में तो नहीं पड़ते ?

७—शाला में ठीक वक्त पर पहुंचते और अपने सीधे-सादे-सच्चे व्यवहार एवं आज्ञापालन और विनम्रता से शिक्षक तथा सहपाठियों को प्रसन्न और सन्तुष्ट रखते हो या नहीं ?

८—अपना पाठ तो हमेशा याद कर लेते हो ?

९—अपने साथियों से लड़ते-झगड़ते तो नहीं ?

१०—किसी की चुग़ली तो नहीं करते ?

११—अपनी ग़लती को, मालूम होने पर, तुरन्त स्वीकार कर लेते हो या नहीं ? और ऐसा होने पर चिढ़ने या बुरा मानने के बजाय पश्चात्ताप-पूर्वक भविष्य में उस या वैसी अन्य ग़लतियों से बचने का प्रयत्न करते हो या नहीं ?

१२—आज्ञा-पालन और विनम्रता सद्गुण हैं; पर अनुचित या नीति-विरुद्ध विषय में गुरुजनों से न तो दबना और न ही नमना चाहिए, यह स सिद्धान्त तुम्हें मालूम है या नहीं ?

१३—शाला से आकर खेलते भी हो या नहीं

१४—शाला का पाठादि रात को, या और कि समय, अपने माता-पितादि को बताते हो या नहीं

१५—रात्रि-भोजन सोने से कम से कम दो घ पूर्व कर लेते हो या नहीं ?

१६—जल्दी सोना और जल्दी उठना न के तन्दुरुस्ती बल्कि बुद्धि और सम्पत्ति-अर्जन के लि भी एक नियामत है, यह तुम जानते हो न ?

१७—रात को ९ बजे तक सो जाते हो न ?

१८—सोने से पहले, एक बार, एकाग्र शान्त मन से उस महाप्रभु का भी स्मरण और न करते हो या नहीं, जिसकी कि तुम एक छोटी प्रतिमूर्त्ति और रचना हो ?

१९—अपने सभी काम तुम उसी महाप्रभु शुभ-स्मरण के साथ प्रारम्भ करते हो न ?

२०—रोज़, अपनी शक्ति के अनुसार, थो बहुत व्यायाम भी करते हो या नहीं ?

२१—किसी बात की अति तो ठीक नहीं; फिर अपने मनोरंजन के लिए संगीत और वाद्य ललितकलाओं का भी कुछ शौक़ तुम्हें है या नहीं

२२—चिन्तित और उदास तो नहीं रहते ? भर में एक बार तो खुल कर हँस ही लेते हो न

२३—घर में गुरुजनों से रूसते और बहन आदि हमजोलियों से लड़ते-भिड़ते तो नहीं ?

२४—किसी को सताते या खिझाते तो नहीं सबके साथ प्रेम और दया का व्यवहार रखते हो न

२५—सफ़ाई का महत्व भी जानते, समझते पालन करते हो या नहीं ?

———

साहित्य-संगीत-कला

कवि और कविता

कविता मानव-सृष्टि में उतनी ही प्राचीन वस्तु है, उतना कि मानव-हृदय और उसमें उठने वाले विविध भाव प्राचीन हैं। छंदों की बेड़ियों में कसी हुई क़ैदी कविता स्वतंत्र आदिम मनुष्य की कविता न थी। मानव-हृदय आन्दोलित होकर जिस धुन में, जिस लय में, जो गाता था उसीको पीछे के लोगों ने छंद बना दिया। आज छंद ही कविता का बाबा बन बैठा। व्याकरण जैसे भाषा का चौकीदार है, उसका मालिक नहीं, वैसे ही छंद भी कविता का कलेवर-मात्र है, उसकी आत्मा–प्राण नहीं। प्रकृति के काश्मीर की सुन्दरता और मनुष्य के दौलतबाग़ की शोभा अलग-अलग है। प्रकृति अपने सहज सुंदर रूप में अपना वैभव छिटकाती है; और मनुष्य उसे काट-छांट कर अपने मतलब का बनाने की चेष्टा करता है। प्रकृति का भण्डार अक्षय है, मनुष्य की शक्ति परिमित और रुचि सीमित है। मनुष्य प्रकृति का पुतला है। हाँ, प्रकृति को अपनी दासी बना लेने वाले मनुष्य भी हैं; पर वे प्रकृति की सृष्टि में काट-छाँट नहीं करते, सारी प्रकृति पर ही अपनी प्रभुता स्थापित करते हैं—उसीपर अपनी अंतरात्मा का रंग चढ़ाते हैं। वे छन्दों, रागों और रेखाओं के जीवन से टक्कर नहीं लेते; बल्कि काव्य संगीत और कला के मूल और आत्मा पर ही संस्कार करते हैं और उसे नया जीवन, नया वेग और नया दर्शन देते हैं। वे महाकवि हैं। उनके महाकाव्य के सामने, १८ सर्गों की कोठरियों में भटकने वाले, प्रभात और सन्ध्या के वर्णन की चिन्ता में सूखने वाले, पर्वत और नदी के किनारे मारे-मारे फिरने वाले, संयोग और वियोग में डूबने-उतराने वाले टकसाली महाकवि मिट्टी के खिलौने हैं। वह महाकवि एक विधाता ही है, उसे प्रति-ईश्वर ही समझिए। वह नई सृष्टि की रचना करता है, नवीन जीवन और नवीन आकांक्षाओं को जन्म देता है। वह त्रिकाल-दर्शी है, वह द्रष्टा है। वह भूतकाल की अस्थियों पर पाँव रोपकर वर्तमान की जटिलताओं को भविष्य का संदेश देता और पथ-दर्शन कराता है। उसका सिर आकाश में, पैर जनता में और बाहु चारों दिशाओं में रहते हैं। आकाश में बैठकर वह सृष्टि के गूढ़ों को, मानव-समाज की पहेलियों को, अपने अन्तश्चक्षुओं से देखता है, समाज में मिलकर उसे उठाता और जगाता है, तथा दिन-रात कोने-कोने में अपना गाना गाता है, अपना रोना रोता है। न वह गाने से थकता है, न रोने से। रोकर वह मानव-हृदय को जगाता है; जाकर उसे जुझाता है। उसका रोना और गाना परस्पर-पूरक है। वह रोते हुए हँसता है, और गाते हुए रोता है। वह पागल है। विश्व की वेदना उसके हृदय को हिलाती है। वह 'उफ़' कह कर चीख़ पड़ता है। यही काव्य है। उसकी चीख़ से ब्रह्माण्ड हिलने लगता है—यह काव्य की महिमा है। कवि की करुणा कविता है। भारत के आदि-कवि वाल्मीकि ने मग में एक मारे जाते हुए क्रौञ्च पक्षी को देखा। करुणा उनके हृदय से फूट निकली। वह कविता थी।

ऐसे महाकवि संसार में इने-गिने होते हैं। वे संसार को अपना संदेश देने के लिए आते हैं। वे तभी आते हैं जब संसार को उनकी आवश्यकता होती है। जब किसी समाज के विकास में कोई ज़बरदस्त बाधक शक्ति खड़ी हो जाती हैं तब उसे हटाने के लिए महाकवि का जन्म होता है! करुणा उसकी कविता और क्रांति उसकी कृति होती है। कवि बड़े महँगे, अनमोल, दुष्प्राप्य होते हैं। संसार में सस्ते कवि भी बहुत हैं। छंद और काव्य-शास्त्र पढ़ लिया, दिमाग़ की टकसाल में पद्य ढलने लगे। कविता का मायका दिमाग़ नहीं दिल है। जब दिमाग़ देखता है और दिल लिखता है, तब सच्ची और असली कविता होती है। यदि कविता पढ़ कर पाठक अपने

को भूल गया, कविता रोती है और पाठक भी रोता है, कविता हँसती है और पाठक भी हँसता है, कविता दौड़ती है हम भी दौड़ पड़ते हैं, तो समझना चाहिए यह कविता है। कविता कवि हृदय की प्रतिध्वनि है, प्रबल प्रवाह है, जो सामने वाले को मस्त करके अपने साथ बहा ले जाता है। कविता में यह शक्ति तभी उत्पन्न होती है जब कवि की आंखें दूर तक देखती हों और कवि का दिल अपने अंतस्तल से लिखता हो। अतएव कवि बनना हो तो दिमाग़ को दौड़ाओ और दिल को हिलाओ। छंदशास्त्र और काव्यशास्त्र दिमाग़ की उपज है। इनको जो कविता का आधार मान लेता है वह रट में पड़ जाता है। कविता के लिए प्रतिभा और मौलिकता की आवश्यकता है। अन्दर जब तक है तब तक उसका नाम प्रतिभा है, और बाहर निकलने पर वही कविता हो जाती है।

कवि की प्रतिभा अनेक दृश्य देखती है, अनेक भाव उसमें उदय होते हैं और वही वाणी अथवा लेखनी के द्वारा कविता का रूप धारण करते हैं। इस कविता में पाठक के दिल और दिमाग़ पर क़ब्ज़ा कर लेने का जो सामर्थ्य होता है उसी-का नाम है रस। कविता का जैसा भाव और प्रभाव होगा, वैसा ही उस रस का परिपाक कविता में समझा जायगा। भारतीय काव्य-मर्मज्ञों ने कविता के नौ रस माने हैं— शृंगार, वीर, करुणा, रौद्र, हास्य, बीभत्स, भयानक, अद्भुत और शांत। कुछ लोग शृंगार-रस को सबसे प्रधान मानते हैं और कुछ करुणा-रस को। पति-पत्नी के संयोग-वियोग के वर्णन से जिस रस की उत्पत्ति होती है वह शृंगार-रस और दीन-दुःखी, पीड़ित-पतित की दयाजनक अवस्था का, उनके शोकों और दुःखों का वर्णन करने से जो रस उत्पन्न होता है वह करुण-रस कहलाता है। शृंगार-रस का मूल तो प्रेम है, जो कि दो हृदयों को अभिन्न बनाता है, परन्तु हमारे कितने ही संस्कृत, हिन्दी और उर्दू कवियों ने उसे विषय का रूप दे डाला है। मानव-हृदय का वह निर्मल और उच्च भाव, इन कवियों के पल्ले पड़ कर, नायक-नायिका के शारीरिक भोगों की सामग्री बन गया! जब तक कि मन सुसंस्कारवान् न हो, प्रेम के लिए भोग का रूप धारण कर लेना आश्चर्य की बात नहीं है। प्रेम में मनोगत सात्विक शुद्ध आनन्द है। प्रेमी की सेवा करने, उसके सुख और उन्नति में सहायक होने की अभिलाषा है। भोग में अपनी इन्द्रियों को तृप्त करने की है। प्रेम में दैवी भाव है, भोग में पाशविक। प्रेम अपने दूसरे के अर्पण कर देता है, भोग दूसरे को अधीन रखना चाहता है। दो पुरुषों के प्रेम और एक स्त्री-पुरुष के प्रेम अन्तर है। स्त्रियों के साथ पुरुषों का जो प्रेम होता है उस स्त्रियों की शारीरिक विशेषता या भिन्नता का आकर्षण मु होता है। और इसलिए उनका प्रेम जल्दी भोग में परि हो जाता है। वास्तव में देखा जाय तो प्रेम के लिए विपरी लिङ्गी अधिष्ठान की आवश्यकता न होनी चाहिए। प्रेम अधिष्ठान व्यक्ति ही हो, यह भी आवश्यक नहीं। सिद्धांत, कोई आदर्श. कोई वस्तु, कोई देश, कोई देव, न हमारा प्रेमाधार हो? हम अपनी प्रियतमा का ही क्यों रोते फिरें—उसीके पीछे क्यों अपनेको बरबाद बदनाम करते फिरें? क्यों न हम सत्य, स्वाधीनता, प श्वर या अपने देश के लिए रोयें, मरें और बरबाद हों परन्तु हमारे परम्परागत शृंगार-रस में इसके लिए कि स्थान है? वहाँ व्यभिचार तक तो जायज़ समझा जाता वहां तो मनोविकार ही प्रेम है, उसकी तृप्ति ही अलौकि आनन्द है, और अलौकिक आनन्द का नाम है रस। नायिका-भेद का ज़रा भी ज्ञान है, वह इस शृंगार-रस भयङ्करता को जल्दी समझ सकता है। अतएव मेरी राय शृंगार-रस की जगह हमें प्रेम-रस का निर्माण करना चाहिए उसे भोग-विलास की गंदी गटर से निकाल कर मनो सात्विक आनन्द की गंगोत्री पर प्रतिष्ठित करना चाहिए। कवि जितना ही इस निर्मल प्रेम से प्रेरित होकर गाये उतनी ही वह संसार को सुंदर स्फूर्ति देगा और उतनी वह उसकी सेवा करेगा। निर्मल प्रेम की पुकार मानों की गंगा है, मानों अमृत की धारा है; और सविकार प्रेम उन्माद मानों मद्य का सरोवर है, हलाहल का कुण्ड है।

करुणा-रस की उत्पत्ति हृदय के उस कोमलतर अंश होती है जो दूसरे के दुःख, शोक, कष्ट, क्लेश, सन्ताप, ताप और निराशा को देख कर हिल उठता है। प्रेम मूलतः अपनी किसी कमी के लिए दूसरे के अधिष्ठान खोजता है और करुणा-रस मुख्यतः दूसरे के अभाव की के लिए छटपटाता है। अतएव मेरी दृष्टि में प्रेम-रस

...-रस का स्थान बहुत ऊँचा है । आजकल के श्रृंगार-रस ...तो मैं बात ही नहीं करता । अतएव मेरी राय में, मनुष्य को ...ता की ओर जाने के लिए, करुणा-रस और प्रेम-रस ही ...हैं । शांत-रस प्रेम-रस के अंतर्गत हो जाता है और वीर-प्रेम तथा करुणा-रसों के परिपाक का फल है । अतएव शेष ...त, वीभत्स, अद्भुत, भयानक और रौद्र साहित्य की शोभा ...ही बढ़ाते हों, मनुष्य की मानवता के विकास के लिए ...की उतनी आवश्यकता नहीं है । प्रेमगत वस्तु की प्राप्ति, ...की सेवा और सहायता के लिए, तथा इसी प्रकार, दीन-...ी, पीड़ित-पतित की सेवा और सहायता के लिए, दूसरे ...ों में कहें तो समाज और देश-हित के लिए मनुष्य को ...जो बृहत् उद्योग करने पड़ते हैं, बड़े बड़े पराक्रम करने ...ते हैं, संग्राम रचने पड़ते हैं, उन्हींमें से वीर-रस की ...प्ति होती है । अतएव मैं यह मानता हूँ कि हृदय का ...दनाशील होना मानवता का पहला लक्षण है । जिसे हृदय ...है कवि है ।

जो हृदय अपनी भूख बुझाने के लिए किसी अधिष्ठान ...चाहता है, वह प्रेमी है; जो दूसरों के दुःखों से दुःखी ...ता है, वह करुणावान् है; और जो दूसरों की सेवा और ...हायता के लिए तन-मन-धन से उद्योग करता है, अनेक ...ों का मुक़ाबला करता है, वह वीर है । कवि-सम्मेलन के ...अवसर पर कविता का यही सन्देश मैं आप सज्जनों ...समक्ष रखता हूँ—प्रेमी बनो, दयावान् बनो, वीर बनो । ...दि कवितादेवी की उपासना करनी है तो विश्व-प्रेम से ...हल, मानवता के दुःखों से विकल बनो और उसके लिए ...स्व अर्पण करने की धुन में लगो । धुन, लगन और पाग-...न जब तक नहीं है, तब तक सच्ची कविता नहीं हो ...गी । कवि बनना हो तो पहले पागल बनो । अपनेको ...ठ जाओ । अपनेको समष्टि के अधीन करके, उन्नत हो ..., समष्टि के लिए जो लिखोगे, गाओगे-बजाओगे, नाचोगे, ...ही कविता और कला होगी । हृदय में छिपे गूढ़ तथ्य और ...य को प्रकाशित करने के लिए—अपना संदेश संसार ...सुनाने के लिए—जब तुम विकल और अधीर हो ...गे और बरबस पुकारने लगोगे तभी कविता बनने ...गी । तुम्हारी अन्तरात्मा उछल कर जब विश्वात्मा की गोद में बैठ जायगी, तब जो विश्व-विशाल आनन्द की और एकता की ऊर्म्मि हृदय में उठने लगेगी वही कविता होगी । अपने हृदय के सुन्दर दिव्य भाव, अपने मस्तिष्क के उच्च और भव्य विचार, अपने शरीर का पराक्रम और आत्मा का बल जिस दिन दूसरों को देने की उत्कण्ठा जाग उठेगी, जिस दिन वह तुम्हारे रोम-रोम से फूटने लगेगी, उसी दिन तुम कविता करने लगोगे—तुम्हारा रोम-रोम कवि-पद प्राप्त करेगा । कवि की महिमा अनिवर्चनीय है । यह सृष्टि महा-कवि का महाकाव्य है । इस एक वाक्य में कवि और काव्य का महत्व आ जाता है *

हरिभाऊ उपाध्याय

सीता-परित्याग

(१)

हिन्दू-संसार की प्राचीन प्रसिद्धि के अनुसार आदर्श पुरुषोत्तम रघुपति राम चाहे साक्षात् विष्णु के अवतार और भगवान् श्री रामजी ही हों, इससे हमें कुछ प्रयोजन नहीं है । उनके आदर्श होने की भी हम कुछ आलोचना नहीं करना चाहते । जो कोमल हृदय महानुभाव हमारे इस लेख से भगवान् रामजी की शान में फ़र्क़ आता देख अपने हृदय के भक्तिभाव में तीव्र आघात लगता अनुभव करें उनके लिए यह लेख नहीं लिखा जा रहा है । वे इस लेख को पढ़कर व्यर्थ आघात सहने का उद्योग न करें । क्योंकि हमारा अनुभव है कि जब आज से चार वर्ष पूर्व हमारा 'राम का सीता परित्याग और कालिदास' शीर्षक एक बृहत् लेख 'सरस्वती' में प्रकाशित हुआ था, तब कतिपय भक्ति-नवनीत हृदयों ने बड़ा आघात खाया था और 'माधुरी' के स्तंभों में उसका उचित समाधान हो जाने पर भी (न जाने क्यों ?) 'सरस्वती' के सम्पादक ने अयोग्य सम्पादक होने की नम्र घोषणा प्रकाशित की थी ।

हम पाठकों से पूर्व ही अपने आलोच्य विषय को स्पष्ट करना आवश्यक समझते हैं । वाल्मीकि, कालीदास, भवभूति,

---

* गवर्नमेंट कालेज अजमेर के कवि सम्मेलन पर अध्यक्ष-स्थान से

मुरारी आदि नाना कवियों ने एक ऐतिहासिक राज-कुमार के जीवन को लक्ष्य करके अपने-अपने काव्य प्रसिद्ध किये। और प्रत्येक कवि ने उसके चरित्र पर अपनी मति और सम्मति के अनुसार खुले शब्दों में टिप्पणी की। वह कवि-भारती की आलोचना का विषय 'राम' किसी का 'भगवान् रामजी' नहीं है। पुराणों और रामरहस्य, अध्यात्म रामायण आदि भक्ति ग्रन्थों के 'राम' तो अवश्य भगवान रामजी कहा सकते हैं। परन्तु काव्य, नाटकों के पात्र 'राम' को 'भगवान् रामजी' समझना नाम-साम्य से धोखे में पड़ी 'भोली और मोटी' बुद्धि का परिचय देना है। काव्य, नाटकों और उपन्यासों के राम तो एक कवि-कल्पित-कथा के या नाट्य-मञ्च के पात्र मात्र हैं। उनकी आलोचना को देखकर साहित्य के रसिक लोगों को कभी चौंकना नहीं चाहिए। प्रत्युत गम्भीरता और सहिष्णुता से उन आलोचनाओं को मनन करना चाहिए। अब हम अपने विषय पर आते हैं। हमारा लेख-विषय 'राम का सीता परि-त्याग' है। महाराजा श्री रघुपति रामचन्द्र ने अपने जीवन-काल में श्री सीताजी का परित्याग लोकापवाद-भीरु होकर किया था। इस घटना को ऐतिहासिक सत्यता का रूप देना राम-भक्तों के लिए बड़े कलंक की बात है, और समाज के सन्मुख ऐसे बड़े महापुरुष का ऐसा नमूना आजाना भी समाज के लिए लाभदायक नहीं है। क्योंकि पति-पत्नी का परस्पर त्याग हिन्दू आदर्श नहीं है। तिसपर भी लोकापवाद से विशुद्ध पत्नी का परित्याग करना और भी लोक-भीरुता का परिचय देना है। यह कार्य्य राजा की ओर से होना समाज में प्रजा के लिए महान् अनर्थों का जनक है। क्योंकि कुछ लेखकों ने आदर्श श्रीराम के जीवन के साथ ऐसी घटना को समवाय सम्बन्ध से जोड़ दिया है, इस कारण उसी घटना से कलंकित राम को भूल से आदर्श मानने वाली भोली हिन्दू जनता में भी वही दोष जड़ पकड़ गया है कि थोड़ासा भी संदेह होने पर सहस्रों स्त्रियां अपनी नाक बचाने के लिए घरों से बाहर ठेलदी जाती हैं। स्त्री-समाज भाड़-चूल्हे में जाय, हिन्दू जाति को परवाह नहीं! बस! मर्दों की नाक बदनामी की छुरी से कटने से बचनी चाहिए, चाहे उनकी मिट्टी उनके इस अत्याचार से उनकी आँखों पीछे कितनी ही पलीत हो उसपर उनको विचार भी नहीं उठता! इसका एकमात्र कारण यही है कि आदर्श रखने वालों ने राम के चरित्र को आदर्श बनाकर नहीं रक्खा प्रत्युत आदर्श राम को बाद में कलंकित करने का यत्न किया गया है।

(२)

खुश हो लेने को राम के मुख से निकलता यह वचन बहुत उत्तम है:—

> स्नेहं दयां च सौख्यंच यदि वा जानकी मपि।
> आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥

अर्थात्—"मुझे स्नेह, दया और सुख क्या, जानकी को भी, लोक या दुनिया को प्रसन्न रखने के लिए छोड़ते हुए दुःख नहीं।"

ठीक है, सच्चे कर्त्तव्यशील, प्रजाप्रिय, त्यागी राजा के मुख से निकले ये वचन आदर्श हैं। इतिहास में ऐसे प्रजा-प्रिय शूरवीर पुरुषों की गणना भी कम नहीं। इसके अतिरिक्त यह भी एक विचार हृदय की प्रसन्नता के लिए होना सम्भव है कि भगवान् ने भक्तों के लिए स्त्री का भी त्याग कैसा निर्मम होकर किया? लीला-मानुष्य होकर यह जो आदर्श उपस्थित किया सो भी अनुकरणीय है। ठीक है। देश के हित के लिए क्या राजा और क्या प्रजा प्रत्येक के लिए यह आदर्श कार्य है, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु खेद है कि राम के जीवन में इस घटना का उल्लेख करने वाले कवियों में से एक ने भी इस घटना के साथ ऐसा कारण नहीं दर्शाया न उन महानुभाव क्रान्तदर्शी कविपुंगवों के मस्तिष्क में विराज-मान् राम के वचनों में ऐसा कारण उपलब्ध होता है, और न कहीं रामायण इतिहास के उत्तरखण्ड के प्रणेता ने कोई ऐसी घटना ही लिखी, जिससे यह प्रतीत हो कि सीता परित्याग कर देने पर प्रजा के चित्त अनुरंजित हुए हों।

(३)

वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड में ही स्पष्ट लिखा है—"एक बार विजय, मधुमत्त, आदि दरबारी मित्र आनन्द विनोद से दरबार में बात कर रहे थे कि राम ने 'भद्र' से पुरवासियों की बात-चीत के विषय में पूछा। भद्र ने पुरवासियों के वचन में राम के चरित्र की आलोचना कह सुनाई कि "राम ने समुद्र पर पुल बाँध दिया, रावण को सेना सहित मार

गिराया, राक्षसों सहित रीछ और वानर भी वश कर लिये, रावण को मार कर सीता को पुनः अपने घर ले आया परन्तु—

कीदृशं हृदये तस्य सीता-सम्भोगजं सुखं ।
अङ्कमारोप्यतु पुरा रावणेन बलाद्धृताम् ॥ १७ ॥
लङ्कामपि पुरा नीतामशोकवनिकां गताम् ।
रक्षसां वशमापन्नां कथं रामोन कुत्स्यति ॥ १८ ॥
अस्माकमपि दारेषु सहनीयं भविष्याति ॥
यथा हि कुरुते राजा प्रजास्तमनुवर्त्तते ॥ १९

(उत्तर० सर्ग ४३)

"राम के दिल में सीता के सम्भोग के सुख की लालसा कैसी, कि जिसको पहले रावण बलपूर्वक चुराकर अपनी गोद में उठाकर ले गया, जो लंका में पहुंची, अशोक वाटिका में रक्खी गयी, राक्षसों के काबू रही, उसको राम क्यों नहीं बुरा समझता ? क्या यह बात हमें भी अपनी स्त्रियों के विषय में सहन करनी होगी ? जैसे राजा करता है वैसे ही प्रजा भी किया करती है ।"

यहां यह विचारणीय है कि क्या राम के राज्य में प्रजा के ऐसे तुच्छ विचार हो सकते हैं ? क्या राम की प्रजा के लोग अपने हाथ से अपहृत कन्याओं और स्त्रियों को वापिस नहीं लेते थे ? यदि नहीं लेते थे तो वह राम-राज्य नहीं वह राक्षस राज्य होगा, जिसमें प्रजा की स्त्रियों को अन्य चुरा लें और वापस न करें । क्या स्त्रियों के परहस्तगत हो जाने पर राम-राज्य में कोई क़ानून उन्हें वापिस नहीं दिला सकता था ? पुरवासियों का पूर्वोक्त कथन तो ऐसे ग़ैरक़ानूनी शासन की सूचना देता है। स्त्रियों के प्रति ऐसे कठोर व्यवहार की धमकी कि "हमें भी फिर अपनी स्त्रियों के विषय में ऐसे सहना पड़ेगा" बतलाती है कि उस समय स्त्रियों का परित्याग करके अपनी नाक बचाने वाले पर कोई कानून की पकड़ नहीं थी। परन्तु यह सम्भव नहीं। क्योंकि क़ानून अवश्य था, जिसके अनुसार राम ने सीता को पुनः अग्नि-शुद्धि करके अपने घर में प्रवेश कराया । अस्तु ।

इसके अनन्तर राम ने इस कथा को सुनते ही दीनता धारण करली, मित्र-वर्ग को तो दरबार से उठा दिया, भ्रातृ-वर्ग को बुला भेजा और बोले—

"भाइयो ! आप शास्त्र जानते हैं, बुद्धिमान् हैं, आप सब मिलकर मेरी बात का निर्णय करें । पुरवासियों में और जन-पद में मेरी बड़ी निन्दा है, वह मेरे मर्म छेद रही है । मैं महात्मा इक्ष्वाकुओं के कुल में पैदा हुआ और सीता भी जनकों के कुल में पैदा हुई। हे लक्ष्मण ! तुम जानते हो किस प्रकार दण्डक में रावण ने सीता को हर लिया, मैंने उसे कैसे मारा । मैंने सोचा कि किस प्रकार सीता को अपनी नगरी में लेआऊं ? सबको विश्वास दिलाने के लिए सीता अग्नि में प्रविष्ट हुई । तुम्हारे, देवताओं और ऋषियों के सामने अग्नि ने सीता को निष्पाप कहा, और सब देवों, सब ऋषियों के समक्ष मुझे सौंप दिया । मेरा अन्तरात्मा भी जानता है कि सीता शुद्ध है । तब मैं सीता को अयोध्या ले आया । परन्तु मेरे हृदय में यह निन्दा चुभती है। 'पौरापवाद' बहुत बड़ा है। जिसकी निन्दा होती है वह तब तक अधम लोकों को जाता है जब तक निन्दा होती रहे । सब बड़े-बड़े आदमी कीर्त्ति के लिए काम किया करते हैं । मैं लोकनिन्दा से डर कर तुमको, और इन प्राणों को, भी छोड़ने को तैयार हूँ। फिर सीता तो चीज़ ही क्या ? अब आप लोग ही देखें । मुझे तो इससे अधिक और कुछ दुःख नहीं ।" [उत्तरकाण्ड सर्ग ४५ । २—१९]

उत्तर काण्ड के कर्त्ता ने वाल्मीकि के वीर, साहसी, न्यायप्रिय, महाराज रामचन्द्र की ऐसी बुरी तस्वीर खेंची है जिसका कोई मूल्य नहीं । कहां तो महात्माओं का आदर्श होता है—

'निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु'···
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः । भर्तृहरि

और कहां उत्तरकाण्ड के लोकापवादभीरु राम का यह वचन—

कीर्त्यर्थंतु सभारम्भः सर्वेषां सुमहात्मनाम् ।

कहां वाल्मीकि का राम रावण को दण्ड दे, बाली को दण्ड दे, और स्त्रियों को उनके पतियों को वापिस दिलाये । और कहां न्याय का गला घोंट कर, देवों, ऋषियों के फैसले पर हड़ताल फेर कर, उत्तरकाण्डी राम निन्दा-भीरु हो कर प्राण, भाई और सीता तक छोड़ने को उतारू हो ! ऐसा भीरु-हृदय तो संसार में सिवाय धर्म की आड़ में छिपे और धर्म का

नाम लेकर घोर अन्याय और अत्याचार के नृशंस खेल खेलने वाले भीरु हिन्दुओं के दूसरा खोजे नहीं मिलेगा। इन तुलनाओं से हमें पूर्व रामायण का वाल्मीकि, उत्तरकाण्ड का वाल्मीकि नहीं मालूम होता। अस्तु।

इसके अनन्तर राम ने अपने पैरों की और जीवन की क़स्में खिलाकर भाइयों को अपने सीता-परित्याग करने के विचार का विरोध करने से रोका, और सीता की अभिलाषा के अनुसार सीता को तपोवनाश्रम दिखाने के बहाने लक्ष्मण के हाथों यह स्त्री-परित्याग का कार्य करा दिया। लौटते समय लक्ष्मण और सुमन्त्र में वार्तालाप होता है। लक्ष्मण कहते हैं—

कोनुधर्माश्रयः सूत कर्मण्यस्मिन् यशोहरे।
मैथिलीं समनुप्राप्तः पौरै र्हीनार्थवादिभिः॥ (उत्तर० ५०।८

"हे सूत! न्याय से रहित तुच्छ निन्दावादी पुरवासियों के कारण अपने यश के नाशक (सीता को तलाक देने के) इस काम में राम ने कौनसे धर्म (क़ानून) का आश्रय लिया?" इसपर सुमन्त्र दादा ने राम की पुरानी जन्मपत्री के फल सुना दिये। कहा—"भृगु-शाप से यह पत्नी का वियोग है।" इस प्रकार पौरुष के अवतार, धर्म और न्याय के आश्रय श्रीरामचन्द्र को उत्तरकाण्डकार ने ऐसा जनापवाद-भीरु, नृशंस, पत्नी-त्यागी, और अन्यायी चित्रित किया है कि जिसको देखकर क़िस्सों का मज़ा लेने वाले भले ही उसमें विप्रलम्भ-करुणा का रस लें परन्तु सहृदय पुरुष इसे कभी सहन नहीं करेगा। और ठीक है कि बाद के विचारशील विद्वान् कवियों ने राम के चरित्र में लिपटी इस घटना की खुले शब्दों में निन्दा की है।

चतुर कवि अपने शब्द मुख से तो कुछ भी नहीं कहता है। वह अपनी कथा और रचना के पात्रों के मुख से ही अपने हृदय के भावों को व्यक्त किया करता है। उनके मुख से ही वह समाज, जाति, राष्ट्र और व्यक्तियों के कार्यों की आलोचना करता है। वास्तविक मार्मिक कवि तबतक कवितामय प्रबन्ध नहीं बनाता जबतक उसके पास सर्वसाधारण के प्रति समालोचनीय विषय कुछ न हो। जिन कवियों के ग्रन्थों में सामाजिक या नैतिक आलोचना नहीं उनके कविता-ग्रन्थ तुकबन्दी या शब्दावलियों का पुलिन्दा हैं। और जिन कवियों ने सूक्ष्मता से अपनी उदात्त कथा के प्रसङ्ग से समाज या व्यक्ति के किये कार्यों की आलोचना की है, उनके ग्रन्थ जनता में आदर पाते हैं। वे न्याय और सत्यता के अंशों से मानव-हृदय के न्याय और सत्यपरायण आत्मा को जगाते हैं, और अपना मित्र बनाते हैं। इसी कारण भवभूति, कालिदास और बाण के ग्रन्थ मनोहर, हृदयग्राही, और सरस हैं। अब ज़रा पाठकगण! प्राचीन कवियों की रचनाओं पर दृष्टि डालिए, उन्होंने अपने काव्यों में किन-किन प्रसङ्गों को उठाया और कैसी-कैसी आलोचना कर गये? राम के चरित्र के साथ-साथ सीता-परित्याग की घटना को जोड़ा जा चुका था इस कारण बाद के कवियों ने अपने आलोचना-शस्त्र का प्रयोग इस भाग पर भी निष्प्रकम्प होकर किया है। जो भक्ति के मसाले से अपने हृदयों को इतना कोमल बनालें कि राम और कृष्ण के चरित्रों की आलोचना से उनके हृदय क्षत-विक्षत होते हों, उनको अपने दांत आलोचक कवियों या कवियों के आलोचकों पर नहीं पीसने चाहिएँ। उनको अपना रोष उन धर्म-ग्रन्थकारों पर दर्शाना चाहिए जिन्होंने भक्ति के प्रवाह से आपके हृदयों को कोमल भी किया और साथ ही क्षत-विक्षत करने के लिए रामादि के चरित्रों को ऐसा तुच्छ रूप भी दिया कि वह आलोचना, नहीं-नहीं, तीव्र आलोचना का पात्र भी हो सका।

(५)

राम के सीता-परित्याग पर प्रथम लेखनी कालिदास ने ही उठाई है। उसने स्पष्ट शब्दों में राम के मुख से कहा है—

'अवैमि चैनामघनेति किंतु लोकापवादो बलवान् मतो मे।'
(रघु० १४। ४०।)

'मैं जानता हूं कि सीता निष्पाप है, परन्तु मुझे लोकापवाद बलवान् प्रतीत होता है।' इस अवसर पर शेष भाइयों के मनोभाव क्या थे?

इत्युक्तवन्तं जनकात्मजायां नितान्त रूक्षाभिनिवेश मीशम्।
नकश्चन भ्रातृषु तेषु शक्तो निषेद्धु मासीदनुमोदितुं वा (१४।४३)

सीता के विषय में सर्वथा रूखे हठ वाले राजा को इस प्रकार कहते हुए सुनकर उन भाइयों में से कोई भी न उसका विरोध ही कर सका, और न उसका पक्ष ही कर सका। क्यों? क्योंकि कालिदास के शब्दों में राम का कोरा रूखा 'राजहठ' था। कालिदास की दृष्टि में वह उस समय राम नहीं

प्रत्युत 'रूखा हठी राजा' मात्र है। इसके आगे कालिदास ने राजनीति का छलमय प्रयोग दर्शाया है और फिर सीता-परित्याग का मुख्य कारण बड़ी सूक्ष्मता से सीता के वचनों में दर्शाया है।

उपस्थितां पूर्वमपास्य लक्ष्मीं वनंमयासार्धं मसिप्रपन्नः।
तदास्पदं प्राप तयाति रोषात्सोढ़ास्मि न त्वद्भवनेवसन्ती॥

"राम! तू मेरे साथ लक्ष्मी को छोड़कर वन में गया था। अब मैं फिर तेरे घर में प्रतिष्ठा प्राप्त करके रहने लगी, वह लक्ष्मी से सहा न गया।" फलतः इस सीता-परित्याग में कारण वही कैकेयी का षड्यन्त्र है। पुनः वाल्मीकि के वचनों में—

'जाने विसृष्टां प्रणिधानतस्त्वां मिथ्यापवादक्षुभितेन भर्त्रा।
(१४|७२)

"मैं जानता हूं कि तेरे पति ने झूठी निन्दा से बेचैन होकर तुझे छोड़ दिया है।" और इसलिए—

"त्वां प्रत्यकस्मात् कलुषप्रवृत्तावस्त्येव मन्युर्भरताग्रजे मे।"
(१४|७३)

"तेरे प्रति बिना कारण निन्दित व्यवहार करने वाले राम पर मुझे भी गुस्सा आता है।"

इस प्रकार कालिदास ने राम के सीता-परित्याग को कोई महत्व नहीं दिया। प्रत्युत एक ऋषि के मुख से 'कलुष प्रवृत्ति' (मल्लिनाथ के शब्दो में) 'गर्हित व्यापार' ही बतलाया है। हम अगले अंक में पाठकों के समक्ष भवभूति की आलोचना को स्पष्ट करेंगे।

जयदेव वेदालंकार

शेखावाटी का एक गीत

ग्राम्य गीतों का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए मैंने गुजरात, काठियावाड़ और राजपूताने का एक लम्बा दौरा किया है। इस दौरे में मुझे जो गीत मिले, उनमें गुजरात और काठियावाड़ के गीतों में, प्रेम, श्रृंगार, करुणा और भक्ति-रस लहरें मार रहा है। पश्चिमी राजपूताने के गीतों में वीर-रस से उमड़ते हुए गीत भी हैं। पर शेखावाटी में भी अच्छे गीत मिलेंगे, इसकी आशा मुझे बहुत कम थी। क्योंकि एक तो यह प्रांत बिलकुल रूखा-सूखा है। ऋतुओं का परिवर्तन तो होता है, पर प्रकृति अपने ठाटबाट से उसमें भाग नहीं लेती। अतएव मनुष्यों के जीवन में नई तरंगें उठने का अवसर बहुत ही कम मिलता है। तरंग उठे बिना कविता में उसका रस कहाँ से आ सकता है? मुझे विश्वास था कि शेखावाटी में मुझे स्त्री-पुरुष के संयोग और वियोग—श्रृंगार सम्बन्धी ही गीत मिलेंगे। पर शेखावाटी में आने पर मेरा विश्वास ग़लत निकला। इस प्रांत में भी ग्राम्य-कविता का विकास उसी उन्माद के साथ हुआ है, जैसा भारत के अन्य प्रान्तों में है। यहाँ भी पाबूजी जैसे वीरों की कथायें देहात् में उसी तरह प्रचलित हैं, जैसे युक्तप्रान्त में आल्हा। संयोग-वियोग-श्रृंगार के गीतों की तो बात ही अलग है, इस विषय में तो कोई प्रान्त पिछड़ा हुआ नहीं है; पर युक्तप्रांत के घाघ की तरह राजिया, किसनिया, भेरिया, मोतिया, छोटिया, नागिया, बाघजी, नाथिया आदि दस पंद्रह घाघों की नीति-कविता सर्वत्र प्रचलित है। स्त्रियों के गीतों में भी सब रसों के गीत मिलते हैं।

किसी भी समाज का शुद्ध प्रतिविम्ब तो उसके गीतों में मिलता है। शेखावाटी के मारवाड़ी-समाज का भी प्रतिविम्ब उसके गीतों में विद्यमान है। यह समाज व्यापार-कुशल और धनी है। इससे इस समाज में शोभा सजावट की सामग्री कुछ विशेष है। स्त्री-समाज में मुसलमानी आतंक के चिन्ह-स्वरूप परदे का प्रचार ख़ूब है। पर कुछ मारवाड़ी सुधारक और कुछ अन्य प्रांत के लोग भी, जो रहन-सहन देखकर कल्पना करके ही राय क़ायम कर लेते हैं, इस समाज पर जो विलासिता और चरित्रहीनता का लाञ्छन लगाते हैं, मुझे तो वह एक प्रकार से अतिशयोक्ति ही जान पड़ा। साधारणतः चरित्र सम्बन्धी भली-बुरी बातें भारत में जैसी सर्वत्र हैं, वैसी यहाँ भी हैं। पर यहां ऐसी नहीं कि उनपर ख़ास तौर पर अंगुली उठाई जा सके। स्त्रियों के गीतों में सीठने आदि कुछ अश्लील गीत अवश्य हैं, पर युक्तप्रांत में समधी जिमाते समय जो 'गारी' गाई जाती हैं, उनकी सी अश्लीलता तो इन सीठनों में नहीं है। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि समाज की बुराइयां खोज-खोज कर प्रकट करने वालों में बहुतों का उद्देश्य अच्छा है। पर समाज में प्रचलित अच्छाइयों की प्रशंसा करना भी तो उनका कर्त्तव्य था; जिससे समाज में सद्गुणों का विकास होता और बुराई के त्याग के साथ-साथ

भलाई का ग्रहण भी चलता रहता । मारवाड़ी गीतों ही को लीजिए, सीठनों की निन्दा तो बहुतों ने की, पर स्त्रियों में प्रचलित उपदेश-पूर्ण गीतों की ओर किसने ध्यान दिया? कितने ही अच्छे-अच्छे गीत वृद्धा स्त्रियों के साथ काल के गाल में सदा के लिए विलीन हो गये! अब भी जो गीत वर्त्तमान हैं, उनके संग्रह की ओर कौन ध्यान देता है? उनके द्वारा क्या समाज में सुरुचि नहीं पैदा की जा सकती?

यहाँ शेखावाटी में आम तौर से प्रचलित एक गीत दिया जाता है। यह गीत मुझे फतहपुर में मिला। इस गीत में जो भाव वर्णित है वह उच्च कोटि के समाज का है। मारवाड़ी-समाज में ऐसी भी बहुयें हैं, जो अपने स्वामी तथा देवर-जेठ, सास-ससुर और ननद आदि को ही अपना गहना मानती हैं। ऐसी बहुओं से ही समाज की शोभा है। ऐसी बहुयें समाज की लक्ष्मी हैं। यद्यपि आजकल मारवाड़ी-समाज में गहनों का रिवाज अधिक है, पर इस गीत में जिस समय के समाज का वर्णन है, उसमें गहने इतने नहीं रहे होंगे। भविष्य में सद्गुणरूपी गहनों से भूषित ऐसे ही समाज की आवश्यकता है।

गीत

आज म्हारी ईमली फल लियो।
बहू रिमझिम महलाँ से ऊतरी, बहू कर सोला सिणगार॥
आज०॥ १॥
म्हारा सासूजी पूछ्या, हे बहू थारे गहणारो अर्थ बताय।
सासू गहणा नै के पूछो, गहणाँ म्हारा देवर जेठ। गहणा म्हारी भोली बाईजी रो वीर॥ आज०॥ २॥
म्हारा ससुरोजी घर का राजा, सासूजी म्हारी अर्थ भँडार।
म्हारा जेठ बाजूबंद बाँकड़ाँ, जिठाणी म्हारी बाजूबंद की लूँग॥ आज०॥ ३॥
म्हारो देवर चूड़लो दांत को, देवराणी म्हारी चुड़ला री टीप।
म्हारा कंवरजी मोती वाटला, कुलबहू म्हारा मोत्यां बीच को लाल॥ आज०॥ ३॥
म्हारी धीयज चोली पान की, जँवाइ म्हारे चमेल्यां रो फूल।
म्हारी नणद कसूमल कांचली, नणदोई म्हारो गजमोत्या रो हार॥ आज०॥ ५॥
म्हारा सायब सिर को सेवरो, सायबाणी म्हें तो सेजां सिणगार।
म्हें तो वार्याजी बहूजी थारे बोलनै, लडायो म्हारो सो परिवार॥ आज०॥ ६॥
म्हें तो वार्याजी सासूजी थारी कूख नै, थे तो जाया जाया अर्जुन भीम।
म्हें तो वार्याजी बाईजी थारी गोदनै, थे खिलाया लिछमण राम॥ आज०॥ ७॥

आज म्हारी ईमली फल लियो॥

अर्थ—आज मेरी इमली में फल आया है। बहू सोलह शृंगार करके छमछम करती हुई महल से उतरी॥ १॥

सास ने पूछा—हे बहू! तुम्हारे पास क्या क्या गहने हैं? बहू ने कहा—हे सासजी! मेरे गहने की बात क्या पूछती हो? मेरे गहने तो मेरे देवर और जेठ हैं। मेरा गहना तो मेरी सुशीला ननद का भाई अर्थात् मेरा पति है॥ २॥

मेरे ससुरजी घर के राजा हैं और सासूजी भंडार की मालकिन। मेरे जेठजी तो बाजूबंद हैं और जेठानीजी बाजूबन्द की लटकन॥ ३॥

मेरा देवर मेरी हाथीदाँत की चूड़ी है, और देवरानी उसकी टीप। मेरा पुत्र मोतियों का हार है और मेरी पुत्रवधू मोतियों के बीच का लाल॥ ४॥

मेरी कन्या ज़रीदार चोली है और मेरा जामाता चमेली का फूल है। मेरी ननद कुसुम्भी चोली है और ननदोई गज-मुक्ताओं का हार॥ ५॥

मेरे स्वामी सिर के मुकुट और मैं उसकी सेज का शृंगार हूँ। यह सुन कर सास ने कहा—बहू मैं तो तुम्हारी बोल पर न्योछावर हूँ। तुमने मेरे सारे परिवार को सुखी किया॥ ६॥

बहू ने कहा—सासजी! मैं तो तुम्हारी कोख पर न्योछावर हूँ। तुमने तो अर्जुन और भीम ऐसे प्रतापी पुत्र पैदा किये हैं। और हे ननद! मैं तुम्हारी गोद पर न्योछावर हूँ। तुमने तो राम और लक्ष्मण ऐसे भाइयों को गोद में खिलाया है॥ ७॥

गीत की अंतिम पंक्तियों पर ज़रा ग़ौर से विचार कीजिएगा। यह उस समय का गीत है जब मातायें अर्जुन और भीम ऐसे पुत्र उत्पन्न करती थीं, और बहनें राम और लक्ष्मण ऐसे भाइयों को गोद में खिलाती थीं। सास ने जो बहू के नीति-

युक्त व्यवहार और मधुर भाषण की प्रशंसा की है. वह भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। वह एक परिवार को प्रेम-बंधन में बांधने के लिए है, न कि फूट डालने के लिए; जैसा कि आज-कल है। यदि हमारे सुधारक अर्जुन भीम की माताओं वाला और राम-लक्ष्मण की बहनों वाला समाज लौटा लाने में समर्थ हुए तो मारवाड़ी-समाज के सौभाग्य का क्या कहना!

रामनरेश त्रिपाठी

चन्द्रमा के दिव्य प्रकाश में

प्रभो! मैं बड़ा पापी हूँ। मेरे पाप की कथा का अन्त नहीं। मेरे गुनाहों की सूची बड़ी लम्बी है। मैंने बड़े खोटे कर्म किये हैं। मुझे जब कभी अपने पिछले कर्म याद आते हैं, तो मेरा हृदय काँप उठता है। लज्जा और भय से जैसा मेरा बुरा हाल हो जाता है, उसका वर्णन करना कठिन है। मैंने हमेशा अपने अवगुणों और बुरे कर्मों को छिपाने की कोशिश की। मैं सबका भला रहूँ, मेरी बुराई भी भलाई के रूप में प्रकट हो, मेरी कमज़ोरियों को कोई न देखे, हर जगह मेरा आदर और सत्कार हो, यही मेरी इच्छा रही और मैंने इस-के लिए जैसा कुछ यत्न किया, पाप समेटे, दम्भ और आड-म्बर की सृष्टि की, वह मैं ही जानता हूँ।

सभा-समितियों में जहां भी मेरा प्रवेश हुआ, मैंने अपना पक्ष प्रबल बनाये रखने में उचित और अनुचित का कभी विवेक नहीं किया। पार्टी-पालिटिक्स व दलबन्दी से सभा के हित को धक्का लगेगा, सार्वजनिक कार्य्य को हानि पहुंचेगी, इस ओर भी मैंने ध्यान नहीं दिया। मेरा लक्ष्य अपना आधिपत्य जमाना रहा है। जिससे मुझे सुख मिले, मेरा काम सिद्ध हो, मुझे सफलता प्राप्त हो, लोगों में मेरी धाक जमे, यही मैं चाहता रहा हूँ। जाति और देश-सेवा के कार्य में भी मैंने उन्हीं भावों से काम किया है। स्वार्थ-त्याग और निष्काम सेवा के आधारभूत भी यही भावना रही। दान, पुण्य, जप, तप, ध्यान, योग, कर्म, उपासना इत्यादि कोई भी ऐसा काम नहीं हुआ, जिसमें मैंने अपनी स्वार्थ-बुद्धि को प्रधान न रक्खा हो। अपने ज्ञान और बुद्धि के प्रकाश में भी मैंने कोई कूट-नीति नहीं छोड़ी। अपनी सुख-सम्पत्ति के बढ़ाने में किसी दूसरे के दुःख-सुख, हानि-लाभ की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। मेरे सामने सत्यासत्य, धर्माधर्म का कोई विवेक नहीं था। मेरी दृष्टि अपने काम की सफलता पर थी। मैंने जीवन का उद्देश सफलता समझ रक्खा था। हक़-नाहक़ मेरे नज़दीक कोई विचार की चीज़ नहीं थी। दया और धर्म, न्याय और सत्य का मेरे साथ वहीं तक सम्बन्ध था, जहाँ इनके द्वारा मेरा काम बनता हो। प्रेम की दुहाई देना मुझे ख़ूब आता था। धर्म-कर्म के नाम पर शोर मचाना मैं अच्छा जानता था। सच्चा व्यवहार और सच्ची बात मुझे बहुत पसन्द थी। समता और भ्रातृभाव का मैं बड़ा पक्ष-पाती था। पर यह सब मेरे कहने की बात थी, हृदय में इनके लिए केवल इतनी ही गुन्जाइश थी, कि इनकी आड़ में मैं अपना काम निकाल लेता था।

दया निधि ! मैं तुम्हारे सामने अपने इन घृणित पापों की लीला कहां तक बखान करूँ ? मैंने अपने इस जीवन में अपनी सफलता और सुख-सम्पत्ति तथा यश और कीर्त्ति के लिए जो कुछ और जैसा कुछ भी किया है उसके लिए मुझे इस समय प्रसन्नता नहीं है, सन्तोष नहीं है; बल्कि दुःख है, लज्जा है, भय है, और पश्चात्ताप है। मेरे जीवन का सबसे बड़ा और उत्तम भाग इन्हीं दुर्वासनाओं और कुवृत्तियों को सन्तुष्ट करने में ही व्यतीत हुआ है। मुझे इसके लिए क्या दुःख भोगना पड़ेगा? कैसा प्रायश्चित करना होगा ? वह जो कुछ होगा, भुगतना ही होगा; पर इस समय तो जो मुझे मेरे कर्मों के स्मरण मात्र से वेदना हो रही है, जैसा कुछ मुझे डर लगता है, वह वर्णनातीत है।

संसार मुझे इस समय अन्धकारमय प्रतीत हो रहा है। चन्द्रदेव का दिव्य प्रकाश भी धुन्धला हो गया है। जेल की कालकोठरी में बैठे हुए तपस्वी गान्धी ने अपने विशुद्ध आचरणों और सद्व्यवहारों से जेल की काली और भयानक दीवारों को ही प्रकाश स्तंभ और आनन्दप्रद नहीं बना दिया था, बल्कि उसकी दिव्य ज्योति की प्रखर किरणों ने संसार भर में बिखर कर आशा और विश्वास का जीवन संचार कर दिया था। आह ! सुकर्म और दुष्कर्म में इतना अन्तर ! कर्म-भेद से मनुष्य मनुष्य में यह भेद !

यजुर्वेद में मनुष्यों के लिए उपदेश है "कृतोस्मर", किये हुए कर्मों को स्मरण करो। अपने किये हुए कर्मों का याद करना बड़ा लाभदायक है। अपने जीवन पर दृष्टि डालना, अपने आचरणों और व्यवहारों की आलोचना बहुत ही शुभास्पद है, पर है यह बड़ा कठिन काम।

मनुष्य दूसरों पर टीका-टिप्पणी खूब करना जानता है, पर अपने लिए शब्द कहना या दूसरों से सुनना वह सहन नहीं कर सकता। मुझे अपने किये हुए कार्य्यों पर नित्य विचार करना चाहिए। और तदनुकूल उसके सुधार के लिए यत्नवान् होना चाहिए। परन्तु मैं इस ओर सदा उदासीन रहा। लोगों को दिखाने या अपनेको धोखा देने के लिए मैं भले ही आँख मूँदकर कपटी मुनि की तरह बुरे भावों की उधेड़-बुन में लगा रहता।

भगवन् ! अब दया करो, और मुझे अभयदान दो। मेरी इस समय बुरी हालत है। चिरकाल की पराधीनता और दासता ने मेरी बुद्धि भ्रष्ट करदी है। मैं अपना बुरा-भला सोचने-समझने में मानों असमर्थ हो गया हूँ। संसार में अनेक भय और बाधाओं ने मुझे बेतरह घेर रक्खा है। इस भयानक परस्थिति में मुझसे कुछ नहीं होता। मुझे संसार के प्रत्येक पदार्थ भय-प्रद प्रतीत होते हैं और मुझे हाथ-पैर हिलाने का भी साहस नहीं होता। शरणागत की लाज अब आपके हाथ है।

> अभय मित्रादभयममित्रादभयं,
> ज्ञातादभयं परोक्षात्।
> अभयं नक्तमभयं दिवानः
> सर्वा आशा मम मित्रं भवतु ॥

मुझे न मित्र का भय हो, न शत्रु का; न जानकार का, न अनजान का; न दिन का, न रात का; न उत्तर का, न दक्षिण का; न पूरब का, न पश्चिम का; न आगे का, न पीछे का; न ऊपर का, न नीचे का, मैं सर्वत्र अभय रहूँ।

मैं इस अभयपद को आपके शरण में ही प्राप्त कर सकता हूँ। सांसारिक शक्तियों द्वारा यह अभयानन्द दुर्लभ है। माता-पिता, भाई-बहन, पती-पत्नी, पुत्र-वधू, इत्यादि निकट सम्बन्धियों में भी यह आनन्द संकट में रहता है।

आनन्दभिक्षु सरस्वती

स्वार्थत्याग का मनोविज्ञान

धार्मिक नेता हों अथवा समाज-सुधारक, स्वार्थत्याग की महिमा पर सब ही बल देते आये हैं। यदि संसार में एक ही मनुष्य होता तो कदाचित् स्वार्थत्याग की आवश्यकता न पड़ती। जहाँ स्वार्थ-संघर्ष होता है वहीं जीवन को शान्तिमय बनाने के लिए स्वार्थत्याग की आवश्यकता होजाती है। हाब्स ने तो इस सिद्धान्त की ऐतिहासिक व्याख्या कर डाली है। उसके 'समाज के समझौते' (Social Contract) का सिद्धान्त विख्यात है। ऐतिहासिक रूप से चाहे समझौता कभी न हुआ हो कि 'तुम अपने अमुक स्वार्थ को छोड़ो, क्योंकि उससे हमारी हानि होती है, और हम अपने अमुक स्वार्थ को छोड़ देंगे, क्योंकि इससे तुम्हारी हानि होती है।' किन्तु इस सिद्धान्त की सर्वाङ्ग उपयोगिता स्पष्ट है।

स्वार्थ है क्या ? यह विषय मनोविज्ञान का है। यह 'स्व' और 'अर्थ' से मिलकर बना है। स्व का अर्थ आत्मा है किन्तु मनुष्य की कल्पना इसे सूक्ष्म से सूक्ष्म और विस्तृत विस्तृत बना देती है। तत्वविद, ज्ञानी और आध्यात्मवादी आत्मा को सूक्ष्मातिसूक्ष्म मानते हैं और उनका स्वार्थ, इसलिए, वही होता है जो उनकी आत्मिक उन्नति में सहायक हो सके। उन्हें सांसारिक वस्तुओं से कुछ भी मोह नहीं होता। विख्यात यूनानी वैरागी डायोजेनीज़ ने संसार की प्रायः सभी वस्तुओं से मोह छोड़ दिया था। उसे संसार की केवल एक ही वस्तु की आवश्यकता रह गई थी और वह थी नांद। इसीलिए उसका नाम 'नांदवाला डायोजेनीज़' पड़ गया है। ऐसे व्यक्तियों के लिए शरीर साधन-मात्र रहता है और आत्मा ही साध्य। शरीर में स्निग्ध वस्तुओं का लगाना, सुन्दर वस्त्राभूषणों से उसे सजाना, सम्पत्तियुक्त सुरम्य-विशाल भवनों में शरीर को सुरक्षित रखना, यह सब बातें इनके स्वार्थ शब्द के अन्तर्गत नहीं होतीं। इसलिए इन्हें शरीर छोड़ते समय भी क्षोभ नहीं होता। महान् सूफ़ी दार्शनिक मंसूर की ज़िन्दा खाल निकलवाली गई, किन्तु प्राणों के निकलते समय भी उसने 'अनल हक़' अहं ब्रह्मास्मि शब्द को न छोड़ा। आत्मा, न कि शरीर, रक्षा करने योग्य था, इसलिए शरीर-रक्षा उनका स्वार्थ न हुआ। इनके लिए आत्मा को ही मलिन होने देना स्वार्थ होता है। किन्तु यह स्वार्थ किसी दूसरे के स्वार्थ-सिद्धि के मार्ग में नहीं आता; अतः उसके त्याग का प्रश्न ही नहीं उठता।

इसके अतिरिक्त एक दूसरी श्रेणी उन धार्मिक लोगों की है जो दार्शनिक सिद्धान्तों, के अतिरिक्त, कि जिनपर उनकी धर्म्मभित्ति स्थिर रहती है, अन्य रीति-रिवाजों का पालन करते हैं। यह एक धर्म्म के रीति-रिवाज दूसरे धर्म के रीति-रिवाजों से बहुधा भिन्न होते हैं। अपने-अपने धर्मानुकूल रीति-रिवाजों का पालन करना सबका स्वार्थ होता है, किन्तु अपने-अपने स्वार्थ का पालन करते हुए सबकी स्वार्थ-साधना नहीं हो सकती। परिणाम यह होता है कि इन स्वार्थान्ध लोगों में युद्ध होता रहता है और निर्बल लोगों को स्वार्थ-त्याग पर वाध्य किया जाता है। इस प्रकार स्वार्थ-साधन-रूप युद्ध-चक्र सदैव चलता ही रहता है, और जिन धर्मों की स्थापना शान्ति-प्रसार के लिए हुई थी वही नर-हिंसा-लोलुप बन जाते हैं। कौन नहीं जानता कि यहूदियों ने ईसाइयों को कितना दुःख दिया और ईसाइयों ने, जब उनका वश चला, मुसलमानों को संसार-तल से मेटने में कोई कसर न रक्खी ? मुसलमानों ने ईसाइयों का निर्घृण्य संहार किया, और ईसाइयों ने मुसलमानों का निःसंकोच हनन किया। इस देश में भी बौद्धों ने वैदिक-धर्मियों को अत्यन्त दुःख दिया और फिर वैदिक-धर्मियों ने बौद्धों से खूब बदला लिया। इसके पश्चात् मुसलमानों ने हिन्दुओं पर धर्म के नाम पर जो-जो अत्याचार किये हैं, उनका घाव अभी तक हरा है। साराँश, जब इस प्रकार की स्वार्थपरायणता धर्म नौका की पतवार बनती है तो समाज के लिए परिणाम भयानक और घातक होता है। इसी लिए श्री बी० रसेल ने धर्म के विषय में, श्री दिलीपकुमार राय से, जो विचार प्रकट किये थे, उनसे यह स्पष्ट प्रतीत होता था कि वह धर्म को इतनी भयानक संस्था समझते हैं कि जब तक इसकी स्थिति संसार से न मिट जायगी तब तक संसार में शान्ति और सुख न होगा। तात्पर्य यह है कि धर्म जब तक उन स्वार्थों का त्याग न सीखेंगे, जिनसे दूसरे धर्मों के स्वार्थ का विरोध होता है, तब तक वास्तविक शान्ति-स्थापना असम्भव है। इसीलिए इस प्रकार के स्वार्थ-त्याग की अपने ही सुख के लिए, अपनी ही शान्तिमय जीवन-यात्रा के लिए, अत्यन्त आवश्यकता है, और जब तक समुदाय-रूप से ऐसे स्वार्थत्याग की योजना न होगी, तब तक धर्म के नाम पर संसार में ख़ून-ख़राबी होती ही रहेगी।

तीसरी श्रेणी के वे लोग हैं जो इस संसार में लवलीन होकर, संसार को नित्य मानकर, जीवन व्यतीत करते हैं। ऐसे मनुष्यों का स्वार्थ अत्यन्त विस्तृत होता है। इनमें से कोई अपने कुटुम्ब के ही भरण-पोषण में लगे हैं, कोई अपनी जाति की हित-चिन्तना में अपना समय लगाते हैं, किसीको अपने देश की लौ लगी है और कोई इससे भी बढ़कर विश्वप्रेम का राग अलापते हैं। ऐसी अवस्था में जैसा कुछ भी समाज का, जाति का, देश का अथवा अन्तर्जातीय उद्देश हो उसीसे समाजादि का स्वार्थ निश्चित होता है। जब सामाजिक तथा व्यक्तिगत स्वार्थ में विरोध होता है तो व्यक्ति अपने उस स्वार्थ-

त्याग के लिए बाध्य किया जाता है। आजकल बच्चों की शिक्षा केवल माता-पिताओं अथवा बच्चों ही के स्वार्थ को दृष्टि में रखकर होती है। इसीलिए रूस की साम्यवादी (बोलशेविक) सरकार ने बच्चों के शिक्षण को अपने हाथ में ले लिया और उन्हें ऐसी शिक्षा देनी आरम्भ कर दी कि जिससे बच्चों का ध्यान व्यक्तिगत स्वार्थ-साधन की ओर प्रेरित न हो वरन् उनके द्वारा समाज का स्वार्थ-साधन हो। वास्तव में समाज की स्थिति और पुष्टि के लिए इस प्रकार के व्यक्तिगत स्वार्थ का त्याग अनिवार्य हो गया है। प्रख्यात यूनानी दार्शनिक प्लेटो अपने काल्पनिक प्रजातन्त्र राज्य के लिए यह निश्चित करता है कि कोई भी व्यक्तिगत स्वार्थ समाज के स्वार्थ का विरोधी न हो। इसलिए उसके मत में व्यक्तिगत स्वार्थ के मूल को ही उड़ा देना उचित है। मनुष्यों का निजी स्वार्थ अपने स्त्री-बच्चों में, धन-धान्य-सम्पत्ति में, विवाह तथा विद्या-प्राप्ति में रहता है; इसलिए उसने निश्चित किया कि मनुष्यों की सम्पत्ति अपनी न हो, उनके स्त्री-बच्चे निजी न हो, उनका विवाह उनकी निजी इच्छा पर न हो, तथा उनको विद्या, जैसी वे चाहें, न मिले, प्रत्युत वे सब बातें समाज अपने स्वार्थ को दृष्टि में रखकर निश्चित करे। यहाँ पर व्यक्तिगत स्वार्थ का त्याग समाज के स्वार्थ की रक्षा के लिए चरम सीमा पर पहुँच गया है।

इसमें सन्देह नहीं कि हमें समाज में रहना है, हमारे व्यक्तिगत जीवन का दूसरों के जीवन पर और दूसरों के जीवन का हमारे जीवन पर प्रभाव पड़ता है; इसलिए हमारे व्यक्तिगत जीवन में उन स्वार्थों का अवश्य त्याग होना चाहिए, जिनसे सर्व-साधारण के स्वार्थ का विरोध होता हो। जान स्टुअर्ट मिल के शब्दों में हमारा भी स्वार्थ वही होना चाहिए, जिससे 'अधिकाँश लोगों का अधिक सुख' हो। अर्थात् अपने समाज-विरोधी स्वार्थ को समाज के हित के लिए त्याग देना, यही मनुष्य का सर्वोच्च कर्तव्य है। श्री भर्तृहरि ने भी कहा है:—

'स्वार्थो यस्य परार्थएव स पुमान् एकः सतामग्रणीः'।

देवकीनन्दन शर्मा

कल्याण का राजमार्ग

धर्म के नाम पर आज ढोंग और दम्भ का पार नहीं रहा है। परमात्मा को, उसके नाम को और उसके दिव्य भा[illegible] को भुलाकर जगत् आज ऊपर की बातों में ही लड़ रहा है; इसीलिए न तो आज धर्म की उन्नति होती है और न को[illegible] सुख का साधन ही दीखता है। लोग समझते हैं कि ई[illegible] केवल उनके निर्देश किये हुए स्थान और नियमों में ही आब[illegible] है, अन्य सब जगह तो उसका अभाव ही है?

ऐसी स्थिति में मनुष्य-जाति के कल्याण के लिए कुछ ऐ[illegible] बातें होनी चाहिएं, जिनपर अमल करने से सबका कल्या[illegible] हो सकता है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए निम्नलिखि[illegible] सात बातें "दिव्य सन्देश" के रूप में आप लोगों के सम्मु[illegible] रक्खी जाती हैं। इनका पालन ईश्वरवादी मात्र कर सक[illegible] हैं और यह जोर के साथ कहा जा सकता है कि इनका पाल[illegible] करने से उनका परम कल्याण होने में कोई सन्देह नहीं है।

(१) जगत् के ईश्वरवादी मात्र ईश्वर के नाम को मान[illegible] हैं। भगवान् के नाम से उसके स्वरूप की, गुणों की, महि[illegible] की, दया की और प्रेम की स्मृति होती है। जैसे सूर्य के उ[illegible] मात्र से जगत् के सारे अन्धकार का नाश हो जाता है, वैसे [illegible] भगवन्नाम के स्मरण और कीर्तन मात्र से ही समस्त दुर्गुण [illegible] पापों का समूह तत्काल नाश हो जाता है। जिनके यहाँ पर[illegible] त्मा जिस नाम से पुकारा जाता है उसी नाम को ग्रहण क[illegible] इसमें कोई आपत्ति नहीं।

(२) परन्तु परमात्मा का नाम लेने में लोग [illegible] जगह बड़ी भूल कर बैठते हैं। भोगासक्ति और अज्ञान[illegible] उनकी ऐसी समझ हो जाती है कि हम भगवन्नाम का सा[illegible] करते ही हैं और नाम से पाप नाश होता ही है, इसलि[illegible] पाप करने में कोई आपत्ति नहीं है। यों समझ कर वे पा[illegible] का छोड़ना तो दूर रहा भगवान् के नाम की ओट या उस[illegible] सहारा लेकर पाप करने लगते हैं। इस प्रकार परमात्मा के न[illegible] या उसकी प्रार्थना के भरोसे जो लोग पाप को आश्रय [illegible] हैं वे बड़ा अपराध करते हैं। वे तो पाप करने में भगवान[illegible] नाम को साधन बनाते हैं, नाम देकर बदले में पाप खरी[illegible] चाहते हैं। ऐसे लोगों की दुर्गति नहीं होगी तो [illegible] किसकी होगी?

(३) (क) कुछ लोग जो संसार के पदार्थों की कामना वाले हैं वे भी बड़ी भूल करते हैं। वे भगवान् का नाम लेकर उसके बदले में भगवान् से धन-सम्पत्ति, पुत्र-परिवार, मान-बड़ाई आदि चाहते हैं । वास्तव में वे भी भगवन्नाम का माहात्म्य नहीं जानते । जिस भगवन्नाम के प्रताप से उस राज राजेश्वर के अखण्ड राज्य का एकाधिपत्य मिलता हो उस नाम को क्षणभङ्गुर और अनित्य तुच्छ भोगों की प्राप्ति के कार्य में खो देना मूर्खता नहीं तो क्या है ? संसार के भोग आने और जाने वाले हैं. सदा ठहरते नहीं, प्रत्येक भोग दुःख-मिश्रित है । ऐसे भोगों के आने-जाने में वास्तव में हानि ही क्या है ?

(ख) जो लोग यह समझ कर नाम लेते हैं कि इसके लेने से हमारे पाप नाश हो जायंगे वे वास्तव में भगवन्नाम का पूरा माहात्म्य नहीं जानते । क्या सूर्य को कहना पड़ता है, कि तुम अंधेरे का नाश कर दो । उसके उदय होने पर तो अन्धकार के लिए कोई स्थान ही नहीं रह जाता । अतः

(४) भगवान् का नाम भगवत्-प्रेम के लिए ही लेना चाहिए ।

(५) नाम-साधन में कहीं कृत्रिमता न आजाय । वास्तव में आजकल जगत् में दिखावटी धर्म दंभ बहुत बढ़ गया है । इस दम्भ के दोष से सबको बचना चाहिए । दम्भ कहते हैं बगुला-भक्ति को । अन्दर जो बात न हो और ऊपर से मान-बड़ाई प्राप्त करने या किसी कार्य-विशेष की सिद्धि के लिए दिखलाई जाय , वही दम्भ है । दंभी मनुष्य भगवान् को धोखा देने का व्यर्थ प्रयत्न कर स्वयं बड़ा धोखा खाता है । भगवान् तो सर्वदर्शी होने से कभी धोखा नहीं खाते । वह धूर्त जो जगत् को भुलावे में डाल कर अपना मतलब सिद्ध करना चाहता है स्वयं गिर जाता है । इस भयङ्कर दोष से सर्वथा बचना चाहिए ।

(६) इन सब बातों को जान कर ईश्वर का तत्व समझने और तदनुसार जगत् में कर्म करने के लिए राह बतलाने वाला कोई सार्वभौम ग्रन्थ चाहिए, या ऐसा कोई उपादेय सिद्ध मार्ग चाहिए, जिसपर आरूढ़ होते ही ठीक-ठिकाने से अपने लक्ष्य तक पहुंचा जा सके । हिन्दुओं की दृष्टि से ऐसे चार ग्रन्थ के नाम बतलाये जा सकते हैं, हिन्दुओं को जो कल्याण के मार्ग-दर्शक का बड़ा अच्छा काम दे सकते हैं । (१) उपनिषद् (२) श्रीमद्भगवद् गीता (३) भागवत और (४) तुलसीदासजी का रामचरितमानस । उपनिषदों में प्रधानतः ईश, केन आदि दस उपनिषदों को समझना चाहिए । ये ऐसे ग्रन्थ हैं कि जो मनुष्य मात्र को असली लक्ष्य तक पहुंचा सकते हैं । उपनिषदों की और गीता की प्रशंसा आज जगत् कर रहा है । पाश्चात्य जगत् के भी बड़े-बड़े तत्वज्ञ विद्वानों ने उपनिषद् और गीता धर्म को सार्वभौम धर्म माना है । यदि इन चारों का अध्ययन न हो सके तो इन चारों में एक छोटा सा किन्तु बड़ा ही उपादेय ग्रन्थ गीता है, जिसे हम सबके काम की चीज़ कह सकते हैं; उसीका अध्ययन करना चाहिए । गीता का अनुवाद अनेक भाषाओं में हो चुका है । यह सार्वभौम ग्रन्थ है । जिसको किसी ग्रन्थ-विशेष का अध्ययन न करना हो वह गीता-धर्म को ही अपना मार्ग-दर्शक बना सकता है । गीता-धर्म का अर्थ संक्षेप में इन शब्दों में किया जा सकता है—

(क) सब कुछ भगवान् का समझ कर सिद्धि-असिद्धि में समभाव रखते हुए आसक्ति और फल की इच्छा का त्याग कर भगवत्-आज्ञानुसार केवल भगवान् के लिए ही समस्त कर्मों का आचरण करना तथा श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक मन, वाणी और शरीर से सब प्रकार भगवान् के शरण होकर, उसके नाम, गुण और प्रभाव-युक्त स्वरूप का निरन्तर चिन्तन करना । अथवा—

(ख) सम्पूर्ण पदार्थ मृगतृष्णा के जल की तरह अथवा स्वप्न के संसार की तरह मायामय होने के कारण माया के कार्यरूप सम्पूर्ण गुण ही गुणों में बर्तते हैं । ऐसे समझ कर इन्द्रिय और शरीर द्वारा होने वाले समस्त कर्मों में कर्तृत्वाभिमान से रहित होकर, सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन परमात्मा के स्वरूप में एकीभाव से नित्य स्थित रहना, जिसमें एक सच्चिदानन्दघन परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसीके भी अस्तित्व का भाव न रह जाय ।

यह गीता का निष्काम कर्मयोग और सांख्य योग है, यही सार्वभौम धर्म है । इसके पालन में सभी वर्ण और सभी जातियों का समान अधिकार है । इसलिए—

(७) किसी दूसरे के धर्म पर किसी प्रकार का आक्षेप

न कर ईर्ष्या, वैमनस्य और प्रतिहिंसा आदि कुभावों को परित्याग कर संसार में सबको सुख पहुँचाते हुए विचरना चाहिए। जो लोग अपने धर्म को पूर्ण बता कर दूसरे के धर्म की अपूर्णता सिद्ध करते हैं वे वास्तव में परमात्मा के तत्व को नहीं जानते। यदि मैं एक धर्म का विरोध करता हूँ, उस धर्म को भला-बुरा कहता हूं, तो दूसरे के द्वारा मुझे अपने धर्म के लिए भी वैसे ही अपशब्द सुनने पड़ते हैं। इससे मैं उसके साथ ही अपने धर्म का भी अपमान करता हूं। क्योंकि ऐसा करने में मुझे अपने ईश्वर को और धर्म को सर्वव्यापी और सार्वभौम पद की सीमा से संकुचित करना पड़ता है। किसी न किसी अंश में सभी धर्मों में परमात्मा का भाव विद्यमान है, अतएव किसी भी धर्म का तिरस्कार या अपमान करना अपने ही परमात्मा का अपमान करना है।

अतएव जो मनुष्य धर्म के नाम पर कलह और अशान्ति-मूलक परस्पर के कटु विवादों में न पड़ कर गीता-धर्म के अनुसार आचरण करता हुआ दम्भ-रहित होकर ईश्वर का पवित्र नाम लेता है और उस नाम से पाप करने, भोग प्राप्त करने एवं पाप नाश करने एवं पाप नाश होने की भी कामना नहीं करता, वह बहुत ही शीघ्र काम, क्रोध, असत्य, व्यभिचार और कपट आदि सब दुर्गुणों से छूटकर अहिंसा, सत्य आदि सात्विक गुणों से सम्पन्न हो जाता है, सांसारिक जड़ भोगों से उसका मन हटकर सर्वदा ईश्वर के चिन्तन में लग जाता है और इससे वह अपनी भावना के अनुसार परमात्मा के परमतत्व का और उसके स्वरूप का यथार्थ ज्ञान और प्रत्यक्ष दर्शन लाभ कर कृतार्थ हो जाता है। परमात्मा का नाम ऐसा विलक्षण है कि उसके स्मरण, उच्चारण और श्रवणमात्र से ही पापों का नाश होता है। जो लोग स्वयं परमात्मा का नाम जप करते हों, दूसरों को सुनाते हैं, कहीं पर बैठकर परमात्मा के नाम का गान करते हैं वे अपने कल्याण के साथ ही साथ संसार के अनेक जीवों का बड़ा उपकार करते हैं। इसलिए सबको परमात्मा के शुभ नाम की शरण लेकर स्वयं उसका स्मरण, जप और कीर्तन करना चाहिए और दूसरे लोगों को प्रेमपूर्वक इस महान् कार्य्य में लगाना चाहिए।

हनुमानप्रसाद पोद्दार

संसार की वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति बहुत विकट और गंभीर होगई है। प्रायः सभी राष्ट्र अपने राज्य-विस्तार की कोशिश कर रहे हैं। कोई भी एक राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्र के उत्कर्ष को सह नहीं रहा है। प्रायः सब राष्ट्रों में एक दूसरे के प्रति सन्देह, अविश्वास और ईर्ष्या के भाव फैल रहे हैं। प्रबल राष्ट्र दूसरों को दबाने और कुचलने की कोशिश कर रहे हैं। कई राष्ट्र, जो अभी तक संसार में सबसे बड़ी शक्तियों में न गिने जाते थे, अपनेको भी एक विशेष शक्ति बनाने की कोशिश कर रहे हैं। जब यह अवस्था हो तो संसार में शान्ति कैसे स्थापित हो सकती है? सब राष्ट्र जानते हैं कि यह अवस्था किसी निकट भविष्य में होने वाले युद्ध की पेशबन्दी है। इसलिए सभी राष्ट्र अपने-अपने सैन्य-संग्रह की तैयारी बड़े ज़ोरों से कर रहे हैं। कोई राष्ट्र ऐसा नहीं, जो इस विषय में निश्चेष्ट हो या भावी युद्ध की तैयारी न कर रहा हो। सभी राष्ट्रों का सैनिक व्यय वेग से बढ़ रहा है और हवाई जहाज़ों तथा तोपों की संख्या में वृद्धि हो रही है।

जो देश निर्बल हैं वे भी सबल बनने की कोशिश कर रहे हैं। कहीं शान्ति या सुख नहीं है, बल्कि जहाँ देखिए वहाँ विद्वेष है, ईर्ष्या है और दूसरे को नष्ट करने की इच्छा है। निःशस्त्रीकरण की बात सबकी ज़बान पर है, परन्तु कृति में वही हो रहा है, जो हम ऊपर कह आये हैं।

निःशस्त्रीकरण परिषद्

अभी जिनेवा में फिर एक निःशस्त्रीकरण परिषद् की गई थी। इस बार रूस भी निमन्त्रित किया गया था, यह आश्चर्य की बात थी। रूस के दो प्रतिनिधि श्री लिट्विनौफ़ और लिशामौवस्की सभा में सम्मिलित हुए। उन्होंने आते ही निःशस्त्रीकरण के लिए एक प्रस्ताव पेश किया, और कहा, 'अब तक किसी राष्ट्र ने निःशस्त्रीकरण की ओर कुछ ध्यान नहीं दिया। सब इस बात की राह देख रहे हैं कि पहले कोई दूसरा अपने शस्त्रास्त्र कम करे। इसलिए इस समय सब राष्ट्रों को चाहिए कि वे एक साथ अपनी जल, स्थल और हवाई सब सेना तथा शस्त्रास्त्र को चार वर्षों तक हटा दें। इसी तरह युद्ध सम्बन्धी बातों का प्रचार और युद्ध शिक्षा भी कानूनन बन्द कर दी जाय। तभी संसार में शान्ति स्थापित होगी। सोवियट की सरकार पूर्ण निःशस्त्रीकरण के पक्ष में है।' इस प्रस्ताव से सभी पूंजीपति राष्ट्र एकदम चकित हो गए। कोई राष्ट्र इस प्रस्ताव को मानने के लिए तैयार न हुआ। न उसपर कोई विचार ही किया गया। इंग्लैण्ड के प्रतिनिधि लार्ड कुशंडडन ने वहांके समाचारपत्रों के संववाददाताओं से बातचीत करते हुए कहा कि इंग्लैण्ड निःशस्त्रीकरण के पक्ष में है और युद्ध के बाद इसी नीति का अवलम्बन करता आया है। हम अब तक जितने शस्त्रास्त्र कम कर चुके हैं, उससे अधिक निःशस्त्रीकरण करना हमारे लिए कठिन है। अब तो जितनी सेना हमारे पास रह गई है, वह हमारे साम्राज्य की रक्षा के लिए आवश्यक है।

इंग्लैण्ड में सैनिक शक्ति की वृद्धि

इधर इंग्लैण्ड के प्रतिनिधि निःशस्त्रीकरण परिषद् में जा कर अपने को उस नीति का ज़बरदस्त हिमायती बता रहे हैं और उधर इंग्लैण्ड अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाने में भी लगा हुआ है, जिसका कुछ हाल पाठक गतांक में पढ़ चुके हैं। अभी चीन में अंग्रेज़ी सेना रखने के लिए पार्लमेंट ने ३०,९०,००० पौंड की स्वीकृति दी है। यह मार्च में मंजूर किये गये ९,५०,००० पौंड से अलग है। इंग्लैण्ड की हवाई सेना के मन्त्री श्रीयुत सैमुअल होर ने कहा है कि हमारे दो नये हवाई जहाज़ तैयार हुए हैं; वे यदि अच्छी तरह चलने लगे तो मिश्र का रास्ता दो दिन का, भारत का चार दिन का और आस्ट्रेलिया का दस दिन का रह जायगा। इंग्लैण्ड भारत में भावी युद्ध के लिए क्या-क्या तैयारियां कर रहा है, यह भी पाठकों से छिपा नहीं।

एक अच्छी प्रवृत्ति

अभी इंग्लैण्ड की पार्लमेंट के मजूर सदस्य श्रीयुत पोन्सोनबी ने एक बड़ा ही शुभ काम किया है। उन्होंने १,२८,७७० अंग्रेज़ों के हस्ताक्षर करा कर एक घोषणा-पत्र प्रधान-मन्त्री बाल्डविन को दिया है। उसका आशय यह है कि हम नीचे हस्ताक्षर करने वाले यह विश्वास करते हैं कि राष्ट्रों के तमाम झगड़े राजनीतिज्ञ लोगों की परस्पर चर्चा से अथवा सार्वराष्ट्रीय पंचायत के निर्णय से तय हो सकते हैं। हम यह गंभीरतापूर्वक घोषणा करते हैं कि चाहे जो सरकार हो, यदि वह युद्ध के लिए शस्त्र उठायगी तो, हम कभी युद्ध में सेवा या सहायता न करेंगे। श्री पोन्सोनबी का यह उद्योग अभिनन्दनीय है। युद्धों से नहीं, ऐसे ही कार्यों से संसार का कल्याण हो सकेगा। ये भाव जनता में जितने अधिक फैलेंगे, उतनी ही अधिक शान्ति की संभावना संसार में बढ़ेगी। यह भी निश्चित है कि वे सरकारें जिनकी बागडोर पूंजीपतियों के हाथ में है, देश के नाम पर इस प्रवृत्ति को नष्ट करने का पूरा उद्योग करेंगी।

अमेरिका की सैनिक शक्ति में वृद्धि

जिनेवा की नौसेना-परिषद् से निराश होकर अमेरिका ने बड़ी भारी तैयारी शुरू कर दी थी, यह पाठकों को मालूम है। राजनीतिज्ञों का अनुमान है कि निकट-भविष्य में होने वाले युद्ध की रंगस्थली एशिया होगी और उसमें एशियायी राष्ट्र चीन, जापान, भारत (अंग्रेज़ी सरकार) और रूस विशेष रूप से भाग लेंगे। इसीलिए इंग्लैण्ड भारत में युद्ध की तैयारियां कर रहा है। इस स्थिति से अमेरिका भी असा-

वधान नहीं है। वह प्रशान्त महासागर पर अच्छी तरह अधिकार करने और एशिया में व्यापारादि की सुविधायें प्राप्त करने का यह अच्छा अवसर समझता है, इसलिए वह भी युद्ध की तय्यारियों में लगा हुआ है। अभी वहांकी कांग्रेस में राष्ट्रपति कूलिज ने जो संदेश भेजा था उससे अमेरिकनों की मनोवृत्ति स्पष्ट मालूम होती है। उसमें उन्होंने कहा—खेद है कि हमारे पूर्ण प्रयत्न करने और जापान का सहयोग प्राप्त हो जाने पर भी जल-सेना घटाने के विषय में हमारा ब्रिटेन के साथ समझौता न हो सका। अपने विशाल राष्ट्रीय उत्तर-दायित्व को सम्हालने के लिए हमें यथेष्ट जल-सेना अवश्य रखनी चाहिए। हमने ऐसे समझौते में शामिल न होने का दृढ़ निश्चय कर लिया है, जिससे जल-शक्ति-सम्पन्न राष्ट्रों में हमारा स्थान पीछे हो जाय।

इंग्लैण्ड और अमेरिका में मनोमालिन्य

इस तरह इंग्लैण्ड और अमेरिका दोनों अपनी-अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाने में लगे हुए हैं। अमेरिका जहाज़ी शक्ति में इंग्लैड से बढ़ना चाहता है और इस समय अमेरिका का इसी ओर सबसे अधिक ध्यान है। अमेरिका के कई राज-नीतिज्ञों ने यह सलाह दी है कि इंग्लैण्ड जितना कर्ज़ा हर साल अदा करता है, वह सम्पूर्ण बड़े-बड़े जहाज़ बनाने में लगा दिया जाय, जब तक कि हमारी जल-सेना इंग्लैण्ड के बराबर न हो जाय। इस परिस्थिति से इंग्लैण्ड भी बेख़बर नहीं है, यह ऊपर लिखा जा चुका है। इंग्लैण्ड के राजनीतिज्ञ चाहते हैं कि इसका बाह्यरूप से विशेष विरोध न कर इसको महत्ता न दी जाय और वे अमेरिका को बाहरी रूप से दिखाना चाहते हैं कि हम अमेरिका की प्रतिस्पर्धा में खड़ा नहीं होना चाहते। 'रिव्यू आफ़ रिव्यूज़' के सम्पादक श्रीयुत स्टीड लिखते हैं कि हमें अमेरिका से कोई झगड़ा नहीं। वह भले ही अपनी जल-सेना बढ़ा ले। हमें तो केवल अपने व्यापार-मार्गों के रक्षार्थ जितने जहाज़ आवश्यक हों, उतने ही रखने हैं। हमें अपनी जल-सेना इसलिए नहीं बढ़ानी कि अमेरिका से हमें युद्ध करना है। परन्तु यह सब ऊपरी बातें हैं। वस्तुतः दोनों देशों में मनोमालिन्य पैदा हो चुका है। दोनों देशों के राजनीतिज्ञ युद्ध को अवश्यम्भावी समझ रहे हैं। इंग्लैण्ड के लैफ़्टनैण्ट कमांडर कैनवर्दी ने 'युद्ध या शांति' (War or Peace) पुस्तक में दोनों देशों की सामुद्रिक प्रतिस्पर्धा का हाल लिखते हुए युद्ध को बहुत संभव बताया है। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ एच० जी० वैल्स की भी सम्मति है कि अब वैसी घटनाएं उपस्थित हो रही हैं, जिससे युद्ध की संभावना की जा सकती है।

इटली की युद्ध की तय्यारियां

इटली का मुसोलिनी भी नैपोलियन को अपना आदर्श बनाये हुए अपनी सैनिक शक्ति को सुसज्जित कर रहा है। वह भूमध्यसागर पर अधिकार करना चाहता है। वह कहता है कि इटली अपने इतने बड़े तट द्वारा भूमध्यसागर में स्नान कर रहा है, यह उसीका समुद्र है। इधर वह इरिट्रिया, इटालियन सोमालिलैण्ड, अबीसीनिया के पूर्वीय भाग तथा योंगन को मिला कर अपना एक बड़ा उपनिवेश स्थापित करना चाहता है। इन दोनों बातों में उसका इंग्लैण्ड से संघर्ष अनिवार्य है। इसलिए वह अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाने में लगा हुआ है।

इटली और फ्रांस

इटली का केवल इंग्लैण्ड से नहीं फ्रांस से भी संघर्ष शुरू हो चुका है, जिसका वृत्तान्त पाठक गताँक में पढ़ चुके हैं। अब दोनों में परस्पर सद्भाव की बात चल रही है। नहीं कह सकते कि इसमें कहां तक सफलता होगी। इधर

पोलैण्ड और लिथुआनिआ

में भी परस्पर शान्ति और मित्रता की बात चल पड़ी है। दोनों ने राष्ट्र-संघ की पंचायत को अपना निर्णायक मान लिया है। राष्ट्र-संघ ने एक समझौता भी करा दिया है। यह समझौता कहाँ तक स्थिर रहेगा, यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु

रूस

इससे अत्यन्त असन्तुष्ट है। उसका कहना है कि इस समझौते से पोलैण्ड पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाये गये। वह पौलैण्ड के विरुद्ध है। यह विरोध काफ़ी देर से चला आता है। रूस भी वर्त्तमान भयंकर स्थिति में शस्त्रास्त्र बढ़ाने

सैनिक शिक्षा के प्रचार से पीछे नहीं हट सकता। उसने स्त्रियों की सेना बनाने का निश्चय किया है। सैनिक शिक्षा तो वह पहले ही अनिवार्य कर चुका था। यह ठीक है कि उसका सैनिक व्यय पहले से कम हो गया है, परन्तु वहाँ सैनिक शिक्षा का प्रचार बढ़ रहा है। संसार की स्थिति में वह निःशस्त्र रह भी तो नहीं सकता।

इसी तरह यूरोप के अन्य राष्ट्र भी युद्ध की तय्यारियों में लगे हुए हैं। अब एशियायी राष्ट्रों को लीजिए। जापान की नीति के विषय में हम पहले किसी अंक में प्रकाश डाल चुके हैं कि वह भी सेना बढ़ाने में दत्त-चित्त है। बाक़ी टर्की, ईरान, और अफ़ग़ानिस्तान को अभी युद्ध की इच्छा नहीं। ये तीनों राष्ट्र अपनी सर्वविध उन्नति में लगे हुए हैं। शिक्षा, व्यापार, कला-कौशल, विज्ञान आदि की उन्नति करने में वे तत्परता से जुटे हुए हैं।

अफ़ग़ानिस्तान

नरेश अमीर अमानुल्लाखां टर्की के कमालपाशा की तरह बहुत महत्त्वाकांक्षी और राष्ट्रीय व्यक्ति है। वह अपने देश को सब प्रकार से उन्नत करने में लगा हुआ है। अफ़ग़ानिस्तान की भौगोलिक परिस्थिति ने उसकी महत्ता और भी बढ़ा दी है। रूस और इंग्लैण्ड दोनों उसे अपना मित्र बनाना चाहते हैं। अमीर भी नीतिज्ञ नरेश है, वह किसी को भी इस समय अप्रसन्न नहीं करना चाहता। उसकी संधि रूस से हो चुकी है। वह अंग्रेज़ों से भी मित्रता का व्यवहार करता है। अमीर अब हिन्दुस्थान होते हुए यूरोप की यात्रा के लिए निकले हैं। उस यात्रा का अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से बहुत महत्त्व है। यह यात्रा उन्हींके कथनानुसार अफ़ग़ानिस्तान के हित के लिए की जा रही है। अमीर इस यात्रा में जाकर संसार के अन्य देशों को देखेंगे कि उनका रुख किधर है, अफ़ग़ानिस्तान के किन राष्ट्रों से किसके स्वार्थ मिलते हैं। कौन राष्ट्र अफ़ग़ानिस्तान के मित्र और कौन राष्ट्र शत्रु हैं, अफ़ग़ानिस्तान का संसार की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में क्या स्थान है, इत्यादि बातों को देखने के लिए ही अमीर इस यूरोप-यात्रा को निकले हैं, यहाँ के राजाओं की तरह भोग-विलास के लिए नहीं। भारत में आने पर सरकार ने तो उनका मान किया ही, यहां के मुसलमानों ने भी उनको बहुत से मानपत्र दिये, जिनमें हिन्दू भी अच्छी संख्या में सम्मिलित हुए। अमीर अमानुल्लाख़ाँ ने भारत के लोगों पर अपने व्यक्तित्व तथा उच्च सद्भावनाओं का बड़ा ही अच्छा प्रभाव डाला है। उन्होंने यहां के मुसलमान मौलवियों को शिक्षा देते हुए कहा कि मुझे दुःख है कि यहां के मौलवी मज़हबी झगड़े खड़े कर भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को धक्का पहुँचाते हैं। यहां के मुसलमानों को हिन्दुओं के गोरक्षा के भाव का सन्मान करना चाहिए। पहले अपने को राष्ट्रीय बनाओ और फिर मुसलमान। अमीर के स्वर्गीय पिता

अमीर अफ़ग़ानिस्तान

श्रीयुत हबीबुल्लाखां ने भी यहां के मुसलमानों को यही उपदेश दिया था, परन्तु इसपर यहां के मुसलमानों ने ध्यान नहीं दिया। कुछ एक भारतीय राजनीतिज्ञ एक आशंका भी उपस्थित कर रहे हैं कि अफ़ग़ानिस्तान के पास कोई समुद्री बन्दरगाह न होने से वह कराची बन्दर पर आँख लगाये हुए है। हम अभी इस विषय पर कुछ नहीं कह सकते, यदि ठीक भी हो तो भी इसके दिन बहुत दूर हैं। अभी निकट-भविष्य में तो इसकी कोई सम्भावना है नहीं।

चीन का गृहयुद्ध

चीन को तो गृहयुद्धों से ही फ़ुरसत नहीं मिलती, वह आगे उन्नति करे ही कहां से ? अभी जो उसके विषय में समाचार मिले हैं, वे बहुत अच्छे नहीं हैं। रूस के प्रचार के कारण वहां बोलशेविकों का भी ज़ोर है। चीन के बोलशेविक दल ने, जिसमें रूसी भी काफ़ी संख्या में मिले हैं, इस गृहयुद्ध के समय पर बोलशेविक क्रान्ति कर वहां रूस के समान सोवियट सरकार स्थापित करने का अच्छा अवसर समझा। इसलिए २०,००० बोलशेविकों ने, जिनमें अधिकतर मजूर और किसान हैं, कैण्टन पर आक्रमण कर अधिकार कर लिया। रूसी लोगों के नेतृत्व में उन्होंने वहाँ लाल क्रान्ति कर नगर को लूटना और जलाना शुरू किया। मज़दूरों ने पार्लमेण्ट, तार-टेलिफ़ोन के दफ़्तरों और रेलवे स्टेशनों पर अधिकार कर लिया। वहां उन्होंने हांगकांग की सोवियट नाम से एक सरकार स्थापित कर समस्त ज़मींदारियों और अधिकारपत्रों के समाप्त होजाने और सम्पूर्ण भूमि तथा मकानों के ज़ब्त कर लिये जाने की एक घोषणा भी निकाली है। यह सब देख कर राष्ट्रीय दल वालों ने चिआंग-काई-शेक को फिर प्रधान सेनापति बनाकर कैण्टन पर हमला किया और भयंकर लड़ाई के बाद उसपर अधिकार कर लिया। चिआंग-काई-शेक ने रूस के इस व्यवहार पर अत्यन्त अप्रसन्न होकर रूस से सम्बन्ध तोड़ दिया और राष्ट्रीय चीन में रूसी दूतावासों को बन्द कर दिया है। अब चीन में कुछ शान्ति है। इस तरह चीन में सोवियट सत्ता स्थापित करने का रूसियों का यह प्रयत्न निष्फल गया। रूस की इस जल्द-बाज़ी से रूस का एक और शत्रु खड़ा होगया।

अमीर अफ़ग़ानिस्तान

एशिया के अन्यराष्ट्रों में कोई उल्लेखनीय घटना इन दिनों नहीं हुई, जिसका यहां वर्णन किया जाय। हां,

भारत की अन्तर्राष्ट्रीय नीति

के सम्बन्ध में कुछ लिखना आवश्यक है। भारत अभी तक परतंत्र देश है, इसलिए उसका सीधा सम्बन्ध किसी से नहीं है। जो सम्बन्ध है भी, वह अंग्रेज़ी सरकार का है और

इंग्लैण्ड की नीति पर भारतीय जनता का कोई विशेष सम्बन्ध विदेशों से नहीं है। यह ठीक है, कुछ समय पूर्व भारत के एक राजनैतिक क्रान्तिकारी दल ने विदेशों में जाकर, वहां की सहायता लेकर भारत में क्रान्ति करने और स्वतन्त्रता प्राप्त करने का प्रयत्न किया था, परन्तु अब वैसे सम्बन्ध नहीं रहे। कुछ भारतीय गत-वर्ष जापान द्वारा आमन्त्रित एशियायी राष्ट्र-सम्मेलन में भी भारत के प्रतिनिधियों के रूप में समिलित हुए थे। भारत की एकमात्र राष्ट्रीय संस्था

कांग्रेस की अन्तर्राष्ट्रीय नीति

भी कोई विशेष महत्व की बात नहीं है। कुछ व[र्ष] पूर्व असहयोगान्दोलन के समय, ख़िलाफ़त के प्रश्न [को] लेकर कांग्रेस ने काफ़ी आन्दोलन किया था। परन्तु ख़िलाफ़[त] के टूटते ही वह भी ठण्डा हो गया। सब दलित या एशिया[ई] आन्दोलनों को कांग्रेस सहानुभूति की दृष्टि से देखती है। मिश्र और टर्की के स्वतंत्रता के आन्दोलनों से भारत ने

...नुभूति रक्खी । चीन से तो इसका अच्छा संबन्ध है ही । ...वर्ष कांग्रेस ने चीन में स्वयंसेवक चिकित्सकों का एक ...भेजने का निश्चय किया था, वह निश्चय अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि ...बहुत महत्व का था । भले ही वह सरकार की नीति के ...सफल न हुआ हो, तो भी ऐसा निश्चय कर हमने ...चीन की सहानुभूति प्राप्त कर ली । यह सर्वराष्ट्रीय ...से कम महत्व की बात नहीं । गया की कांग्रेस में अन्त- ...दृष्टि से एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव हुआ था, जिसमें सब ...को सूचना दी गई थी कि भारत-सरकार द्वारा आगे से ...जाने वाले राष्ट्रीय ऋणों के अदा करने का स्वतंत्र भारत ...दायी न होगा । भले ही इस समय इसका कोई विशेष महत्व न हो, फिर भी आगे इसका महत्व ज़रूर होगा । इस प्रस्ताव पर अभी और अधिक ज़ोर देने की ज़रूरत है । अभी मद्रास की कांग्रेस में भी सरकार का भावी युद्ध में सहयोग न करने, सरकार की तत्सम्बन्धिनी नीति की निन्दा करने तथा साम्राज्यवाद-विरोधी संबंध स्थापित करने के प्रस्ताव भी अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से कुछ महत्व रखते हैं । हमारा ख़याल है कि इस समय कांग्रेस को अन्तर्राष्ट्रीय नीति से उपेक्षा न कर विशेष भाग लेना चाहिए, ख़ास कर एशियायी राष्ट्रों के सम्बन्ध में । एशियायी राष्ट्रों के भविष्य के साथ ही हमारा भविष्य बंधा है ।

कृष्ण

युग-निर्माण

गीता का संदेश

वह गम्भीर क्षण था ! अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा—"भाई, ...तो इस युद्ध में नहीं लड़ सकता । अरे, जिन गुरु-जनों ...मुझे अपनी गोद में खिलाया है, मुझे पाला-पोसा है, युद्ध- ...विद्या की दीक्षा दी, जो मेरे पूज्य स्वजन हैं भला उनपर मैं ...किस प्रकार कृतघ्न होकर शस्त्र चलाऊं ? धिक्कार है उस ...राज्य को, उस वैभव को, जिसे प्राप्त करने के लिए इन ...गुरुजनों के ख़ून की नदी में से हो कर जाना पड़ता हो । ऐसे ...राज्य से तो भीख माँग कर पेट भरना ही भला है । भीषण ...नर-हत्या से होने वाले परिणामों का ख़याल आते ही मेरी ...आँखों के सामने अन्धेरा छा जाता है । ना, यह नृशंस काम ...मुझसे न होगा—यह सम्हाल भैया, तेरा धनुष और बाण ?"

दोनों सेनाओं की आँखें कृष्णार्जुन की ओर लगी हुई ...थीं । प्रत्येक सैनिक युद्ध शुरू करने के संकेत की आतुरता- ...पूर्वक राह देख रहा था । और यहां युद्ध-नाटक के इस मुख्य ...पात्र का यह हाल ! श्रीकृष्ण दंग रह गये ।

प्रश्न यह नहीं था कि फ़लां-फ़लां गुरु-जनों के सामने ...शस्त्र उठाया जाय या नहीं । वह युद्ध तो था अन्याय का सामना करने के लिए । सबको अपनी-अपनी तरफ़ से विचार करने लिए काफ़ी समय मिल चुका था । स्वयं श्रीकृष्ण शांति का संदेश लेकर कौरवेश्वर के दरबार में गये थे । पर वहां तो प्रभुता राज-मद में उन्मत्त थी । शान्ति की बसीठी सुनने के लिए वहां किसी के कान न थे । कौरव-पक्ष के बड़े से बड़े महापुरुषों की अन्तरात्मा की आवाज़ इतनी कमज़ोर हो गई थी कि उसकी ओर किसी का ध्यान नहीं जा रहा था । रूढ़ी ने महापुरुषों के विवेक, स्वाभिमान और न्याय-भावना को भी मूर्छित कर दिया था । राजा के विरुद्ध कैसे हों ? जिसका नमक खाया, उसको युद्ध के समय कैसे छोड़ें ? यह तो विश्वासघात है ।

चुपचाप अन्याय को सहन करने की वृत्ति ने उन्हें युद्ध-क्षेत्र में प्रत्यक्ष अन्याय का पक्ष लेकर लड़ने के लिए खड़ा कर दिया था ।

पर कर्त्तव्य कठोर होता है । स्वजन-परजन का भेद-भाव नहीं होता । वहाँ तो सत्य और असत्य---न्याय और अन्याय ही देखा जाता है । कर्त्तव्य के धर्म-क्षेत्र में खड़े हुए अर्जुन का चित्त विचलित हो उठा । वह कायरता नहीं, मोह था ।

यदि निरी कायरता होती तो दो-चार जोशीली बातें कह कर श्रीकृष्ण अर्जुन के शौर्य को जगाते। वह था स्नेहजन्य मोह। शत्रु से नहीं, अपने स्वजनों से लड़ने के लिए उन्हें तैयार करना था।

श्रीकृष्ण मुस्कराये और लगे अर्जुन को नाना प्रकार समझाने। अर्जुन का मोह पठित था। ज्यों ज्यों श्रीकृष्ण उन्हें समझाते जाते थे, त्यों-त्यों अर्जुन अपनी शंकायें उनके सामने रखते जाते थे और उस बात-चीत के सिलसिले में दुनिया भर के ज्ञान, विज्ञान, राजयोग, भक्तियोग, और ज्ञानयोग का ज़िक्र छिड़ गया।

इस समय अर्जुन के सामने न्याय-अन्याय का प्रश्न गौण हो गया। न्याय को उनका पारिवारिक मोह, जिसे लेकर वह युद्ध-क्षेत्र में आये थे, राज्य-लोभ के रूप में दीखने लग गया। और अन्याय का प्रतिकार करने की बात को, आततायी को दण्ड देने की बात को उसने बिलकुल भुला दिया। वह अपने कुल-नाश में या कुछ कुलों के नाश में सारे समाज का नाश देखने लगे।

श्रीकृष्ण के सामने केवल कुरुकुल या इस महायुद्ध में शामिल होने वाले परिवारों के भले-बुरे का ही सवाल नहीं था। उनके सामने तो विश्व का कल्याण था। क्या इस अन्याय के सामने सिर झुकाने, उसे सह लेने की परिपाटी को बे-रोक-टोक चलने दिया जाय और सारे संसार में इसे फैलने दिया जाय, या यहीं से इसे नष्ट कर दिया जाय?

उन्हें दूसरा मार्ग ही श्रेयस्कर मालूम हुआ और नाना प्रकार की युक्तियों से उसीके लिए उन्होंने अर्जुन को तैयार भी किया। एक महान् सिद्धान्त को प्रतिष्ठित करने के लिए भारी से भारी हानि भी यदि उठानी पड़े तो महापुरुष कभी आगे-पीछे नहीं देखते। महाभारत का युद्ध इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

अन्याय को चुपचाप न सहो, उसका प्रतिकार करो, चाहे इसके लिए तुम्हें कितनी बड़ी हानि क्यों न उठानी पड़े। यही है गीता का संदेश।

गीता में दी हुई आध्यात्मिक दलीलें अर्जुन के सूक्ष्म मोह के बादलों को दूर करने के ही लिए दी गई हैं। वे तो इस कर्तव्य-मार्ग को प्रकाशित करने के लिए ही हैं। बिना आत्मा की अमरता, निष्काम कर्म का माहात्म्य और विश्वरूप दर्शन द्वारा विश्वचक्र की गति समझाये वह अर्जुन को कैसे तैयार कर सकते थे?

गीता एक स्वर्गीय गान है। नहा-धोकर शुचिर्भूत हो उसका पाठ करने वाले लोग उसके माहात्म्य को कुछ-कुछ समझ सकते हैं। पण्डितों के प्रवचनों में वे उसके अंतर्बाह्य सौंदर्य का दर्शन कर सकते हैं। और गुरुचरणों में बैठकर वे उसके "समोहं सर्व भूतेषु" की कुछ अनुभूति भी कर सकते हैं। परन्तु इस मोहन-मंत्र के रहस्य और संदेश को तो यह भारत ही समझ सकता है, जो इन अंधपुत्र दुर्योधन-दुशासन के अत्याचारों का एकबारगी नाश करने का निश्चय करके आज युद्धभूमि में पैर रोप कर खड़ा हो गया है।

हां, अन्याय का प्रतिकार करने के साधनों में काल-माहात्म्य, परिस्थिति और सामाजिक प्रगति के अनुसार ज़रूर फ़र्क़ हो सकता है। परन्तु यह बात गौण है। हम तो केवल गीता के मुख्य संदेश को ही समझ लें तो मुक्ति हमारे बायें हाथ का खिलौना हो जायगा। बस, "अन्यायों से युद्ध कर," यही जीवन-मंत्र है। बाहरी अन्यायों से युद्ध करने से मुक्ति और भीतरी विकारों के अन्यायों से युद्ध करने से मुक्ति इसके निश्चित फल हैं।

ईसाकी वाणी

२५ दिसम्बर—आशा और नवीन चैतन्य का त्योहार। प्रत्येक गिरजाघर और ईसाई-परिवार में आज आनन्द की उर्मियां उमड़ रही हैं। महान् उत्सव का दिन है। आज उनकी जन्माष्टमी है—एक हज़ार नौ सौ सत्ताईस वर्ष की बात है। आज ही पाप, दुराचार, दम्भ-पाखण्ड और अनीति में डूबे हुए यहूदी-समाज को उबारने के लिए महात्मा ईसा इस संसार में अवतीर्ण हुए थे। अपने विलक्षण विश्व-प्रेम और साधुता से उन्होंने साम्राज्य भर में खलबली मचादी थी। सम्राट् का सिंहासन हिल गया। धर्मान्ध, दाम्भिक और पाखण्डी धर्माधिकारियों के छक्के छूट गये, जब वे अपने सार्वभौम धर्म-सिद्धान्तों का प्रचार करने लगे।

प्रत्येक महापुरुष इसी तरह रट में पड़े हुए संसार को

जगाने के लिए आता है और उसके चले जाने के बाद उसके अनुयायी उसके शब्दों के मनमाने अर्थ करके फिर धर्म का एक नया जाल खड़ा कर देते हैं। और असली बातों को भुला देते हैं। आत्मा निकल जाता है और वे शरीर को पकड़े बैठे रह जाते हैं। आज कृष्ण, ईसा, और मुहम्मद की आवाज़ फिर वायु-मण्डल में गूंज रही है और भटके हुए समाज को सन्मार्ग पर बुला रही है। आज ईसा का जन्मदिन है। संसार की आज वही अवस्था है, जो दो हज़ार वर्ष पहले उनके जन्म-मास के समय थी। अतः उनका उपदेश आज भी संसार के लिए उतना ही लाभदायक है, जितना तब था।

ईसा का सबसे प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण प्रवचन वह था जो उन्होंने अपने बारह शिष्यों को दीक्षा देने पर उन्हें पर्वत पर ले जाकर सुनाया था। अपने जीवन का सारा रहस्य उन्होंने इस प्रवचन में खोलकर रख दिया है। ज़रा एकाग्र चित्त से सुनिएगा इस युग-निर्माता की वाणी को—"वे सचमुच धन्य हैं जो इस संसार में दीन, दुखी, नम्र, अपना धर्म जानने के लिए आतुर, दयावान् शुद्ध हृदयवाले और शांति तथा एकता के उपासक हैं। वे ही मोक्ष के सच्चे अधिकारी हैं। वे ही शान्ति को प्राप्त कर सकते हैं। वे ही प्रभु के पुत्र बनने के योग्य हैं। वे ही धर्म-राज्य में रह सकेंगे।

उनका जीवन धन्य है जिन्हें स्वधर्म के पालन में अत्याचार सहने पड़े हैं। क्योंकि वे ही स्वाराज्य के अधिकारी हैं।

भाइयो, तुम अपनेको उस समय भाग्यवान समझो जब लोग तुम्हारी निन्दा करें, तुमपर ज़ुल्म करें, और मेरे कारण तुम पर झूठे-झूठे आरोप मढें। क्योंकि उससे तुम्हारा कल्याण होगा—संसार में जितने भी संत हो गये हैं उन्होंने तिरस्कार और कष्ट सहकर ही साधुता प्राप्त की है।

भाइयो, तुम्हें यह सम्पत्ति सुख नहीं दे सकती, इसपर गर्व न करो। यह जब जावेगी तब तुम्हें उससे सुख न होगा। आज के सुख से तुम अपनेको भाग्यवान न समझना। यह सुख तो एक दिन तुम्हें रुलावेगा, उस समय आज का यह सुखानुभव तुम्हारे दुख को किसी प्रकार कम न कर सकेगा।

अपनी तारीफ़ सुनकर कभी अभिमान से न फूलो। इससे तुम्हें साधुता नहीं मिलेगी।

भाइयो, तुम अपनेको दीन और दयापात्र न समझो। तुम तो इस संसार का नमक हो—प्राण हो। नमक ही तो सब रसों का सार होता है। यदि वही स्वाद-रहित हो जाय तो वह किसी काम का न रह जायगा—मिट्टी हो जायगा।

इस प्रकार तुम भी अपना सत्व खोकर अपने मूल्य और महत्व को न खो देना। तुम तो इस जहां के नूर हो। जिस प्रकार पर्वत पर बसा हुआ शहर छिपाया नहीं जा सकता अथवा मोमबत्ती को ढक कर नहीं रक्खा जा सकता, उसे तो ऊंचे स्थान पर हण्डी या इक्के पर ही रक्खा जाता है, उसी प्रकार तुम अपने नूर को जगत में फैलाओ और उसे प्रकाशित करो कि जिससे जनता तुम्हारे सत्कर्मों को देखकर तुम्हारे सिरजनहार का यशोगान करे।

भाइयो, यह न समझो कि मैं पुराण-शास्त्रों का उच्छेद करने आया हूं। मैं इनका रहस्य समझा कर इनमें छिपे हुए तत्वों का विशेष पूर्णता-पूर्वक आपसे पालन कराना चाहता हूं। निश्चय समझो कि जहां तक पृथ्वी और स्वर्ग है परमात्मा के नियमों से छूटना असम्भव है। जो उनका अणुभर भी भंग करेगा वह उसके यहां अणुभर ही रहेगा। जो इनका पालन करेगा और इन्हें दूसरों को सिखावेगा वह मालिक के यहां भी महान् समझा जायगा। शिष्यो, याद रक्खो कि जब तक तुम फरीसी और शतस्त्रियों की अपेक्षा अधिक शीलवान् नहीं बन जाओगे तब तक प्रभु के धाम का दरवाज़ा तुम्हारे लिए नहीं खुलेगा।

तुम यह तो जानते हो कि कभी किसी का घात नहीं करना चाहिए। तुम यह भी जानते हो कि हत्यारा अधोगति को प्राप्त करता है। पर मैं तो कहता हूँ कि केवल हत्या को ही हिंसा नहीं कहते। अगर तुम अपने भाई पर भी ग़ुस्सा होगे तो तुम नरक के अधिकारी होगे। अगर तुम अपने भाई को गाली दोगे तो भी अधोगति को प्राप्त करोगे। तुम उसे मूर्ख भी कहोगे तो भी तुम्हें सज़ा होगी। यज्ञ की वेदी पर खड़े रहकर बलिदान चढ़ाते समय अगर तुम्हें याद आ जाय कि तुम्हारे चित्त में अपने भाई पर तिल भर भी ग़ुस्सा है तो मैं कहता हूँ, तुम रुक जाओ, और पहले अपने उस भाई के पास जाकर उसकी सान्त्वना करलो। तब बलिदान

चढ़ाओ। अपने विरोधी से लड़ाई मिटाने में कभी देर न करो।

यह तो तुम जानते हो कि व्यभिचार शास्त्राज्ञा के विरुद्ध है। पर मैं कहता हूँ कि यदि कोई पर-स्त्री को कुदृष्टि से भी देख लेगा तो वह मानसिक व्यभिचार के पाप का भागी होगा। अगर तुम्हारी दाहिनी आंख चंचल होकर किसी की ओर पाप-दृष्टि से देखने लगे तो उसे उसी वक्त फोड़ डालो। अगर तुम्हरा दाहिना हाथ कभी तुमसे अकार्य करावे तो तुम उसेभी उसी समय काट डालो। क्योंकि बनिस्बत इसके कि तुम्हारे सत्व की हानि हो, यह बहतर है कि तुम्हारे शरीर का एक अंग ही कम हो जाय। यह उतनी भारी हानि नहीं है।

भाइयो, 'जैसे के साथ तैसा', यह तो मामूली लोगों का न्याय है। पर मैं तो कहता हूँ कि दुष्ट के साथ भी दुष्टता न करो। बल्कि यदि कोई तुम्हारे दाहिने गाल पर चांटा लगावे तो तुम उसके सामने बायाँ गाल भी कर दो। और अगर कोई तुमसे लड़ने आवे और तुम्हारी कमीज़ मांगे तो तुम उसे अपना कोट भी दे दो।

मित्र से प्रेम और शत्रु से द्वेष करना तो लौकिक दृष्टि कहाती है। मेरी तो सलाह है कि तुम अपने शत्रु पर भी प्रेम करो। द्वेष तो किसी का भी न करो। जो तुम्हें शाप दे उसका भला चाहो। जो तुम्हें हैरान करे उसपर उपकार करो। यही प्रभु की प्राप्ति का मार्ग है। जिस प्रकार सूर्य सज्जन और दुर्जन को एकसा प्रकाश देता है, और मेह न्यायी-अन्यायी का विचार न करके सब पर एकसी वर्षा करता है, उसी प्रकार, हे भाइयो, सबसे एकसी सद्वृत्तिपूर्वक व्यवहार करो। जो तुम्हें चाहे उसीको यदि तुम भी चाहो तो इसमें तुम्हारी क्या विशेषता रही? यह तो स्वार्थी मनुष्य भी करते हैं। भलाई के बदले भलाई की, तो उसमें कौन बड़ी बात है? यह तो जंगली लोग भी जानते हैं। किसी की चीज़ को लौटाना नहीं कहा जाता। यह तो पापी भी करता है। सच्चा दान तो वह है जब हम किसी ऐसे व्यक्ति को एक चीज़ दें जो उसे लौटा न सकता हो। कृतघ्न पर भी दया करो। क्योंकि प्रभु दयामय है। भाइयो, तुम पूर्ण बनो। क्योंकि वह परमात्मा पूर्ण है। वह समस्त शुभगुणों का भण्डार है।

किसी के आन्तरिक उद्देशों के विषय में कल्पना न करो। सब के प्रति उदारबुद्धि ही रक्खो।

भाइयो, क्या कभी कोई अन्धा अन्धे का मार्ग-प्रदर्शक हो सकता है? शिष्य की शिष्यता करना वैसा ही है। जब तक शिष्य शिष्य है वह गुरु से बढ़कर नहीं हो सकता। जब वह पूर्ण होगा तभी गुरु की बराबरी कर सकेगा।

जबतक तुम्हारी आँख में शहतीर है तबतक दूसरे की आँख का तिल देखने की कोशिश न करो। पहले अपने ही दोष को दूर करो।

अच्छे वृक्ष का फल कभी ख़राब नहीं हो सकता और न कभी ख़राब वृक्ष पर अच्छा फल लग सकता है। वृक्ष की जाति तो फल से जानी जा सकती है। उसी प्रकार तुम्हारे कर्म और वाणी से तुम्हारे हृदय का परिचय होता है।

तुम मुझे अपना गुरु कहते हो, पर जबतक तुम मेरी शिक्षाओं के अनुसार अपना आचरण नहीं बना लेते तबतक तुम्हारा मुझे गुरु कहना मिथ्या है। जो मेरी शिक्षाओं पर अमल करेंगे उनके काम की नींव गहरी और पुख़्ता होगी। जो उनपर अमल नहीं करेंगे वे बिना पाये की इमारत खड़ी करने का प्रयास मात्र करते हैं। उनका सर्वथा नाश ही होगा।

भाइयो अपने सत्कर्मों को छिपाये रखना। दाहिने हाथ से दिये दान की ख़बर बायें हाथ को भी न होने देना। अपनी पूजा और प्रार्थना का आडम्बर कभी न करना। रास्ते पर और मन्दिर में अपनी भक्ति का कभी दिखाव न करो। अपने हृदय के एकान्त कोने में, किवाड़ बन्द करके, अपने प्रभु को याद करो। प्रार्थना के मानी निकम्मी डींग हांकना नहीं है। बहुत से शब्दों के उपयोग से ही प्रभु को कोई राज़ी नहीं कर सकता। तुम अपने प्रभु की यों प्रार्थना करो—हे दिव्य-धाम-वासी पिता, तेरा जय-जय-कार हो। तेरा धर्मराज्य सब जगह फैले, स्वर्ग और पृथ्वी पर भी तेरी आज्ञाओं का पालन हो। तू हमें हमारी रोज़ी हर रोज़ दे दिया कर। हमें विकारों में न ललचा। जिस प्रकार हम हमारे गुनहगारों को माफ़ करते हैं उसी प्रकार तू भी हमें क्षमा कर। क्योंकि

तेरा ही धर्मराज्य, प्रभुता और यश सर्वत्र फैला हुआ है।

तथास्तु।

भाइयो, तुम उपवास करो तब अपना मुख प्रसन्न रक्खो, जिससे कोई यह न जान जाय कि तुमने उपवास किया है।

भाइयो, तुम एक साथ शैतान और ईश्वर की सेवा नहीं कर सकते। इसलिए धन और कीर्ति की लालसा रखते हुए, अन्न और प्राण की चिंता करते हुए, तुम प्रभु के दर्शन नहीं पा सकते। शरीर की चिंता करके तुम अपने शरीर को एक इंच भर भी पुष्ट नहीं कर सकते। दिल में यह दृढ़ श्रद्धा रक्खो कि जो चराचर सृष्टि की रक्षा करता है, पशु, पक्षी और वृक्षों को जो पोषण देता है वही तुम्हारा भी पोषण करेगा।

हे श्रद्धाहीन लोगो, तुम श्रद्धा की महिमा नहीं जानते। इसलिए अन्न, पानी और वस्त्र की चिंता करते हो। शुद्ध बनो कि तुम्हें सब अपने आप मिल जायगा।

श्रद्धापूर्वक मांगने भर की देर है। ढूँढने की कसर है। प्रभु का दरवाज़ा खटखटाने भर की देर है कि तुम अन्दर पहुँचे। क्या तुममें कोई ऐसा है कि जो रोटी माँगने वाले अपने बेटे को पत्थर दे दे? फिर तुम जब अपने प्रभु से कल्याणकारी वस्तु मांगोगे तो क्या वह तुम्हें अनिष्टकारी वस्तु देगा?

परन्तु प्रभु के धाम का मार्ग तङ्ग है। नर्क के मार्ग चौड़े और सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। परन्तु ईश्वर के घर का रास्ता तङ्ग और मुश्किल है।"

वै० म०

भग्नावशेष

देशी राज्य प्रजा-परिषद्

देशी राज्य प्रजा-परिषद् का अधिवेशन ता० १७ तथा १८ दिसम्बर को बम्बई-नगर में बड़ी धूमधाम से सफलता-पूर्वक हो गया। सभापति का आसन दीवानबहादुर रामचन्द्रराव एलोरा-निवासी ने ग्रहण किया था। आप एक वयोवृद्ध, संगठनात्मक क़ानून के धुरंधर पंडित हैं। देशी राज्यों की समस्या को आप ख़ूब समझते हैं। आप बड़ी धारासभा के उप-सभापति तथा सेंडर्स कमिटी के सदस्य रह चुके हैं। मद्रास-कौंसिल में आपने जनता की बहुत-कुछ सेवायें की हैं। आपकी अध्यक्षता में सभा का कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न हुआ।

श्रीयुत गोविन्दलालजी पित्ती (हैदराबाद राज्य की प्रजा) स्वागत-कारिणी के सभापति थे।

देशी राज्यों की इस प्रकार की यह सभा अपने ढंग की सबसे पहली है। देहली, कानपुर वग़ैरा में परिषद् के और भी कई अधिवेशन हो चुके हैं। किन्तु वे सब कांग्रेस के साथ में हुए थे। इसलिए उनका विशेष महत्व नहीं था। इस बार यह परिषद् ख़ास तौर से देशी राज्यों की प्रजा का एक स्थायी संगठन बनाने के लिए की गई थी। इस कार्य में इसे सफलता काफ़ी हुई है। समस्त भारतवर्ष में ५६१ छोटे-बड़े राज्य हैं। इनमें से ११९ राज्य ऐसे हैं जिनको तोपों की सलामी का अधिकार है। शेष राज्य सलामी-रहित हैं। ऊपर लिखे ११९ राज्यों में से ६२ राज्यों की प्रजा के प्रतिनिधियों ने इस परिषद् में योग दिया था। प्रतिनिधियों की संख्या ५०० के क़रीब थी। पंजाब, राजपूताना, मध्यभारत, काठियावाड़, कच्छ, गुजरात, दक्षिणी मराठा राज्य, हैदराबाद, त्रावणकोर, कोचीन तथा मैसोर के लोगों ने परिषद् का संगठन बनाने तथा प्रस्तावों का मसौदा तैयार करने में पूर्ण रीति से भाग लिया था। प्रस्ताव उपस्थित करने तथा उनका समर्थन करने में देश के कई माने हुए नेताओं ने भाग

लिया था। इनमें से श्री लल्लूभाई सांवलदास, श्री न० चि० केलकर, सेठ जमनालालजी बजाज़, श्री बी० एफ़० भरूचा, श्री तेरसी आदि सज्जनों के नाम उल्लेखनीय हैं। दर्शकों में सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, सर फ़िरोज़ सेठना, मि० ब्राकवे, स्वतन्त्र मजूर संघ के मन्त्री के नाम लिये जा सकते हैं। बड़ौदा के युवराज श्रीमंत धैर्यशीलराव भी उपस्थित थे।

परिषद् में जो प्रस्ताव पास हुए वे बहुत ही समयोचित हैं तथा परिषद् के संचालकों की राजनीतिज्ञता के पूर्ण परिचायक हैं। सबसे पहले देशी राज्यों में उत्तरदायित्वपूर्ण शासन क़ायम करने की मांग उपस्थित की गई है तथा इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि प्रजा का यह जन्मसिद्ध अधिकार है कि वह अपने-अपने राज्यों में जिस प्रकार की शासन-व्यवस्था चाहे क़ायम कर सकती है। महाराजाओं से इस बात की प्रार्थना की गई है कि वे अपने-अपने राज्यों में प्रातिनिधिक शासन-प्रणाली क़ायम करें। लोगों को क़ानून बनाने, कर लगाने तथा शासन पर अपना अधिकार रखने का हक़ दिया जाय। लोक-संस्थाओं के सामने मंज़ूरी के लिए प्रतिवर्ष बजट पेश किये जायँ। राजाओं के निज के व्यय की मर्यादा बांध दी जाय। राज्य के कोष से मनमाना धन उड़ाने का उन्हें कोई अधिकार न होना चाहिए। न्याय-विभाग बिलकुल स्वतन्त्र होना चाहिए। उसपर राजा लोगों का कोई व्यक्तिगत दबाव न रहना चाहिए। बहुत से महाराज अपना अधिकांश समय अपने राज्य के बाहर यूरोप आदि देशों की सैर में व्यतीत करते हैं, जिसके कारण धन की हानि तथा राज्य-प्रबन्ध में शिथिलता आती है। परिषद् ने राजाओं की इस बढ़ती हुई प्रवृत्ति के प्रति भय तथा असंतोष प्रकट किया है।

एक प्रस्ताव में साधारण नागरिकता के अधिकार—जैसे प्रेस खोलने की आज़ादी, भाषण तथा सभा-समिति चलाने की आज़ादी, तन तथा धन की सुरक्षितता के सम्बन्ध में क़ानूनी तौर पर घोषणा कर देने की अपील राजाओं से की गई है। राजकुमार कालेजों में दी जाने वाली दूषित शिक्षा की निन्दा की गई है तथा राजकुमारों को राष्ट्रीय ढंग पर शिक्षा दिये जानेपर ज़ोर दिया गया है।

इस प्रकार से एक दूसरे प्रस्ताव में इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि ब्रिटिश भारत के लिए जो स्वराज्य की योजना तैयार की जाय उसमें देशी राज्यों की प्रजा के लिए यथोचित स्थान रहना चाहिए तथा सार्वजनिक हितों से सम्बन्ध रखने वाले मामलों में देशी राज्यों की प्रजा की आवाज़ रहनी चाहिए। कांग्रेस को देशी राज्यों के मामले में हस्तक्षेप करना चाहिए तथा वर्तमान तटस्थ नीति को छोड़ना चाहिए।

एक तीसरे प्रस्ताव में इस बात का विरोध किया गया है कि ब्रिटिश सरकार जो देशी राज्यों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करती है वह किसी निश्चित सिद्धांत पर क़ायम नहीं है। इस प्रकार का हस्तक्षेप साधारण तौर पर प्रजा के हित के लिए नहीं किया जाता। इसलिए इस नीति का स्पष्टीकरण हो जाना चाहिए तथा उसके लिए क़ानून बना कर प्रकाशित कर देने चाहिएँ।

देशी राज्यों तथा ब्रिटिश सरकार के बीच की सन्धियों, प्रतिज्ञापत्रों, सनदों आदि की जाँच करने तथा उन दोनों के बीच क्या सम्बन्ध है तथा क्या सम्बन्ध भविष्य में रहना चाहिए, इस बात की जाँच करने के लिए सरकार ने जो विशेषज्ञों की कमिटी नियत की है उसमें न तो राजाओं के ही कोई प्रतिनिधि रक्खे गये हैं और न प्रजा की कोई सम्मति या प्रतिनिधि ही लिये गये हैं। इसलिए प्रजा को इस कमिटी का निर्णय सर्वथा अमान्य होगा।

इसी प्रकार से एक और प्रस्ताव में रचनात्मक कार्यक्रम—जैसे खादी-प्रचार, शिक्षा, ग्राम-पंचायत, अछूतोद्धार तथा नशेबाज़ी आदि को रोकने में पूर्ण विश्वास प्रकट किया है तथा इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि परिषद् इस प्रकार के कार्यों को अपने हाथ में ले।

बेगार-प्रथा तथा ग़ुलामी की प्रथा को एकदम उठाने की प्रार्थना राजाओं से की गई है।

७५ सदस्यों की एक कार्य कारिणी समिति बनाई गई है, जो परिषद् के रचनात्मक कार्य को तथा प्रचारादि के कार्य को अपने हाथ में लेगी। परिषद् के लिए धन एकत्र करने तथा उसे उचित कार्यों में व्यय करने आदि की सारी ज़िम्मेदारी इसी समिति पर रहेगी। परिषद् का प्रधान कार्यालय फ़िलहाल बम्बई में रहेगा।
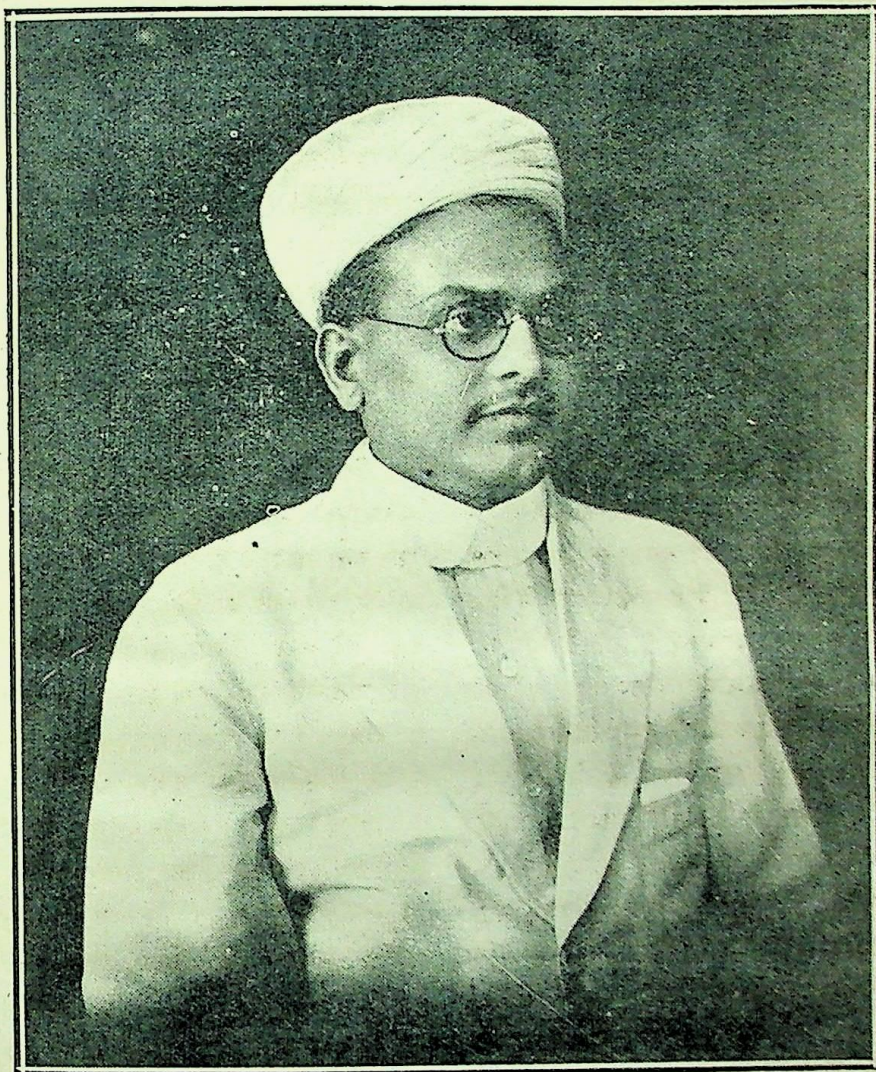
श्री गोविन्दलालजी पित्ती, बम्बई
देशी राज्य प्रजा-परिषद् के स्वागताध्यक्ष

डॉ० अन्सारी

श्री मुदालियर,
राष्ट्रीय-महासभा के स्वागताध्यक्ष
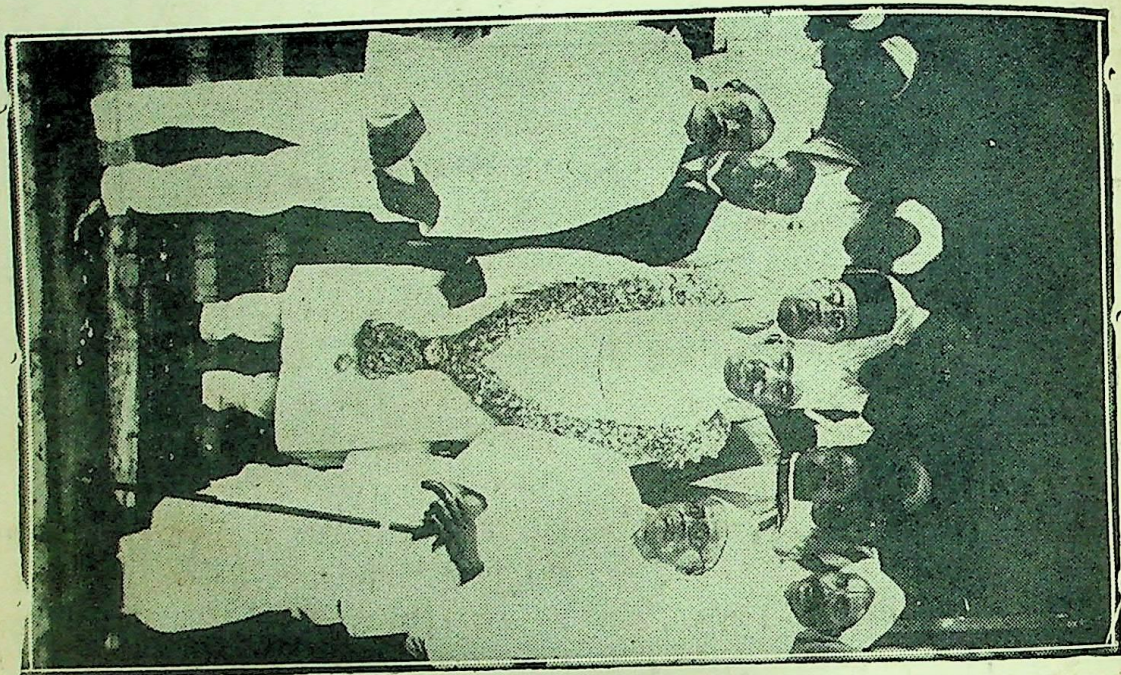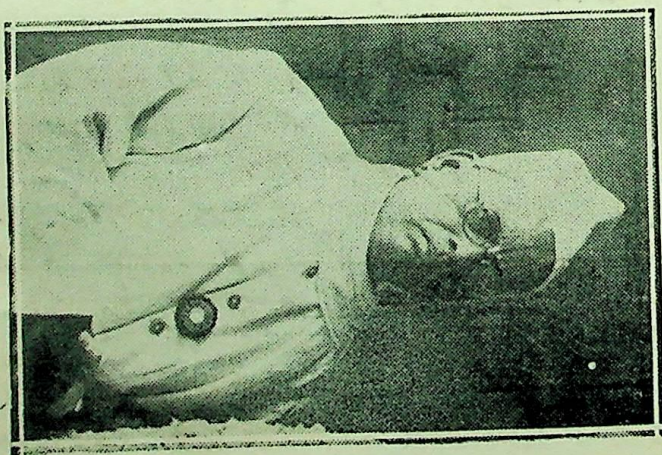
परिषद् का काम स्थायी रूप से चलाने के लिए अन्तिम जनता से धन की अपील की गई थी, जिसमें ७०००) अधिक चन्दा तो उसी रोज़ हो गया था। १००००) तक हो जाने की सम्भावना है।

इन सब बातों को देखने से यही आशा की जाती है परिषद् का कार्य भविष्य में बहुत सुचारु रूप से चलेगा। जी० आर० अभ्यंकर प्रो० ला कालेज, पूना, प्रधान चुने गये हैं। देशी राज्यों के क़ानून के आप बड़े ज्ञाता तथा इस कार्य से बड़ा अनुराग रखते हैं। कई निः- कार्यकर्त्ता भी परिषद् को मिल गये हैं। आगामी परि- के लिए अजमेर से निमंत्रण दिया गया है। यह सब शुभ ही प्रतीत होते हैं। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि देशी नरेशों को सुबुद्धि दे तथा वहाँ की प्रजा को अपनी सुधारने की क्षमता प्रदान करे।

माथुर

...यक्षों के भाषण

बंबई की देशी-राज्य-प्रजा-परिषद् के स्वागताध्यक्ष तथा पति दोनों के भाषण अपने-अपने ढंग के हुए हैं। स्वा- ध्यक्ष ने देशी राज्यों की आन्तरिक दुःस्थिति और अव्य- पर अच्छा प्रकाश डाला है और सभापति महोदय देशी राज्य के प्रश्न पर सांगोपांग विचार किया है। गोविन्दलाल जी पित्ती ने आरंभ में यह बताया कि संसार भारत में और देशी राज्यों में स्वाधीनता की भावना प्रकार फैलती जा रही है और देशी राज्य-वासियों से कि अपने पाँवों के बल खड़े रहो। तब हर हिन्दुस्थानी मदद के लिए दौड़ पड़ेगा। इसके बाद आपने देशी की स्थिति का परिचय इस तरह कराया—

"राजनैतिक दृष्टि से भारत के दो भाग हैं—ब्रिटिश भारत देशी राज्य। ब्रिटिश भारत का रक़बा १०, ९४ ३०० मील और देशी राज्यों का ७,११,०३२ वर्गमील है आबादी क्रमशः २४ करोड़ ७ लाख और ७ करोड़ है। देशी राज्यों की संख्या, १९२५ के सरकारी के अनुसार, ५६१ है। राजपूताना की कुछ रियासतें भारत के अत्यंत प्राचीन राजवंशों से संबंध रखती हैं। दूसरी रियासतें १७वीं सदी में मुग़ल साम्राज्य के छिन्न-भिन्न होने पर तथा १८ और १९वीं सदी में मराठा और सिक्ख राज्यों के पतन के बाद बनी हैं। पहले ये सब रियासतें या तो मुग़लों के अधीन थीं या मराठों के। १८ वीं और १९ वीं सदी में ईस्ट इंडिया कम्पनी से उनकी सुलह हुई। फिर १८५७ के ग़दर के बाद वे अंग्रेज़ी सल्तनत में दाख़िल हुईं। जो स्वाधीनता नरेशों को शुरू में थी वह धीरे-धीरे कम होती गई और अब तो उन सुलहनामों की वह वक़त ही जाती रही। हैदराबाद के निज़ाम साहब को लार्ड रीडिंग ने जो उत्तर दिया था उससे भली भांति ज़ाहिर होता है कि देशी राज्यों के पास ब्रिटिश सरकार से सन्धि-पत्रों के अनु- सार व्यवहार कराने की कोई शक्ति नहीं रह गई है। वह शक्ति उन्हें प्राप्त हो सकती है अपनी तथा ब्रिटिश प्रजा की सद्भावना से। यह सद्भावना उनमें उत्पन्न होगी देशी नरेशों के उनको मान-पूर्वक अपना साथी बनाने से।"

फिर आपने देशी राज्यों की आन्तरिक दुरवस्था और अव्यवस्था का सजीव परन्तु सन्तापकारक चित्र खींचा। नरेश अपनी रियासतों में किस तरह कुलकुलां हैं, किस प्रकार मनमानी कर सकते हैं, राज्य के हर महकमे में कैसी उनकी अबाध सत्ता है, उससे प्रजा पर कैसा ज़ुल्म होता है और राज्य को हानि पहुँचती है, इसका सविस्तर वर्णन आपने किया है, जिसका कि अनुभव कुछ उत्तम राज्यों को छोड़कर देशी राज्य-निवासी को आये दिन होता ही रहता है। आपने इस बात की शिकायत की है कि जब जनता के हित से संबंध होता है तब सरकार देशी-नरेशों की अन्तर्व्य- वस्था में हाथ नहीं डालती। इससे नरेशों की स्वच्छन्दता और भी बढ़ गई है। न्याय ठीक न होने, फैसलों में बहुत देरी करने तथा रिश्वत का ज़ोर होने की ओर भी आपने ध्यान दिलाया। आप कहते हैं कि इन बुराइयों की जड़ है मुख्यतः—अच्छे आदमियों का चुनाव न होना, कम तन- ख्वाह, लगानबंदी की अस्थिरता, सु-दक्ष निरीक्षण की कमी।

इसका उपाय बताते हुए आप सबसे पहले व्यक्तिगत शासन की जगह क़ानून के शासन की आवश्यकता बताते हैं। क़ानून-शासन के मानी हैं—एक तो किसी आदमी की हुकूमत नहीं, बल्कि नियम और सिद्धान्त की हुकूमत; दूसरे

बर्ताव में किसी के साथ रू-रिआयत, मुलाहिज़ा या भेद-भाव नहीं। राजा-रंक, धनी-निर्धन सब क़ानून के सामने बराबर हैं। फिर आपने बोलने और लिखने की आज़ादी की आवश्यकता का प्रतिपादन किया। कार्यकारी विभाग से न्याय-विभाग को पृथक् रखने पर ज़ोर दिया। न्यायाधीश को नरेश न हटा सकें बल्कि एक सभा रहे, वह जब हटाने का फ़ैसला दे तब हटाया जाय अथवा भारत-सरकार को यह अधिकार रहे। तमाम देशी रियासतों के लिए आपने एक बड़ी न्याय-सभा (सुप्रीम कोर्ट आव् अपील) बनाने की तजवीज़ पेश की। इससे रियासतों का ख़र्च भी कम होगा, क़ानूनी सिद्धान्तों में एकता स्थापित होगी, और न्याय मिलने में अधिक सुविधा और निश्चितता होगी।

तीसरा उपाय आपने यह पेश किया कि नरेश उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की घोषणा कर दें। नरेश यदि यह कहें कि लोग अभी योग्य नहीं हैं तो इसका उत्तर आपने दिया है कि आपने उन्हें मौक़ा नहीं दिया है। मैसोर आदि जगह जहाँ मौक़ा दिया गया है, ब्रिटिश भारत से लोग यदि शासन-व्यवस्था में आगे नहीं हैं तो बराबर अवश्य हैं। मताधिकार व्यापक होना चाहिए। राज्य की भाषा में राज्य का काम-काज होना चाहिए। देशी राज्यों में एक बात का बड़ा सुभीता है कि वहाँ राजा-प्रजा में, ब्रिटिश भारत की तरह, गहरी खाई नहीं है। नरेश अपने ख़र्च के लिए नियमित रक़म लें। तमाम देशी राज्यों की अन्तर्व्यवस्था की जाँच के लिए एक कमीशन बने और वह शासन-सुधार के लिए अपनी रिपोर्ट पेश करे। छोटी-छोटी रियासतें बड़ी रियासतों में शामिल हो जायँ। ज़रा-ज़रा सी रियासतें अलहदा-अलहदा होने से शासन-व्यवस्था का ख़र्च बहुत बढ़ जाता है, जो कि प्रजा के हित और उन्नति के काम में लगाया जा सकता है। इसके पश्चात् आपने भारत के लिए प्रान्त-स्वाधीनता-मूलक शासन-पद्धति का प्रतिपादन किया और उसके लक्षण बताये। आपने कहा कि अभी-अभी इस प्रणाली से असंगत भाव कुछ देशी-नरेशों ने प्रदर्शित किये हैं कि हम तो सीधे सम्राट् से अपना संबंध रखना चाहते हैं। आप कहते हैं कि भारत-सरकार से अलग होकर रहना न राज्य के लिए ही हितकर है, न सारे देश के लिए ही। फिर सन्धि-पत्रों पर पुनर्विचार करने का उल्लेख करके इन उत्साहपूर्ण शब्दों में अपने भाषण को समाप्त किया—

"हमारा भाग्य-निर्माण हमारे हाथों में है। यदि हम अपने तईं सच्चे होंगे, धीरज और लगन के साथ काम करेंगे तो कोई वजह नहीं कि हमारी विजय न हो। विघ्न हमारे रास्ते में आते रहें, विलम्ब और निराशा कभी-कभी हमारे उत्साह को ठण्डा करती रहे, पर श्रद्धा हमारे काम को पानी सींचेगी, सेवा उसे पाले-पोसेगी और वह बल और वेग के साथ आगे बढ़ता जायगा और शीघ्र ही विजय हमें अपना कहेगी।"

अध्यक्ष दीवानबहादुर एम० रामचन्द्रराव ने आरंभ में यह दिखाया कि ब्रिटिश भारत की तथा देशी राज्यों की प्रजा के राजनैतिक राष्ट्रीय और सामाजिक हित किस प्रकार एक हैं और कहा कि दोनों को एक दूसरे की स्वाधीनता के लिए परस्पर सहयोग करना चाहिए। दोनों के विचार, भावना, संस्कृति, जाति, एक हैं और सामाजिक और आर्थिक समस्यायें भी एक हैं। भारत सरकार की क्या रक्षण-नीति, क्या अर्थ-नीति, और क्या अफ़ीम-नीति इन बातों में देशी और ब्रिटिश प्रजा के हित एक हैं। राजस्व, राजकोष, पुलिस, न्याय, यहाँ तक कि डाक और तार-विभागों में ब्रिटिश और देशी प्रान्त एक दूसरे के आश्रित हैं। अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में भी यह भेद-भाव नहीं रक्खा गया है और सारा भारत एक ही माना गया है। ब्रिटिश उपनिवेशों में तथा विदेशों में जो कष्ट और असुविधायें भारतवासियों को हैं उनमें देशी और ब्रिटिश प्रजा का फ़र्क़ नहीं रक्खा गया है। इसलिए आपकी राय है, ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों में अन्तःस्वाधीनता-मूलक शासन (Federal Union) हो। अगस्त १९१७ की शासन-सुधार-घोषणा में भी ऐसी ही बात ध्वनित की गई है। "राज्यों का संगठन ऐसा हो कि अपने प्रान्तीय और स्थानिक मामलों में स्वाधीन रहें—सिर्फ़ लोगों की प्रकृति और आर्थिक हित के अनुसार कहीं-कहीं कुछ फ़र्क़ भले हो।" इसकी चर्चा और आन्दोलन भी काफ़ी हो रहा है। देशी राज्य वालों ने अपनी आवाज़ उठा ही दी है। ब्रिटिश भारत वाले भी इस में उनका साथ दे रहे हैं। ग्रेटब्रिटेन में भी देशी राज्यों के शिष्ट-मण्डल के बदौलत इसकी चर्चा हो रही है।

…शन की नियुक्ति ने भी इस प्रश्न की ओर लोगों का …न आकर्षित किया है। मतलब यह कि आम तौर पर …ों की यह राय है कि देशी राज्यों का संगठन अमेरिका के …क राज्यों की तरह होना चाहिए। खुद महाराजा अलवर …ी यह बात कही है कि मेरा लक्ष्य है 'भारत के संयुक्त …,' जिसमें कि हर राज्य अपनी परम्परा, परिस्थिति और …सुसंस्कृति के अनुसार अपनी अन्तर्व्यवस्था करें, पर व्या- …और सार्वदेशिक हितों में परस्पर संयुक्त रहें।

आजकल देशी नरेश इस बात का उद्योग कर रहे हैं …उनका सीधा संबंध सम्राट् से रहे, भारत-सरकार से …। अर्थात् उनकी सार्वभौम सत्ता अबाध रहे। और …सिडेनहैम, लार्ड मेस्टन, सर माइकेल ओडायर जैसे …की पीठ ठोंक रहे हैं। इसपर यह सन्देह हो रहा …कि भारतीय स्वराज्य के मार्ग में रोड़े अटकाने की … गोरे प्रभुओं की चाल है और देशी नरेश …के हथियार बनाये जा रहे हैं। दीवानबहादुर को इस …पर विश्वास नहीं होता कि देशी नरेश ऐसा देश-द्रोह …और भारतीय स्वराज्य के शत्रुओं से इस तरह मिल …गे। इसके प्रमाण में आपने इंग्लैण्ड जाने वाले देशी …ों के प्रतिनिधि कर्नल हक्सर और डा० रशब्रुक विलियम्स …वचन पेश किये हैं—"भारत की स्वराज्य-सम्बन्धी उचित …आकांक्षाओं के हम विरोधी नहीं हैं—हमारा कहना सिर्फ़ …ना ही है कि सन्धि-पत्रों के अनुसार देशी नरेशों का दर्जा …का त्यों क़ायम रहे।" इसी तरह नवानगर के जाम …ब ने भी कहा है—"ब्रिटिश भारतवासियों की उच्च …आकांक्षाओं से नरेशों की पूर्ण सहानुभूति है।"

पर इसमें एक कठिनाई यह है कि फिर तो देशी नरेशों …अपना सार्वभौम प्रभुत्व छोड़ देना पड़ेगा। इसका उत्तर …पतिजी यह देते हैं कि सन्धि-पत्रों का अर्थ उस समय …परिस्थिति के अनुसार नहीं लगेगा, जब कि वे लिखे गये …क्योंकि बाद को व्यवहार में उनपर ध्यान नहीं दिया …है और धीरे-धीरे कितने ही राज्यों की एकछत्र सत्ता …-भिन्न कर दी गई है। आज, व्यवहार में, वे बराबरी के …कहाँ रह गये हैं? अतएव आप देशी नरेशों से यह आशा …हैं कि वे सारे देश के हित को लक्ष्य करके अपनी नाम-मात्र की सत्ता का त्याग करने की बुद्धिमत्ता अवश्य दिखावेंगे।

छोटी-छोटी रियासतों के बारे में आपने कहा—"५६२ देशी रियासतों में ३७४ तो ऐसी हैं जिनका रक़बा १००० वर्गमील से अर्थात् ब्रिटिश भारत के एक ज़िले के $\frac{१}{४}$ से कम है। ५६२ में सिर्फ़ ३० ऐसी हैं जिनका रक़बा, आबादी आदि ब्रिटिश भारत के एक ज़िले के बराबर हैं। तीन रियासतें तो ऐसी हैं जिनकी आबादी सिर्फ़ १०० है और ५ ऐसी हैं जिनकी मालगुज़ारी महज़ १००) है। आप कहते हैं कि अन्तःस्वाधीनता-मूलक शासन में ये रियासतें हैदराबाद, बड़ौदा, मैसोर के साथ शामिल नहीं की जा सकतीं।

फिर आपने आन्तरिक शासन के बारे में जाम साहब के आश्वासन का एक अवतरण पेश किया—"यदि मेरी प्रजा ब्रिटिश भारत की लाइन पर प्रगति चाहती हो तो मैं उन्हें उनकी योग्यता के अनुसार अपने राज्य-कार्य में हाथ बँटाने देने में पीछे न रहूँगा।" और यह बताते हुए कि यहां पर 'योग्यता' शब्द संदिग्ध है; यह आशा ज़ाहिर की है कि देशी नरेश अंग्रेज सरकार की तरह ऐसे वचन नहीं दे रहे हैं कि जिनपर वे कभी अमल करना नहीं चाहते।

राष्ट्रीय सरकार के साथ नरेशों के सम्बन्ध पर दीवान-बहादुर श्री रामचन्द्रराव ने कहा कि मुझे विश्वास है कि देशी नरेश ब्रिटिश पार्लमेन्ट की अपेक्षा एक ऐसी पार्लमेन्ट से अपना सम्बन्ध रखना अधिक पसन्द करेंगे कि जिसमें उनके प्रतिनिधि होंगे और जो जनता के प्रति ज़िम्मेदार होगी। यद्यपि हमारे कुछ दुश्मन यह आशा करते हैं कि हमारी राजनैतिक प्रगति में विघ्न उपस्थित करने के लिए कुछ नरेशों का उपयोग किया जा सकता है, परन्तु मुझे विश्वास है कि उन लोगों को बड़ी निराशा होगी। समय पलट गया है और उसने अनुदार से अनुदार विचार रखने वाले राजा के ख़यालात को भी बदल दिया है।

परन्तु जब तक शासन-कार्य में प्रजा को अधिक से अधिक मौक़ा नहीं दिया जायगा शासन सुधरना कठिन है। इसका मूल तत्व है धारा-सभा का प्रजा के प्रति ज़िम्मेदार होना। जब तक यह न होगा, प्रगति कठिन है। एकाध राजा अपने व्यक्तिगत गुणों के बलपर किसी राज्य में बहुत से

सुधार कर सकता है, परन्तु वे सुधार स्थायी नहीं होते। अकबर में भी यह शक्ति नहीं थी कि वह अपने पीछे किसी अकबर को ही छोड़ जाता। नरेशों ने राष्ट्र-संघ के सदस्य की हैसियत से अथवा साम्राज्य-परिषद् के सभ्य की हैसियत से औपनिवेशिक स्वराज्य और जनता के हकों पर भाषण देते हुए अपने उच्च विचार प्रकट किये हैं। मुझे आशा है कि वे अपने राज्यों में उनपर अवश्य अमल करेंगे। वे भारतीय स्वराज्य के आन्दोलन में जनता का साथ देने से इन्कार नहीं कर सकते।

देशी राज्यों की भीतरी व्यवस्था के सम्बन्ध में प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ श्री सर टी० माधवराव ने एक योजना बनाई थी, जो हाल ही में प्रकाशित हुई है। उसकी ओर ध्यान आकर्षित करते हुए श्री रामचंद्रराव ने आगे कहा कि देशी राज्यों की प्रजा में जो दिन-ब-दिन असन्तोष बढ़ रहा है इसका कारण यही है कि देशी राज्यों में प्रजा को प्राथमिक अधिकारों से भी कई बार वंचित रक्खा जाता है। लेखन-स्वातंत्र्य और भाषण-स्वातंत्र्य प्रजा का सबसे पहला अधिकार है। इन अधिकारों की प्राप्ति पर ज़ोर देते हुए श्री रामचंद्रराव ने कहा कि यह आन्दोलन अब ज़ोर पकड़ता जा रहा है और देशी नरेश उसको उपेक्षा की दृष्टि से देखेंगे तो इससे राजा और समस्त भारत की जनता का अकल्याण होगा। दीवानबहादुर ने इस बात पर असन्तोष प्रकट किया कि इस समय देशी राज्यों में जो शासन-विषयक दुरवस्था है उसकी ओर ब्रिटिश सरकार समुचित ध्यान नहीं दे रही है। और असन्तोष इस बात पर भी ज़ाहिर किया कि आने वाली 'जांच-समिति' भी देशी राज्यों की प्रजा के दुखों की नहीं, केवल नरेशों और साम्राज्य-सरकार के पारस्परिक सम्बन्ध की ही जांच करेगी। उन्होंने परिषद् से अनुरोध किया कि वह प्रजा के दुखों की जांच की, तथा वह किस प्रकार हो यह कोशिश करे। अंत में आपने इंग्लैंड में भारतीय स्वाधीनता के विपक्ष में जो भिन्न-भिन्न दल हैं उनकी टीका करते हुए तथा उनके असली स्वरूप को प्रकट करते हुए परिषद् से अनुरोध किया कि वह अपने आपको उस जागृति और प्रगति की अनुगामी तथा अनुकूल बनावे कि जो ब्रिटिश भारत में दृष्टिगोचर हो रही है।

भरतपुर भँवर में

पाठकों ने अख़बारों में पढ़ा ही होगा कि भरतपुर-नरेश के सामने वाइसराय ने दो प्रस्ताव पेश किये थे—या तो (१) जाँच-कमीशन को स्वीकार करो, या (२) गद्दी छोड़ दो। इसके मुख्य कारण ये बताये जाते हैं (१) रियासत पर कोई एक करोड़ का कर्ज़ हो जाना, (२) महाराजा सा० का बुरे लोगों के प्रभाव में रहना, (३) महाराजा के मनमाने ख़र्च और अंधाधुंधी से शासन में अव्यवस्था और प्रजा में असन्तोष। कुछ समय पहले से सरकार और महाराजा के बीच तनातनी चल रही थी और श्री कौल को दीवान बना लेने पर समझौता हो गया था; पर महाराज की श्री कौल से न पटी और उन्हें इस्तीफ़ा देकर चला जाना पड़ा। एक ख़याल के लोग मानते हैं कि महाराजा भरतपुर टेक वाले आदमी हैं, सरकार से दबते नहीं हैं—इसलिए सरकार उन्हें निगल जाना चाहती है। दूसरे ख़याल के लोग कहते हैं,—उनकी सोहबत छोटे और नादान लोगों की है और उनके चक्कर में वे अपना बिगाड़ कर रहे हैं। इधर प्रजा की भलाई भी उनके हाथों से नहीं हो रही है। हमें इन सबमें थोड़ी-थोड़ी सचाई मालूम होती है। यह सच है कि यह मानने के लिए हमारा दिल रुजू नहीं होता कि ब्रिटिश सरकार केवल रियासत के या प्रजा के भले के लिए यहसब चाह रही हो; पर साथ ही हम यह कहने के लिए भी तैयार नहीं हैं कि केवल महाराजा के दबंग होने के कारण उनपर यह आपत्ति आ रही है। मैसोर या ग्वालियर पर अब तक किसी ने यह संकट क्यों नहीं डाला? क्यों नाभा, इन्दौर, हैदराबाद या भरतपुर ही प्रहार के योग्य समझे गये? मानना पड़ता है कि राज्य की अन्दरूनी ख़राबी इसकी जड़ में है। यदि राजा का चलन अच्छा हो, इन्तज़ाम अच्छा हो, रिआया अमन-चैन की बंसी बजाती हो, तो फिर किस की जुर्रत हो सकती है जो उंगली उठा सके? एक ओर हम अपने घर में गंदगी भी बनाये रक्खें और दूसरी ओर हेकड़ी भी भरें तो सर्व-सत्ता-धारी को हमें कुचलते कितना विलम्ब लग सकता है? जो हो।

सरकार के पूर्वोक्त प्रस्तावों के जवाब में भरतपुर-नरेश ने अपनी तरफ़ से यह प्रस्ताव पेश किया था कि अंग्रेज़

एडमिनिस्ट्रेटर आ जाये और मेरे नाम पर मेरी तरफ़ से राज करे। वाइसराय ने पहले से इसे मंज़ूर नहीं किया था। तब, गद्दी छोड़ने के बजाय, भरतपुर-नरेश ने कमीशन स्वीकार करना ज़्यादा पसन्द किया। मगर इसमें सरकार ने शर्त लगाई कि जब तक कमीशन जाँच करे तब तक आप अधिकार-हीन रहें। देशी नरेशों के सामने यह एक नई समस्या खड़ी हुई। ऐसा करने से तो वे सब तरह सब अर्थ में ब्रिटिश सरकार के अधीन हो गये। कहाँ तो सन्धि-पत्रों के बल पर उनका यह दावा कि हम बराबरी के मित्र हैं और कहाँ यह हालत कि एक तो कमीशन बैठे और फिर अधिकार भी न रहें! कहते हैं, देशी नरेशों ने इस बात का ज़ोरों से विरोध किया। वाइसराय ने शायद देखा कि साइमन-कमीशन सम्बन्धी इस तूफ़ान के मौक़े पर देशी नरेशों से झगड़ा मोल लेना अक्लमन्दी नहीं है, अतएव अंग्रेज़ एडमिनिस्ट्रेटर वाला प्रस्ताव, अब ख़बर आई है कि, उन्होंने मंज़ूर कर लिया है। हमारा अनुमान जहाँ तक दौड़ता है, इस प्रस्ताव का फल, जहाँ तक भरतपुर-नरेश से सम्बन्ध है, अच्छा न होगा। बृजेन्द्र ने यदि अपना मौजूदा स्वभाव न बदला, अवान्छनीय लोगों से अपना सम्बन्ध न छोड़ा, तो आगे-पीछे अंग्रेज़ एडमिनिस्ट्रेटर से उनकी फिर खटकेगी और तब शायद सरकार को उन्हें निगल जाने का अच्छा अवसर और पूरी सुविधा मिल जायगी। हाँ, शासन-व्यवस्था से जहाँ तक सम्बन्ध है एक नियम और व्यवस्था ज़रूर चल पड़ेगी और शायद रिआया को भी सुख पहुँचे; पर यह तब, जब एडमिनिस्ट्रेटर भला आदमी होगा। जो कुछ हो; हमें तो इस घटना पर दुःख ही हो रहा है। हमारे एक-एक देशी स्तम्भ टूट रहे हैं और वे भी प्रधानतः उनकी ग़लतियों से, और बे-बसी से! यह दृश्य बड़ी मर्मव्यथा पहुँचाने वाला है। देशी नरेशो, आप कब चेतेंगे?

भरतपुर-नरेश के सामने मार्ग स्पष्ट है। दबंगपन अच्छी चीज़ है; पर अविवेक की पुट उसपर चढ़ जाने से वह ज़हालत हो जाता है। छोटे लोगों की सोहबत उन्हें छोड़ देनी चाहिए। राजगद्दी और प्रजाहित के आनन्द से बढ़कर छोटे लोगों की संगत में, ईश्वर जाने, किसीको कैसे आनन्द और सुख होता होगा? उन्हें किसी ऐसे सज्जन को अपना पथदर्शक बनाना चाहिए जो बुद्धिवान, दूरदर्शी होने के साथ ही सदाचारी और सत्पुरुष हो। वह दबंग भी इतना हो कि मौक़ा पड़ने पर महाराज से ज़ोर दे कर कह सके—नहीं, ऐसा करोगे तो पछताओगे। और उसका प्रभाव इतना हो कि ऐसा कहने पर महाराज सहसा उस काम को न कर सकें। यह बात है मुश्किल; पर इसके सिवाय दूसरा उपाय नहीं है। प्रजाहित की भावना को बढ़ा कर एक ओर वे जब तक प्रजा का हृदय न जीतेंगे और दूसरी ओर विवेक तथा सौजन्य के द्वारा एडमिनिस्ट्रेटर को अपना न बना लेंगे तब तक हमें तो यह भय है कि उनकी नौका भँवर में है। ईश्वर उन्हें बचावे।

मद्रास में देशी रा० प्र० परिषद् की बैठक

महासभा के अवसर पर मद्रास में एक और देशी राज्य-प्रजा-परिषद् का अधिवेशन हुआ, जैसा कि पिछले कुछ सालों से होता आया है। इसके स्वागताध्यक्ष थे श्री सत्यमूर्ति और अध्यक्ष थे श्री श्रीनिवास आयंगर। अब तक उन दोनों के भाषणों का सार-मात्र ही हमें मिला है। उससे मालूम होता है कि श्री सत्यमूर्त्ति ने देशी राज्यों के उत्तराधिकार के संबंध में आलोचना करते हुए कहा कि यदि पदूकोटा (मद्रास) राज्य का उत्तराधिकारी वर्तमान राजा की आस्ट्रेलियन पत्नी से उत्पन्न राजकुमार बनाया जायगा तो इससे बड़ा हानिकर उदाहरण पेश होगा और आगे चल कर राज्यों के अधिकारी न हिन्दू ही रह जायँगे और न मुसलमान ही। देशी प्रजा की अल्पतम मांगों का ज़िक्र करते हुए आपने कहा कि वह यह चाहती है कि (१) निश्चित रूप से सदा के लिए तय हो जाय कि राजा की निजी सम्पत्ति क्या है और राज्य की सार्वजनिक संपत्ति क्या है? (२) इस बात का निश्चित स्थायी विश्वास करा दिया जाय कि क़ानूनों की सदा माक़ूल पाबंदी की जायगी, और वे उचित व्यवस्थापक सूत्र द्वारा ही बदले जा सकेंगे, अन्यथा नहीं। (३) न्याय-विभाग की स्वतंत्रता का पूरा-पूरा प्रबंध हो और दीवानी तथा फ़ौजदारी मामलों का न्याय उचित रूप से संगठित की गई अदालतों द्वारा हो। (४) कर निश्चित करने और उसके वसूल करने के लिए एक निश्चित नियम बना दिया जाय, जिसके प्रतिकूल कार्यवाही न की जा सके। (५)

राजागण शासन के कार्य में सीधे भाग न लें। वह काम ऐसे मन्त्रियों को सौंपा जाय जो व्यवस्था-सभा के निर्वाचित सदस्य हों। (६) वैयक्तिक स्वतंत्रता और बोलने की आज़ादी हो। आगे चल कर आपने कहा कि देशी राज्यों के अपने निजी हित के लिए यह उचित है छोटी रियासतें अपने निकटवर्ती प्रान्त में मिल जायँ और बड़ी रियासतें संयुक्त-स्वाधीन (फेडरल) भारत में शामिल हो जायँ।

सभापति श्री श्रीनिवास आयंगर ने अपने भाषण में देशी राज्यों की प्रजा और राजाओं में अधिक अच्छे व्यवहार की प्रार्थना की और ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्यों की जनता में परस्पर मेल-जोल का अनुरोध किया। आपने प्रजा को इसलिए भी उत्साहित किया कि वह उत्तरादायित्व-पूर्ण शासन-प्रणाली स्थापित करने के लिए आन्दोलन करे।

परिषद् में बटलर-कमिटी के विरोध, भावी विधान में देशी राज्यों का स्थान, स्वराज्य-विधान के लिए एक कमिटी क़ायम करने, नरेशों के राज्य से प्रायः ग़ायब रहने का विरोध, भारत का भावी-शासन विधान, कैनाड़ा के प्रान्तीय स्वाधीनता-मूलक शासन-विधान (Federal Government) के समान होने, आदि पर प्रस्ताव हुए।

'राजस्थान प्रजा-सम्मेलन'

राजस्थान के एक प्रभावशाली पुरुष ने नीचे लिखी सूचना हमारे पास भेजने की कृपा की है—

"पौष मास की 'त्यागभूमि' खण्ड १, अंक ३, के पृ० २४७ में "देशी राज्य और कमीशन" शीर्षक लेख में किसी महाशय के भेजे हुए पत्र पर सम्पादकीय टिप्पणी है। पत्र-प्रेषक महाशय के लेख को देखने से वह देशी राज्य और देशी राज्यों की प्रजा के सच्चे हितैषी प्रतीत होते हैं। वर्तमान विकृत स्थिति के विषय में किसी एक पक्ष के प्रति किन्हीं कारणों से कुछ बढ़ावे के विचार उनके हों; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जो देशी राजाओं का विध्वंस करके बोलशेविक मत की सत्ता स्थापित करना चाहते हैं उनमें से वह नहीं हैं और उनमें से भी नहीं हैं कि जो स्वार्थवश, या स्वयं वैसी प्रकृति होने के कारण, राजाओं की अनियमित स्वतंत्रता को स्थिर रख कर प्रजा पर राजाओं को मनमानी करते रहने देने के पक्षपाती हों। दोनों प्रकार के पुरुषों में से यह महाशय नहीं हैं। अपनी शक्ति के अनुसार निष्पक्ष होकर सचाई के साथ कार्य करने वाले प्रतीत होते हैं।

"उन महाशय का लक्ष्य उस लेख में राजपूताना और मध्य भारत की ओर ही है। इससे अनुमान होता है कि वह राजपूताना या मध्यभारत दोनों में से किसी एक प्रांत के रहने वाले होंगे, और मैं स्वयं भी इन दोनों में से एक प्रान्त का रहने वाला हूं।

"मेरी यह सम्मति है कि देशी राजा और प्रजा दोनों का हित चाहने वाले चुने हुए २१ पुरुषों की एक कमिटी इस गम्भीर विषय पर विचार करने के लिए राजपूताना या मध्य-भारत के किसी केन्द्र-स्थान में शीघ्र ही एकत्र हो। इसमें केवल ऐसे ही विचार के लोग रहें जो देशी राजाओं को मिटाना नहीं, परन्तु सुधारना चाहते हों और प्रजा और राजा में वैमनस्य पैदा करके दोनों को एक-दूसरे से लड़ा मारना न चाहते हों। वे प्रजा का हित आवश्य चाहते हों, पर राजा का अहित चाहने वाले भी न हों।

"पहले एक बार इस सम्मेलन में राजपूताना और मध्य-भारत के विचारशील पुरुष ही वास्तविक स्थिति पर विचार करने और कार्यशैली निर्धारित करने के लिए एकत्र हों।

"जिन महाशय ने यह पत्र लिखा है उनका नाम पता नहीं दिया गया है, इसलिए मैं उनके साथ पत्र-व्यवहार नहीं कर सकता। ऐसी दशा में यह उचित समझता हूँ, कि इस विषय में 'त्यागभूमि' के सम्पादक महाशय द्वारा ही पत्र-व्यवहार हो।"

ह० उ०

अफ़ीम की खेती और देशी राज्य

हम अफ़ीम की खेती को समाज के लिए महान् हानि-कर समझते हैं। इसलिए यह जितनी जल्दी उठ जाय भला है। परन्तु भारत-सरकार और देशी राज्य इस विषय में बड़े 'धीरज' से काम ले रहे हैं। बल्कि देशी राज्य इसमें भारत-सरकार से भी पीछे हैं। सहयोगी गुजराती 'देशी राज्य' इस विषय में यों लिखता है:—पिछले कई सालों से संसार में अफ़ीम की खपत कम करने के प्रयत्न हो रहे हैं। वर्सेलीज़ की संधि-परिषद् में इसपर चर्चा हुई थी और उसके फल-स्वरूप हेग में अफ़ीम-सम्मेलन की योजना की गई। इस सम्मेलन में निर्णय

हुआ कि दवा-दारू के अलावा अफ़ीम का व्यवहार कम किया गया। १९२५ के अन्तर्राष्ट्रीय सुलहनामे के अनुसार भारत-सरकार भी इस निर्णय से बंधी हुई है। फिर गत वर्ष राष्ट्र-संघ की कौंसिल में भी इस विषय पर गम्भीर वाद-विवाद हुआ था। इसमें शक नहीं कि भारत-सरकार ने अफ़ीम का व्यवहार कम करने के लिए कुछ प्रतिबंध लगाये भी हैं, पर देशी राज्यों में तो इस संबंध में कोई भी व्यावहारिक पग अभी तक नहीं बढ़ाया गया। गत मई मास में शिमला में इसके लिए उनका एक सम्मेलन हुआ था, और देशी राज्यों के ३३ प्रतिनिधि उसमें शरीक भी हुए थे। 'मनुष्य जाति की भलाई के लिए' इस विषय पर सहयोग-भाव से विचार करने के लिए वाइसराय लार्ड इरविन ने देशी राज्यों के प्रतिनिधियों से प्रार्थना की थी। इस सवाल का आर्थिक पहलू भी है। इस संबंध में महाराजा पटियाला ने बताया था कि "अफ़ीम की आय उठाने में हिन्दुस्थान ने अबतक जो घाटा सहा है उससे संसार को कोई भी लाभ नहीं हुआ।" संभव है कि यह सच हो, परन्तु प्रयोगात्मक होने पर भी सामाजिक उपयोगिता वाले विषयों में देशी नरेशों को अवश्य सहयोग देना चाहिए। राजपूताना, इन्दौर, ग्वालियर, भोपाल, बड़ौदा, मेवाड़ आदि कई राज्यों में अफ़ीम बोई जाती है। उन राज्यों के लिए वाइसराय ने कहा कि वे अफ़ीम की बुवाई कम करके उसकी जगह गेंहूँ और ईख जैसी चीज़ें पैदा करें तो अच्छा होगा। और इसके लिए सर बेसिल ब्लैकेट ने यह स्वार्थपूर्ण योजना प्रस्तुत की थी कि देशी राज्यों में अफ़ीम की बुवाई कम करदी जाय और भारत-सरकार के क्षेत्र गाज़ीपुर से ही वे भी अपने लिए अफ़ीम ख़रीद लिया करें, जैसे कि भारत के अन्य प्रान्त ख़रीदते हैं। सिद्धान्ततः इसमें शक ही है कि देशी राज्य इस तरह की व्यापारिक पराधीनता स्वीकार कर लेंगे। इससे सरल उपाय तो यह है कि जिन-जिन देशी राज्यों में अफ़ीम बोई जाती है वे सब मिल कर उसे घटाने का एक कार्यक्रम बनायें और ज़रूरत पड़ने पर उसकी निर्यात के अंक भारत-सरकार के सामने पेश करें। जेनेवा-कन्वेंशन के निश्चयानुसार निश्चित सीमा तक अफ़ीम बोने और जहाँ तक हो सके उसकी खेती पर अंकुश रखने के लिए भारत-सरकार शीघ्र ही एक कमिटी नियत करने वाली है। वह कमिटी अगर उपर्युक्त दृष्टि से जाँच करेगी और देशी राज्यों की नैतिक दृष्टि पर इस संबंध में असर डालेगी तो उसे अपने काम में बहुत सफलता मिलेगी। नहीं तो अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से ब्रिटिश सरकार ने इस संबंध में जो ज़िम्मेदारी ली है उस प्रधान हेतु को तो देशी राज्यों को भी अवश्य ध्यान में रखना ही चाहिए।

राजा का धर्म

बीसवीं सदी के प्रकाश में हमारे मस्तिष्क में विचार तो ऊँचे से ऊँचे आने लग गये हैं, परन्तु इस समय सबसे भारी ज़रूरत है आचार को उन विचारों के अनुसार गढ़ने की। बीकानेर में गंगनहर के उद्घाटन के समय बीकानेर-नरेश सर गंगासिंहजी ने राजा का धर्म यों बताया है—"जो प्रजा का रंजन करे और उसे सन्तुष्ट रक्खे वह राजा है। यही राजा शब्द का अर्थ है। महाभारत में राजा का जो धर्म बताया गया है उसमें उसका सबसे महत्वपूर्ण धर्म प्रजा की रक्षा करना ही है। धर्मशास्त्रों में राज्य के जो छः दुर्ग बताये हैं उनमें भी "प्रजा से प्रेम रखने और सदैव उसकी सेवा करने" को ही विशेष अभेद्य माना गया है। वही राजा धर्म-निष्ठ है, जो अपनी प्रजा की भलाई के लिए अपनी प्यारी से प्यारी चीज़ को भी छोड़ देने के लिए तैयार रहे। ऐसा ही आदर्श पश्चिम में भी है, कि "राज्य के लिए राजा है, राजा के लिए राज्य नहीं।" अपने पूर्वजों से चली आई प्रथा और अपनी शिक्षा से मैंने जो कुछ सीखा है वह यही कि मेरा जीवन मेरी प्रजा के लिए है और प्रजा की आशा-अभिलाषायें ही मेरी आशा-अभिलाषायें हैं। और मेरी प्रजा की समृद्धि ही मेरे परिश्रम का बड़े से बड़ा बदला है।" हम यह देखने के लिए उत्सुक हैं कि हमारे इन देशी नरेशों की ये सुन्दर वक्तृतायें कार्यों में कहाँ तक परिणत होती हैं। उनकी संस्कृति, विद्या, सन्मान और प्रजाहित-परायणता यही सबसे बड़ी कुंजी है।

वैं० म०

जनता का स्वराज्य

अमरसर-खादी-प्रदर्शिनी

किसी वस्तु का प्रचार करने के लिए प्रदर्शिनी एक उत्कृष्ट साधन है। प्रदर्शिनी से उस वस्तु का इतिहास, उसका विकास, उसकी वर्तमान स्थिति, उसकी विविधता का तुलनात्मक ज्ञान होता है और आगे उसकी उन्नति और प्रचार के उपाय भी सूझने लगते हैं। जीवन में उस वस्तु की कितनी आवश्यकता है, वह कैसे और कहाँ बनती है, यह भी प्रदर्शिनी से मालूम होता है प्रदर्शिनी के दो भाग हुआ करते हैं—एक वह जिसमें चीज़ों के नमूने संग्रह किये जाते हैं, दूसरा वह जिसमें चीज़ें बनती हुई दिखाई जाती हैं। प्राचीन प्रथा हमारे यहाँ मेलों और हाटों की है, उसीका अधिक उन्नत, सुव्यस्थित और इसलिए प्रभावकारी रूप प्रदर्शिनी है।

इन दिनों देश में प्रदर्शिनियों की धूम है। वर्ष में १०, ५ प्रदर्शिनियाँ देश में कहीं न कहीं हो ही जाती हैं। पर उनमें अधिकांश का उद्देश मुख्यतः 'बिक्री' होता है। ऐसी चीज़ों की प्रदर्शिनी, जिनके पीछे जीवन-मरण के प्रश्न का आन्दोलन होरहा हो, कम हो रही हैं और जो हो रही हैं वे खादी-प्रदर्शिनियाँ हैं। खादी-आन्दोलन भारत की भूख का आन्दोलन है। केवल स्वराज्य की नहीं बल्कि भारत के जीवन की शक्ति उसके अन्दर छिपी हुई है। किसी भी एक देहात में जाकर जहाँ चर्खे चल रहे हैं और खादी बन रही है, इस सत्य का अनुभव आप कर सकते हैं। खादी-प्रदर्शिनियाँ इसी खादी-आन्दोलन का अंग हैं। राजस्थान में खादी के लिए बड़ा क्षेत्र है। राजस्थान के खादी-एजेंट और चर्खा-संघ के स्थानापन्न अध्यक्ष श्री जमनालालजी ने पिछले मास यहाँ खादी-यात्रा की थी। उसके फलस्वरूप यह तय पाया है कि जयपुर के केन्द्रों में भी बिजोलिया की तरह वस्त्र-स्वावलंबन की पद्धति पर काम शुरू किया जाय। अर्थात् ग्रामीण-जनता में यह प्रचार किया जाय कि वे ख़ुद घर में कपास पींज लें और कात लें तथा गाँव के जुलाहों से कपड़ा बनवा कर पहना करें। जिन क्रियाओं का ज्ञान उन्हें न हो वे उन्हें
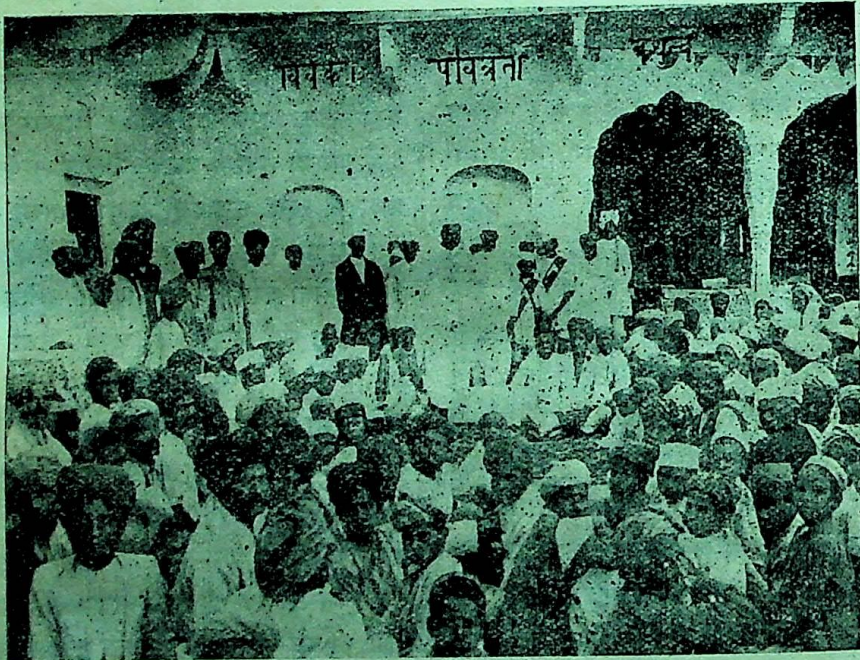
खादी प्रदर्शिनी का उद्घाटन, श्रीजमनालालजी भाषण दे रहे हैं
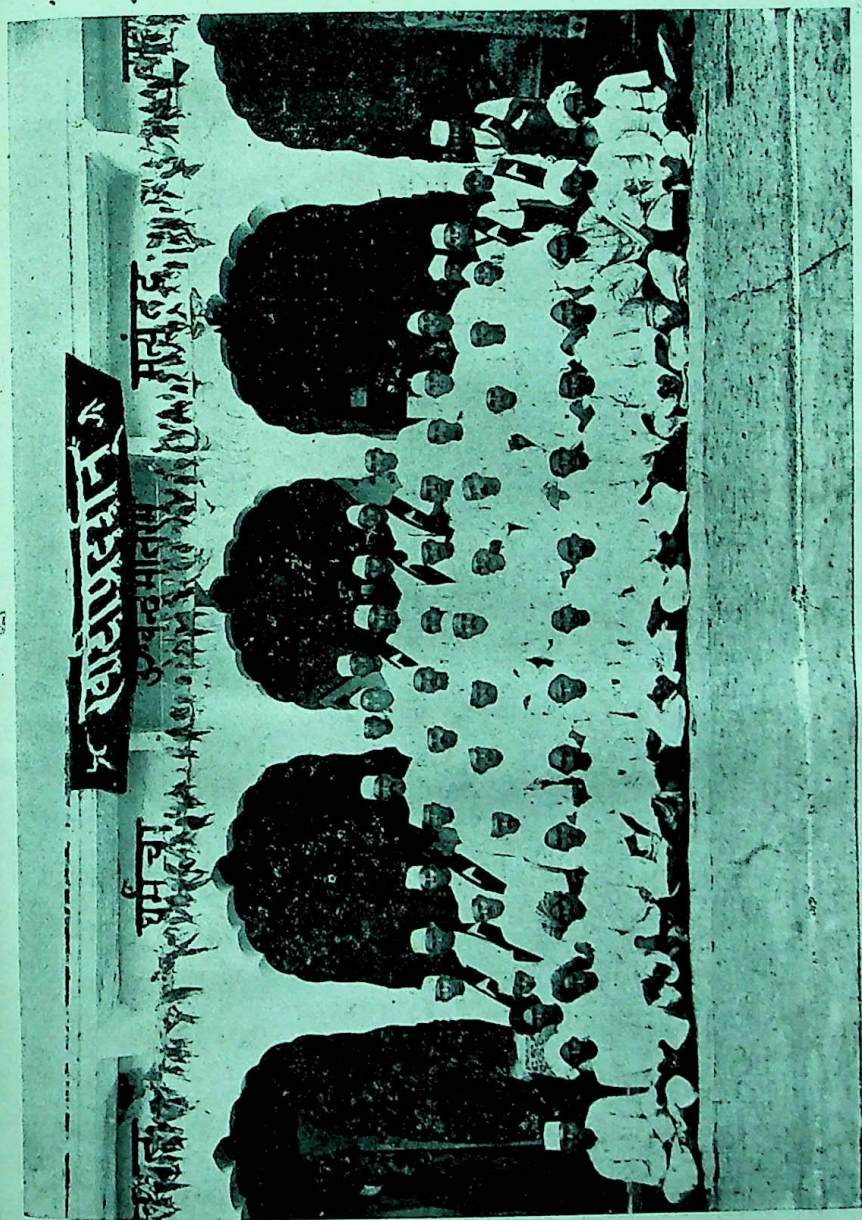
खादी प्रदर्शिनी अमरसर (जयपुर-राज्य)
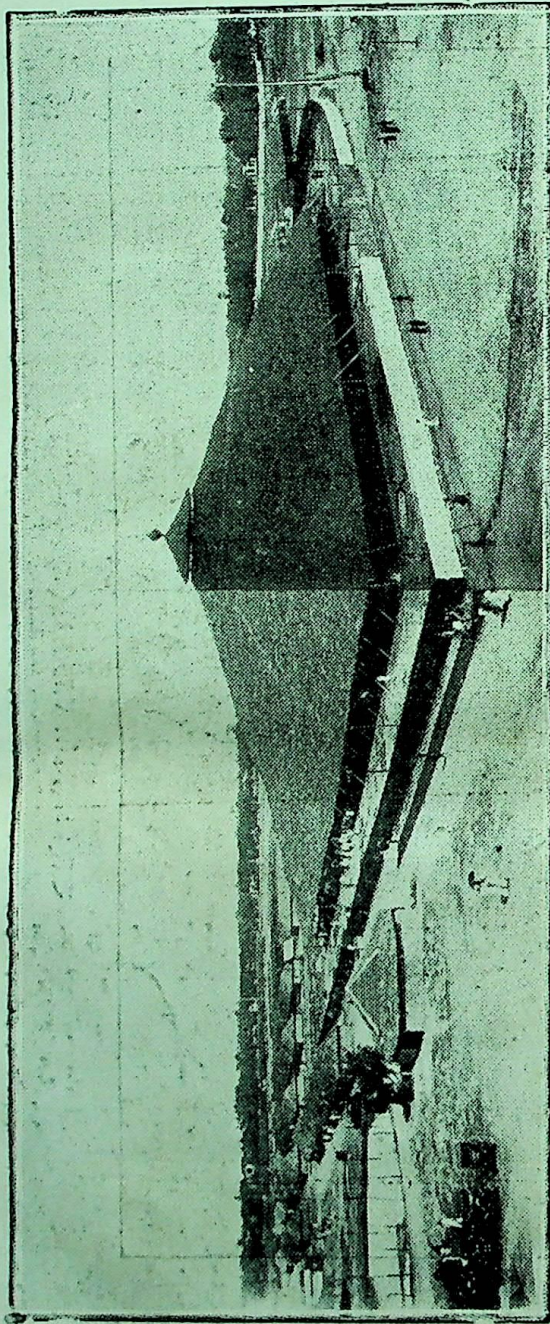
४२ वीं राष्ट्रीय महासभा मद्रास का सभा-मण्डप

...ई जायँ, जिन सामग्रियों की उन्हें ज़रूरत हो वह उन्हें ...ाई जाय। फ़िलहाल अम्रसर, मनोहरपुर और बांसा ...तीन केन्द्रों में यह कार्य आरंभ होगा। इसके मंगला-...के निमित्त, तथा श्री जमनालालजी के आगमन के उप-...में, अमरसर में एक खादी-प्रदर्शिनी की आयोजना राज-...चर्खा-संघ की ओर से की गई थी। इस तरफ़ के ...में, और देहात में, यह पहली ही प्रदर्शिन थी। प्रद-...के संग्रह-विभाग में चार क़िस्म की चीज़ें थीं— (१) ...सौ वर्ष पहले के बने महीन् कपड़े, जिनमें एक नमूना ...से ऊपर ...अर्ज़ का ...।(२) अमर-...और आस-...में बनने ...शुद्ध ...के नमूने, ...गड़े, खेस, ...ये, चेक, ...जोड़े आ-...। (३) ...की तथा ...की रंगाई ...बढ़िया ...के ...। (४) ...की ...तथा ...के महीन और बढ़िया कपड़ों के नमूने। कार्य-...में पिंजाई, कताई और बुनाई होती हुई ...ई गई थी। चर्खा-संघ के शिक्षण-विभाग की ...नई मध्यम पींजन पर पींजा जाता था। इससे ...ताक़त वाले आदमी और स्त्रियां भी अच्छी और ...पिंजाई कर सकती हैं। कताई-दंगल अमरसर ...स्त्रियों का रक्खा गया था। जैसे रोटी बनाना घर-घर ...त है, वैसे ही चर्खा कातना यहाँ रोज़मर्रा की बात है। किसी भी गली में आप निकल जाइए, २-४ औरतें गुट बना कर कातती हुई नज़र आवेंगी। दंगल में गांव के ब्राह्मण, महाजन, आदि की स्त्रियों ने योग दिया था। चर्खा उनका पुराना है। बुनाई में ख़ास कर वे चीजें बुनती हुई दिखाई गईं थीं, जो इस तरफ़ पहले-पहल नयी तैयार हुई हैं; जैसे खेस, तौलिया, चेक, आदि। अच्छी कातने वालियों तथा नई तर्ज़ का बुनने वालों को सेठजी के हाथ से १०१) पुरस्कार दिया गया।

कताई-प्रदर्शन

प्रदर्शिनी का उद्घाटन सेठ साहब के हाथों से हुआ था। अपने भाषण में आपने प्रदर्शिनी का महत्व बतलाते हुए वस्त्र-स्वावलंबन की उपयोगिता बताई। स्त्रियों की सभा में आपकी ओर से श्री हरिभाऊजी ने कहा कि स्त्रियाँ, खुद कातते हुए भी, साड़ियां प्रायः विदेशी। या मिल की पहनती हैं; उनके कते सूत की खादी बंबई-कलकत्ते जाकर बिके, और वे वहाँ से आया विदेशी या मिल का कपड़ा पहनें, यह तो वैसा ही हास्यास्पद और उलटा है जैसे कि यहाँ से रोटी पकाकर बंबई भेजी जाय और बंबई से विलायती डबल रोटियाँ आकर अमरसर के सेठों और पुरोहितों के घर में खाई जायँ। महीन साड़ियों के पहनने की तथा बहुतेरे गहनों से अपने शरीर को कुरूप बना लेने की हानियाँ बताते हुए आपने मोटा पहनने और स्वाभाविक सौन्दर्य की रक्षा करने पर ज़ोर दिया।

बताया गया कि शील, सदाचार, सादगी ही स्त्रियों का सबसे बड़ा और सच्चा भूषण है। सीता जैसी महारानी यदि बन में बल्कल पहन कर रह सकती हैं तो क्या हम घर का मोटा कपड़ा भी नहीं पहन सकते ? फिर घर की और ख़ुद अपने हाथ की बनी चीज़ में जो प्रेम, सद्भाव और स्वाद है वह बाहर की बनी चीज़ में कहाँ से आ सकता है ?

एक नई चीज़ खादी-प्रदर्शिनी में की गई। प्रदर्शिनी के भवन की दीवार पर बड़े मोटे पर सुन्दर अक्षरों में 'खादी' शब्द लिखा गया था और उसके अंग-प्रत्यंग में खादी के विशेष-विशेष गुण लिखे गये थे—जैसे, स्वावलम्बन, एकता, राष्ट्रीयता, सादगी, आदि। इसका नाम रक्खा गया था 'खादी का विराट् दर्शन'। इसकी दर्शन-क्रिया श्री हरिभाऊ उपाध्याय के हाथों से कराई गई। अपने भाषण में आपने कहा कि खादी में केवल आर्थिक गुण ही नहीं, नैतिक और राजनैतिक गुण भी हैं। वह केवल ग़रीबों के घर में दो पैसे पहुंचाने वाली चीज़ ही नहीं है, बल्कि स्वावलम्बन, सादगी, कोमलता, राष्ट्रीयता, संगठन आदि गुणों और शक्तियों को उत्पन्न करने वाली चीज़ भी है और यही इस 'विराट् दर्शन' में दिखाया गया है।
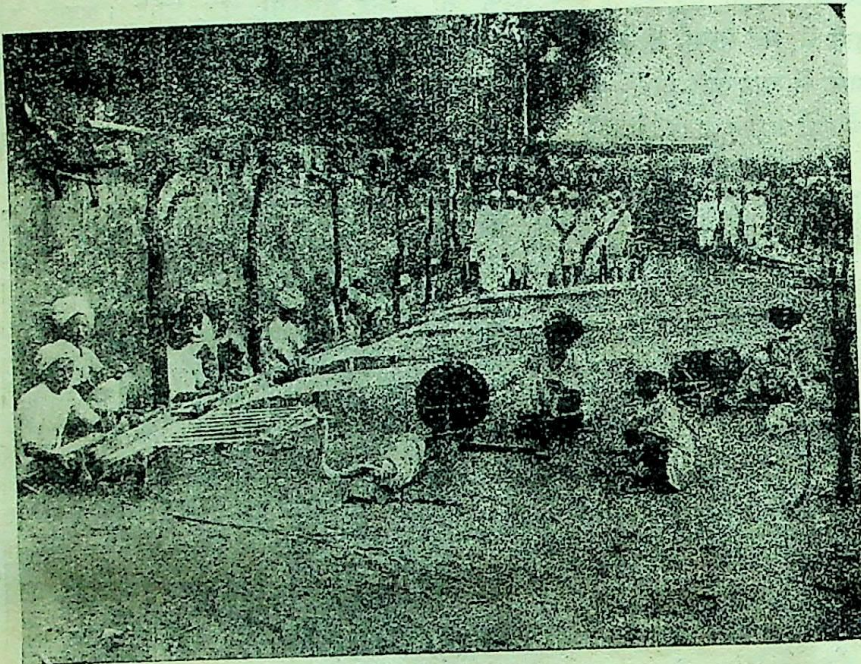
बुनाई का काम

प्रदर्शिनी में गाँव के तथा आसपास स्त्री-पुरुषों काफ़ी दिलचस्पी ली। उ के लिए यह बिलकु नई चीज़ थी। गाँव वालों विश्वास दिल या कि ह खादी काम संगठन में तरह सहाय देंगे। सेठ राजस्थान खादी कार्य अच्छी छाप लेकर लौटे। उनकी यात्रा से राजस्थान में खा कार्य की जड़ और भी मज़बूत हो गई और कार्यकर्त्ताओं कार्य अधिक सरल और सुगम हो गया।

खादी-सेवक

पत्र-प्रेषक ध्यान दें

सस्ता-साहित्य-मण्डल के तीन पृथक्-पृथक् विभाग हैं--पत्र-व्यवहार करने वाले सज्जनों से सवि

१. "त्यागभूमि"
२. सस्ता-साहित्य मण्डल) (पुस्तक प्रकाशन विभाग
३. सस्ता-साहित्य प्रेस

निवेदन है कि प्रत्येक विभाग से सम्बन्ध रखने वाला मज़मून अलग-अलग क़ाग़ज़ों लिखें। संस्था का हिसाब-किताब तथा रेकार्ड रखने में इससे बहुत सुविधा होती है। कार्ड पर लिखना चाहें तो उसपर भी इस ढंग से लिखें कि प्रत्येक विभाग सम्बन्धी उ अलग-अलग काट दिया जा सके। भिन्न-भिन्न विभाग से सम्बन्ध रखने वाले मज़मू नीचे पत्र-प्रेषक के पृथक्-पृथक् हस्ताक्षर भी ज़रूर हों।

संस्था सम्बन्धी कोई पत्र व्यक्ति-विशेष के नाम से न भेजा जाय। इससे काम में भारी असुविधा होती है

व्यवस्थापक 'त्यागभूमि'

साहित्य-सत्कार

सस्तुं-साहित्य-वर्धक कार्यालय, अहमदाबाद, की पुस्तकें

स्वामी रामतीर्थ (एमना सदुपदेश)

ग्रंथ १ (भाग १से५); सजिल्द; पृष्ठ-संख्या ५१५; मू० २।)
ग्रंथ २ (भाग ६से६); ,, ; ,, ६६३; ,, २॥)
ग्रंथ ३ (भाग १०-११); ,, ; ,, ५०१; ,, २।)
ग्रंथ ४ (भाग १२-१३ (जविन-कथा तथा उपदेश); सजिल्द; पृष्ठ-संख्या ४१५-।-१९४; मूल्य २।)

स्वामी विवेकानन्द

१ (भाग १से३); सजिल्द; पृष्ठ-संख्या ५७४; मू० २॥)
२ (भाग ४ ५); ,, ; ,, ५९३; ,, २॥)
३ (भाग ६-७); ,, ; ,, ४२२; ,, १।)
४ (भाग ८) ; ,, ; ,, ५१२-।-६२; ,, २)
५ (भाग ९); ,, ; ,, ७०३; ,, २॥)
६ (भाग १०); ,, ; ,, २७९; ,, १।)

श्री शिवाजी छत्रपति (सचित्र विस्तृत जीवनचरित्र)
सजिल्द; पृष्ठ संख्या ५१४; मूल्य २।=)

महान् नेपोलियन
सजिल्द; पृष्ठ-संख्या ७९७; मूल्य ३)

महात्मा टॉलस्टॉय
सजिल्द; पृष्ठ-संख्या ६०४; मूल्य २।॥)

आगल धसो
स्विट मार्स्डन की पुस्तक का अनुवाद; सजिल्द; पृष्ठ-संख्या ४५०; मूल्य १।॥)

भाग्यना सृष्टाओ
स्विट मार्स्डन की पुस्तक का अनुवाद; सजिल्द; पृष्ठ-संख्या ६८८; मूल्य २)

साहित्य-सदन, चिरगांव (झांसी), की पुस्तकें

रघनाथ-वध

२. वीरांगना
स्वर्गीय माइकेल मधुसूदनदत्त के काव्यों के पद्यानुवाद। अनुवादक—'मधुप'। सजिल्द; पृष्ठ-संख्या २९० और १३०; मूल्य ३॥) और १)

३. हिन्दू
काव्य। रचयिता—श्री मैथिलीशरण गुप्त। गुटका-साइज़। सजिल्द; पृष्ठ-संख्या ३४-।-३३३; मूल्य १।)

प्रकाश-पुस्तकालय, कानपुर, की पुस्तकें

१. हिन्दी करीमा
फ़ारसी-पुस्तिका का पद्यानुवाद। अनुवादक—श्री इक़बाल वर्मा 'सेहर'। पृष्ठ-संख्या ३९; मूल्य ।-)

२. सती सारन्धा
ऐतिहासिक खण्डकाव्य। लेखक—श्री रसिकेन्द्र। पृष्ठ-संख्या ७५; मूल्य ॥=)

३. टॉल्स्टॉय के सिद्धान्त
लेखक—पं० जनार्दन भट्ट, एम० ए०। पृष्ठसंख्या २५६; मूल्य १।)

४. संसार की असभ्य जातियों की स्त्रियाँ
लेखक—पं० विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, 'हिन्दी मनोरंजन'-सम्पादक। सचित्र, सजिल्द। पृष्ठ-संख्या २३२; मूल्य २॥)

५. वन्देमातरम् चित्राधार
श्री अरविन्द घोष के अंग्रेज़ी अनुवाद-सहित। चित्रकार श्री तेजेन्द्रकुमार मित्र। रेशमी जिल्द। मू० २)

६. तिलक-चित्रावली
लोकमान्य के विविध चित्र। मूल्य १)

सम्पादकीय

राष्ट्रीय वाग्यज्ञ

पिछले महीने में और ख़ास कर दिसम्बर के अन्त में इतने सभा-समाजों के अधिवेशन हुए हैं कि उन सबके और सभापतियों के नाम-ठाम से ही एक-दो पृष्ठ भर जायँ और उन सबका वर्णन देने के लिए एक पूरा 'अंश' चाहिए। राष्ट्रीय सप्ताह में होने वाले इस महावाग्यज्ञ में राष्ट्रीय महासभा, ख़िलाफ़त-परिषद् और मुस्लिम लीग का अधिवेशन, नवयुवक-सम्मेलन तथा स्वयंसेवक-परिषद् एवं प्रजातन्त्र-परिषद् के अधिवेशनों ने राष्ट्रीय दृष्टि से हमारा ध्यान ख़ास तौर पर खींचा है। ऐसा कह सकते हैं कि जहाँ तक प्रस्तावों से संबंध है, राष्ट्रीय महासभा के जीवन में युगान्तर हो गया। उसके तीन प्रस्ताव सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं—(१) भारतीय जनता का लक्ष्य पूर्ण स्वतंत्रता हो, (२) हिन्दू-मुस्लिम एकता संबंधी, और (३) कमीशन बहिष्कार-संबंधी। बड़े परिश्रम, धीरज और चिन्ता के साथ महात्माजी तथा अन्य वृद्ध नेताओं का बाँधा यह बंद टूट गया। कमीशन-संबंधी सरकार की मनोवृत्ति ने देश के तेजस्वी हृदयों को इतने ज़ोर का धक्का पहुँचाया कि उन्होंने अधिक 'समझदार' कहलाने के बजाय अधिक 'उतावले' कहलाना ज़्यादा पसंद किया। ऐसा न होता तो आश्चर्य की बात होती। हमारे बुज़ुर्ग लोग चाहते थे कि भारत को अपने से अलग करने की ज़िम्मेदारी ब्रिटिश लोग लें। देश की युवक आत्मा ने कहा, अब मैं उनकी राह देखने के लिए तैयार नहीं हूँ। यह बात नहीं कि हमारे बड़े-बूढ़े हमें स्वतंत्रता के योग्य नहीं समझते थे। उनकी राय में तो मनुष्य जंन्म से ही स्वतंत्र होता है। और महात्माजी ने इसे स्पष्ट भी कर दिया है। इस प्रस्ताव को स्वीकार करके महासभा ने दिल खोल कर यह कह दिया कि हम क्या चाहते हैं। हमें आशा है कि इसकी पूरी क़ीमत देने के लिए भी गुलामी की बेड़ियों को तोड़ने के लिए उतावली होने वाली भारत की अमर आत्मा अवश्य तैयार रहेगी।

पहले और तीसरे प्रस्ताव का कुछ मूल्य न होता यदि हिन्दू-मुस्लिम-एकता-संबंधी समझौता न हो गया होता। कलकत्ते के समझौते में हिन्दुओं को यह शिकायत थी कि गो-वध और बाजे को एक ही तराज़ू पर रख दिया गया और मुसलमानों को गो-कुशी का परवाना दे दिया गया। अब मद्रास में महात्माजी के समझौता-प्रस्ताव के अनुसार गो-वध और बाजे के हक़ के सवाल पर महासभा कुछ नहीं कहती बल्कि मुसलमान मुसलमानों से और हिन्दू हिन्दुओं से अपील करते हैं कि वे दूसरों के मनोभावों का ख़याल रख गो-कुशी करें और बाजा बजावें और महासभा दोनों से अनुरोध करती है कि वे गो-कुशी अथवा बाजा रोकने के लिए बल का प्रयोग न करें। इस प्रस्ताव पर पू० मालवीयजी के भाषण ने लोगों पर, ख़ास कर मुसलमानों पर, ख़ासा जादू डाल दिया। प्रकट हुआ है कि भाषण के बाद मौ० मुहम्मदअली उनके पैरों पर गिर पड़े और मौ० शौक़तअली पंखा झलने लगे। यह पढ़ कर हमारा हृदय गद्-गद हो गया और घड़ी भर के लिए ऐसा मालूम हुआ कि हम मर्त्य लोक में नहीं स्वर्ग में जा पहुँचे हैं। हिन्दू-मुस्लिम-एकता को असंभव मानने वाले तो ठीक, पर हम जैसे महान् आशावादी भी इतनी जल्दी इस दृश्य को देखने के लिए तैयार न थे। एक तो कमीशन की नियुक्ति में छिपा ईश्वर का हाथ—जो भारत के दुःखों और अपमानों से शायद अब दहल उठा है और दूसरे श्री श्रीनिवास आयंगर की कोशिश, अमीर क़ाबुल के दिव्य उपदेश, डा० अन्सारी के सुन्दर भाषण, महात्माजी की बिचवई और अन्त को पू० मालवीयजी की दूरदर्शिता ने यह करामात कर दिखाई। भारत की स्वाधीनता इस दिन को अपने लिए एक पर्व समझेगी। मौलाना और मालवीयजी वाला यह दृश्य जिस दिन ख़्वाज़ा हसननिज़ामी और भाई परमानन्द को गले लगा देगा उस दिन दुनिया में कि

डॉ० अन्सारी
४२ वीं राष्ट्रीय महासभा के अध्यक्ष
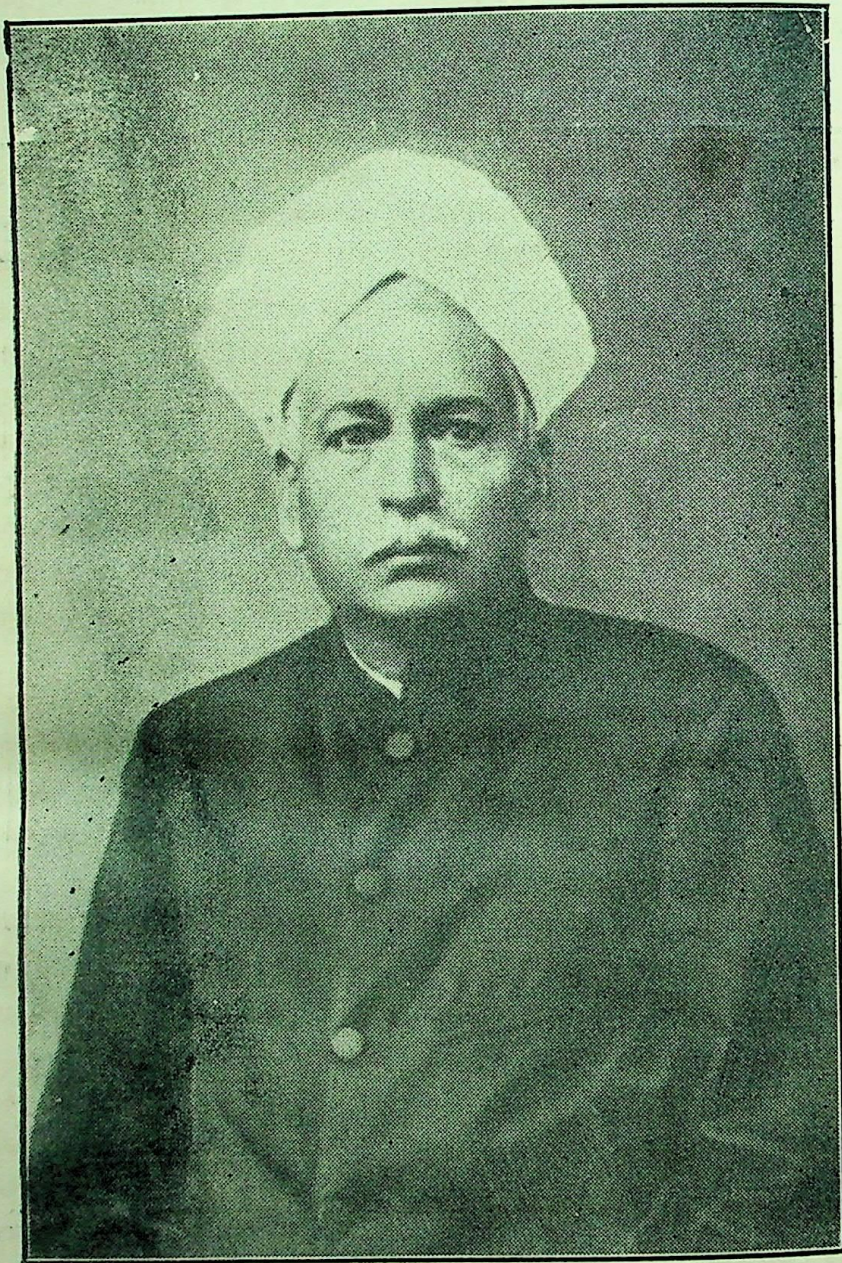
दीवान बहादुर श्री रामचन्द्र राव
बम्बई की देशीराज्य-प्रजा-परिषद् के अध्यक्ष

ताक़त है, जो कह सके कि भारत आज़ाद नहीं है? कमीशन-बहिष्कार-संबंधी प्रस्ताव एक मानी हुई बात। इन तीनों प्रस्तावों की बदौलत महासभा ने देश में नई आशा और उत्साह की ज्योति जगादी है।

डा० अन्सारी का भाषण लंबा-चौड़ा न था। उसमें काम की बातें थीं। कमीशन का बहिष्कार और एकता—हिंदू-मुस्लिम-एकता, राजनैतिक एकता—उसका प्रधान विषय। भाषण में एक सच्चा राष्ट्रीय पुरुष, एक पक्का देशभक्त बोल रहा था। राष्ट्र-निर्माण के सबसे महत्वपूर्ण अंग 'खादी-[प्रचल]न' पर आपके भाषण में एक शब्द भी न देख कर हमें आश्चर्य हुआ।

ख़िलाफ़त-परिषद् में कमीशन-बहिष्कार पर ज़ोर दिया गया, कमीशन का साथ देने में मुसलमानों की हानि बताई और अफ़ग़ानिस्तान के एशियाई राष्ट्र-संघ बनाने के विचार का समर्थन किया गया।

मुस्लिमलीग में दो दल बन गये। एक दल ने—राष्ट्रीय दल ने—कलकत्ते में अपनी सभा की और दूसरे, जीहुज़ूर दल ने लाहौर में। पहले दल के मुखिया श्री जिन्नाह और सर अब्दुलरहीम हैं और दूसरे के सर मुहम्मद शफ़ी। कलकत्ते वालों ने बहिष्कार का समर्थन किया और लाहौर वालों ने उसका विरोध। इस फूट में सरकार की भेद-नीति तो स्पष्ट हो ही रही है; पर मुसलमानों की तंग दिली, दूरन्देशी की कमी और अपने सच्चे हित का अज्ञान भी ज़ाहिर होता है। यह जहाँ खेद की बात है तहाँ राष्ट्रीय-दल के मुसलमानों की दृढ़ता तथा सुलझे हुए दिमाग़ को देखकर आनंद भी होता है। मुसलमानों को चाहिए कि इस मौके पर वे अपने घर की फूट को भी दूर कर दें। निश्चय ही यह हिन्दू-मुसलमानों की समस्या से बढ़ कर नहीं है। इसमें तो केवल कुछ व्यक्तियों के ही स्वार्थ का सवाल है। आशा है देश और क़ौम का हित उन भूले भाइयों की आंखें शीघ्र खोल देगा।

नवयुवक-सम्मेलन पर 'उगता राष्ट्र' में लिखा ही गया है। स्वयंसेवक परिषद् में कहा गया कि यदि सीमाप्रान्त में लड़ाई छिड़े तो नवयुवकों को उसमें भाग न लेना चाहिए। प्रजातंत्र-परिषद् एक नई और चौंकाने वाली चीज़ है। युवक-सम्मेलन प्रधानतः राष्ट्र-निर्माण की संस्था, स्वयंसेवक-परिषद् सेवकों और सैनिकों की संस्था है, और प्रजातंत्र-परिषद् स्वाधीनता के मतवालों की संस्था है। तीनों मिल कर एक ऐसी चीज़ बन जाती हैं जो एक नये भविष्य की ओर संकेत करती है। राष्ट्रीय महासभा बड़े-बूढ़ों की—ज्ञान और अनुभव की—संस्था है; ये सम्मेलन युवकों की—उत्साह और आशा की—संस्था हैं। कांग्रेस में दिमाग़ ज़्यादा है, इनमें दिल ज़्यादा है। दिमाग़ रास्ता दिखाता है और दिल दौड़ता है। दिल आगे दौड़ने के लिए छटपटाता रहता है और दिमाग़ उसे सम्हाल-सम्हाल कर रखता है। जब दिल बर-बस दौड़ निकलता है तब दिमाग़ भी अपना वरदहस्त उसके सिर पर रख देता है। अतएव इन सम्मेलनों में हमें एक ज्वलन्त शक्ति, अदम्य उत्साह, प्रबल आशा और भारी पुरुषार्थ के दर्शन हो रहे हैं। दिसंबर का यह अन्तिम सप्ताह दिल की विजय का सप्ताह है, राष्ट्रीय भावों की विजय का सप्ताह है। भगवान् करें यह राष्ट्रीय वाग्यज्ञ इसी उज्ज्वलता के साथ हमें कर्म-यज्ञ में आहुति देने के लिए तैयार रक्खे।

कमीशन का भाग्य

कुछ पिछड़े हुए मुसलमानों और बहकाये हुए अछूतों को छोड़ कर सारे देश ने एक-स्वर से साइमन-कमीशन के बहिष्कार की घोषणा कर दी है।

महासभा के प्रस्ताव के अनुसार बहिष्कार के लिए इतनी बातें होनी चाहिएँ—(१) कमीशन के भारत पहुँचने के दिन तथा जहाँ-जहाँ कमीशन जाय विरोध-सभायें की जायँ। (२) न तो कोई कमीशन में गवाही दें, न सार्वजनिक या व्यक्तिगत रूप से सहयोग करें, न भोज इत्यादि में शरीक हों। (३) व्यवस्थापक सभाओं के ग़ैर-सरकारी सदस्य न तो कमीशन के संबंध में चुनी जाने वाली कमिटियों के लिए वोट दें, न कमिटियों के सदस्य बनें, न कमीशन-संबंधी किसी प्रकार के प्रस्ताव को स्वीकार करें। (४) धारासभाओं के कांग्रेसी सदस्य वहाँ सिर्फ़ इतने दिनों के लिए जायँ कि उनकी जगह ख़ाली क़रार देकर उप-निर्वाचन न हो पाये, या मंत्रि-मण्डल को तोड़ने अथवा (३) में वर्णित काम के लिए जायँ। (५) बहिष्कार के लिए दूसरी संस्थाओं और दलों से सलाह और सहयोग करे।

क्या नरमदल, क्या ख़िलाफ़त और क्या औद्योगिक-परिषद् और

मुस्लिमलीग, तथा क्या हिन्दू-सभा, सबने अपने-अपने अधिवेशन करके बहिष्कार की आवाज़ बुलन्द की है। इसका असर भी हुआ है। विलायत के अख़बार कहने लगे हैं, भाई, हिन्दुस्थानियों को राज़ी कर लेना चाहिए। समस्या विकट हो रही है। हम तो उन लोगों में हैं जो कमीशन से उदासीन हैं—न हमने पहले ही कुछ आशा की थी, न आज ही आशा रखते हैं। हम तो यह मानते हैं कि यदि हमने स्वराज्य की क़ीमत दे दी है तो 'सर्व-पक्षीय-सम्मेलन' (राउंड टेबल कान्फ्रेन्स) ही स्वराज्य का विधान बनाये और उसे पार्लमेन्ट ज्यों का त्यों स्वीकार करे। जिन लोगों ने आशा की थी उनमें अधिकांश लोग ऐसे हैं जो महज़ इस बात पर बिगड़े हैं कि कमीशन में कोई हिन्दुस्थानी नहीं रक्खे गये हैं। इन्हें ख़ुश कर लेना ही यदि ब्रिटिश सचमुच चाहें—बहिष्कार-आन्दोलन का प्रभाव सचमुच इतना पड़े—तो जब तक फिर पार्लमेन्ट का अधिवेशन न हो, उसपर पुनर्विचार नहीं हो सकता। इधर देश के कम से कम नरम दल के लोग हिन्दुस्थानियों को स्थान मिलने से कम पर हर्गिज़ संतुष्ट न हो सकेंगे। ब्रिटिश धूर्तता और राजनीतिज्ञता का अनुभव जिन्हें हैं वे देख सकते है कि ऐसे प्रबल बहिष्कार को मोल लेना वे कितना भारी समझ रहे होंगे। देखना चाहिए, आगे क्या-क्या दिलचस्प बातें सामने आती हैं। यह तो सिद्ध है कि सरकार न झुकी तो कमीशन को १९२१ के बहिष्कार का दृश्य भारत में दिखाई दिये बिना न रहेगा।

वह बुज़ुर्ग

हकीम अजमलख़ाँ साहब की अचानक मौत का समाचार पढ़ते ही 'आह!' करके हृदय कह उठा—देश का बुज़ुर्ग चल बसा। घर के बड़े-बूढ़े के मर जाने से छोटों के दिल पर सिर से छत्र उठ जाने का जो सदमा छा जाता है, वही थोड़ी देर के लिए हमारे दिल पर हुआ। कुछ देर के बाद याद आया कि अरे अभी तो महात्माजी, मालवीयजी, लालाजी, नेहरूजी, अन्सारी आदि मौजूद हैं। फिर भी दिल ने कहा-हकीमजी तो एक ही थे। मुसलमानों की दानाई, शराफ़त, बुज़ुर्गी और मुल्कपरस्ती की वह नाक थे। उनको देखकर इस्लाम के बड़प्पन के सामने सिर झुक जाता था। उनकी मृत्यु से इस्लाम-संसार ने अपना एक स्तम्भ खो दिया, हिन्दुओं ने अपना एक मित्र खो दिया और भारतमाता ने एक नेक, लायक़, समझदार, दूरंदेश सपूत। हकीमजी हिन्दू-मुसलिम-एकता के एक महान् स्तम्भ थे। हाल ही में जब कि महासभा और मुसलिम लीग-हिन्दू-मुसलिम एकता के लिए इतनी कोशिशें कर रही हैं और जब कि वह चिरवांछित एकता हमारे नज़दीक आती हुई दिखाई दे रही है, तब ऐसे समय उसे मज़बूत करने के लिए देशको हकीमजी की ख़ान्दानी हिक्मत की सब से बड़ी ज़रूरत थी। उनकी सद्गति के लिए हमारे परमात्मा से प्रार्थना करने की कौन आवश्यकता है? जिनका जीवन इतना अनुकरण और अभिमान की वस्तु हुआ है और ये बातें जिनके कुटुम्बियों को विरासत में वह दे गये हैं उन्हें हम धैर्य भी क्या दें? हम तो यह कहना चाहते हैं कि परमात्मा ऐसे बुज़ुर्ग सब को दें।

इन्द्रजी

इन्द्रजी गुरुकुल के प्रथम प्रसाद हैं। वीर, त्यागी और पुरुषार्थी पिता के राष्ट्रीय पुत्र हैं। हिन्दू मुसलमान झगड़ों में, हिन्दुओं के हित की चिंता में, वह सारे देश के हित को भूल नहीं गये। विद्वान् होते हुए भी उनका जीवन एक वीर क्षत्रिय का जीवन है। कितने ही नवयुवकों की आँखें उनकी ओर लगी हुई हैं। उनके 'अर्जुन' ने अपनी खरी नीति की धाक जमा रक्खी है। वह बुद्धिवादी और व्यवहारवादी हैं। वह उदार और राष्ट्रीय विचार के आर्यसमाजी हैं। 'अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वेन दैन्यं न पलायनम्'—इस वचन में इन्द्रजी स्वयं प्रतिबिंबित हैं। 'अर्जुन' में प्रकाशित कुछ लेखों में हिन्दू-मुसलिम-वैमनस्य बढ़ाने की चेष्टा के अभियोग पर हाल ही में आपको ३॥ वर्ष सख़्त क़ैद की सज़ा दी गई है। लेख आपने लिखे न थे। लेख लिखे जाने पर आप देहली में मौजूद न थे। फिर भी आप दोषी माने गये हैं। हमतो वही पुराने निन्दित 'इकरंगी' असहयोगी बने हुए हैं। सफ़ाई देने और अपील करने की बात हमें आत्मगौरव और तेजस्विता के विपरीत मालूम होती है। ज़लील होकर छूट जाने की अपेक्षा जेल में सड़ते रहने वाले के चरणों पर हमारा सिर बरबस झुक जाता है। ब्रिटिश न्याय से हमारी श्रद्धा उठ गई है, इसलिए हमें तो इन्द्रजी पर हुए इस वार में इन्द्रजी की शक्ति को तोड़ने की तजबीज़ नज़र आ रही है। दो जातियों में वैमनस्य फैलाना ब्रिटिश क़ानून में जुर्म

ता तो भी, हिन्दुस्थान में रहने वाले के लिए हिन्दू-मुसल-न में द्वेष फैलाना यहाँ के प्राकृतिक क़ानून के अनुसार भी है। पर इन्द्रजी इस दोष के अपराधी हैं, यह तो तभी ना जा सकता है जब कि निष्पक्ष और ब्रिटिश सरकार के भाव से दूर, हिन्दू और मुसलमान न्यायाधीश उन्हें दोषी ठावें। क़ानून और बृटिश अदालत का न्याय जो कुछ ता हो, इन्द्रजी को जहाँ तक हम जानते हैं, वह उन आद-यों में नहीं हैं जो हिन्दू मुसलमान झगड़ों में देश का हित मझते हों। निर्दोष होते हुए भी यदि सरकार ने उनको, नके कार्यों को, निर्बल करने की यह कोशिश की हो तो बेकार होगी। निर्दोष बलिदान से बढ़कर उस व्यक्ति कार्य को बल देने वाली दूसरी बात नहीं हो सकती। हम नुभूति का नहीं, ईर्ष्या का सन्देश इन्द्रजी को भेज रहे हैं।

फाँसी के तख़्ते पर—

काकोरी षड्यन्त्र के चार क़ैदी फाँसी लटका दिये गये। न्होंने, हाईकोर्ट में अपील की, वाइसराय से दया-प्रार्थना , धारासभाओं के सदस्यों ने प्रार्थना की, बेचारों ने खेद प्रकट कर दिया—फिर भी उनके नसीब की फाँसी नहीं टी। इस सारे कांड में अथ से इति तक, करुण-रस भरा ा है। हमें इस बात का अफ़सोस नहीं कि ४ आदमी सी लटका दिये गये—भारत के स्वाधीन होने तक अभी तो हमारे लाल फाँसी लटकेंगे, गोलियों से भूने जायँगे, लों में सड़ाये जायँगे। पर इस बात पर घोर वेदना हो है कि उन्हें प्रार्थना, क्षमा-याचना आदि के रूप में इस ज़लील होना पड़ा। हम कभी उन वकीलों की बुद्धि प्रशंसा नहीं कर सकते जिन्होंने उन नवयुवकों को इस ल्लत में पड़ कर अपनी मृत्यु का मूल्य कम करा देने की लाह दी। इतने अनुनय-विनय के बाद अब उनकी फाँसी वह शोभा और गौरव नहीं रह जाता। हम उन फाँसी ने वाले युवक देशभक्तों के मार्ग को पसन्द नहीं करते —हम तो हिंसा-कांड तक के प्रबल विरोधी हैं—पर हम ना अवश्य मानते हैं कि उन्होंने जो कुछ किया देश की धीनता के लिए किया। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि के उपायों से—गुप्त षड्यन्त्र, डकैती और बमबाज़ी से— भारत का उद्धार नहीं हो सकता; पर वे लोग उन्हें किस मुँह से कोस सकते हैं जो ख़ुद हत्या-कांड और पशु-बल के ऊपर अपनी हस्ती जमाये हों? लुक-छिपकर कभी-सभी कुछ हत्या कर देने से बढ़ कर और भयंकर हत्या और जुर्म है सरेआम, क़ानून की और रक्षा की ओट में, सुसंगठित हत्या और लूट। बल और भय-प्रदर्शन पर जीने वाले यदि अपना ही अनुकरण होता हुआ देखें तो कौन आश्चर्य की बात है? हम तो इस अवसर पर भारत के नवयुवकों से दो ही बात कहना चाहते हैं—भारत के स्वराज्य का मार्ग आत्मबलिदान है; तुम अपने सारे सुखों, सारे ऐश्वर्यों, सारे भोग-विलासों की आहुति करने को जब तक तैयार न होओगे, तब तक दुनिया में तुम आज़ाद जातियों में ऊँचा सिर करके खड़े नहीं रह सकते। यदि यह तैयारी तुमने करली तो फिर तुम्हें लुक-छिप कर बम और पिस्तोलों का आश्रय लेकर काम करने की आवश्यकता नहीं। देश और गाँवों के संगठन में, राष्ट्र-निर्माण के कामों में अपने को झोंक दो। पाँच-सात बरस भी यदि तुमने एक केन्द्र में बैठ कर पुख़्ता काम कर दिया तो उसका मूल्य आज तुम्हारी फाँसी से कहीं अधिक है। तुम्हारी ऐसी फाँसियों में अब वह स्फूर्ति नहीं रह गई। अब तो बलिदान के नये क्षेत्र तुम्हें ढूँढने पड़ेंगे। और इन भूले-भटके भाइयों से जो अब भी बमबाज़ी में विश्वास रखते हैं, हमारा यही कहना है कि यदि देश और स्वाधीनता के लिए बम फेंकना और मारना एक-मात्र उपाय दिखाई देता हो और इसके फलस्वरूप जेल और मृत्यु जब कि अनिवार्य हैं तो फिर सफ़ाई, पैरवी, अपील, क्षमा-प्रार्थना की ज़िल्लत में पड़ कर क्यों अपने बलिदान की शोभा नष्ट करते हो? अदालत में साफ़-साफ़ कह दो कि हाँ, हमने ऐसा-ऐसा किया है, और इस ग़रज़ से किया है। न हमें माफ़ी मांगनी है, न सफ़ाई देनी है, हमें तो अपनी जान देनी है या सज़ा काटनी है। इसमें स्वाद है, शोभा है, गौरव है और हमारी दृष्टि में देश सेवा का वह रास्ता ग़लत होने पर भी बलिदान में असीम स्फूर्ति दायिनी शक्ति होती है। हमें काकोरी के इन भाइयों की फाँसी पर दुःख है; उनके बलिदान पर नहीं, उनकी ज़िल्लत पर। और इसका प्रधान दोष-भागी हम मानते हैं उनके वकीलों तथा हितैषियों को, जिन्होंने उन्हें गिड़गिड़ाने और हा हा खाने की सलाह दी। ह० उ०

चित्र-दर्शन

सत्यं शिवं सुन्दरम्

जब हम मोटर पर सवार होते हैं, या वायुयान में बैठ कर पहाड़ों, नदियों और शहरों पर से गुज़रते हैं तो हमें अपनी बुद्धि, शक्ति और वैभव का अभिमान होने लगता है। क्षण भर के लिए हम भूल जाते हैं कि हम प्रकृति के दास नहीं, प्रकृति हमारी दासी है। वैभव और समृद्धि के बीच मनुष्य अपनी मरणाधीनता को तो प्रायः भूल ही जाता है। पर यदि इसी एक बात को वह याद रक्खे तो आज संसार के व्यवहार में कैसा ज़मीन-आस्मान का अन्तर हो जाय?

उस एक सत्य को स्वीकार करते ही हमारा चित्त शिव-सङ्कल्पशील हो जाता है। व्यवहार का सारा दृष्टिबिन्दु ही बदल जाता है। शिव के मानी हैं कल्याण। और कल्याण में क्या कम सौंदर्य है? बल्कि यदि हम सौंदर्य की भावना का विश्लेषण करने जावें तो शिव अर्थात् कल्याण और सौंदर्य एक ही वस्तु के भिन्न-भिन्न नाम दिखाई देंगे। क्योंकि यदि सच्चा सौंदर्य ऊपरी दिखाव में ही होता तो आज संसार में मातृ-प्रेम, पितृ-प्रेम, पुत्र-प्रेम, पति-पत्नी-प्रेम जैसी कोई चीज़ ही नहीं होती। हम सब सुन्दर-सुन्दर आकृतियों के पीछे ही पागलों की तरह दौड़ते फिरते। परन्तु धन्यवाद है परमात्मा को कि जिन्होंने सौंदर्य की भावना की जड़ को इतनी उथली नहीं बोया। इसलिए कुरूप मां-बेटे, भाई बहन, पति-पत्नी में भी हम उसी प्रेम-रस का आस्वादन कर सकते हैं, जो यशोदा तथा द्रौपदी और कृष्ण के बीच या सीता और राम के बीच था।

काश्मीर के एक शिशिर-मथित झरने का यह दृश्य हमें कहता है कि "ओ मनुष्य, तू तो प्रकृति का दास है। इस जीर्ण-शीर्ण पुल पर से जाने वाले इन ठिठुरते हुए लोगों को देख, अपनी शक्ति और अशक्ति का भान तुझे राज-प्रासादों में नहीं, इन झोंपड़ों और ग़रीबों के जीवन में होगा।" यह सत्य कैसा कल्याणकर और सुन्दर है? स्वर्गीय श्रीमती लूसी इस चित्र द्वारा इस महान् सत्य को कितनी ज़ोरदार भाषा में व्यक्त करती है? शेक्सपियर ने इसी सत्य को इन शब्दों में कहा है—

> Are not These woods,
> More free from peril than the envious court?
> Here feel we but the penalty of Adam,
> The seasons' difference, as the icy fang,
> And churlish chiding of the winter's wind,
> Which, when it bites and blows upon my body,
> Even till shrink with cold, I smile, and say
> "This is no flattery, these are cou sellors,
> That feelingly persuade me *what I am.*"

इसलिए कवि ने पर्वत-शिखर पर खड़े रह कर घोषणा की—

"सत्यं शिवं सुन्दरम्"

भाइयो, सत्य शिव और सुंदर भी है। इसीकी आराधना करो।

❀ ❀ ❀

भारतीय चित्र-कला के दो मुख्य दृष्टिकोण देखने में आते हैं। एक भावना तो कविता की भांति चित्रकला के साथ कल्पना को सम्बन्धित करने के पक्ष में है, और दूसरी भावना वह है, जो जैसे को तैसा चित्रित करने के पक्ष में है। स्वर्गीय लूसी का चित्र कल्पना पूरित है। वह छाया-चित्र के समान नहीं। उस अनुपम सौंदर्य का प्रतिबिम्ब कांच पर नहीं, पर कलाविद् के हृदय पर पड़कर दिखाई दे रहा है। एक कलाकार किसी विशाल सौंदर्य में छिपे हुए मूल-तत्वों का अन्वेषण करता है, और उन्हें संग्रह करके अपनी कृति में प्रदर्शित

करता है। श्रीमती लूसी के कलामय नेत्रों ने उसे पहचान लिया और उनकी कौशलमय अंगुलियों ने अस्पष्ट रेखाओं में उसे चित्रित कर दिया है। इसके लिए उन्हें परिश्रम नहीं करना पड़ा। परन्तु उस कला-तत्वका साक्षात्कार करना तो वास्तव में कष्टसाध्य ही है न!

निरर्थककला (Art for Art's sake) के भक्त भले ही कला में सार्थक्य-वाद को सुनकर चौंकें। परन्तु वास्तव में सार्थकता तो कला का प्राण है। टॉल्स्टॉय ने इस कला-रहस्य को समझाने के लिए एक ग्रन्थ लिख डाला है। पर भवभूति ने उसी रहस्य को केवल चार-छः काव्यमय शब्दों में ही सीता के मुँह से प्रकट किया है—

जाने तस्मिन्नेव प्रदेशे तस्मिन्नेव काले वर्ते

"मानों मैं वहीं हूं" यह सात्विक तादात्म्य है कलाकृतिका अभीष्ट परिणाम। जो कला कृति हमें यह नहीं देती वह सदोष है, अपूर्ण है। अब भारत अपने कलाकारों की कृतियों में सत्य, शिव, सौंदर्य और सार्थकता का यह सम्मेलन देखने के लिए उत्सुक है।

श्री गोपाल

'कलाकी उच्चाति-उच्च कल्पना वह कामना है जो हमें अपने अंदर बैठे हुए दिव्यात्मा संबंधी सुस्निग्ध अनुभवों को व्यक्त करने के लिए प्रेरित करती है।' उन अनुभवों को प्राप्त करने का साधन श्री लूसी बताती हैं 'प्रकृति में होने वाले ज्योतिर्मय आविर्भावों का निगूढ़ अध्ययन।' उन्होंने इस अनुभव को प्राप्त करने के लिए उसी साधन का अवलम्बन किया है, जो सर्वथा स्तुत्य है; परन्तु, भारतीय संस्कृति ने उस 'दिव्यात्मा' की अभिव्यक्ति के लिए और भी सुलभ साधन उपस्थित करदिये हैं। श्री गोपाल का चित्रण उसी का फल है।

जिस प्रकार हम प्रकृति में दिव्यात्मा का अवलोकन कर सकते हैं उसी प्रकार मनुष्य-देह में उस दिव्यात्मा का अवतार भी तो मान सकते हैं न। एक बालक की मृदुल मुसकान और उसकी अद्भुत बाल-लीलाएं क्या ज्योतिर्मय आविर्भावों का निगूढ़ अध्ययन नहीं करातीं? प्रकृति का सौन्दर्य उच्च विचारों का उत्पादक हो सकता है, तो विकार रहित नर-नारी का सौन्दर्य भी तो उसी कलाकार की विभूति की अनुभूति कराता है। बालक सदा सर्वदा विकार-रहित है। अद्भुत कार्यों के सम्पादक श्रीकृष्ण तो आदर्श बालक थे। और निःसन्देह उनके बाल-स्वरूप का चित्रण भी अपने अंदर बैठे हुए दिव्यात्मा संबंधी सुस्निग्ध अनुभवों को व्यक्त करना ही है।

क्या ही अच्छा हो यदि इस समय चित्रकार लोग और उनके साधुदर्शी पुरस्कर्ता समाज में नवजीवन का संचार करने वाले नवयुग का संदेश सुनाने वाले चित्र पाठकों के सम्मुख रखें। पनघटों पर और गली-गली में गोपियों के साथ रंगरेलियां खेलने वाले विलासी कृष्ण की नहीं, गोपाल-कृष्ण की आज समाज को जरूरत है। कंस, दुर्योधन, जरासंध, और शिशुपाल का मद-मर्दन करने वाले कृष्णकी पुकार समाज में उठ रही है। बेधड़क कल्याण के मार्ग पर चलने का उपदेश करने वाले योगीश्वर कृष्ण के दर्शनों के लिए समाज तरस रहा है।

ऐसे समय श्री गोपाल-कृष्ण का दर्शन हमारे लिए एक महान वरदान है।

यह चित्र हमें श्री बालकृष्णलालजी पोद्दार के सौजन्य से प्राप्त हुआ है। 'त्यागभूमि' की ओर से हम आपका आभार स्वीकार करते हैं। श्री० लूसी के सौजन्य की स्वीकृति की पुष्पांजलि तो हम उनकी स्मृति को ही अर्पित करते हैं। प्रतिमास और भी अधिक कला-पूरित चित्र पाठकों को भेंट करने के हमारे प्रयत्न की सफलता हमारे लिए आनन्द और उत्साहप्रद है।

श्रीगोपाल नेवटिया

भूल-सुधार

अंश ३, पृष्ठ १८८, पंक्ति २१ में "बाल-विवाह" के स्थान पर "बाल-विधवा विवाह" पढ़िए।

सस्ता-मंडल के ग्राहकों से

मंडल से प्रकाशित होनेवाली दोनों मालाओं का वर्ष दिसम्बर मास में समाप्त हो जाता है। अब तक ग्राहकों को सस्ती-माला की पांच पुस्तकें ९०० पृष्ठों की और प्रकीर्ण-माला की तीन पुस्तकें ८४० पृष्ठों की इस तरह कुल १७४० पृष्ठों की पुस्तकें भेजी जा चुकी हैं। वर्ष भर में प्रत्येक माला में १६०० पृष्ठों की पुस्तकें देने का नियम है। अतएव शेष १५०० पृष्ठों की पांच पुस्तकें (जिनकी सूचना कवर के चौथे पृष्ठ पर दी हुई है) ग्राहकों की सेवा में फ़रवरी मास में भेजी जावेंगी।

मंडल का निजी प्रेस अभी नया नया ही खुला है। नये काम को सुचारु-रूप से जमाने में शुरू-शुरू में थोड़ा समय लगता ही है। फिर इधर 'त्यागभूमि' भी (जो पहले ६४ पृष्ठ की निकालने का विचार था) अब १२० पृष्ठों की निकलने लगी है और तीन हज़ार की संख्या में छपने लगी है। इसलिए अधिकांश समय उसीके छपने में चला जाता रहा है। मंडल की पुस्तकें एक मास देरी में प्रकाशित होने का यही कारण हुआ है। आगे से ऐसा प्रबंध हो रहा है, जिससे ठीक समय पर पुस्तकें प्रकाशित हो जाया करें। आशा है इस एक मास के विलम्ब के लिए ग्राहकगण क्षमा करेंगे।

व्यवस्थापक, सस्ता-मंडल, अजमेर

नोट—पत्र देते समय ग्राहकों को अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए। नहीं तो ग्राहक-रजिस्टर में उनका नाम ढूँढने में बड़ा समय लगता है और बड़ी दिक्कत उठानी पड़ती है। ग्राहकों को चाहिए कि वे अपना ग्राहक-नम्बर पुस्तकों पर लिख लिया करें।

'त्यागभूमि' के ग्राहकों से

जिन ग्राहकों को त्यागभूमि के अंक भेजे जाते हैं उनके पते के लेबल पर उनका ग्राहक नम्बर लिखा रहता है। इतने पर भी कई सज्जन पत्र देते समय अपना ग्राहक-नम्बर नहीं लिखते, जिससे उनका नाम रजिस्टर में खोजने में बड़ी असुविधा होती है। अतएव ग्राहकों से निवेदन है कि वे पत्र देते समय अपना ग्राहक नंबर अवश्य लिख दिया करें।

व्यवस्थापक

प्रोत्साहन

(३)

'हिन्दी-प्रचारक' (मद्रास)

'त्यागभूमि' एक उच्च कोटि की पत्रिका है। इसका आदर्श एक शब्द में आध्यात्मिक राष्ट्रवाद है। इसके सम्पादक सिद्धहस्त प्रसिद्ध हिंदी-लेखक हैं।...आशा है हिन्दी-संसार इस पत्रिका का सादर स्वागत करेगा।

'मतवाला' (कलकत्ता)

श्री हरिभाऊ उपाध्याय सम्पादन-कला में यथेष्ट प्रसिद्धि पा चुके हैं। उनके पत्र को सुंदर होना ही चाहिए। श्री 'राहत' जी भी नवीन स्फूर्त्ति के भावुक मनुष्य हैं। दोनों के सहयोग का फल 'त्यागभूमि' के रूप में हिंदी-संसार को मधुर स्वाद से चरितार्थ करेगा, इसमें सन्देह नहीं।...लेख, कवितायें, छपाई-सफ़ाई सर्वथा प्रशंसनीय हैं।

'अभ्युदय' (प्रयाग)

श्री हरिभाऊ सफल सम्पादक और देश की पराधीनता के लिए हृदय में कसक रखने वाले व्यक्ति हैं और इसी भाव का अनेक अंशों में आप अपनी पत्रिका द्वारा प्रचार भी करते हैं। 'त्यागभूमि' में अन्य विषयों के अतिरिक्त अधिकतर राजनैतिक लेख ही रहते हैं, इसीसे हमने इसे राजनैतिक पत्रिका कही है। कवितायें और चित्र भी उत्तम श्रेणी के रहते हैं। पत्रिका सब प्रकार से ग्रहणीय है और हम इसका अधिकाधिक प्रचार चाहते हैं।

'श्री वेंकटेश्वर समाचार' (बम्बई)

सम्पादक-युगल हिन्दी-साहित्य के पूर्व-परिचित सु-लेखक हैं और इस नये उद्योग के लिए हम उन्हें और प्रकाशकों को बधाई देते हैं। हमें पूर्ण आशा है कि 'त्यागभूमि' से हिन्दी-साहित्य की गौरव-वृद्धि होगी। हिन्दी-भाषा-प्रेमियों को इसे अवश्य अपनाना चाहिए। विशेष कर राजपूताना और मध्य-भारत-निवासियों को बड़ी संख्या में इस सुन्दर उपयोगी और ज्ञानवर्धन की सामग्री उपस्थित करने वाली पत्रिका का उत्साह के साथ स्वागत करना चाहिए।

'केसरी' (पूना)

'मालव-मयूर' तीसरे वर्ष में 'त्यागभूमि' के रूप में अवतीर्ण हुआ है। इसके सम्पादक हैं हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक श्री हरिभाऊ उपाध्याय। राजस्थान तो वीरभूमि है। वह

ात्विक त्याग का कोई प्रयोजन नहीं दिखाई देता। ि यह अंक अच्छे विषयों से भूषित होने के कारण हम देखकर कह सकते हैं कि यदि ऐसे ही अच्छे आगे के भी निकलते रहे तो यह पत्रिका चिरजीविनी होगी।

क्त श्री गंगाधरराव देशपांडे

'त्यागभूमि' के तीन अंश मिले। उन्हें देख और पढ़ कर न्तोष हुआ। आपको धन्यवाद आपके अभिनन्दनीय में मेरी पूर्ण सहानुभूति है। 'त्यागभूमि' की उन्नति ता हूँ।

मगनलाल खुशालचन्द गांधी, सत्याग्रहाश्रम, साबरमती

अंक की रचना सुंदर है। लेख भी अच्छे हैं। मासिक है कि पढ़ने को जी ललचाता है।

एन० एस० हार्डीकर, सम्पादक 'वालंटियर' हुबली

पत्रिका मिली। इसका स्टैण्डर्ड ऊँचा और अच्छा है।

मगोपाल मोहता, बीकानेर

'त्यागभूमि' का दूसरा अङ्क मिला। इसके लिए अनेक ाद। इसमें श्री जमनालालजी का 'किस बात की कसर' शीर्षक लेख प्रत्येक देश व समाज-सेवक के लिए मनन योग्य है—सुधार के सम्बन्ध में 'त्यागभूमि' के तृतीयांक ८ पृष्ठ पर श्रीमान् घनश्यामदासजी बिड़ला के प्रश्न र में जो भाव श्री भगवानदासजी के प्रकाशित हुए हैं मैं पूर्णतया सहमत हूँ। वास्तव में ये भाव सब के मनन योग्य हैं।

ामदास गौड़, एम० ए०, काशी

'त्यागभूमि' अच्छी निकल रही है। इसके लेख उच्च के और अत्यन्त उपयोगी दीखते हैं। इससे सस्ता भूषित हिन्दी मासिकपत्र तो मैं कोई और नहीं जानता। इसी तरह आप इसे चलाने में सफल रहे तो हिन्दी-के पत्र-सम्पादन में आप क्रान्ति उपस्थित कर देंगे विज्ञापनों से आर्थिक सहायता पाकर भी इतना कोई और निकालने में मुझे समर्थ नहीं दीख रहा है।

गिरिधर शर्मा नवरत्न, झालरापाटन

'त्यागभूमि' के दो अंक देखे, अनेक भावनायें जागीं। मनोरथ सिद्ध करे।

पं० ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल, 'मनोरमा'-संपादक, इलाहाबाद

दर्शन करके हृदय प्रसन्न हो उठा। लेख और कवितायें उच्च कोटि की हैं। मैं इसके प्रति अंक को बड़े चाव से पढ़ता हूँ। आपने पत्रिका का जो पवित्र उद्देश रक्खा है, वह आपके अनुरूप ही है। मैं इसकी हृदय से उन्नति चाहता हूँ।

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, बनारस

'त्यागभूमि' का संपादन बड़ी योग्यता से हो रहा है। अबकी बार का (तीसरा) अंक देख कर मैं मुग्ध हो गया। इसने थोड़े ही दिनों में बड़ी उन्नति की है। मुझको विश्वास है कि आप लोगों के हाथों में यह पत्रिका चकितकर कार्य करेगी और हिन्दी-संसार में उचित ख्याति और कीर्त्ति लाभ करेगी। थोड़े मूल्य में ऐसी सुसम्पादित और सुन्दर पत्रिका मिलना दुर्लभ है। परमात्मा आप लोगों के उत्साह की वृद्धि करे, और वह उत्तरोत्तर अधिकाधिक सुन्दर और उपयोगिनी सिद्ध होवे।

श्री रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी, 'बालक'-संपादक, लहेरियासराय

'त्यागभूमि' देखी। बड़ी सुन्दर और सुसम्पादित पत्रिका आप लोगों ने निकाली है। × × × 'त्यागभूमि' ऐसी सात्विक पत्रिका देख कर किसे न हर्ष होगा? इसमें साहित्य, कला, राजनीति, इतिहास, आदि विषयों के बड़े ही अच्छे, गम्भीर, और प्रभात्वोत्पादक लेख हैं। हिन्दी में इस समय 'प्रभा' के अस्तंगत होने के बाद कोई भी ऐसी पत्रिका नहीं रह गई थी कि जिसको नवयुवकों के हाथों में निःसंकोच दिया जा सके, जो नवयुवकों में स्वदेशभक्ति कला, प्रेम, ज्ञान-पिपासा, और बलिदान की लालसा जागृत कर सके। 'त्यागभूमि' इस अभाव की पूर्ति करेगी, ऐसी पूरी आशा है

श्री मोहनलाल महतो, ऊपरडीह

मैं उत्सुकता-पूर्वक प्रत्येक मास आपकी सुंदर पत्रिका के दर्शनों की प्रतीक्षा करता रहूँगा। हिन्दी में यह अपना एक स्थान रखती है। बधाई।

श्री शिवटहल मेहता, डोमचांच

सचमुच 'त्यागभूमि' क्रियाशील विद्यापीठ, त्याग तथा तपोभूमि और कष्ट-सहन-शीलता का संक्रामक आश्रम है। इसमें धीरता, वीरता, गम्भीरता, धार्मिकता और प्रवीणता आदि सद्गुणों की उज्ज्वल झाँकी दरसाने में आपने पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

हमारे ज़माने की गुलामी (महात्मा टाल्स्टाय)

यदि आप अपने देश को गुलामी से छुड़ाने का उपाय जानना चाहते हैं तो इस पुस्तक को जरूर पढ़िये। विचारों की दृष्टि से यह गागर में सागर है। संसार की साम्राज्यलोलुप सरकारों के नग्न किन्तु यथार्थ स्वरूप आपकी आंखों के सामने आ जायगा। पृष्ठ १००, मूल्य ।)

इस प्रकार उपरोक्त पांच पुस्तकें ८९९ पृष्ठों की हैं। अब ७०० पृष्ठों की पुस्तकें इस माला में जनवरी सन् २८ तक निकलेंगी। इस माला में महात्मा गांधी लिखित 'आत्म-चरित्र' पृष्ठ लगभग ४५० और दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह दूसरा भाग" पृष्ठ २०० छप रहे हैं।

सस्ती-प्रकीर्ण-माला के दूसरे वर्ष के प्रकाशित ग्रंथ

यूरोप का सम्पूर्ण इतिहास (दूसरा व तीसरा भाग)

लेखक—श्री रामकिशोर शर्म्मा, बी० ए०, विशारद

इसका पहला भाग प्रकीर्ण माला के प्रथम वर्ष में प्रकाशित हुआ था। पृष्ठ ३९६ और मूल्य ।।।-) जो सज्जन इन दोनों भागों को मंगावें वे प्रथम भाग को भी जरूर मंगा लें नहीं तो ग्रंथ अधूरा रहेगा।

इस ग्रंथ में शुरू से लेकर सन् २६ तक का समस्त यूरोप का इतिहास है। यूरोप का इतिहास स्वाधीनता का इतिहास है। जागृत जातियों की प्रगति का इतिहास है और पश्चिमी सभ्यता के विकास का पाठक्रम है। यदि भारत के युवक स्वराज्य चाहते हैं तो वे इस विविध घटना और परम उपयोगी शिक्षाओं से भरे यूरोप के इतिहास को अवश्य पढ़ लें। लेखन-शैली सरल व मनोरंजक है। पृष्ठ-संख्या दो भागों की ४६७, मूल्य केवल १=)

ब्रह्मचर्य-विज्ञान

लेखक—पं० जगन्नारायणदेव शर्मा 'साहित्य-शास्त्री'

भूमिका लेखक—पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे, सम्पादक "श्री कृष्णसंदेश"

यदि आज भारत को किसी चीज़ की सबसे अधिक जरूरत है तो वह है ब्रह्मचर्य-पालन। ब्रह्मचर्य विज्ञान में पंडितजी ने अपनी बालबोध शैली में ब्रह्मचर्य की आवश्यकता, महत्व तथा उसकी प्राप्ति के उपाय सात वृहत् खण्डों में बताये हैं। वेद, पुराण, दर्शन उपनिषद आदि की चुनी हुई सूक्तियों और महत्वपूर्ण प्रमाणों से ग्रन्थ भरा पड़ा है। प्रत्येक गृहस्थ और युवक तथा विद्यार्थी को यह ग्रन्थ पढ़ना चाहिए।

"इसमें लेखक ने ब्रह्मचर्य की महिमा और विधि के विषय में बहुत अच्छा संग्रह किया है जो सर्व साधारण तथा विद्यार्थी युवकों के लिए बहुत ही उपकारक होगा। प्राचीन ग्रन्थों से जो अवतरण दिये हैं बहुत ही स्फूर्तिदायक और समय पर काम देने वाले हैं। इसमें सभी विचारणीय विषयों का समावेश जिससे पुस्तकसबके लिए बड़े काम की हुई है। ऐसी पुस्तकों का देश में जितना प्रचार हो, उतना अच्छा। पृष्ठ-संख्या ३७४, मूल्य केवल ।।।-)। हरएक गृहस्थ को एक प्रति अपने पास रखनी चाहिए।

इस प्रकार इस माला में अब तक कुल ८४० पृष्ठों की पुस्तकें निकल चुकी हैं। आगे 'अनोखा उपन्यास (विक्टर ह्यूगो लिखित) 'जीवन-साहित्य' (दूसरा भाग) 'गोरों का प्रभुत्व' यह तीन ग्रन्थ छप हैं जो जनवरी सन् १९२८ तक प्रकाशित हो जावेंगे।

६) भेजकर दोनों मालाओं के वार्षिक ग्राहक बन जाइये

नीचे लिखे ग्रन्थ छप रहे हैं

फरवरी के दूसरे सप्ताह तक प्रकाशित हो जावेंगे

१—आत्म-कथा

[लेखक महात्मा गांधी]

पृष्ठ संख्या लगभग ४५० मूल्य लगभग ॥=)

२—द० आफ्रिका का सत्याग्रह (उत्तरार्द्ध)

[लेखक महात्मा गांधी]

पृष्ठ संख्या २२८ मूल्य ॥)

३—गोरों का प्रभुत्व

(लेखक बाबू रामचन्द्र वर्म्मा)

पृष्ठ संख्या लगभग २८०, मूल्य लगभग ॥≡)

४—जीवन-साहित्य (दूसरा भाग)

(लेखक—काका कालेलकर)

पृष्ठ संख्या लगभग २००, मूल्य लगभग ॥)

५—अनोखा (उपन्यास)

(मूल लेखक विक्टरह्यूगो—अनुवादक—ठाकुर लक्ष्मणसिंहजी बी० ए०, एल०एल० बी०)

पृष्ठ संख्या लगभग ३०० मूल्य ॥।)

नोट—(१) प्रथम दो पुस्तकें सस्ती-साहित्य-माला की हैं और शेष तीन पुस्तकें प्रकीर्ण-माला की हैं।

(२) स्थाई ग्राहकों को ये पुस्तकें पोनी कीमत में पड़ेंगी। स्थाई ग्राहक होने के नियम अन्दर दिये हुए हैं, सो पढ़ लें।

पता—सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर.

मुद्रक और प्रकाशक—जीतमल लूणिया, सस्ता-साहित्य प्रेस, अजमेर.